जगत्सेठ

और

वंगाल में अँगरेजी राज्य की नीवें

श्री पारसनाथ सिंह

(आसाम के गवर्नर माननीय श्री श्रीप्रकाश जी लिखित प्रस्तावना-सहित)

भारती-भंडार

प्रयाग

सा रम्या नगरी, महान्स नृपतिः, सामन्तचक्र च तत्,
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्, ताश्चन्द्रविम्बाननाः,
उद्रिक्तः स च राजपुत्र-निवहः, ते वन्दिनः, ता कथाः—
सर्व यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः !

—भर्तृहरि

उत्तर दिया गया है वह कपनी के पास पहुँचने वाली रिपोर्ट के आधार पर। सभव न था कि पूरी और सच्ची बात कपनी के कानो तक न पहुंच पाती पर अगर ऐसे विषय पर तर्क-वितर्क की कोई गुंजाइश न रहती तो और भी अच्छा होता।

मानसिक गठन में अंगरेज तथा अन्य यूरोप-निवासी यहां के निवासियों से भिन्न थे। व्यापारी होते हुए भी वे अपने बही-खाते जलाकर आग तापने वाले न थे। राजनीतिक उद्देश से उन्होने भले ही कभी किसी बात पर हरताल लगा दी हो या कोई कागज नष्ट कर दिया हो, उनके विषय में साधारणतः यह कहना होगा कि वे इतिहास लिखने या उसकी सामग्री को सुरक्षित रखने से जी चुराने वाले न थे। उनका यही गुण पीढ़ी दर पीढी इतिहास-विटप को सिक्त और परिपुष्ट रखता आया है और उन्हीं की देखा-देखी कुछ हद तक हमारे यहा भी उसकी सिंचाई होने लगी है। आज ईस्ट इडिया कपनी के ही कागजात से हम ऐसी बातें जान सकते हैं कि जगत्सेठ की कोठी में चांदी का मोल-भाव कैसे तै होता था—उन दिनो हुंडी-हुडावन, ब्याज-वट्टे से सबन्ध रखने वाली समस्यायें क्या थीं—और महताबराय जैसा व्यक्ति कलकत्ते जाता तो उसकी मेहमानदारी पर कपनी का क्या खर्च बैठता और टाट से लेकर हाथी की झूल तक उसे क्या क्या सामान जुटाना पडता।

इस पुस्तक के कई पृष्ठ हुडी-हुडावन, आढ़त, दलाली जैसे विषयो से सबध रखते हैं। नेहरूजी ने अपनी "हिन्दुस्तान की कहानी" में लिखा है कि "महाजनी की व्यवस्था बहुत अच्छी तरह और देश भर में सगठित थी और बड़े बडे व्यापारियों की हुडियां हिन्दुस्तान में सब जगह सकारी जाती थीं और हिन्दुस्तान ही क्या, ईरान, काबुल, हैरात, ताशकंद और मध्य एशिया की और जगहों में भी कबूल की जाती थीं। व्यापारी संगठन कायम हो गये थे और गुमाश्तों, माल पहुँचाने वालों, दलालो और बीच के व्यापारियो का जाल सा बिछा हुआ था। दर असल तिजारत और व्यापार और माली मामलों में कारखानो की क्रान्ति (इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन) के जमाने से पहले तक, हिन्दुस्तान किसी भी मुल्क के मुकाबले में तरक्की कर चुका था।....अगर मुल्क में शान्ति और पायदार हुकूमत के लंबे दौर न गुजरे होते और आमद-रफ्त के रास्ते आने-जाने और तिजारत के लिए सुरक्षित न होते तो ऐसी तरक्की न

होती।" पर अब न तो पायदार हुकूमत रह गई थी, न तिजारत ही अपनी असली हालत में बहुत दिनों तक रह सकती थी। अलीवर्दी खा के होते हुए भी जगत्सेठ फतहचन्द, जमाने का रग-ढग देख कर, कह चुके थे कि "इस समय तो जान पड़ता है कि कोई सरकार है ही नहीं। शासक-वर्ग को न तो ईश्वर का भय है, न सम्राट् का। चाहे जैसे हो, लोगों से रुपया ऐंठना ही उनका एकमात्र कर्तव्य हो रहा है।"

जब अराजकता मिटी और अगरेजो का राज्य हो जाने पर शान्ति और व्यवस्था का फिर लंबा दौर गुजरा भी तो उसके फलस्वरूप हमारी आर्थिक उन्नति न हो सकी, कारण कि विदेशी सरकार और भी तत्परता से लोगों का खून चूसने लगी और हमारे व्यापारियो की भी परपरागत वुद्धि या कार्य-कुशलता इस देश के काम न आकर इंगलैण्ड के ही काम आने लगी। व्यापार या व्यापारियों के हुडी-पुरजो में जो ताकत होती है वह, थोड़े में, पैदावार की ही ताकत कही जा सकती है। वह पैदावार अब दिन दिन कम होने लगी—अब इगलैण्ड वगाल से मलमल न मगा कर अपने ही कारखानों में महीन से महीन सूत की कताई और कपड़े की वुनाई करने लगा। औद्योगिक क्रान्ति से भी कहीं भयकर राजनीतिक क्रान्ति हो जाने से हमारे कारीगर भूखो मरने लगे—हमारा वाणिज्य-व्यवसाय चौपट होने लगा—हमारे वड़े-से-वड़े व्यापारी एक एक कर टाट उलटने लगे। जहा फतहचन्द वडी ही आसानी से एक करोड़ की दर्शनी हुडी का भी भुगतान कर सकते थे वहा हरखचन्द से डेढ लाख से भी कम रुपये की हुंडी का भुगतान कई किस्तो में ही हो सका था। यह एक परिवार की ही नहीं, देशमात्र की साम्पत्तिक अवस्था में 'लाख से लीख' जैसे परिवर्तन की सूचना थी।

इस पुस्तक में सारे विषय के इतिहास पर हिंदी-भाषाभाषियो की आवश्यकताओ को ध्यान में रख कर, प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। जिन इतिहास-ग्रंथों या लेखों से इसके लिखने में सहायता ली गई है उनके नाम प्रायः यथास्थान दे दिये गये हैं। जगत्सेठो के वृत्तान्त—विशेषतः ईस्ट इंडिया कपनी और उनके वीच लेन-देन—के सम्बन्ध में स्व० जे० एच० लिट्ल के अनुसधान ने अधे की लकड़ी का काम किया है। पर इन ग्रंथों या लेखो में कई इस समय दुष्प्राप्य

हैं और लेखक की समस्या हल हो सकी है तो कुछ मित्रों की उदारता से ही। इनमें कलकत्ते के श्री विनायक लाल खन्ना, श्री ज्योतिष चन्द्र गुप्त और श्री रमेश चन्द्र ठाकुर विशेष उल्लेखनीय हैं। राजस्थान के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीराम शर्म्मा, सस्ता-साहित्य-मंडल के श्री मार्तंड उपाध्याय और भारती-भंडार के श्री वासुदेव उपाध्याय भी इस प्रयास में उसके सहायक हुए हैं। पुस्तक के आरंभ में हीरानन्द साहू की कोठी का जो चित्र है वह टामस डेनियल नामक चित्रकार ने १७९५ में तैयार किया था। उसका फोटो पटने के प्रसिद्ध कलाप्रेमी और प्राचीन वस्तुओं के संग्रहकर्ता सेठ श्री राधाकृष्ण जी जालान के सौजन्य से प्राप्त हो सका है। इनका तथा अन्य सहायक मित्रों का लेखक बड़ा आभारी है।

काशी में माननीय श्रीप्रकाश जी का परिवार एक गुरुकुल के समान रहा है। स्वयं श्रीप्रकाश जी वहां किसी समय इतिहास के अध्यापक ही नहीं, छात्रों के पथप्रदर्शक और सहायक भी रह चुके हैं। बड़े गुरुभाई के आशीर्वचन के लिए उन्हें धन्यवाद देना तो एक प्रकार की धृष्टता होगी, पर उनके प्रोत्साहन से उसकी लेखनी को और भी बल मिलेगा, लेखक को यह आशा और विश्वास है।

पारसनाथ सिंह

प्रस्तावना

इतिहास कई दृष्टि से लिखा गया है और लिखा जा सकता है। कुछ लोग मनुष्य के इतिहास को विशिष्ट व्यक्तियों का जीवन चरित्र मात्र मानते ह। कुछ इस मत का घोर विरोध करते हुए व्यक्तियों को कुछ भी महत्व न देकर नैसर्गिक विकास पर ही जोर देते हैं। किन्हीं का विचार है कि इतिहास भूगोल पर अवलबित है। कोई समझते है कि विशिष्ट जन अपनी आकाक्षाओ की प्राप्ति में अपने मस्तिष्क के बल से सब प्रकार की प्रकृति-जनित बाधाओं को दूर कर इतिहास का निर्माण करते है। कोई आर्थिक आवश्यकता को सर्वोपरि मानते है और ऐतिहासिक घटनाओ को उसकी कसौटी पर कसते हैं। जहा तक मेरी समझ में आता है, सभी विचारों में कुछ न कुछ सार्थकता है, परन्तु कोई भी विचार वस्तु स्थिति का पूर्ण रूप से प्रतिबिब नहीं माना जा सकता। इन सब विचारों के समन्वय में ही सत्य है।

ऐसा मत होते हुए अपने मित्र श्री पारसनाथ सिह की रचना का विशेष प्रकार से स्वागत करना मेरे लिए स्वाभाविक है। जब उन्होंने अपनी पुस्तक के "प्रूफ" मेरे पास भेजने आरभ किये और मुझ से कहा कि तुम इसकी प्रस्तावना लिखो, तो मुझे आश्चर्य हुआ। मैं पारसनाथ जी को आज छत्तीस वर्षों से अच्छी तरह जानता, और इस बीच विभिन्न क्षेत्रों में मेरा उनका सपर्क रहा है। उनके कितने ही लेख मैंने पढे हैं और कितने ही स्थानो में मैंने उन्हे देखा है। उनके साहित्यिक और सामाजिक जीवन से—विशेषकर उनकी मधुर शिक्षाप्रद हास्यप्रियता से—मैं अच्छी तरह परिचित रहा हूँ पर मुझे यह नहीं मालूम था कि इतिहास में वे इतना रस रखते है और उन्होंने इतने सूक्ष्म रूप से उन कुटुम्बों की आन्तरिक जीवन-प्रणाली का अन्वेषण किया है जिनका सबध अग्रेजी शासन के

उद्गम और वैभव से रहा है। ऐसे कुटुम्बो में मेरा और मेरी जन्म-नगरी काशी के अन्य लोगों का भी कुटुम्ब है, और इस कारण पारसनाथ जी की पुस्तक से अवश्य ही मैं विशेष प्रकार से आकृष्ट हुआ।

इन व्यक्तिगत बातों को यदि छोड़ भी दिया जाय तो मुझे यह पुस्तक इस कारण बहुत रुचिकर प्रतीत हुई कि इसमें मैंने देखा कि अपने देश का वास्तविक सामाजिक इतिहास दिया गया है, यद्यपि ऊपर से देखने से कतिपय व्यक्तिमात्र का ही निरूपण इसमें मालूम होता है। पारसनाथ जी ने हमें बतलाया है कि हमारे मानसिक दृष्टिकोण में स्वतन्त्रता का कोई विशेष महत्व नहीं रहा है, और भौतिक इतिहास के प्रति हमारा कोई आकर्षण न रहने के कारण, इस अंग में हमारा ज्ञान भी बहुत कच्चा है। यह बात नितान्त सत्य है, और हम सब यही आशा कर सकते हैं कि स्वराज की प्राप्ति के बाद स्वतन्त्रता के महत्व को हम समझेंगे और अपनी परम्परागत मनोवृत्ति को बदलकर अब अपने देश को किसी विदेशी के अधीन न होने देंगे। हम यह भी आशा करते हैं कि ज्ञान के विविध अगों की दिन प्रति दिन उन्नति हमारे देश में होती जायगी और विद्वद्गण ऐति-हासिक भंडार को भी अपनी रचनाओं से पूरा करते रहेंगे।

पारसनाथ जी की पुस्तक हमें बतलाती है कि किस प्रकार से चन्द लोगों की व्यक्तिगत आकांक्षा ने विदेशी शासन को देश में स्थापित होने में सहायता पहुचायी है। साथ ही उन्होंने इधर के करीब ढाई सौ वर्षों का हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन का भी चित्र-चित्रण किया है। उन्होंने बडी सीधी सीधी साधारण बोल चाल की भाषा में इन सब भावो को प्रदर्शित किया है जो मनुष्य का मनुष्य से सपर्क होने से उत्पन्न होते हैं। व्यक्तिगत राग द्वेष के कारण कितनी बड़ी बडी घटनाए घटित हो सकती हैं, यह भी उन्होंने बतलाया है और हमारे कौटुंबिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को दिखलाया है। उनका इतिहास वास्तव में उपन्यास की तरह रोचक है, और मुझे आशा है कि बहुत से लोग इस पुस्तक को पढ़कर अपने इधर की शताब्दियों के पूर्वजों का हाल जानकर आगे

के लिए अच्छी शिक्षा पावेंगे। इस बात को कहने की विशेष आवश्यकता इस कारण है कि स्वराज-प्राप्ति के बाद जो ढाई वर्ष अब तक बीते हैं, उनकी घटनाओ को—विचार धाराओं और कार्य प्रणालियों को—देखकर मन में आशका होती है कि वह वातावरण और वह भावना अब भी जोरो से मौजूद है जिसके कारण हम बार बार परतंत्र हुए हैं, और बार बार अपनी एकता को खोकर अनेकता के कुपरिणामों के शिकार बने रहे हैं।

मै अपने मित्र श्री पारसनाथ सिंह को बधाई देता हू कि विद्वान् होते हुए और भाषा पर पूर्ण अधिकार रखते हुए भी उन्होंने साधारणतः अपरिचित क्लिष्ट वाक्यों और शब्दाडबर से अपने पाठकों की रक्षा की है। जो सुन्दर उपयुक्त नीति के श्लोक उन्होने उद्धृत किये हैं उससे उनकी पुस्तक विशेष रूप से रोचक और उपयोगी हो जाती है। उन्होंने वास्तव में बड़ा परिश्रम कर और बहुत तह के भीतर पहुचकर हमें अपने को ही देखने का और पहिचानने का सुअवसर प्रदान किया है। हमें उनके प्रति कृतज्ञ होकर उनके श्रम से लाभ उठाना चाहिए। यदि हम अब भी न चेतेंगे तो हमारा भविष्य सकटमय रहेगा। साथ ही यदि हम समझदारी से आगे चलेंगे तो हम अवश्य उस लक्ष्य को प्राप्त करेंगे जिसके लिए राष्ट्र पिता महात्मा गाधी जी ने अपना सारा जीवन लगाया और जिसकी खोज में उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी।

गवर्मेंट हाउस,
शिलांग,
१२ अप्रैल, १९५०

निवेदन

अठारहवीं शताब्दी में जिस उथल-पुथल ने अगरेज-जाति को बंगाल का अधीश्वर बना दिया उसके इतिहास से मुर्शिदाबाद के जगत्सेठ का नाम विशेष रूप से सम्बद्ध है। पलासी के युद्ध से प्राय सौ वर्ष पूर्व इस व्यापारी परिवार की महत्त्वाकाक्षा इसे पटने ले गई थी। फिर प्राय पचास वर्ष बाद उसने इसे मुर्शिदकुली खा के सम्पर्क में लाकर उसका अनन्य विश्वास-भाजन बना दिया था और धन के अतिरिक्त पद-प्रतिष्ठा की भी दृष्टि से इसे इतना ऊँचा उठा दिया था कि मुर्शिदाबाद की सस्थाओ में सबसे पहले इस घराने का ही नाम लिया जाता था और बिना इसकी सनद पाये कोई वहाँ की मसनद पर बैठने के लिए दिल्ली की सनद न पा सकता था।

मुर्शिदाबाद से दिल्ली तक जगत्सेठ-परिवार की ऐसी धाक जमने का कारण था उसका सारे तख्त का एक जबर्दस्त पाया होना। उसकी सेवाओ का महत्व या मूल्य आकने में तत्कालीन शासकों ने भी धर्मान्धता नहीं दिखाई। फतहचन्द को जगत्सेठ की पदवी देने वाला मुहम्मद शाह था और बंगाल-बिहार के शासन-क्षेत्र में उसे विशेष रूप से ऊपर उठाने वाला अलीवर्दी खा। पर इससे भी पहले मुर्शिदकुली खा मानिकचन्द को अपना मुकुट-मणि बनाकर उन्हें विशेष गौरव-शाली बना चुका था और आकाश चूमने वाली अट्टालिका का शिलान्यास कर चुका था। प्रथम जगत्सेठ फतहचन्द ने जो मान-महत पाया था वह साधन-सम्पन्नता के साथ अपनी राज-सेवाओ के बल पर। इन सेवाओं म एक यह थी कि मुगल-साम्राज्य पर विपत्ति-वर्षा होने के समय वह दिल्ली के लाल किले में करोड सवा करोड का भुगतान हुडी के जरिये ही करा सकते और रास्ते में खजाना लुट जाने की जोखिम से नवाब-नाजिम और बादशाह दोनो को बचा सकते थे। जगत्सेठ-परिवार सरकार का एक अभिन्न अग बन गया था और सपृक्त होकर दोनो एक दूसरे के हानि-लाभ में अपना हानि-लाभ समझने लगे थे।

उधर पिछली शताब्दी में ही समय की गति बदल चुकी थी और ऐसी शक्तियाँ प्रबल होने लगी थीं जो एक दिन मुगल-साम्राज्य को नष्ट किये बिना न रह सकती थीं। अगर धर्मान्धता औरंगजेब के ही साथ मर मिटती तो बात बहुत न बिगडती, पर हुआ यह कि दिल्ली का धार्मिक दृष्टि-कोण तो बदला नहीं और दरबार में दोष एक से हजार हो चले। फिर भी दिल्ली की आखें न खुल सकीं और उसकी कमजोरी दिन दिन बढ़ती ही गई। केन्द्र में शासन की क्षमता न रह जाने पर, विभिन्न प्रान्त निरकुश अथवा—कानों के अधिक प्रिय शब्द में—स्वतन्त्र हो चले। पर जो बल एकता में था वह इस अनेकता में न आ सकता था, इसलिए शत्रुओ से काम पडने पर उन विभिन्न अगो की स्वतन्त्रता देखते देखते विलीन हो गई और एक एक कर सभी परतन्त्र हो गये।

इस देश के इतिहास में परतन्त्रता कोई नयी वस्तु नहीं थी। फिर भी लोग इतना तो देख या समझ सकते थे कि विदेशी होते हुए भी फरासीसी या अगरेज कितनी ही बातो में अफगानों या मुगलों से भिन्न थे। इनकी रीति-नीति न्यारी, संकल्प-साधन का सारा ढग न्यारा था। ये इस देश में किसी खलीफा के आदेश या गाजी बनने के उद्देश से नहीं आये थे। दिल्लीश्वर बनने के लिए अगरेजो को पानीपत की चौथी लडाई लडने की कभी जरूरत न पडी। वे दिल्ली की ओर बढ़े भी तो मद्रास, कलकत्ता, बम्बई जैसे बदरगाहों की ओर से—एक हाथ में तराजू और दूसरे हाथ में बदूक लेकर माल की खरीद-बिक्री करते, देश-काल को जानते-पहचानते; यहाँ के सैनिक उपकरण का विशेष उपयोग करते और छल-बल से विभिन्न प्रान्तो को "पचतन्त्र" के 'एकोदर, पृथग्ग्रीव' और असहृत भारड-पक्षियो की तरह विनाश को पहुँचाते हुए। प्रान्तीय स्वतन्त्रता न तो केन्द्र के ही काम आ सकी न स्वय सुरक्षित रह सकी। और बगाल जैसे प्रान्त की लूट ने इगलैंड को मालामाल कर दिया।

दिल्ली के रोग का इलाज करना-कराना जगत्सेठ का काम न था। उनका सम्बन्ध वाणिज्य-व्यापार के क्षेत्र से था जिसमें उन्होंने अपने अनुभव, अध्यवसाय और व्यवहार-कुशलता से अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की और शैल-शिखर पर पहुँच गये। व्यापार के सिलसिले में ही ईस्ट इडिया कपनी की मानिकचन्द से जान-पहचान हुई। यह बात १७०६ से पहले की है। कासिमबाजार

में विदेशी व्यापारियो की फैक्टरियाँ या कोठियाँ थीं और वह स्थान महिमापुर (मुर्शिदाबाद) के पास ही था। इस सामीप्य ने उन्हें जगत्सेठ-परिवार के लोगों से मिलते-जुलते रहने और व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर लेने का सुअवसर दे दिया। प्रायः प्रत्येक विदेशी कपनी के महाजन जगत्सेठ ही थे। वह टकसाल के इजारेदार थे और वगाल में चादी के सबसे वडे खरीदार। उधर बाहर से चाँदी लाने वालो में ईस्ट इंडिया कपनी प्रमुख थी, इसलिए दोनों के वीच खरीद-बिक्री, लेन-देन से पारस्परिक सम्बन्ध का उत्तरोत्तर दृढ होना स्वाभाविक ही था।

अगरेज इस देश में पहुँचने से पहले और देशो में भी पहुँच चुके थे और दुनिया को देख कर दुनियासाज वन चुके थे। उनके मुकावले में यहाँ के व्यापारी ही नहीं, शासक भी दुधमुहे वच्चे थे। शिक्षा और सस्कृति की वात पूछी जाय तो इतना ही कहना काफी होगा कि वे आखिर उस वृक्ष के फल-फूल थे जिसे आरोपित कर शेक्सपियर १६१६ में ही अपना जीवन-नाटक समाप्त कर चुका था। अगरेजो के हौसले और हिम्मत पर कौन निछावर न होता? एक वार क्लाइव को इधर की यात्रा करनी पडी तो पवन की प्रतिकूलता ने उसके जहाज को कहीं से कहीं पहुँचा दिया, जिसके कारण उसे मद्रास पहुँचने में ही प्राय एक वर्ष लग गया। मेक्सिको की चादी को मुर्शिदाबाद या ढाके की मलमल को लन्दन पहुँचा देना कोई साधारण काम न था। इसके लिए जो साहस और सगठन-शक्ति चाहिए थी वह इस जाति में भरपूर थी। हमें इस बात का अभिमान हो सकता है कि क्लाइव के ही कथनानुसार मुर्शिदाबाद हर बात में लदन से टक्कर ले सकता था—साथ ही उसमें यह विशेषता थी कि लन्दन में एक भी परिवार धन की दृष्टि से जगत्सेठ की वरावरी का न था। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि लन्दन में ऐसे गुणों की पूंजी थी जिनका विकास उसे एक दिन ससारमात्र का आर्थिक केन्द्र वनाने वाला था। ईस्ट इडिया कपनी का अपना निर्माण समवाय-सिद्धान्त की भित्ति पर हुआ था। इसी सिद्धान्त का अवलम्बन कर लन्दन के व्यापारियो ने १६९७ तक बक आव इगलैण्ड की स्थापना कर ली और १७४२ तक उस बक की पूजी १२ लाख पौंड से वढ़ कर ९८ लाख पौंड हो चली। धीरे धीरे अंगरेज अपनी गुण-गरिमा से ही प्रकृत जगत्सेठ वन बैठे—और

जगत्सेठ भी ऐसे जिनकी भुजाओं में बल था, जिनके तरकश में तेज तीर थे। इस देश में मुकाबला होने पर कौन ऐसी शक्ति हो सकती थी जो रजोगुण को तमोगुण पर—प्रकाश को अन्धकार पर विजय पा लेने से रोक सकती? वास्तव में गुणों का दुर्गुणो से हार खा जाना ही अप्राकृतिक या आश्चर्यजनक होता।

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि बगाल में राज्यक्रान्ति कराने वाले एक ओर सिराजुद्दौला और दूसरी ओर महताबराय थे। सिराजुद्दौला ने अपनी विवेकहीनता और दुर्व्यवहार से जगत्सेठ जैसे अपने नाना के शुभचिन्तक और मित्र को भी अपना शत्रु बना दिया और अपमान असह्य हो उठने पर महताबराय ने अगरेजो की सहायता से उसकी जड खोद डाली। क्या महताबराय का यह कर्तव्य न था कि अपने मन को समझा-बुझा कर चुप बैठ रहते और अंगरेजो को आमन्त्रित कर राष्ट्र को पराधीनता का दुर्दिन देखने न देते? यहा दो बातें विशेष रूप से ध्यान में रखने की है। अगर वह कूटनीतिज्ञ थे भी तो पारदर्शी या दूरदर्शी न थे। षड्यन्त्र करते-कराते हुए भी वह अगरेजों को पूरी तरह न पहचान सके और पलासी के युद्ध का परिणाम क्या होने जा रहा था, यह न समझ सके। वह यही माने बैठे रहे कि अंगरेज एक दिन कलकत्ते लौट जायेंगे—वहां फिर वाणिज्य-व्यापार करने लगेंगे—और मीर जाफर की छत्रच्छाया में राज-काज पूर्ववत् ही होता रहेगा। उनकी सारी धारणा निर्मूल निकली। बगाल का नवाब-नाजिम कपनी के हाथ की कठपुतली बन गया और जगत्सेठ के हित की दृष्टि से तो कपनी ने भस्मासुर का काम किया। उनके हाथ में न टकसाल का इजारा रहा, न वह सरकारी पोतदार रहे। भौंर में पड कर उनके घराने की नामी नाव एक दिन डूब जाने से न बच सकी। फिर "राष्ट्र", "राष्ट्रीयता" या "स्वाधीनता" ऐसे शब्द थे जो उस समय के भारतवासियो के लिए कोई अर्थ नहीं रखते थे। धर्म के नाम पर मिटने वाले हिंदू नहीं तो मुसलमान मिल सकते थे, पर राष्ट्र या स्वदेश के नाम पर नहीं, कारण कि यह लोगों के लिए आकाश-कुसुम के समान था। इसकी वेदी पर साधारण बलिदान करने की भी शिक्षा न तो उस समय के नीति-शास्त्र में मिलती थी, न किसी जाति की परम्परा में। राष्ट्रीय एकता या स्वाधीनता और उसकी रक्षा के लिए स्वार्थ-त्याग की भावना के जन्म लेने में अभी बहुत देर थी। "शठे शाठ्य समाचरेत्"—यह

शिक्षा महताबराय को अवश्य मिली थी और इसका पालन करना उन्होंने अपना परम कर्तव्य समझा। उनके या दूसरो के लिए अपने देश-काल से ऊपर उठ जाना या बीसवीं सदी में पहुँच जाना असभव था।

इसमें सदेह नहीं कि बगाल में अगरेजी राज्य की स्थापना में जगत्सेठ से बहुमूल्य सहायता मिली, यद्यपि अठारहवीं शताब्दी में यह निश्चित था कि उस सहायता के बिना भी वह राज्य स्थापित होकर ही रहता। इतिहास की लीला को व्यापक दृष्टि से देखने वाले यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि मुगलों की अधोगति और विनाश में अगरेजो का अभ्युदय और राज्यारोहण सन्निहित था। एक तो उनके प्रतिद्वद्वियो में कोई भी उनकी बराबरी करने वाला न था; दूसरे, पलासी की लड़ाई का फैसला करनाल में और बक्सर की लड़ाई का फैसला पानीपत में ही हो चुका था। मीर जाफर ही नहीं, मीर कासिम भी मरने से पहले ही मर चुका था और क्षय तथा जय कराने वाला काल अंगरेज-मात्र को पुकार कर कह चुका था कि

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ, यशो लभस्व, जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्य समृद्धम्,
मयैवैते निहता: पूर्वमेव, निमित्तमात्र भव 'हैट'-धारिन्!

बंगाल में पडने वाली नींव पर ही वह इमारत खडी हुई जो बढते बढ़ते एक दिन आसमान चूमने वाली थी। यद्यपि उस विस्तार की कहानी इस पुस्तक की दृष्टि से विषयान्तर है, तथापि उसका भी उपक्रम शुजाउद्दौला के १७७५ में मर जाने से पहले ही हो चुका था। क्लाइव के प्रस्थान करने से पहले ही जगत्सेठ के घर का चिराग टिमटिमाने लगा था और वारेन हेंस्टिंग्स के जाते जाते तो पछवा हवा का झोका उसे गुल कर चुका था।

कई शताब्दियो से हिंदू-जाति इतिहास लिखने-पढ़ने की उपेक्षा करती आई है। इस कारण जगत्सेठ-वश का कोई ऐसा वृत्तान्त नहीं मिलता जो उसका लिखा-लिखाया हुआ हो। अन्धकार में उसके इतिहास पर "मुताखरीन" जैसे ग्रथ या ईस्ट इडिया कंपनी के कागजात से जो प्रकाश पड़ता है वह गनीमत है। यह बात निश्चित-सी है कि बाकी बातों की जिज्ञासा पूरी करने के लिए नयी सामग्री आज मुर्शिदाबाद में या अन्यत्र मिलने वाली नहीं।

मुसलमान लेखकों के लिए कोई हिंदू जगत्सेठ, ऐतिहासिक दृष्टि से, किसी खुदादाद खा लतीफ या मीर मुरतजा जैसे सरदार का पासग भी नहीं हो सकता था। इस परिवार में इतिहास-सम्बन्धी विरक्ति या उदासीनता न होती तो इसके लिए मुसलमान नहीं तो किसी हिंदू लेखक से अपना इतिवृत्त लिखवा जाना कुछ भी कठिन काम न होता। दिल्ली और मुर्शिदाबाद के बीच —पलासी के युद्ध से पहले नहीं तो उसके बाद, कंपनी के राज्य-काल में— कोई आनन्दराम मुखलिस या भीमसेन बुरहानपुरी या खुशहालचन्द इन सेठों को आसानी से मिल सकता था। "मुताखरीन" का लेखक गुलाम हुसैन इनके विषय में कुछ विस्तारपूर्वक अवश्य लिख जाता, अगर उसके शत्रु रामनारायण के मित्र होकर महतावराय वह अवसर भी न खो बैठते। इन बातो का नतीजा यह हुआ कि इस वश का पूरा इतिहास कभी लिखा न जा सका और जो कुछ लिखा गया वह जहां-तहा बिखरी हुई ऐसी प्रासगिक पक्तियो के रूप में ही जिनसे उसका ढोल-ढाचा तो हमारी आखो के सामने आ जाता है, पर उसकी पूरी तसवीर नहीं उतरती। अगर अनुमान या किंवदन्ती के ही आधार पर इतिहास का निर्माण हो सकता तो बात और होती, पर उस निर्माण के लिए जो उपादान चाहिए उसका नितात अभाव न होते हुए भी वह परिमाणतः इतना स्वल्प है कि सतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

उस स्वल्पता या अभाव के कारण, हम कितने ही प्रश्नों के उत्तर प्रामाणिक रूप से नहीं दे सकते। उदाहरणार्थ, हम इतिहास के आधार पर यह नहीं बता सकते कि अलीवर्दी खां के नाती को धूल में मिला देने पर महतावराय को कटिबद्ध करा देने वाली घटना वास्तव में क्या थी। वह भरे दरबार थप्पड़ या गाली जैसा उनका अपमान था? या सुन्नत की ही धमकी थी? या सिराजुद्दौला की बदमिजाजी के अलावा उसकी बदचलनी* भी थी? इस पुस्तक में इसका जो

---

* "और क्या कहूं मैं, रख बेगम का छद्मवेश,
करके दुरन्त मेरे अन्तःपुर में प्रवेश,
कुल को, जो भारत-प्रदीप्त भानुसम है,
दे चुका कलक-रूप कालिमा अधम है।"

—"पलाशिर युद्ध" (अनुवादक 'मधुप')

विषय-सूची

जगत्सेठ

और

बङ्गाल में अँगरेजी राज्य की नींव

हीरानन्द साह

विद्या वित्त शिल्प तावन्नाप्नोति मानवः सम्यक्
यावद् वृजति न भूमौ देशाद्देशान्तरं हृष्टः ।

जो मनुष्य कूप-मडूक वना रहता है, जो प्रसन्नचित्त रहकर देश-देशान्तर में भ्रमण नहीं करता, वह विद्या, हुनर और धन, इन तीनो में से कोई भी चीज अच्छी तरह हासिल नही कर सकता ।

—पचतंत्र

जगत्सेठ-वश का जो इतिहास उपलब्ध है, उसका आरभ सन् १६५२ ई० (सवत् १७०९) से होता है ।

उस साल हीरानन्द साह नामक एक मारवाडी नवयुवक ने अपनी जन्मभूमि नागौर से विदा ग्रहण कर पूरब की ओर प्रस्थान किया और बडे लम्बे सफर के बाद पटने पहुच कर वही लक्ष्मी की आराधना आरभ की ।

इस घटना को हम उस वृक्ष का वीजारोपण कह सकते है जिसकी विशालता उसे एक दिन देश-विदेश में प्रसिद्ध करने वाली थी ।

नागौर इस समय जोधपुर राज्य के अन्तर्गत है। उस समय गजसिह[1] राठौर के पौत्र रायसिह इसके जागीरदार थे। उससे भी प्राचीन समय मे नागौर-नगर अहिछत्रपुर[2] के नाम से जागल देश की राजधानी रह चुका था।

हीरानन्द साह जैन धर्मावलम्वी ओसवाल थे । उनका सम्प्रदाय श्वेताम्वर था और गोत्र गेल्हडा । कौटिलीय 'अर्थशास्त्र' में लिखा है—

"काम्भोज-सुराष्ट्र-क्षत्रिय-श्रेण्यादय वार्त्ता-शस्त्रोपजीविन ।"
कांभोज पूरब अफगानिस्तान का पुराना नाम है। सुराष्ट्र काठियावाड के अन्तर्गत है। कौटिल्य के वाक्य के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद है, पर जान पडता है कि अफगानिस्तान, काठियावाड, सिंध, पजाब आदि के क्षत्रिय तथा कुछ अन्य निवासी शस्त्रधारी और व्यापारी दोनो ही होते थे। उस समय नही तो कुछ समय बाद मारवाड के क्षत्रियो के विषय में भी यही कहा जा सकता था। हीरानन्द के पूर्वज क्षत्रिय थे। सोलहवी शताब्दी मे गिरिधरसिंह नामक उनके पूर्वज जिनहससूरि द्वारा जैन-धर्म[3] में दीक्षित हुए। गिरिधर के पुत्र का नाम गेलाजी था और गेलाजी ही गेल्हडा गोत्र के प्रवर्त्तक हुए। हीरानन्द के पिता करमचन्द थे, पितामह अक्षयराज और प्रपितामह सिहराज। मूलत क्षत्रिय होते हुए भी इस परिवार ने धनुर्वाण का परित्याग कर दिया था और अब इसकी जीविका व्यापारमात्र रह गई थी। नागौर में व्यापार का क्षेत्र सकीर्ण था। महत्त्वाकाक्षा रखने वाले हीरानन्द ने, उसके बडे क्षेत्र की तलाश में ही, पूरब की दिशा में यह प्रस्थान किया था।

यह दिल्लीश्वर शाहजहा का राज्य-काल था। वह गुणो मे अपने पितामह अकबर की बराबरी करने वाला तो न था, पर साथ ही उसमे वे दोष भी न थे जिनसे भरपूर होकर उसका पुत्र औरगजेब मुगल-साम्राज्य की जड खोदनेवाला हुआ। हिन्दू-धर्म के प्रति उसकी भी कुदृष्टि रहती थी, पर वह औरगजेब की तरह धर्मान्ध न था। बाप मे बेटे की-सी स्वार्थपरता, कपट या क्रूरता न थी। शाहजहां के समय मे सर्वत्र शान्ति-सी रही और देश की खासी आर्थिक उन्नति हुई। दिल्ली का दबदबा अभी चारो ओर बना हुआ था, और सम्राट्

का ध्यान बराबर इस ओर रहता था कि राज-कर्मचारी प्रजा का शोषण करने न पावें। ऐसी नीति के फलस्वरूप, खेतीबारी को ही नही, उद्योग-धन्धो तथा कला-कौशल को भी प्रोत्साहन मिला और भारतवर्ष के देशान्तर्गत व्यापार के ही नही, विदेशी व्यापार के भी क्षेत्र का विस्तार हुआ। 'दिल्ली में कोहनूर[४] और तख्तताऊस' को देखकर विदेशी यात्रियो को चकाचौंध तो लगती ही, उन्हें यह भी स्वीकार करना पडता कि और देशो की तुलना में, भारतवर्ष विशेष धनधान्य-पूर्ण और सुखी है । इस देश के राजनीतिक-गगन में बादल उमडने वाले थे, शान्ति का स्थान अशान्ति, सुख-सपद् का स्थान दुख-दारिद्र्य ले लेने वाला था, पर उस अध्याय का आरभ होने मे—औरगजेब के तख्त पर बैठने मे—अभी प्राय छ साल की देर थी।

भाग्य-परीक्षा के लिए पटना-जैसा स्थान चुन कर हीरानन्द ने बुद्धिमत्ता दिखाई थी। बिहार-प्रान्त की राजधानी तो यह था ही, वाणिज्य-व्यवसाय की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण था। यहा से बाहर जाने वाली वस्तुओ[६] मे शोरा, गुड, चीनी, छीट, लाह, सोहागा, कस्तूरी, अफीम और हल्दी प्रधान थी। पटने की छीट दूर-दूर तक मशहूर थी। वहा कस्तूरी भूटान से आकर बिकती और सोहागा तिब्बत से। विदेशी व्यापारियो की ओर से इधर शोरे की खरीदारी बडे पैमाने पर होने लगी थी। डचो और फरासीसियो के बाद जब अगरेज इस मैदान में आये, तब उनको ईस्ट इंडिया कंपनी को अपने सचालको से आदेश मिला कि व्यापार मे जो पूजी लगे, उसका कम से कम आधा शोरे की खरीदारी मे लगाया जाय और यह खरीदारी पटने मे ही की जाय।

शोरा बारूद बनाने मे काम आता था और ईस्ट इडिया कपनी के लिए इसका व्यापार बडा ही लाभप्रद था। बगाल और बिहार के तत्कालीन इतिहास मे अक्सर यह विवरण मिलता है कि शोरे से लदी नावें पटने से हुगली या कलकत्ते चली। पर बीच में ही राज-महल के पास नवाब के कर्मचारियो ने उन्हे इस कारण रोक लिया कि कपनी ने न तो चुगी चुकाई थी, न अब भी चुकाने को तैयार थी। पहले तो कपनी की ओर से यह दलील पेश की गई कि वह चुगी चुकाने से बरी है, पर जब इससे काम न बना, तब कर्मचारियो की खुशामद कर परवाना हासिल करने की कोशिश की गई। जब यह भी बेकार साबित हुई, तब रुपया मगाकर महसूल चुकाया गया और शोरे को जल्द से जल्द बदरगाह पहुचाया गया।

जगत्सेठ-वश का ईस्ट इडिया कपनी[७] से कुछ ही समय बाद घनिष्ठ सम्बन्ध होने वाला था, और अन्त में यह कपनी जगत्सेठो की तो बात ही क्या, मुर्शिदाबाद की मसनद से दिल्ली के तख्त तक राजसत्ता को अपने हाथ मे कर, इस देश मे सर्वेसर्वा बनने वाली थी। अपनी दीवार की नीव डालने के दिनो मे कपनी ने इस धनाढ्य और प्रभावशाली परिवार से तरह-तरह की सहायता ली, पर पलासी के युद्ध के बाद जब उसकी स्थिति काफी मजबूत हो गई और जगत्-सेठ-वश की दशा दिनो-दिन हीन होने लगी, तब अगरेजो को तोते की तरह आख फेर लेते देर न लगी।

पटने में हीरानन्द साह के जीवन के प्राय साठ बरस व्यतीत हुए। वहा पहुचकर उन्होने महाजनी के कारबार में हाथ लगाया था और उसी व्यवसाय के मार्ग पर वह धैर्य, साहस तथा एकनिष्ठा से आगे बढ़ते गये थे। आरभ में उन्हें अनेक कठिनाइयो का सामना

टिप्पणी

(१) पृष्ठ ३—"यद्यपि राव अमरसिंह मारवाड-नरेश गजसिंह के सब से बडे पुत्र थे, पर स० १६९० वि० कृ० वैसाख मास में उन्होने अपने छोटे पुत्र यशवन्तसिंह को युवराज की पदवी और इन्हें देश-त्याग की आज्ञा दी थी। यह बादशाह शाहजहा के दरबार में गये, जिसने इन्हे अच्छा मनसब, राव की पदवी तथा नागौर की जागीर दी।"

"राव अमरसिंह और सलावत खा बख्शी में बीकानेर की सीमा के विषय में कुछ मनोमालिन्य हो गया था। बीमार होनें के कारण या जैसा कि अमरसिंह के कवि 'बनवारी' का कथन है, छुट्टी से अधिक दिन व्यतीत करने पर किये गये जुरमाने के रुपये न देने के कारण सलावत खा बख्शी ने दरबार में उसके लिए तकाजा किया, जिस पर इन्होने रोष प्रकट किया। सलावत खा ने इस पर इन्हें गवार कहा, जिससे क्रुद्ध होकर इन्होने उसे मार डाला। दोहा यो है—

इत गकार मुख तें कढ़ो, उत निकसो जमधार,
'वार' कहन पायो नही, कीन्हो जमघर पार।"

"मआसिरुल उमरा" के अनुवादक की पादटीका।

मूल पुस्तक के लेखक ने राव अमरसिंह के वृत्तान्त में लिखा है कि शाहजहा ने उसके पुत्र रायसिंह को एक हजारी, सात सौ सवार का मनसब दिया और बाद को उसकी पदोन्नति भी हुई। औरगजेब का पक्षपाती होने के कारण यह तरक्की करता ही गया और एक दिन महाराज यशवतसिंह को चिढाने के लिए, औरगजेब ने इसे राठौर-जाति का सरदार और जोधपुर का राजा भी बना दिया। इसके मरने पर औरगजेब ने इसके पुत्र इन्द्रसिंह को जोधपुर की गजगद्दी पर बहाल रक्खा, पर शान्ति स्थापित होते न देखकर कुछ ही समय बाद उसे यह सारी व्यवस्था बदलनी पडी। इन्द्रसिंह को मारवाड के बदले नागौर लेकर पुनर्मूषिक होना पडा।

(२) पृष्ठ ३—स्वर्गीय पडित गौरीशकर हीराचन्द ओझा लिखते है—

"वर्त्तमान सारा बीकानेर-राज्य तथा मारवाड़-जोधपुर राज्य का उत्तरी हिस्सा जिसमें नागौर आदि परगने हैं, प्राचीन काल मे जांगल देश कहलाता था।

"जांगल देश की राजधानी अहिच्छत्रपुर थी, जिसको इस समय नागौर कहते है और जो जोधपुर-राज्य के उत्तरी भाग मे है।

"जोधपुर-राज्य के नागौर-नगर को जांगल देश की राजधानी अहिच्छत्रपुर मानने का पहला कारण तो यह है कि नागौर नागपुर का प्राकृत रूप है। नागपुर का अर्थ है 'नाग का नगर', अहिच्छत्रपुर का अर्थ है 'नाग है छत्र जिस नगर का'। नाग और अहि दोनो एक ही आशय (सांप) के सूचक है। संस्कृत के लेखक नामो का उल्लेख करने में उनके पर्याय शब्दो का प्रयोग सामान्य रूप मे करते है। पुराणो मे विशेष कर हस्तिनापुर नाम मिलता है, परन्तु भागवत में उसी के स्थान में गजसाह्वयपुर (भागवत १।८।४५, ४।३१।३०, ४।१०।५७) या गजाह्वयपुर (भागवत १।९।४८, १।१५।३८) नाम भी है। महाभारत में हस्तिनापुर के लिए नागसाह्वयपुर (७।१।८, १८।१६।२०) और नागपुर (५।१४७।५) नामो का प्रयोग भी मिलता है। क्योंकि हस्ती, नाग और गज तीनो ही एक ही अर्थ के सूचक हैं। दूसरा कारण यह है कि चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ के बिजौलिया (उदयपुर-राज्य में) के चट्टान पर के लेख में चौहान राजा सामंत का अहिच्छत्रपुर में राज्य करना लिखा है। (विप्रश्रीवत्सगोत्रेऽभूदहिच्छत्रपुरे पुरा .)। पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य में पाया जाता है कि वासुदेव (सामंत का पूर्वज) शिकार को गया, जहां एक विद्याधर की कृपा से शाकंभरी (सांभर) की झील उसको नजर आई। इससे पाया जाता है कि सांभर की झील चौहानो की मूल राजधानी अहिच्छत्रपुर से बहुत दूर न थी। ऐसी दशा में नागौर ही अहिच्छत्रपुर हो सकता है।

"जांगल देश की राजधानी अहिच्छत्रपुर (नागौर) के आस-पास छोटे-से प्रदेश का प्राचीन नाम सपादलक्ष था। नागौर के आसपास के इलाके (नागौर पट्टी) को वहां के लोग अब तक 'स्वाजक' या 'सवाजक' कहते है जो सपाद-लक्ष का ही लौकिक रूप है"।

नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (नवीन संस्करण) भाग २—अंक ३।

(३) पृष्ठ ४—"यद्यपि जैन-धर्म की स्थिति के ऐसे प्राचीन लिखित प्रमाण नही मिलते तो भी अजमेर जिले के वर्ली नामक गाव में वीर सवत् ८४ (वि० स० पूर्व ३८६, ईस्वी सन् पूर्व ४४३) का एक शिलालेख मिला है, जिससे अनुमान होता है कि अशोक से पूर्व भी राजपूताने में जैन-धर्म का प्रचार था। जैन लेखको का यह मत है कि राजा सप्रति ने, जो अशोक का वशधर था, जैन-धर्म की बडी उन्नति की और राजपूताना व इसके आसपास के प्रदेशो में भी उसने कई जैन-मदिर बनवाये थे। विक्रमीय सवत् की दूसरी शताब्दी के मथुरा के ककाली टीले वाले जैन-स्तूप तथा इधर के कुछ अन्य स्थानो के मिले हुए प्राचीन शिलालेखो तथा मूर्त्तियो से पाया जाता है कि उस समय भी यहा जैन-धर्म का अच्छा प्रचार था। वि० सवत् की तेरहवी शताब्दी में गुजरात के सोलकी राजा कुमारपाल ने अपने प्रसिद्ध विद्वान् गुरु हेमचन्द्राचार्य के उपदेश मे जैन धर्म ग्रहण कर उसकी बहुत कुछ उन्नति की। उस समय राजपूताने के कई राजाओ ने हिंसा रोकने के लिए लेख भी खुदवाये, जो अब तक विद्यमान हैं। कुमारपाल के पूर्व से लेकर अब तक के सैकडो भव्य जैन-मदिर यहा विद्यमान है, जिनमें कई एक स्वय कुमारपाल ने बनवाये थे। "राजपूताने का इतिहास", ले०—प० गौरीशकर हीराचन्द ओझा, पहली जिल्द।

(४) पृष्ठ ५—प्रसिद्ध हीरा, जो प्राय ५००० वर्ष पहले दक्षिण भारत मे गोदावरी के तल से प्राप्त हुआ था। इसका पूरा—विशेषत प्राचीन—इतिहास नही मिलता। अलाउद्दीन खिलजी ने इसे मालवा के हिन्दू राजा से जबरदस्ती ले लिया और तब से यह दिल्लीश्वरो के पास रहा। नादिरशाह इसे लूटकर ईरान ले गया, फिर कालचक्र इसे बरसो बाद १८१३ में भारतवर्ष लौटा लाया और यह पजाबपति रजीतसिंह का मुकुटमणि हो गया। जब अगरेजो का आधिपत्य हुआ, तब वे इसे १८४९ में अपने देश ले गये, और १८५० में यह रानी विक्टोरिया को भेट किया गया। आरभ में यह आज से कही भारी था। जान पडता है कि इसके कई टुकडे हो चुके है।

(५) पृष्ठ ५—मोर के आकार का राजसिंहासन, जिसे शाहजहा ने बनवाया

था और जिस पर वह पहली बार १२ मार्च १६३५ को बैठा था। यह सवा तीन गज लम्बा, सवा दो गज चौडा और पाच गज ऊँचा था। इसमें एक लाख तोला सोना लगा था और यह बहुमूल्य रत्नों से जटित था। सर यदुनाथ सरकार ऐतिहासिक शोध के आधार पर, इसमें लगे हुए सामान की कीमत एक करोड रुपये बताते हैं, जिसमें सोने की कीमत उस समय के भाव से १४ लाख थी। हा, मजूरी उस एक करोड के अलावा थी। साधारणत तख्त ताऊस की कीमत प्राय ९ करोड रुपये बताई जाती थी। इसे नादिरशाह १७३९ में ईरान लेता गया। आज भी यह वहीं मौजूद है, पर अपनी असली हालत में नही।

(६) पृष्ठ ५—इस देश से बाहर जानेवाली अन्य वस्तुओ में नील (रग के काम के लिए), मिर्च, सोंठ, घी, मोम और कपड़े प्रधान थे। कपड़े सूती और रेशमी दोनो ही होते थे। छीट, मलमल, ताफ्ता, बाफ्ता—इनकी विदेशो में बराबर बड़ी माग रहती थी। बाहर से यहा आने वाली चीजो में मुख्य थी—चादी, तावा, सीसा, वनात, पारा, मूगा, काच के सामान, मसाला, कस्तूरी और सोहागा। कुछ हद तक हीरे का निर्यात होता था, और मोती का आयात। ईरान, अरब आदि देशो से प्राय हर साल एक लाख घोड़े मगाये जाते थे। शाहजहा के समय में किसी-किसी ताजी घोडे की कीमत १५,००० रु० तक जा पहुँचती थी। कभी-कभी आजाने वाले सोने के अलावा तबाकू और हब्शी गुलाम भी हमारे आयात में शामिल थे।

(७) पृष्ठ ६—ईस्ट इडिया कम्पनी उस व्यापारी सस्था का नाम था, जो पूरब के देशो के साथ—पर विशेषत भारतवर्ष के साथ—व्यापार करने के लिए अगरेजो ने कायम की थी। सब से पहले इस मैदान में आने वाले पुर्त्तगीज थे। वास्को डि गामा नामक पुर्त्तगीज १४९८ में, अफ्रीका के दक्षिण होकर, समुद्र की राह, भारतवर्ष के पश्चिमी तट पर कालीकट पहुँचा था और अपने देश के साथ यूरोप के अन्य देशो का भी पथ-प्रदर्शक बन चुका था। प्राय १०० बरस तक इस व्यापार-वृक्ष के मीठे फल अकेले पुर्त्तगीज खाते रहे।

पर उनकी नीति-रीति कुछ एसी हो चली—ईसाई-धर्म का बलपूर्वक प्रचार उसका ऐसा अभिन्न अग हो गया—कि वे अपनी उन्नति में आप ही बाधक बन गये । फिर १६वी सदी के अन्त में और देशो का ध्यान इस दिशा में गया और वे भी कमर कस कर उन फलो के साझीदार होने के लिए मैदान में आ डटे । इनमें मुख्य थे इगलैण्ड, हालैड, डेनमार्क और फ्रास । अगरेजो से प्रतिस्पर्द्धा करनेवाले प्रधानत डच (हालैण्ड) और फ्रेंच (फरासीसी) साबित हुए । फ्रास सब के बाद मैदान में आया था और अगरेजो का सब से प्रबल प्रतिद्वद्वी भी वही निकला । पर अन्त में विजय-लक्ष्मी की कृपा अगरेजो पर ही हुई और फरासीसियो को मैदान छोड देना पडा ।

अफ्रीका के दक्षिण होकर जिस समुद्र-पथ से जहाज भारतवर्ष पहुँच सकते हैं, उसका पता चलने से पहले, भारतवर्ष और यूरोप के बीच जो व्यापार होता था, वह खुश्की की राह से होता था । अगरेज इधर का माल पहले तो इटली के बन्दरगाह वेनिस से खरीद कर ले जाया करते थे, पर बाद में पुर्त्तगाल के लिसबन नगर से यह सम्बन्ध स्थापित हुआ । फिर भी अगरेज इससे सतुष्ट न थे और भारतवर्ष तथा इधर के देशो से सीधा व्यापार करने के लिए पुर्त्तगीज का अनुसरण करने को उत्सुक थे । पर इसमें कई कठिनाइया थी । इगलण्ड की रानी एलिजाबेथ के शासनकाल में उस देश की सर्वांगीण उन्नति हुई और उसके साहसी नाविको ने अपनी महत्त्वाकाक्षा पूरी करने के कई प्रयत्न किये । अन्त में एलिजाबेथ के मरने से प्राय तीन वर्ष पूर्व सन् १६०० में एक कम्पनी सगठित हुई और उसे पन्द्रह साल तक भारतवर्ष के साथ व्यापार करने का कुछ शर्त्तों पर इजारा मिला । इस कपनी की पूजी ७२,००० पौंड थी । अगरेजो का पहला बेडा, जिसमें पाच जहाज थे, १६०१ में इधर भेजा गया । यह ईस्ट इडिया कपनी के व्यापार का श्रीगणेश था ।

इस व्यापार से अगरेजो को बडा लाभ होने लगा—हिस्सेदारो को १०० प्रतिशत तक मुनाफा मिलने लगा । इससे इगलैण्ड में कपनी को अधिकाधिक पूजी मिलने लगी । अपने अन्तिम दिनो में कपनी की पूजी ६,०००,००० पौंड थी । इगलैण्ड की सरकार बराबर कपनी की पीठ पर रही,

इसकी सफलता का मूल कारण उसी को समझना चाहिए। कंपनी की पहली फैक्टरी* सन् १६१२ में सूरत म खुली। १६३९ में उसने एक हिन्दू राजा से मद्रास खरीद लिया और वहा एक किला भी बनवाया। १६६८ में द्वितीय चार्ल्स से बम्बई शहर मिल गया। चार्ल्स का विवाह पुर्तगाल की राजकुमारी से होने पर उसे यह नगर दहेज में मिला था। चूकि यहा की आवहवा बहुत खराब समझी जाती थी, यह कपनी को कौडियो के मोल मिल गया। इगलैण्ड में कपनी के शत्रु तथा विरोधी भी थे। जब-जब उसके इजारे की मीयाद पूरी होने लगती, तब-तब उसके विरुद्ध वहा एक आन्दोलन खडा हो जाता, पर सरकार की दयादृष्टि होने के कारण सारी कठिनाइयां हल हो जातीं। सत्रहवीं सदी के अन्त में, एक नई कपनी को सरकार को बीस लाख पौंड कर्ज देने की शर्त पर इस व्यापार में शामिल होने की इजाजत मिली। पर कुछ ही समय बाद दोनो कपनिया मिलकर एक हो गई।

यहा कपनी ने अपने व्यवसाय का आरभ सूरत में किया था, फिर उसने दिल्ली और आगरे से अपना सम्बन्ध स्थापित किया। सन् १६२० और १६३२ के बीच उसकी ओर से कई चेष्टायें पटने से भी सम्बन्ध जोडने की हुई, पर स्थल-मार्ग से शोरा-जैसी भारी चीज को सूरत पहुँचाने में इतना खर्च बैठता था कि इनमें कोई भी सफल न हो सकी और अन्त में उसे यह प्रयास ही छोड देना पडा। इसमे पहले कपनी की एक शाखा दक्षिण के मछलीबन्दर (मसुलीपट्टम्) में खुल चुकी थी। वही से १६३३ में आठ अगरेज जलमार्ग से बगाल को भेजे गये। रास्ते में उडीसा पडता था, इसलिए ये पहले उसकी राजधानी कटक गये। वहा उस समय मुगल-सम्राट् का प्रतिनिधि आगा मुहम्मद जमा था। अगरेज व्यापारियो के नेता का नाम राल्फ कार्टराइट था। जब दरबार में ये लोग आगा मुहम्मद के सामने पेश

---

*कपनी जहा अपना कारोबार करती, उस स्थान को अंग्रेजी में "फैक्टरी" कहते थे। वहा तरह-तरह के माल की खरीद-बिक्री हुआ करती; स्टाक रक्खे जाते और निर्यात की दृष्टि से सारी क्रियाए पूरी की जाती—उदाहरणार्थ, रेशम की रगाई।

किये गये, तव उसने जूती उतार कर अपना एक पैर कार्टराइट की ओर वढा दिया। अभिप्राय यह था कि कार्टराइट पहले उसे चूम ले, फिर अपना आवेदन सुनावे । ईस्ट इडिया कपनी का मुख्य प्रतिनिधि वडे असमजस में पड गया, पर निरुपाय होकर उसे कदमबोसी करनी ही पड़ी । फिर उसने कपनी की ओर से व्यापार-सम्वन्धी सुविधाओ की याचना की। वे उसे वात की वात मे मिल गईं । कुछ ही समय में हरिहरपुर तथा वालेश्वर में अगरेजो के कारखाने खुल गये । उडीसा में पैर जम जाने पर, कपनी वगाल की ओर वढी, और वहा उसकी पहली फैक्टरी १६५१ में हुगली नामक नगर में खुली । धीरे-धीरे और फैक्टरिया खुल गई—जैसे मुर्शिदाबाद के पास कासिमवाजार की फैक्टरी १६५७ में, ढाके की १६६८ में ।

पहले विक्री के माल पर ढाई रुपया सैकडा चुगी देने का नियम था। फिर यह नियम हुआ कि मुसलमानो से तो ढाई रुपया सैकडा ही लिया जाय, पर हिन्दुओ से इसका दूना । औरगजेव ने मुसलमान-मात्र को चुगी देने से वरी कर दिया । गैर-मुस्लिम व्यापारियो से चुगी के अलावा जजिया नामक कर भी वसूल किया जाता था । अगरेजो को सव मिलाकर साढे तीन रुपये सैकडा देना पडता था । १६८० में औरगजेव ने एक फरमान-द्वारा यह नियम जारी किया कि सूरत वन्दरगाह में ईस्ट इडिया कपनी का जो माल उतरे, उस पर साढे तीन रुपये सैकडे के हिसाव से चुगी वसूल कर ली जाय, पर उसके वाद कपनी उस माल के लिए कही भी और किसी प्रकार के शुल्क या कर की देनदार न समझी जाय । उदाहरणार्थ, अगर माल को कपनी दिल्ली ले जाकर वेचे तो रास्ते में कोई उससे राहदारी या अन्य प्रकार का शुल्क तलव न करे । १६५० में अँगरेजो ने वगाल के नाजिम शाहशुजा को परितुष्ट कर, उससे अपने लिए यह रिआयत करा ली थी कि हर साल कपनी वतौर पेशकश कुल ३००० रु० दिया करेगी—उस प्रान्त मे इसके अलावा कुछ भी सरकार को मागने का अधिकार न होगा।

इस सम्वन्ध मे दो वातें ध्यान में रखने की हैं। औरगजेव के फरमान में सिर्फ उस माल का जिक्र था, जो सूरत बन्दरगाह होकर इस देश में आया

हो। उसका यह अर्थ कदापि नही हो सकता था कि माल चाहे और बन्दरगाह से भी प्रवेश करे तो वह सूरत होकर ही इस देश में आया हुआ समझा जाय और वह साढ़े तीन प्रतिशत चुगी का भी देनदार न हो । रह गई बगाल की बात । वहा भी प्रान्तीय शासक को ऐसा कोई अधिकार न था कि चुगी-सम्बन्धी भारत-व्यापी विधान की उपेक्षा या अवज्ञा कर, किसी के साथ मनमानी रिआयत कर सके ।

शाहशुजा के समय में कपनी का कारबार बहुत ही छोटे पैमाने पर था। जब उसकी वृद्धि हुई, तब बगाल के नाजिमो ने केन्द्रीय विधान के अनुसार उससे चुगी तलब करना शुरू किया । कपनी का सिद्धान्त था कि "यहा लेने को आये है, यहा देने नही आये" । वाद-विवाद, हीला-हवाला, अर्ज-मिन्नत, गुहार-दुहाई, धमकी-बन्दरघुडकी,—जब इनसे काम न निकलता तब वह प्रभावशाली व्यक्तियो से अपनी सिफारिश कराती । अधिकारियो की मुट्ठी गरम करने की भी भरपूर चेष्टा करती । पर जब इन युक्तियो से भी सफलता प्राप्त न होती, तब वह कही खम ठोकने और कही बन्दूक या तोप दागने लगती । ठठेरे की ऐसी बिल्ली से यहा के शासको को पहले कभी काम न पड़ा था ।

१६८५ में बगाल का नाजिम शाइस्ता खा था । उस समय कपनी की फैक्टरी हुगली नगर में थी। शाइस्ता खा ने कपनी से साढे तीन प्रतिशत के हिसाब से चुगी तलब की तो इसने देने से इन्कार कर दिया । इस पर उसने इसके कामकाज पर प्रतिबन्ध लगा दिया और इसके कर्मचारियो के साथ कुछ सख्ती से पेश आया । कपनी का एजेंट या गुमाश्ता जाब चारनक था। उसने नवाब को तुर्की-बतुर्की जवाब देने की कोशिश की, पर पर्याप्त शक्ति न होने के कारण वह अन्त में बोरिया-बंधना उठाकर समुद्र की ओर चल दिया । हुगली से २४ मील दूर नदी के किनारे वह सुतानती नामक गाव में ठहरा, जो इस समय कलकत्ते के अन्तर्गत है, पर उसको निरापद न समझकर वह समुद्र की ओर सरकता ही गया और अन्त में उसने मेदनीपुर जिले के हिजली नामक गाव के पास पहुचकर लगर डाला। पीछे यहा होने वाली

लडाई में अगरेज सस्ते छूट गये और उन्हें हुगली लौट जाने की इजाजत मिल गई । यह बात सन् १६८७ की है ।

अगरेज अभी इस लायक तो न थे कि सम्राट् या किसी सूबेदार की सेना के आगे थोडी देर भी ठहर सकते, पर जलयुद्ध की बात और थी । समुद्र पर जहा चाहते, इस देश के शासको के छक्के छुडा सकते थे। जाव चारनक फिर लौटकर हुगली न गया । इधर-उधर अपना समय बिताने लगा । १६८८ में इगलैण्ड से एक जहाजी बेडा आकर बगाल की खाडी में काफी उत्पात मचाने लगा । बालेश्वर (बालासोर), चटगाव-जैसे नगरो पर उसने आक्रमण किये और लोगो के साथ—विशेषतः बालेश्वर में—बुरी तरह पेश आया । उधर इगलैण्ड से एक बेडा लूटमार करने और उपद्रव मचाने के उद्देश से सूरत भी भेजा जा चुका था । इसने भी उधर आतक फैला दिया ।

अगरेजो के साथ पुर्तगीज , डच, फ्रेंच आदि जातियो के सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि उनकी तुलना में इस देश की नौसेना नही के बराबर थी और हमारी इस शक्तिहीनता से वे पूरा लाभ उठाते थे । दरियाई डकैती से अपने व्यापारियो या अन्य यात्रियो की रक्षा करने में हमारे दिल्लीश्वर भी असमर्थ थे । सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ऐसे डकैत विशेषत अगरेज ही चले थे। हज के उद्देश से जाने-आने वाले मुसलमान इन लुटेरो-द्वारा बराबर सताये जाते, इसका औरगजेब को विशेष दु.ख होता। पर वह लाचार था, जानता था कि समुद्र पर उसका कोई बस नही चल सकता । वह चाहता तो अगरेजो को कठोर से कठोर दड दे सकता था। एकाध बार उसकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई भी । अरब-सागर में अगरेजो के जहाजी बेडे ने जो लूटमार की थी, उसका बदला लिये बिना वह न रह सका। सूरत के सारे अगरेज कैद कर लिये गये और जजीरो से जकडबन्द कर शहर में कई रोज घुमाये गये। कपनी की ओर से दो प्रतिनिधि सम्राट् की सेवा में क्षमा मागने गये तो इन्हें भी सिपाहियो की हिरासत में उसी प्रकार जकडबन्द होकर जाना पड़ा। जब ये दरबार में औरगजेब के सामने पेश किये गये, तो इनके हाथ रूमालो से बंधे हुए थे । दोनो ने फर्श पर लेटकर सम्राट् का अभिवादन किया और कपनी

की ओर से उस वेडे के कुकृत्यो के लिए पश्चात्ताप प्रकट कर क्षमा मागी। जब उन्होने डेढ लाख रुपये जुर्माने देना और कुछ दूसरी शर्तों की पावन्दी करना मजूर किया, तव सम्राट् ने क्षमा-प्रदान कर यह आज्ञा दे दी कि अगरेज जिस तरह व्यापार करते आ रहे थे, उसी तरह करते रहे। यह घटना १६९० की है। औरगजेब जानता था कि अगर उसने और भी सख्ती की या अगरेजो का देश-निकाला कर दिया, तो इस देश के मुसलमानो के लिए हज की यात्रा बिलकुल वन्द हो जायगी।

वगाल के नाजिम इब्राहीम खा को भी हुक्म भेजा गया कि अगरेजो से हर साल वदस्तूर ३००० रु० पेशकश ही लिया जाय, उनसे किसी तरह की चुगी तलब न की जाय। अब मद्राम से जाब चारनक वगाल भेजा गया और उसने २४ अगस्त १६९० को फिर एक वार सुतानुती पहुँचकर वही कपनी की फैक्टरी खोली, और इस तरह वर्त्तमान कलकत्ते की नीव डाली।

सन् १६९६ में मेदिनीपुर जिले के शोभासिंह नामक जमीदार ने उडीसा-निवासी अफगानो के सरदार रहीम खा से मिलकर वगावत कर दी और जहा-तहा लूट-मार शुरू कर दी। पहले तो उसने बर्दवान के जमीदार राजा कृष्णराम का घर-वार लूटा, फिर धावा कर हुगली जा पहुँचा और सरकारी किले पर भी कब्जा कर लिया। मौका पाकर डच, फरासीसी और अगरेज व्यापारियो ने नाजिम से अपने-अपने कारखानो को सुरक्षित करने के लिए किलेवन्दी करने की इजाजत मागी। इससे पहले उन्हें उस ओर ऐसी इजाजत कही नही मिली थी। इब्राहीम खा ने उनकी वातो में आकर उनकी दरख्वास्तें मजूर कर ली। नतीजा यह हुआ कि डचो ने चिचुरा (चिमुरा) में, फरासीसियो ने चन्द्र (चन्दन) नगर में और अगरेजो ने कलकत्ते में अपनी-अपनी किलेवन्दी शुरू कर दी। जलमार्ग से ही नही, स्थलमार्ग से भी, वगाल की राजसत्ता पर प्रहार या आक्रमण करने का अगरेजो को मौका मिल गया।

(८) पृष्ठ ७—जजिया-कर उन लोगो को देना पडता था, जो मुसलमान न थे, हालाकि कुछ मुसलमान धर्माचार्यो के मतानुसार हिन्दुओ के लिए इस्लाम

का विधान और ही था । सर यदुनाथ सरकार ने अलाउद्दीन खिलजी के काजी मुगीसुद्दीन का यह मत उद्धृत किया है—

"शरीअत के अनुसार हिन्दू खिराजगुजार है । हिन्दुओ को लूटने-मारने की हमें आज्ञा मिली हुई है। हम लोग इमाम हनीफा के अनुयायी है, पर उनके सिवाय किसी आचार्य ने यह नही कहा है कि बादशाह हिन्दुओ से जजिया लेकर ही सतोप करे । औरो के मतानुसार तो हिन्दुओ के लिए बस यही विधान है कि इस्लाम या मौत।"

अकबर ने इस कर को उठा दिया था, पर औरगजेब ने १६८० के लगभग इसे फिर लगाया । नियम था कि बच्चो, औरतो, गरीब बूढो-अन्धो तथा कुछ अन्य लोगो को छोडकर यह मुण्ड-कर प्रत्येक हिन्दू से वसूल किया जाय। करदाता तीन श्रेणियो में विभक्त थे—(१) गरीब मजूर या किसान (२) मध्यम वर्ग के लोग, और (३) धनी। प्रथम श्रेणी में वे हिन्दू समझे जाते थे जो सम्पत्तिहीन हो या जिनकी हैसियत २०० दिरम* से ऊपर न हो। द्वितीय श्रेणी वाले वे लोग थे, जिनकी हैसियत २०० और १०,००० दिरम के बीच थी । तृतीय श्रेणी के धनी वे हिन्दू थे, जिनकी हैसियत १०,००० दिरम से ऊपर थी । तीनो श्रेणियो के लिए जजिया-कर क्रमश १२, २४ और ४८ दिरम होता था—अर्थात् प्राय ३ रु० ५ आने, ६ रु० १० आने और १३ रु० ५ आने।

सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि "गरीब से गरीब हिन्दू को जजिया के रूप में ३ रु० ५ आने कर देना पडता था । सोलहवी सदी के अन्त में औसत बाजार-भाव से ३ रु० ५ आने को ९ मन आटा मिल सकता था । इसका अर्थ यह हुआ कि अगर सरकार किसी हिन्दू को जबरन मुसलमान न बनाती तो उससे इसकी कीमत जजिया-कर के रूप में साल-बसाल वसूल करती जाती । गरीब से गरीब हिन्दू के लिए यह कीमत होती उसकी साल भर की पूरी खूराक ।" बगाल में जो गरीब हिन्दू इस कर का भारी बोझ न उठा सकते, उन्हे मजबूर होकर मुसलमान हो जाना पडता ।

* एक दिरम प्राय साढ़े चार आने के बराबर होता था।

मानिकचन्द

तारकमतिपृच्छन्तमर्थो बालमतिवर्तते,
अर्थोह्यर्थस्य नक्षत्रं, किं करिष्यन्ति तारकाः ?
साधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् नराः यत्नशतैरपि;
अर्थैरर्थाः प्रवर्ध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ।

धन कमाने के लिए ग्रह, नक्षत्र आदि पर अत्यधिक भरोसा करना एक तरह का लडकपन है । जो ऐसा करता है, लक्ष्मी उसके हाथ नहीं लगती । अर्थ दिलाने वाला नक्षत्र अर्थ आप ही है, गह या तारे कुछ नहीं कर सकते । सौ बार भी प्रयत्न करना पडे तो अर्थ-साधक सफलता प्राप्त कर के ही दम लेगा । अर्थ अर्थ ही के द्वारा वशीभूत किया जा सकता है, जैसे हाथी हाथियो के द्वारा ।

—कौटिलीय "अर्थशास्त्र"

उम्र के लिहाज से मानिकचन्द हीरानन्द के पाचवे पुत्र थे, पर इतिहास के रग-मच पर हम उन्ही को देख पाते है, उनके और भाइयो को नही। कारण स्पष्टत. यह है कि मानिकचन्द ढाक, और कुछ काल बाद, मुर्शिदाबाद जाकर पूरब भारत के राजनीतिक केन्द्र में पहुच गये, जहा शासको को अपने व्यवहार और अपनी सेवाओ से संतुष्ट कर उन्हें धन और यश कमाने का अपूर्व अवसर मिल गया। उनके और भाई जहा रहे, राजा या राजनीति से प्राय अलग रहे, इसलिए उन्हें मानिकचन्द की-सी न तो आर्थिक सफलता प्राप्त हो सकी न लोक-ख्याति ।

बंगाल पर मुगल-वंश का आधिपत्य अकबर के समय मे हुआ। जब वहा अमन-चैन कायम हो गया तब शासन-सम्बन्धी स्थायी व्यवस्था की ओर ध्यान दिया गया। प्रान्त में शान्ति-रक्षा के लिए जिम्मेवार नाजिम बनाया गया और राजस्व-सम्बन्धी प्रबन्ध के लिए दीवान। चौकीदार, कोतवाल, फौजदार आदि तो नाजिम के मातहत रहे और पटवारी, कानूनगो, आमिल आदि दीवान के। थोडे में कहा जा सकता है कि तलवार तो नाजिम के हाथ मे दे दी गई और कलम दीवान के। यो तो अपने क्षेत्र में दीवान नाजिम से स्वतत्र था और उसका अनुशासन सीधे दिल्ली से हुआ करता था, पर तलवार और कलम के बीच उस समय प्रधानता तलवार की ही हो सकती थी। सिद्धान्त चाहे जो रहा हो, वस्तु-स्थिति यह थी कि दीवान को प्राय. नाजिम की ही इच्छा के अनुसार चलना पडता था और इधर जब से अजीमुश्शान बगाल का नाजिम हुआ था तब से दीवान मिट्टी की मूर्त्ति-सा बन गया था और नाजिम ने आर्थिक क्षेत्र पर भी अपना अधिकार जमाना और राजस्व-सम्बन्धी मामलो में भी दस्तन्दाजी करना शुरू कर दिया था। यह बात अधिकारो को विभक्त रखने की मुगल-परम्परा और औरगजेब की अपनी नीति के प्रतिकूल थी।

अजीमुश्शान परले सिरे का लोभी था। उसने अगरेजो से कुल १६,००० रु० लेकर ही उन्हें सुतानुती, गोविन्दपुर और कलिकाता इन तीनो गावो की जमीदारी दे दी थी। इन्ही की समष्टि का नाम पीछे कलकत्ता पडा। ऐसे हस्तक्षेप से ही सतुष्ट न रह कर उसने व्यापार मे भी हाथ लगाया। जो माल चटगाव बन्दरगाह मे उतरता वह उसकी ओर से खरीद लिया जाता, जिसे 'सौदा-य-आम' कहते। फिर वही माल मुनाफे पर 'सौदा-य-खास' के नाम से व्यापारियो

को वेच दिया जाता। खरीद-विक्री के दाम बहुत कुछ उसकी मर्जी पर मुनहसर होते। ज्योही औरगजेब को इसकी सूचना मिली उसने अपने स्वाभाविक ढग से पोते को यह लिख कर तिरस्कृत किया कि "तेरा यह 'सौदा-य-खास' रिआया पर जुल्म है। मै इसे 'सौदा-य-खाम' (कच्चा) कहूगा। अपनी इस सौदागरी से तू अपने को 'सौदाई' (पागल) सावित कर रहा है।" अपनी नाराजगी जाहिर करने के लिए उसने अजीमुश्शान का मनसव भी घटा दिया। नाजिम फौरन व्यापार के क्षेत्र से अलग हो गया।

पर बगाल मे एक ऐसे दीवान की जरूरत थी। जिसकी रीढ मजबूत हो और जो नाजिम से ऐसी बातो में दवने वाला या उसकी हा मे हा मिलाने वाला न हो। इसलिए औरगजेब ने सन् १७०१ मे कारतलव खा को, जिसका असली नाम मुहम्मद हादी था, दीवान के पद पर नियुक्त कर वहा भेजा। यही कारतलब खा बगाल के इतिहास में मुर्शिदकुली खा के नाम से मशहूर हुआ।

कहा जाता है कि मुहम्मद हादी का जन्म किसी ब्राह्मण-कुल में हुआ था, पर वचपन में अनाथ होकर वह एक ईरानी व्यापारी के हाथ में पड़ गया और मुसलमान हो गया। फिर कुछ समय ईरान में विता कर वह भारतवर्ष लौटा और यहा सरकारी कर्मचारी हो गया। तरक्की करते करते वह उडीसा का दीवान हुआ। औरगजेब उसे अपना खैरख्वाह समझता था, इसलिए उसने उसे और भी ऊचा पद देकर वगाल का दीवान वना दिया।

कुछ समय से वगाल सरकार की आर्थिक अवस्था असतोषजनक हो रही थी। आय से व्यय का पूरा पडना कठिन हो रहा था। कर्मचारी या मनसवदार वगाल में रहना पसन्द न करते। वहा की जलवायु

बदनाम थी। इसलिए प्रलोभन-स्वरूप उन्हे बडी बडी जागीरे दी जाती। नतीजा यह हुआ कि खास महाल कम रह गये और बगाल में बचत के बजाय टोटा रहने लगा। केन्द्र अर्थात् दिल्ली से सहायता मिले बिना प्रान्तीय सरकार का काम चलना असभव हो गया। कारतलब खा ने पहुचते ही पहला सुधार यह किया कि जागीरदारो की जो जमीन बगाल में थी वह प्राय ले ली और उसके बदले उन्हे उडीसा में उससे घटिया जमीन दे दी। फिर उसने माल या खिराज की उगाही और सरकारी खर्च कम करने की ओर ध्यान देना शुरू किया। कुछ ही समय में वहा खासी बचत होने लगी और 'भूखा' बगाल अब सम्राट् की दक्षिण की लडाइयो मे उलझी हुई सेना के लिए प्रचुर परिमाण में आहार जुटाने लगा।

कारतलब खा द्वारा किये गये सुधारो का एक फल यह हुआ कि उसकी विभिन्न दलो से शत्रुता हो गई। स्वय अजीमुश्शान आग मे घी डालने का काम करने लगा। कुछ दुश्मनो ने एक दिन उस पर वार भी किया, पर वह खाली गया। दरबार मे कारतलब खा ने अजीमुश्शान को इसके लिए दोषी बताया और नाजिम ने अपने को निर्दोष साबित करने के लिए अपने गुरगो को बुला कर भला-बुरा कहा भी, पर बात इससे बनने वाली न थी।

कारतलब खा पर वार करने वाले खास सम्राट् के सैनिक थे जो वेतन नकद पाने के कारण 'नकदी' कहाते थे। दीवान ने उन सबको बरखास्त तो कर दिया, पर आखिर एक म्यान में दो तलवारे कब तक रह सकती थी? अपने मित्रो और शुभचिन्तको से सलाह कर उसने यह निश्चय किया कि ढाका बगाल की राजधानी भले ही रहे, पर

दीवानखाना यहां न रहेगा। यह निश्चय कर, वह नाजिम से दूर रहने के विचार से, अपना दफ्तर उठा कर मखसूदाबाद[२] ले गया।

शासन की दृष्टि से इस नगर की भौगोलिक स्थिति मे वडी विशेषता यह थी कि यह विहार या उडीसा से उतनी दूर न था जितनी कि ढाका। वंगाल पर आक्रमण का भय हो सकता था तो पश्चिम से ही। उस समय सकरी गली और तिलिया गढी के वीच का रास्ता 'वंगाल का दरवाजा' कहा जाता था। यह राजमहल के पास था और इसकी रक्षा जितनी आसानी से मखसूदाबाद से हो सकती थी उतनी ढाके से नही। एक मुसलमान इतिहासकार ने लिखा है कि यह नगर 'आख की पुतली' की तरह इस सारे प्रदेश के वीचोवीच था। कारतलव खा अभी वगाल का नाजिम न वना था, पर ऐसे स्थान में दीवानखाना ले जाने में उसने दूरदर्शिता दिखाई थी, इसमे सदेह नही।

जव औरगजेव को सारी हकीकत मालूम हुई तो उसने अजीमुश्शान को लिखा कि "तुम्हे याद रखना चाहिए कि कारतलव खा मेरा कर्मचारी है। अगर तूने उसे कुछ भी नुकसान पहुचाया तो मैं तुझे इसका दड दिये विना न रहूँगा।" साथ ही उसने अजीमुश्शान को ढाका छोड कर पटने रहने का हुक्म दिया। इससे पहले अजीमुश्शान को विहार की भी निजामत मिल चुकी थी। उसने ढाका छोड कर पटने या अजीमावाद को अपना मुकाम वनाया। वगाल मे उसका वेटा फर्रुखसियर अपने वाप के प्रतिनिधि-स्वरूप रहने लगा।

दीवान के साथ मखसूदावाद जाने वाले लोगो मे मानिकचन्द प्रमुख थे। उनकी अजीमुश्शान के साथ खूब वनती आई थी। पर कारतलव खा को इससे किसी प्रकार की ईर्ष्या नही हुई। ढाके में ही

उसने उनके गुणो को अच्छी तरह पहचान लिया था। मानिकचन्द के गुणो का उपयोग राजस्व-विभाग मे करने के विचार से उसने उनसे आग्रह किया कि आप भी अपना कार्य-क्षेत्र बदल दे। मानिकचन्द ने दूरदर्शी व्यवसायी होने के कारण यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। उनके विभव और अनुभव की उपयोगिता अर्थ के ही क्षेत्र मे हो सकती थी, रण के क्षेत्र मे नही। और जहा ऐसी उपयोगिता न हो सकती वहा उनकी उन्नति होने का कोई प्रश्न ही नही उठ सकता था। बहुत संभव है कि राजस्व-विभाग से उनका ढाके मे ही सम्बन्ध हो चला था। अब यह विभाग वहा से हट कर अन्यत्र जा रहा था। इसलिए भी उनका अपना यह सम्बन्ध बनाये रखने के लिए वहा जाना जरूरी था। अगर वह ढाका न छोडते तो बहते हुए स्रोत के साथ आगे न बढ कर किनारे अपनी जगह पडे या दलदल में फसे रह जाते। फिर अजीमुश्शान ने इस पर कोई आपत्ति की हो ऐसा भी कोई उल्लेख नही मिलता। बल्कि बाद घटने वाली घटनाओ से जान पडता है कि उसकी आखें कभी फिरी नही और जब वह अपने पिता बहादुर शाह के शासनकाल में काफी प्रभावशाली हो गया तब उसकी पृष्ठपोषकता से दिल्ली में भी मानिकचन्द कम लाभान्वित न हुए।

१७०४ में कारतलब खा सम्राट् से दक्षिण मे जा मिला। हिसाब-किताब, बचत की रकम और उपहारादि सब साथ लेता गया था। औरगजेब का कृपापात्र वह पहले से ही था, इस अवसर पर उसे मुर्शिदकुली खा की उपाधि मिली और वह बगाल तथा उडीसा दोनो का नायब नाजिम भी बना दिया गया। नाजिम और दीवान के अधिकार एक ही आदमी के हाथो मे रहने देना परपरा और औरगजेब की अपनी नीति के प्रतिकूल था। कुछ मुसलमान इतिहासकारो ने औरगजेब

को इस व्यतिक्रम के लिए कोसा भी है। पर याद रखना चाहिए कि औरगजेब अब प्राय ८८ साल का हो चला था, उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तिया अत्यन्त शिथिल हो गई थी और इस समय आर्थिक सकट[3] से उसकी रक्षा करने वाला था तो यही मुर्शिदकुली खा, जिसकी सेवाओ के लिए, मरने से पहले, इस प्रकार का विशेष पुरस्कार दे जाना सम्राट् की दृष्टि मे सर्वथा उचित था।

मुर्शिदकुली खा जमीदारो तथा अपने विभाग के कर्मचारियो के साथ बडी सख्ती से पेश आया करता। "रियाज" के लेखक का कहना है कि "नियत समय पर जब तक जमीदार, मुत्सद्दी, आमिल, कानूनगो तथा अन्य कर्मचारी अपना अपना हिसाब बेबाक न कर देते तब तक दीवानखाने से बाहर निकलने न पाते। खाने-पीने की कौन कहे, टट्टी-पेशाब की भी हाजत होने पर उन्हे हिरासत से छुटकारा न मिलता। चारो ओर जासूस यह देखते रहने के लिए तैनात रहते कि कही कोई सिपाही या पहरेदार किसी से कुछ लेकर किसी को बाहर तो निकलने नही देता। किसी किसी को तो बिना कुछ भी खाये-पिये हफ्तो उसी हाजत में रहना पडता। जो इस पर भी हिसाब चुकता न करते वे बल्लो से औंधे लटका दिये जाते। किसी के तलवे खुरदरे पत्थरो से रगडे जाते तो किसी पर कोडो की मार पडती। दड देने मे दीवान जरा भी रहम या रिआयत करने वाला न था। अमानत मे खयानत करने वाले हिन्दू कर्मचारियो से जब कुछ भी मिलने की आशा न रह जाती तब वे मुसलमान बना कर छोड दिये जाते।"

पर केवल ऐसी तीक्ष्ण दड-नीति से ही काम चलना कठिन था। आर्थिक व्यवस्था के लिए कुछ और बातो की आवश्यकता थी, विशेषत: मानिकचन्द जैसे सेठ-साहूकार के सहयोग की, जो वसूली के पैसे

पैसे का हिसाब रक्खे, जो लाख-करोड पर भी कभी हाथ न मारे और जिसम इतनी आर्थिक शक्ति हो कि दीवान को बदनामी से बचाने के लिए दूसरो का बोझ अपने सिर पर उठा ले ।

दीवान मानिकचन्द को दो बडे सरकारी काम सौंप चुका था, जिनमें एक का सम्बन्ध राजस्व की उगाही से था और दूसरे का टकसाल[॰] के प्रबन्ध से। दोनो ही काम बडी जिम्मेवारी के थे और दोनो ही इस वश के लिए बड़े लाभदायक सिद्ध हुए।

मखसूदाबाद या मुर्शिदाबाद में मानिकचन्द की कोठी, भागीरथी के तट पर, महिमापुर[॰] नामक स्थान मे थी। हर साल वही, चैत्र राम-नवमी को प्रान्त के विभिन्न भागो से आये हुए जमीदारो[१], पोतदारो और कारिन्दो का मेला-सा लगता। नियमानुसार जमीदारो को पिछले साल का बकाया चुका कर कुछ रकम नये साल के हिसाब मे, बतौर पेशगी, जमा करानी पडती। जिन्हें फारखती मिल जाती वे तो सही-सलामत अपने घर लौटते। जिन्हें न मिलती, उन्हे और ही कही जाने के लिए तैयार हो जाना पडता। कभी कभी इन्हे हाजत की ओर न जाकर एक ऐसे बडे हौज की ओर जाना पडता जो गलीज से भरपूर रहता और जिसे सरकारी कर्मचारी "बैकुठ" कहा करते। हा, जिसकी साख अच्छी होती वह मानिकचन्द की कोठी से कर्ज लेकर अपना हिसाब चुकता कर सकता और इस "बैकुठ" की यत्रणा भोगने से या और दड पाने से बच सकता था।

आय और व्यय का हिसाब हो जाने पर जो बचत रहती वह मुर्शिदाबाद से सम्राट् की सेवा में भेजी जाती। यह काम निर्विघ्न पूरा करने के लिए बडी तैयारिया करनी पडती थी। सफर लम्बा होता, खजाना सिक्को के रूप मे छकडो पर भेजा जाता, सम्राट् तक

पहुचने में महीनो लग जाते। "रियाज" के लेखक ने एक ऐसे अवसर का वर्णन करते हुए लिखा है—"साल तमाम होने पर, सिक्को की जाच-पडताल और गिनती की गई, फिर आषाढ के महीने में मुर्शिद-कुली खा ने बगाल का खजाना रवाना किया। रुपयो और अशर्फियो की थैलिया दो सौ छकड़ो पर लादी गई। उनकी रक्षा के लिए छ सौ घुडसवार और पाच सौ पैदल साथ किये गये। जो रकम भेजी गई वह १ करोड ३ लाख रुपया थी। पर यह बचत खालसा विभाग की थी। जागीरो तथा अन्य मदो से होने वाली आय इसके अलावा थी। हर साल ऐसे अवसरो पर दीवान की ओर से तरह तरह के उपहार भी सम्राट् और विशिष्ट पदाधिकारियो को भेजे जाते। इनमे हाथी, टांगन, हिरन, भैसे, जगली जानवरो की खाले, सीतलपाटी चटाइया, चमड़े के तरह तरह के सामान, सिलहट मे बने हुए गगाजली कपडे की मसहरिया, हाथी-दाँत, कस्तूरी, बाजे और विदेशी व्यापारियो से प्राप्त यूरोप मे बनी हुई वस्तुए प्रधान होती। दीवान सदल-बल इन सब को शहर की हद तक पहुचा कर लौट जाता और वाकयानवीस से यह बात उसके रोजनामचे मे दर्ज करा देता। जब खजाना दूसरे सूबे मे पहुचता तब उसकी सारी जिम्मेवारी उसके सूबेदार पर जा पडती और उसे नये छकडे तथा नये सवार और पैदल साथ जाने के लिए देने पडते। इसी तरह कई मजिलो को तै कर खजाना सम्राट् के पास पहुचता।"

तत्कालीन शासन-प्रणाली मे इस बात की पूरी व्यवस्था थी कि एक पदाधिकारी पर दूसरे की रोक-टोक और नियत्रण जरूर रहे। दीवान को अपने हिसाब-किताब पर प्रान्त के कानूनगो से सही भरानी पड़ती। बिना इसके दीवान का भेजा हुआ जमाखर्च ऊपर वालों को

मजूर न हो सकता था। जिस समय की यह बात है उस समय बगाल में दो कानूनगो थे—दरब (दर्प ?) नारायण और जयनारायण। कहते है कि दीवान के जमाखर्च पर सही भरने के लिए दरब नारायण ने तीन लाख रुपये मागे। मुर्शिदकुली खा को दक्षिण जाना था। पर वह बिना कानूनगो से अपने हिसाब-किताब की तसदीक कराये प्रस्थान न कर सकता था। इसलिए उसने जयनारायण से तसदीक कराके अपना काम निकाल लिया। फिर बगाल लौटने पर उसने दरब नारायण पर कुछ झूठे अभियोग लगा कर उसे कैद कर लिया और उसकी ऐसी दुर्दशा कराई कि वह कैदखाने ही में मर गया। फिर भी उसे इस बात की फिक्र थी कि सम्राट् का ऐसा खयाल न हो कि मुर्शिदकुली खां ने व्यक्तिगत कारणो से ही दरब नारायण के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया था। इसलिए उसने खुद सिफारिश कर दरब नारायण के बेटे शिवनारायण को बाप की जगह दिला दी। इससे दो बातो का पता चलता है। एक तो यह कि शासन-पद्धति के अनुसार दीवान भी अनियंत्रित या निरकुश न रह सकता था। दूसरी यह कि औरगजेब की बड़ी इच्छा होते हुए भी राजस्व-विभाग का इस्लामीकरण न हो सका था।

जिस समय औरगजेब ने अपने पिता के शासनकाल मे, विद्रोही के रूप मे, दिल्ली पर चढाई की थी उस समय उसका अपना दीवान भगवानदास उर्फ दयानत राय था। केन्द्र मे नायब दीवान के पद पर रघुनाथदास था। औरगजेब के तख्त पर बैठने पर, रघुनाथदास साम्राज्य भर का दीवान बना दिया गया। बाद उसे राजा की उपाधि भी प्राप्त हुई। जब तक महाराज यशवन्त सिंह, राजा जयसिंह और राजा रघुनाथदास जीवित रहे, औरगजेब की धर्मान्धता सकुचित-सी

वनी रही। पर एक-एक कर इनके ससार से विदा होते ही उसका नग्न नृत्य आरम्भ हो गया। फिर किसी हिन्दू को किसी प्रकार का उच्च पद न मिला। राजस्व-विभाग मे हिन्दुओ की प्रधानता औरगजेब को वहुत अखरती थी। उसने हुक्म जारी किया कि उस विभाग से जहा तक सभव हो हिन्दू वहिष्कृत कर दिये जाय। कितने ही हिन्दू करोडी वरखास्त कर दिये गये। कितने ही करोडी तथा अन्य कर्मचारी मुसलमान वन गये। पर अन्त मे औरगजेब को विवश हो कर हिन्दुओं को उस विभाग से हटाने की अपनी यह नीति त्यागनी पडी। वात यह थी कि आर्थिक क्षेत्र मे कार्य-सपादन के लिए जो गुण आवश्यक है उनसे सम्पन्न मुसलमानो का मिलना कठिन था। मुर्शिदकुली खा कहा करता कि हिन्दू कुछ गवन भी कर ले तो उसे डरा-धमका कर उससे पूरी रकम वसूल की जा सकती है, पर मुसलमान से पाला पडने पर आशिक सफलता की भी आशा दुराशामात्र ही हो सकती है। एक और मुसलमान शासक ने कभी कहा था कि मुसलमान चलनी के समान है जिसमे पानी की एक बूद भी नही ठहर सकती, पर हिन्दू इस्पज है जिसमे जब चाहो निचोड करपानी निकाल सकते हो। यही कारण है कि जहा रुपये-पैसे से सम्वन्ध होता वहा विशेषत हिन्दू ही नियुक्त किये जाते थे। सरलश्कर, फौजदार, कोतवाल, थानेदार जैसे पदो से हिन्दू प्राय दूर रखे जाते, पर दीवान, खजानची, कानूनगो, मजमुआदार (मजुमदार), शिकदार (सिकदर), कारकून, पटवारी जैसे पदो की जिम्मेवारी प्राय उन्ही को सौपी जाती थी।

टोडरमल के समय से राजस्व-विभाग मे भी सारी लिखा-पढी फारसी मे होने लगी थी। पर यह परिवर्तन हिन्दुओ की नियुक्ति के मार्ग मे किसी प्रकार का वाधक नही हुआ था। वल्कि हिन्दू-समाज

के कुछ खास स्तरोमें फारसी का ऐसा प्रचार हुआ था कि "आईने अक-बरी" के अगरेजी अनुवादक और सपादक मि० ब्लाकमैन के शब्दो में, अठारहवी सदी बीतते बीतते हिन्दू मुसलमानो के उस्ताद बन गये थे और उन्हें फारसी लिखाने-पढाने का काम प्राय वही करने लगे थे। उधर मुसलमानो का झुकाव विशेषत सैनिक-वृत्ति की ओर रहता था। तह की बात यह थी कि हिन्दुओ की स्वतंत्रता हरने वाले मुसलमान यथासभव उन्हें अपग बनाये रखना चाहते थे। हिन्दुओं के कधों पर सरकारी सेना में किसी प्रकार की बडी जिम्मेवारी सौंपना उनकी नीति के प्रतिकूल था। इक्के दुक्के सम्राटो को छोड कर बाकी सबकी नीति यही रही कि जहा तक हो सके हिन्दू सेना-विभाग से अलग ही रखे जाय। हा, जहा कागजी घोड़े दौडाने की जरूरत पडती वहा उनका उपयोग अवश्य किया जाता। लिखने-पढने के काम में हिन्दू अपना सानी रखने वाले न थे और यह प्रयोजन उनके हाथो सिद्ध कराने मे, मुसलमान शासको की दृष्टि से, किसी तरह का खतरा तो था ही नही, लाभ ही लाभ था।

हम ऊपर कह आये है कि मुर्शिदकुली खा ने टकसाल का काम भी मानिकचन्द को ही सौंप दिया था। उन्हे एक प्रकार से इसका इजारा मिल गया था। उनके लिए सिक्को की ढलवाई कम से कम रक्खी गई थी। उस समय पुराने सिक्को पर छीजन के लिए बट्टा कटता था। सिक्के की ढलाई के साल के और लेन-देन के स्थान के अनुसार बट्टा प्राय उसी दर पर निर्भर करता जो मानिकचन्द की कोठी से समय समय पर निश्चित हुआ करती। चादी उन दिनो भी बाहर से आया करती और बगाल मे उसके सब से बडे खरीदार मानिकचन्द ही थे।

मुशिदकुली खा के समय मे, जिस रुपये का वगाल मे चलन था वह 'सिक्का' कहा जाता था। ईस्ट इडिया कम्पनी की मद्रास में अपनी टकसाल थी और उसके ढले हुए सिक्के मद्रासी या 'आरकाटी' कहे जाते थे। जो रुपया प्रचलित या राइज माना जाता वह काल्पनिक था और इन तीनो रुपयो का पारस्परिक सम्वन्ध प्राय यह था—८६ 'सिक्के' = १०० प्रचलित = ९२ आरकाटी। पर इस पारस्परिक विनिमय-मूल्य मे कई कारणो से घटा-वढी हो सकती थी।

ईस्ट इडिया कपनी वाहर से चादी[७] लाकर यहां वेचती थी। उसका सव से अधिक उपयोग सिक्को की ढलाई मे होता था और वगाल मे चांदी वेचने की दृष्टि से परिस्थिति कपनी के उतनी अनुकूल न थी जितनी कि वह चाहती थी। अव्वल तो उसकी मांग यह थी कि वहां भी उसे अपनी टकसाल खोलने की इजाजत दी जाय। यह मिलने वाली न थी। उसकी दूसरी माग यह थी कि वह मुशिदावाद की टकसाल मे अपनी चांदी के सिक्के करा सके। इसके लिए उसे ढलवाई मानिकचन्द की अपेक्षा कही ऊची देनी पडती और वह इतनी ऊची दर देने के लिए तैयार न थी। उसकी तीसरी माग यह थी कि आरकाटी रुपयो पर वगाल मे किसी प्रकार का वट्टा न कटे। पर आर्थिक परम्परा या पद्धति इसके प्रतिकूल थी और यह अपवाद चल न सका। कपनी और मुशिदावाद-दरवार के वीच टकसाल-सम्वन्धी वाद-विवाद वना ही रहा और कपनी सारे फसाद की जड मानिकचन्द या उनके घराने को ही मानती रही। इस झगडे का अन्त तभी हुआ जव वरसो वाद कपनी का वंगाल पर आधिपत्य हो चला और मुशिदावाद मे टकसाल ही न रही।

कपनी अपनी मद्रास की टकसाल मे ८९।। औस अर्थात २३७।। तोले चादी के प्राय २१८ आरकाटी* रुपये ढला सकती थी। ढलाई में खर्च प्राय' २ प्रतिशत के हिसाब से बैठता। यह काट कर उसे उतने रुपये मिल जाते। कपनी का कहना था कि उतनी चादी के बगाल में भी २२० नही तो २१९ 'सिक्के' अवश्य मिलने चाहिए। पर अगर वह उतनी चादी बगाल में ले जाकर बेचती तो उसे २०९ सिक्कों से अधिक न मिलता। और अगर वह उसे बेचने के बजाय टकसाल मे ले जाकर उस चादी के 'सिक्के' कराती तो उसे खर्च कटने के बाद कुल २१२ सिक्के हाथ लगते। औरगजेब के मरने से पहले मद्रासी या आरकाटी रुपयो की कीमत कुछ ऊची थी। बगाल के रुपये राइज के मुकाबले, कीमत में ९ प्रतिशत ऊचे माने जाते थे। उस समय आरकाटी रुपये भी राजस्व के रूप मे बगाल से दाक्षिणात्य भेजे जा सकते थे। पर औरगजेब के मरते ही परिस्थिति बदल गई। राजस्व का स्रोत फिर दिल्ली की ओर बहने लगा—बगाल मे आरकाटी रुपयो की पहले की तरह न माग रही न कीमत। जहा पहले १०० आरकाटी रुपये = १०९ बगाल के रुपये राइज, यह भाव या निर्ख था, वहां अब यह भाव या निर्ख हो चला १०० आरकाटी = १०७ बंगाल के 'रुपये' ('सिक्के' नही)। ईस्ट इडिया कपनी के डाइरेक्टर या सचालक कभी यह मानने को तैयार न हुए कि माग कम हो जाने पर उनके मद्रासी या आरकाटी रुपयो का मूल्य घट जाना स्वाभाविक था। वे यह कहते ही रहे कि इसकी तह मे किसी न किसी की कारसाजी या दगाबाजी थी।

---

* विल्सन, भाग १, पृष्ठ ३७६।

मानिकचन्द और कपनी के सम्बन्ध का सूत्रपात कब हुआ, यह कहना कठिन है। निश्चित रूप से यही कहा जा सकता है कि यह १७०६ से पहले हो चुका था।

१७०४ मे कपनी को नई सनद हासिल करने के लिए अपने वकील को मुर्शिदकुली खां के पास भेजना पडा। इसका नाम राजाराम था। कपनी पेशकश के तौर पर वही ३,००० रुपये देना चाहती थी। दीवान की माग ३०,००० रुपये की थी। और शर्त्त यह थी कि यह सब का सब नकद मिलना चाहिए। राजाराम की वकालत का दीवान पर कुछ भी असर न पडा। कपनी ने निरुपाय होकर ३०,००० रुपये देना तो मजूर कर लिया, पर रुपये न भेजे। जान पडता है कि इस सम्बन्ध में कपनी मानिकचन्द का भी दरवाजा खटखटा चुकी थी। कलकत्ते में कपनी की जो प्रबन्धकारिणी-समिति या कौंसिल थी, वह अपने १८ जुलाई १७०६ के लेखे मे लिखती है--

"मानिकचन्द सूचित करते है कि दीवान ने अपने पटने के नायब को लिखा है कि कपनी को पहले ही की तरह अपना कारबार करने दो। दीवान ने यह भी आश्वासन दिया है कि अगर कपनी ने ३०,००० रुपये पेशकश दे दिये तो उसे बगाल में नि शुल्क व्यापार करने की सनद मिल जायगी।"

कासिमबाजार की फैक्टरी कुछ समय से बन्द पडी थी। वहां कंपनी की ओर से विशेषत रेशम की खरीदारी हुआ करती थी। मानिकचन्द का पत्र मिलने पर कौन्सिल ने निश्चय किया कि नवाब की मांग पूरी कर कासिमबाजार मे कामकाज फिर से जारी किया जाय। इधर मानिकचन्द के सिफारिश करने पर दीवान ने अपनी माग

में ५,००० रुपये की कमी कर दी। कपनी की ओर से एक प्रतिनिधि मामला निबटाने के लिए कासिमबाजार भेजा गया। उसने लिखा कि दीवान पहले रुपये लेगा, फिर सनद देगा। कौसिल को यह मजूर न था। उसने अपने प्रतिनिधि को आदेश दिया कि एक हाथ से सनद लेना, दूसरे से रुपये देना। इसी समय औरगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। बात जहा की तहा रह गई। न रुपये दिये गये, न सनद ली गई। अपने प्रतिनिधि को कौंसिल ने कलकत्ते वापस बुला लिया।

कंपनी ने शायद खयाल किया हो कि औरगजेब के मरने पर मुर्शिदकुली खा को बगाल की निजामत से हाथ धोना पड़े और नये दीवान के साथ उसे नया सौदा करने का मौका मिल जाय। पर उसके दुर्भाग्य से ऐसी कोई क्रान्ति हुई नही। मुर्शिदकुली खा बहादुर शाह के समय मे भी पूर्ववत् दीवान बना रहा। मुश्किल यह हुई कि जहां वह पहले ३०,००० रुपये मांगता था, वहा अब ६०,००० रुपये मागने लगा। कपनी ने अपने कासिमबाजार के प्रधान की मार्फत फिर बातचीत शुरू की। जब नवाब को टस से मस होते न देखा तो कहलाया कि हम यहा होकर किसी भी हिन्दुस्तानी व्यापारी की नाव या जहाज को गुजरने न देंगे। एक ओर यह धमकी दी गई, दूसरी ओर किसी फतहचन्द साह* के साथ यह तै किया गया कि कासिमबाजार में हमे जो माल खरीदना है उसे आप सवा छ रुपया सैकडा आढत पर खरीद कर कलकत्ते पहुचा देगे। यह समझौता ही रहा। कपनी को फिर वही पुराना प्रसग छेडना पडा। दीवान ने ६०,००० रुपये में से ७,५०० रुपये

* मानिकचन्द का भाजा इस काम में पडने का दुस्साहस नही कर सकता था।

कम कर दिये और ५२,५०० रुपये लेकर मुर्शिदावाद से दिल्ली तक मामला निबटा देना मजूर कर लिया। शर्त्त यह थी कि ज्यो ही वह सनद दे दे त्यो ही उसे ३०,००० रुपये मिल जायँ और बाकी २२,५०० रुपये तब मिलें जब वह बहादुरशाह से फरमान मगा दे। कपनी और भी छूट कराने की कोशिश करती, मगर नवाब का रुख देख कर उसे मोलचाल करने का साहस नही हुआ। नवाब की माग पूरी कर उसने नई सनद ले ली और दिल्ली से भी इसकी बरकरारी का फरमान आ गया।

कपनी के अगरेज कर्मचारियो मे से कुछ मानिकचन्द की कोठी से भी लेनदेन का व्यवहार करने लगे थे। इन्ही में एक चिट्टी था। यह कपनी का बख्शी था, पर मालिक की भी कुछ रकम गबन कर चुका था। उधर मानिकचन्द तथा कुछ अन्य व्यवसायियो का भी यह ऋणी था। कपनी ने उसकी जायदाद जब्त कराके अपनी रकम वसूल कर ली और उसे इगलैण्ड भेज देना निश्चित कर लिया। पर वह जानती थी कि जब तक कम से कम मानिकचन्द की रकम वसूल नही हो जाती, चिट्टी जहाज पर पैर नही धर सकता। मानिकचन्द ने ७,००० रुपये लेकर उसे उऋण कर देने की स्वीकृति दे दी। उन्हें इतना मिल जाने पर ही चिट्टी १७१३ मे कलकत्ते से इगलैण्ड रवाना हो सका। औरो का पावना प्राय डूब कर ही रहा।

अजीमुश्शान बंगाल, बिहार और उडीसा का नाजिम तो था ही, बहादुरशाह के सम्राट् होने पर उसे इलाहाबाद की भी निजामत मिल गई थी। बगाल और उडीसा का नायब नाजिम मुर्शिदकुली खा था। यह पद उसे औरगजेब-द्वारा ही मिल चुका था। जब अजीमुश्शान

अपने बाप की नाक का बाल हो चला तब बिहार और इलाहाबाद के लिए भी नायब नाजिम नियुक्त करने की आवश्यकता हुई। बहादुर शाह ने बिहार में नायब नाजिम हुसैनअली खां को बनाया और इलाहाबाद में उसके बडे भाई सैयद अब्दुल्ला खा को। यही भारत के इतिहास में "सैयद-बन्धु" के नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ ही समय बाद ये दोनो भाई, इस देश के राजनीतिक रगमंच पर, सम्राट्-रूपी मूर्त्तियो को तोडने और गढनेवालो के रूप में आने वाले थे।

बहादुर शाह ६५ साल की उम्र में आगरे के पास तख्तनशीन हुआ था। उसके बाद उसे दिल्ली जाने या कही महल में रहने का मौका ही न मिला। बराबर दौरे पर ही रहा। अपने शासन-काल के पाचवे बरस में वह सिक्खो के दमन के उद्देश से पजाब गया। वहीं लाहौर के पास रावी नदी के किनारे उसकी मृत्यु हो गई। मरने से पहले वह पागल-सा हो गया था और एक दिन कुत्तो के कत्लें-आम का हुक्म जारी कर दिया था। अजीमुश्शान अपने बाप के साथ था। उसके और भाइयो के पडाव भी आस ही पास थे। पर वह बडा दीर्घसूत्री था। बहादुर शाह का सेनापति जुल्फिकार* खा उसके भाइयो से मिल गया था। अगर बाप के मरते ही वह जुल्फिकार को गिरफ्तार कर लेता और अपने भाइयो पर टूट पडता तो भारत का सम्राट् वह होता, न कि उसका भाई मुइजुद्दीन जो जहांदार शाह के नाम से तख्त पर बैठा। अजीमुश्शान रावी के तट पर होने वाली लडाई मे—जिसमे उसके तीनो भाई उसके विरुद्ध थे—लडा वीरतापूर्वक, पर तब जब उस वीरता से कुछ भी बनने वाला न था। उसकी ढिलाई, सुस्ती,

* औरगजेब के मशहूर वजीर असद खा का बेटा।

आज-कल करने की आदत से तग आकर और पस्त-हिम्मत होकर वड़े वडे सरदार, अपने सैनिको के साथ मैदान छोड कर, अपने अपने घर सिधार चुके थे। जहा आरभ मे उसकी ओर सत्तर हजार सैनिक थे वहा लडाई के अन्तिम दिन उसका साथ देने वाले सत्तर भी न रह गये थे। जिस हाथी पर वह सवार था उसको अचानक एक गोला जा लगा और चोट-चपेट ने उसकी यह हालत कर दी कि फीलवान तो नीचे जा पडा और दूसरो के लाख रोकने पर भी हाथी न रुका। अज़ीमुश्शान को अपनी पीठ पर लिये रावी नदी मे जा गिरा। वहुत तलाश करने पर भी उसके सवार की लाश का कही पता न चला। वंगाल-विहार मे वरसो निजामत करके उसने जो धन वटोरा था वह उसके साथ था। वहादुरशाह के साथ रहने के कारण उसके पक्ष-पातियों की कमी न थी। पर समयोचित कार्य न कर सकने के कारण उसे इन सव से हाथ धोना पडा और दिल्लीश्वर के पद से भी वचित होना पडा।

जहादार शाह ने अपना मार्ग निष्कटक करने के काम में हाथ लगाया। खोजिस्ता अख्तर और रफीउलकद्र इन दो भाइयो को पहले तो उसने अपनी ओर मिला लिया था पर ये दोनो भी एक एक कर के मौत के घाट उतारे गये। अजीमुश्शान के वडे वेटे करीमुद्दीन की भी यही दशा हुई। वहादुर शाह के भाई आजम शाह तथा कामवख्श के वेटों को कठोर से कठोर कारादड मिला। पुरस्कृत होने वालो में प्रधान था ज़ुल्फिकार खा जिसे वजीर का पद प्रदान किया गया। लालक्ंवर* नाम की एक मुसलमानिन वेश्या या गायिका पर वह लट्टू

* कहा गया है कि यह तानसेन के वंश मे थी।

हो चुका था। उसे अब 'इम्तियाज महल बेगम' की उपाधि मिली और उसके रिश्तेदारो का बोलबाला हो चला। जो कलावत कहाते थे और गाने-बजाने का काम किया करते थे वे मनसबदार बन बैठे। फिर लालकुवर के भाई को सूबेदार कहाने का हौसला हुआ। इच्छा प्रकट करते ही सम्राट् से इसकी स्वीकृति मिल गई और वह आगरे का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। पर जब नियुक्ति-पत्र वजीर के पास पहुचा तब उसकी सहनशीलता जाती रही और उस पत्र पर मोहर लगाने से पहले उसने लालकुवर के भाई से अपनी दस्तूरी तलब की। रुपया-पैसा न माग कर उसने कहा कि दस्तूरी के रूप में मुझे पाच हजार सितार और सात हजार तबले* मिलने चाहिए। जब लालकुवर ने बादशाह से इसकी फर्याद की तो जहादार शाह ने जुल्फिकार खा को बुलवाया और इस मामले का जिक्र कर कहा कि यह मजाक खूब ही रहा। वजीर ने जवाब दिया—"जहापनाह! यह मजाक न था, मैंने जो कुछ कहा वह सजीदगी से, खूब सोच-विचार कर। जब हुकूमत का काम गाने-बजाने वालो के सिपुर्द किया जा रहा है तब पुराने सरदार या उमरा आखिर करेंगे क्या? उनके रोटी-दाल चलने का भी तो कोई रास्ता होना चाहिए। मैंने यह तरकीब सोच निकाली है कि जिन लोगो से सल्तनत के इन्तजाम का पुश्तैनी पेशा छीना जा रहा है उन्हे खाने-कमाने के लिए सितार और तबले दे दिये जायं। उनके हक मे बेकारी से 'ता-ना री-री' कही अच्छी साबित होगी।" वजीर ने ऐसी लगती-चुभती बात कही थी कि लालकुवर के लाख मचलने पर भी उसका भाई सूबेदार न हो सका।

---

* "मुताखरीन"।

जहादार शाह को अब रग में भग की कुछ आशका रह गई थी तो अजीमुश्शान के दूसरे लडके फर्रुखसियर से। जैसा कि हम पहले कह चुके है, वह बगाल में रहता था। दिल्ली से मुर्शिदकुली खा और हुसैन अली खा दोनो के नाम परवाने भेजे गये कि फर्रुखसियर को जहा पाओ गिरफ्तार कर फौरन दिल्ली भेज दो। उधर लाहौर और दिल्ली से मिलने वाले समाचारो ने उसे किकर्त्तव्यविमूढ कर दिया था। कभी सोचता था कि आत्महत्या कर लू, कभी यह कि कलकत्ते पहुच कर समुद्र की राह कही भाग जाऊ। पर उसकी मा बडी हिम्मत वाली औरत* थी। उसने कहा कि "बेटा! समुद्र की परीक्षा करनी ही है तो वह समुद्र पानी का न होकर लड़ाई के मैदान का हो। उसी तूफानी समुद्र में अपनी किश्ती चलने दे। खुदा की मेहरबानी होगी तो तेरी किश्ती पार लग जायगी। जिन्दगी आखिर है क्या? यह चन्द दिनो का खेल है, फिर दाव लगा कर खेलने से डरता क्यो है?" फर्रुखसियर राजमहल मे सपरिवार रहता था, पर वहाँ से इधर पटने आ गया था। वही उसको पिता की मृत्यु का समाचार मिला। उसको आशा थी कि हुसैन अली खा ऐसे गाढे दिन में उसकी कुछ मदद जरूर करेगा। पर हुसैन अली खा ने कोरा जवाब दे दिया और यह भी कहलाया कि मै आप को गिरफ्तार नही करता, यही मेरी बडी मदद समझिए। पर फर्रुखसियर की मा इससे निराश होने वाली न थी। उसने ऐसी युक्ति रची कि हुसैन अली खा को फर्रुखसियर के पडाव पर जाना ही पडा। फिर तो वहा उसके सामने ऐसा नाटक खेला गया कि वह बात की बात मे द्रवीभूत हो गया। नाटक का आरम्भ फर्रुखसियर द्वारा अनुनय-विनय से हुआ। उसने अपनी दयनीय दशा का चित्र

* यह काश्मीर की रहने वाली थी और इसका नाम सेबुन्निसा था।

खीचते हुए हुसैन अली खा से दया की भिक्षा मागी। ज्यो ही उसने अपना वक्तव्य पूरा किया, पर्दे की ओट औरते सिसकने और रोने-पीटने लगी। अन्त में फर्रुखसियर की सब से छोटी लडकी बाहर निकली और हुसैन अली खा की गोद मे जा बैठी। अपना सिखाया-पढाया हुआ 'पार्ट' इस खूबी से अदा किया कि हुसैन अली खा की भी आखें आसुओ से तर हुए बिना न रह सकी और उसने उसी दम फर्रुखसियर का पक्ष अपना लिया। उसकी सलाह से फर्रुखसियर ने पटने में ही अपने आप को भारत का सम्राट् घोपित किया* और युद्ध का डका बजा कर, हुसैन अली खा विजय की प्राप्ति के लिए काफी बड़े पैमाने पर धन-जन जुटाने में पिल पडा। उसके भाई अब्दुल्ला खा ने यह नाटक नही देखा था। इसलिए वह फर्रुखसियर की ओर से लडने के प्रस्ताव का विरोध करता गया। पर अन्त मे वह अपने भाई के आग्रह को टाल न सका या यो कहा जाय कि फर्रुखसियर की मा का जादू उस पर भी चले बिना न रह सका।

आर्थिक समस्या हल करने के लिए हुसैन अली खा ने शहर के सेठ-साहूकारो को बुलवाया और उनसे कहा कि, "आप लोग इस अवसर पर अपनी अपनी हैसियत के मुताबिक सम्राट् की सहायता कीजिए। यह सहायता कर्ज समझी जायगी। जो रकम आप देगे वह सम्राट् के विजयी होने पर आप को लौटा दी जायगी। इस समय आप को ऐसी रसीदें दे दी जायगी जिन पर सम्राट् के हस्ताक्षर होगे।"

पर चन्दा जैसे आजकल दबाव से वसूल होता है वैसे ही उन दिनो भी होता रहा होगा। १३ अप्रैल १७१२ को कौंसिल को पटने से

---

* यह 'अफजल खा क बाग में' सम्राट् घोषित हुआ था।

फर्रुखसियर क सम्राट् होने की सूचना मिली । पत्र मे यह भी लिखा था कि, "डर है कि इस मौके पर पेशकश नजर करने के लिए हम लोगों की भी बुलाहट होगी। खबर मिली है कि डच और अगरेज दोनों कपनियो से चार-पाच लाख तक वसूल किया जायगा। कुछ समय से अपनी फैक्टरियो पर सिपाहियो और चोबदारो का पहरा है। बिना कुछ दिये छुटकारा नही होने का। पर हमारी कोशिश यह जरूर होगी कि हम सस्ते छूट जाय। हा अगर जहादार शाह का बेटा अपनी सेना के साथ यहा आ धमका तो दोनो ओर से लूटमार होकर ही रहेगी और हमें यह शहर छोड देना होगा। पटने मे रहना हमारे लिए निरापद नही हो सकता।"

२६ अप्रैल को पटने के कर्मचारियो ने कौसिल को लिखा कि, "१९ ता० को राय कृपानाथ ने कहलाया कि फर्रुखसियर की इच्छा इस नगर के सभी धनी लोगो से मोटी रकम ऐंठने की है। इनकी एक सूची तैयार हो चुकी है। सब से पहला नाम ईस्ट इडिया कपनी का है, दूसरा है डच कपनी का, फिर और सराफो और साहूकारो के नाम आते है। कृपानाथ की सलाह है कि हम अपनी रक्षा के लिए जो मुनासिब समझें करे—हम लोगो ने आपस मे सलाह-मशविरा किया और अपने वकील की भी सलाह ली। यह तै हुआ कि हम अपनी फर्याद नवाब हुसैन अली खा के कानो तक पहुचावें और उनसे कह दें कि अगर उसकी सुनवाई नही हुई तो हम यह शहर छोड देगे।"

इसके बाद वकील जाकर नवाब से मिला और कपनी की अर्जदाश्त दाखिल की। नवाब ने आश्वासन दिया कि कपनी मेरा भरोसा रखे, जब मै दरबार मे जाऊगा तब सब बाते ठीक करा दूगा। वकील

मेहता हृदयराम से मिला और कंपनी की ओर से नवाव तथा अन्य पदाधिकारियो के लिए सब मिलाकर २५०० रुपये नजर पेश किये। हृदयराम ने कहा कि जो काम कराना है उसको देखते हुए रकम तो बहुत छोटी है, पर मुझसे जो कुछ बन सकेगा कपनी की ओर से जरूर करूंगा, यह आप विश्वास रखिए। अन्त में नवाब की सिफारिश का नतीजा यह हुआ कि फर्रुखसियर ने कर्मचारियो को आदेश दे दिया कि कोई कपनी के साथ नाजायज तौर से पेश न आवे और उसे डरा-धमका या सता कर उससे कुछ भी वसूल न करे। इस वीच मुर्शिदकुली खा के होश की दवा करने के लिए कई उपाय सोचे जा चुके थे। पटने मे रोज नई अफवाह उडती थी। कभी कहा जाता कि खुद हुसैन अली खा मुर्शिदाबाद भेजे जायगे, कभी यह कि उनकी जगह मिर्जा मुहम्मद रजा और मिर्जा जाफर। चाहे जो भेजे गये हो, किसी से कुछ न बन पडा। फर्रुखसियर की एक सेना जव हार खा चुकी तो दूसरी 'मुर्शिदकुली खा का खजाना या उसका सर' ले आने के लिए भेजी गई और कौंसिल को एक फरमान और हस्बुल्हुक्म द्वारा यह आदेश भेजा गया कि मुर्शिदकुली खा अगर भाग कर कलकत्ते पहुचे तो तुम उसे सारी सपत्ति के साथ गिरफ्तार कर लेना। कौंसिल ने यह सोच कर कि ऐसे हुक्म के जवाव में कुछ भी लिखना खतरनाक है, बात थोडे समय के लिए टाल दी। मुर्शिदकुली खा के विरुद्ध जो दूसरे सरदार भेजे गये उन्हे मुर्शिदावाद पहुचने से पहले ही हतोत्साह होकर पटने लौट जाना पडा।

कुछ दिन वाद कौंसिल ने सोच-विचार कर पटने के कर्मचारियो को यह लिखना निश्चित किया कि, "जो कुछ माल खरीदा जा चुका है उसे तो नावो के जरिए यहा भेज दो और जितने रुपये की जरूरत

हो हुडिया करके बाजार से लो। ऐसे समय मे और माल खरीदने की जरूरत नही। जो फरमान और हस्बुलहुक्म आये है उनका जवाब फारसी मे देना होगा। सभव है, वह रास्ते मे दीवान के हाथ लग जाय और हमारे मालिको के लिए इसका नतीजा बहुत ही बुरा हो। इसलिए पटने वालो को यही लिख दिया जाय कि तुम उनकी पहुच स्वीकार कर कपनी की ओर से यह उत्तर दे दो कि 'श्रीमान् की आज्ञा शिरोधार्य है। अगर श्रीमान् का कोई भी शत्रु इधर होकर भागने की चेष्टा करेगा तो हम उसे आप के आज्ञानुसार यथाशक्ति रोके बिना न रहेंगे।"

जुलाई १७१२ मे कौंसिल को समाचार मिला कि पटने मे डच फैक्टरी के प्रधान मि० जेकब वान हूर्न की मृत्यु हो जाने पर फर्रुखसियर ने उसकी सारी सपत्ति यह कह कर जब्त करा ली थी कि वह लावारिस था और लावारिसी माल कानून के मुताबिक बादशाह का है। पटने वालो ने कौंसिल को लिखा कि "डच के साथ जो अन्याय हुआ है उससे हमे आशका हो रही है कि कही हमारी भी एक दिन यही दशा न हो। पर नवाब की हम लोगो पर दयादृष्टि रहती आई है और बादशाह पर नवाब की बातो का प्रभाव भी पडता है—अधकार मे आशा की एक किरण दिखाई देती है तो यही। हम लोगो का यही प्रयत्न रहता है कि सभी पदाधिकारियों को खुश रखे। मीठी बातें अधिक से अधिक करना और रुपया-पैसा कम से कम देना यही हमारी नीति है।" सितम्बर मे कौंसिल को खबर मिली कि —

"फर्रुखसियर को सैनिको का वेतन चुकाने के लिए २८ लाख रुपये की जरूरत थी। सैनिक अधीर होने लगे थे। इसलिए उसने अपन पास से एक लाख अशर्फियां दी और चार लाख की चांदी,

जिसके सिक्के ढाले गये। साथ ही उसने नवाब (हुसैन अली खा) से कहा कि मेरा इरादा अब धनिको को लूटने का है, उसमे से चौथाई भाग आप का होगा। नवाब को यह बुरा लगा और उसने अपनी सेना के साथ इलाहाबाद जाने की इजाजत मागी, पर उसे अभी तक कोई उत्तर नही मिला है। उधर पटने के अधिकाश धनिक नगर का परित्याग कर अन्यत्र चले गये है।"

कपनी के भी कर्मचारी पटने से गगा के उत्तर लालगज सिंघिया चले गये थे। पर हुसैन अली खां अपनी बात का पक्का था। उसने कपनी की किसी प्रकार की हानि न होने दी। हाजीपुर , सरैसा और बिसारा परगनो के आमिल शुक्रुल्ला खा के नाम एक हस्बुलहुक्म भेज कर उसने उसे आदेश दिया कि कपनी के कर्मचारियो को समझा-बुझा कर पटने लौटा लाओ। पटने में उस समय रुपये की बडी टान थी। सिंघिया से कर्मचारियो ने कौंसिल को लिखा कि कई कारणो से इस समय कलकत्ते माल भेजना युक्ति-सगत नही जान पडता। पर साथ ही उन्होने यह सूचित किया कि नवाब पटने मे लोगो के जान-माल को हिफाजत की ओर पूरा ध्यान दे रहा है और हम लोगो की फैक्टरी पर भी उसने अपनी ओर से पहरा बैठा दिया है। कपनी कृतज्ञता-ज्ञापन-स्वरूप ६,५०० रुपये उसकी और उसके अधिकारियो की नजर कर चुकी थी।

फर्रुखसियर ने कई बार पटने को निचोडने की कोशिश की, पर हुसैन अली खा की दया से नागरिक बचते गये। अन्त मे उसे मजबूर होकर स्वय इस काम मे हाथ डालना पडा। जितने सेठ-साहूकार, जमींदार या अन्य सपत्तिशाली व्यक्ति थे सब को अपनी अपनी क्षमता के अनुसार, चन्दा देना ही पडा। डच कपनी से दो लाख वसूल किये

गये । ईस्ट इडिया कम्पनी से भी उतना ही मागा गया, पर हुसैन अली खा की मेहरबानी से उसे २२,००० रुपये से अधिक न देना पडा ।

बगाल का खजाना हर साल बरसात मे दिल्ली भेजा जाता । इस साल जब वह इलाहाबाद पहुचा तब हुसैन अली खा के लिखने पर उसके भाई ने उसे स्वायत्त कर लिया । सारी रकम एक करोड के करीब थी । अब्दुल्ला खा उस समय तगदस्त था और अपने सैनिको का वेतन चुकाने में असमर्थ था । अनायास इतनी बडी रकम हाथ लग जाने से उसका अर्थ-सकट दूर हो गया । इसका कुछ हिस्सा फर्रुखसियर को भी सैनिक यय के लिए मिला* । कुछ ही समय बाद वह हुसैन अली खा के साथ इलाहाबाद पहुच गया और गगा-यमुना के सगम की तरह दोनो सैयद-बन्धुओ की सेनाओ का सगम हो जाने से फर्रुखसियर के पक्ष में आशातीत बल आ गया ।

छोटी-मोटी लडाइयो के बाद आगरे के पास दोनो दलो के बीच महायुद्ध हुआ । इसमें जहादार शाह को पीठ दिखानी पडी और मूछ-दाढी मुडा कर हिन्दू के वेष में लालकुवर के साथ दिल्ली भागना पड़ा । वहां किले मे न जाकर वह सीधे जुल्फिकार खा के घर गया । वह भी मैदान छोड कर वही आ पहुचा । इसकी तो इच्छा थी कि जहांदार शाह को काबुल, मुल्तान या दक्खिन की ओर ले जाय और वहा फौज इकट्ठी कर फिर फर्रुखसियर से लडे । पर बूढे बाप ने यह होने न दिया और कृतज्ञता के बजाय ऐसी कृतघ्नता दिखाई कि

* फिर भी, इतिहासकारों ने लिखा है कि "फर्रुखसियर के लश्कर के साथ चलने वालो में बगाल और पटने के कुछ महाजन थे जिनसे वह सवाई पर कर्ज लेता जा रहा था । सूद-महित मूल चुका देने के अलावा, वह उन महाजनो को सम्मान-प्रदान करने के लिए भी प्रतिज्ञाबद्ध था"—अर्विन ।

जहादार शाह को वही गिरफ्तार करा लिया। पर इसका परिणाम वह न हुआ जो असद खा चाहता था।

जब बाप-बेटा फर्रुखसियर से मिलने गये तो इनाम-इकराम देना तो दर किनार, फर्रुखसियर ने असद खा को बिदा कर जुल्फिकार खा की वही हत्या करा डाली। इसके बाद जहादार शाह की भी यही दुर्दशा हुई। लालकुवर उस समय उसके साथ ही थी। बाद को वह उस स्थान पर पहुचाई और नजरबन्द कर दी गई जो बेवाखाना या सुहागपुरा कहा जाता था। दूसरे दिन फर्रुखसियर ने राजधानी मे प्रवेश किया। जुलूस मे एक हाथी की पीठ पर जहादार शाह की लाश लदी हुई थी। उसी हाथी की पूछ से जुल्फिकार खा की लाश बधी लटक रही थी। हाथी पर एक जल्लाद भी सवार था। वह हाथ मे लम्बा बास लिये था और उस बास के सिरे से लटकता हुआ जहादार शाह का सिर कुछ दर्शको को रुला और कुछ को हसा रहा था। जुल्फिकार खा के बूढे बाप असद खा पर भी फर्रुखसियर रहम करने वाला न था। उसे भी सपरिवार इस जुलूस मे हाथी के पीछे पीछे चलना पडा। उसकी सारी सपत्ति जब्त कर ली गई और उसे अपना घर तक छोड़ना पडा।

फिर औरो की बारी आई। फर्रुखसियर के राजसिंहासन पर बैठने के कुछ ही दिनो के भीतर कई सरदार तो फासी चढा दिये गये। किसी की जीभ काट ली गई तो किसी की आख निकाल ली गई। दिल्ली मे ऐसा आतक फैला कि जो कोई दरबार जाता उसे जिन्दा घर लौटने की आशा त्याग देनी पडती। आग में तपा कर लाल की हुई लोहे की सलाइयो से जो लोग नेत्रविहीन कर दिये गये, उनमें एक आजम शाह का बेटा था, एक जहादार शाह का और एक था फर्रुख-

सियर का सगा छोटा भाई । पर इन कुकृत्यो मे सैयद-बन्धुओ का हाथ न था, यद्यपि अब्दुल्ला खा को वजीर का पद मिल चुका था और हुसेनअली खां को मीरबख्शी का। इनके लिए प्रधानत. जिम्मेवार था एक तूरानी सरदार जिसका नाम मीर जुमला था और जो ढाके मे काजी के पद पर रह चुका था। बगाल में ही फर्रुखसियर पर इसका वशीकरण-मत्र चल चुका था और यद्यपि दिल्ली मे यह खवासो के दारोगा के ही पद पर था तथापि सम्राट् पर इसका ऐसा प्रभाव था कि उससे जो चाहता करा सकता था ।

उधर मुर्शिदावाद मे बहादुर शाह के मरने की खबर पहुचते ही, मुर्शिदकुली खा ने अजीमुश्शान को सम्राट् घोषित कर दिया था फिर जब उसे यह खबर मिली कि अजीमुश्शान की भी दुर्घटना से मृत्यु हो चुकी थी और उसके भाई आपस में तख्त के लिए लड रहे थे तो वह असमजस में पड गया। परिस्थिति डावाडोल थी और यह कहना कठिन था कि इनमे जीत किसकी होगी । इसलिए उसने अजीमुश्शान के मरने की खबर ही दबा दी और मुनादी करा दी कि जो कोई और किसी प्रकार का समाचार फैलावेगा वह कठोर दंड का भागी होगा । पर व्यापारी-समाज को यथार्थ घटना से अवगत होते देर न लगी । ईस्ट इडिया कंपनी से भी असलियत छिपी नही रह सकी । कौंसिल को अप्रैल (१७१२) के आरंभ मे पटने से समाचार मिला कि १७ मार्च * को आजीमुश्शान मारा जा चुका था । ७ अप्रैल के कपनी के लेखे में लिखा है --

"१ली अप्रैल को कासिमबाजार से भेजा हुआ मि० हेजेस का पत्र ५वीं अप्रैल की शाम को मिला। वह लिखता है कि उधर तरह तरह

---

*प्राचीन पचाग-पद्धति के अनुसार ६ मार्च

की अफवाहे उड रही है, पर क्या सच है, क्या झूठ, यह कहना कठिन है। अजीमुश्शान के जीवित होने का लोगो को विश्वास दिलाने के लिए दीवान ने मानिकचन्द और फतहचन्द को खिलअते दी है। एक को हाथी और दूसरे को घोडे के साथ सरोपा मिला है। २७ मार्च को हेजेस दीवान से मिलने गया था। रात मे ८ से १० बजे तक दोनो की बाते होती रही। दीवान ने लाहौरीमल को बुलवाया और कहा कि सम्राट् अजीमुश्शान ने अपने नाम से ढलने वाले सिक्को के लिए जो इबारत भेजी है उसे पढ कर सुना दो। जब हेजेस चलने लगा तब नवाब ने कहा कि 'किसी बात की फिक्र मत करना, किसी तरह की गडबडी होने वाली नही।' हेजेस नवाब को नजर करने के लिए पाच अशर्फिया और नौ रुपये लेता गया था, पर नवाब को कुछ भी लेना मजूर न हुआ। हेजेस ने यह जानना चाहा कि दिल्ली से इधर कोई खबर नवाब को मिली थी या नही, पर उसने इस विषय मे कुछ भी नही कहा। इसका कारण स्पष्ट है। उसकी ओर से झूठ का प्रचार करने के लिए मानिकचन्द का मुह काफी है। यद्यपि दूसरे व्यापारी यह कहते नही, पर उनके पास तो लाहौर से पक्का समाचार आ गया है कि अजीमुश्शान और उसका बेटा करीम दोनो मारे जा चुके।"

आखिर सत्य पर परदा कब तक डाला जा सकता था? मुर्शिदकुली खा को एक दिन यह घोषित करना ही पडा कि दिल्ली के तख्त पर जहादार शाह बैठ चुके थे। पर वह पूरा साल भर भी उस पर न बैठ सका। ११ फरवरी १७१३ को उसकी हत्या हुई। उस समय उसकी अवस्था ५३ वर्ष से कुछ ऊपर थी।

मानिकचन्द और अजीमुश्शान का परिचय पुराना था। अजीमुश्शान १६९७ में बगाल का नाजिम बना कर ढाके भेजा गया था।

मानिकचन्द वहा कब गये या अपनी कोठी उन्होने वहा कब खोली, इसका पूरा पता नही चलता, पर अनुमान किया जाता है कि दोनों घटनाएं आसपास की है। फिर जैसा कि हम देख चुके है, नियति के वशीभूत होकर, मानिकचन्द को ढाका छोड कर मुर्शिदाबाद जाना पडा और अजीमुश्शान को पटने या अजीमाबाद। पर जान पडता है कि जुदाई होने पर भी मानिकचन्द का अजीमुश्शान से सम्बन्ध अच्छा ही बना रहा। बहादुर शाह के शासन-काल में अजीमुश्शान की सहायता से उन्होने दिल्ली मे भी अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली और बगाल-सम्बन्धी मामलो मे वहा उनकी सम्मति को खास वजन मिलने लगा।

इसके बाद जब फर्रुखसियर ने बगावत का झडा उठाया और अपने को सम्राट् घोपित कर, धन-सग्रह करने लगा तब मानिकचन्द से उसे क्या मिला यह कहना तो कठिन है पर इतिहास मे कुछ ऐसे इशारे जरूर मिलते है जिनसे जान पडता है कि मानिकचन्द ने उसकी विशेप सहायता की। "रियाज" मे लिखा है कि, "जब फर्रुखसियर पटने से कूच कर बनारस* पहुचा तब उसने वहा भी नगरसेठ और दूसरे महाजनो से एक करोड रुपये लिये"। आगे चलकर "रियाज" का लेखक लिखता है, "नवाब जफर खा (मुर्शिदकुली खा) के सिफारिश करने पर

---

* ३० अक्टूबर १७१२ को फर्रुखसियर का पडाव मुगलसराय से कुछ आगे मिर्जापुर के आसपास था। उसने बनारस के महाजनो से चदा वसूल करना चाहा। उनके सौभाग्य मे राय कृपानाथ भी लश्कर के साथ थे। इन्हें हम पटने में व्यापारियो की रक्षा करते देख चुके है। फिर वैसा ही प्रसग पडने पर इन्होने बनारस के व्यापारियो की भी रक्षा की और एक लाख पर ही सौदा तै करा दिया। मानिकचन्द से जो कुछ मिला वह इसके अलावा रहा होगा।

फर्रुखसियर ने नगरसेठ के चचा और मुनीम फतहचन्द को जगत्सेठ की उपाधि दी।" इसमें सत्य और असत्य का मिश्रण है। नगरसेठ से अभिप्राय मानिकचन्द से है, यह तो निश्चित है। यह भी निश्चित है कि पटने या बनारस में—सभवत दोनो जगह—फर्रुखसियर को मानिकचन्द की कोठियो से आर्थिक सहायता प्राप्त हुई, यद्यपि यह सहायता प्रकट रूप से नही दी गई।' रियाज" ने फतहचन्द को मानिकचद का चचा बताया है और उन्हे फर्रुखसियर से जगत्सेठ की उपाधि मिलने की बात लिखी है। यह उसकी भूल है। हम आगे देखेगे कि वह मानिकचन्द के चचा नही, भाजा थे और उन्हे यह उपाधि बरसो बाद मुहम्मद शाह से मिलने वाली थी। हा, थोडी उम्र से ही वह कामकाज मे अपने मामा का हाथ बटाने लगे थे, इसलिए प्राय मानिकचन्द के 'मुनीम' समझे जाते थे। फर्रुखसियर से फतहचन्द को जगत्सेठ की उपाधि नही मिली, पर मानिकचन्द को 'सेठ' की उपाधि और पैर में सोना पहनने का अधिकार जरूर मिला। यह फर्रुखसियर के तख्तनशीन होने के दो बरस बाद की बात है। मानिकचन्द को जिस फरमान द्वारा 'सेठ' की उपाधि मिली थी वह इस समय भी मौजूद* है। फर्रुखसियर ने उनकी स्त्री के लिए कोई बहुमूल्य आभूषण भेज कर भी उनके परिवार को सम्मानित किया।

मुर्शिदकुली खा की बात और थी। वह अजीमुश्शान से तो लड़-झगड चुका था ही, फर्रुखसियर का भी साथ देने से उसने साफ इन्कार कर दिया था। फिर भी उसे किसी प्रकार का दड नही मिला। कहना चाहिए कि फर्रुखसियर ने सम्राट् हो जाने पर आश्चर्यजनक क्षमाशीलता दिखाई और उसके समय मे मुर्शिदकुली खा को जफर खा नासिरी का

---

* मि० लिट्ल के कथनानुसार।

खिताब ही नही मिला, बल्कि वह नायब नाजिम से उडीसा प्रान्त का नाजिम बना दिया गया।

अचभे की इस वात के तीन कारण जान पडते है —

(१) अव्वल तो दिल्ली-दरवार की ऐसी हालत न रह गई थी कि वहा ऐसे प्रश्नो की ओर कोई ध्यान भी दे सकता। केन्द्र की कमजोरी वढ रही थी और इससे प्रान्तो का अनुशासन दिनोदिन ढीला होता जा रहा था।

(२) मुर्शिदकुली खा वरावर दिल्ली की दलवन्दियो और झगडों से दूर रहता था। जो कोई सम्राट् हो उसकी आज्ञाओ का पालन करना और खर्च के वाद जो रकम वचे उसे नियमित रूप से दिल्ली पहुचा देना, थोड़े में यही उसका सिद्धान्त था।

(३) मानिकचन्द और उनके वाद फतहचन्द जैसे धनाढ्य और प्रभावशाली सेठ उसके शुभचिन्तक और पृष्ठपोषक थे—इसने भी आपत्काल मे वरावर उसकी रक्षा ही की।

विक्रम सवत् १७७१ (सन् १७१४) मे माघ शुक्ल १० को मानिकचन्द का शरीरान्त हुआ। उनके दो स्त्रिया थी, पर किसी से भी पुत्र न होने के कारण उन्होने अपने भाजे फतहचन्द को गोद ले रखा था। यही उनके उत्तराधिकारी और प्रथम जगत्सेठ हुए। मानिकचन्द की पहली स्त्री, पति के मरने के वाद २७ वरस तक जीवित रही। वडी परोपकारिणी थी और उनका अधिकाश समय नेम-धरम मे ही व्यतीत होता था।

महिमापुर के पास, मानिकवाग में, स्तभ के रूप मे मानिकचन्द का एक स्मारक निर्मित हुआ था। वरसो वाद वह उस उद्यान के साथ,

भागीरथी का मुखग्रास बन गया। पर वह जब तक कायम था, पास मे गुजरने वालो को एक ऐसे कर्मवीर की याद दिलाया करता था जो अपने समय के व्यापारी-समाज में सचमुच 'सेठ' अर्थात् श्रेष्ठ था और जिसने यह श्रेष्ठता उथल-पुथल के समय मे भी अपने गुणो के विकास से प्राप्त की थी। मरते समय उसे इतना सतोष जरूर था कि नाव की पतवार अब जिस नाविक के हाथ जा रही थी वह अनुभवहीन न था अर्थात् वह समुद्र को शान्त तथा क्षुब्ध दोनों अवस्थाओ मे देख चुका था, हवा के रुख के अनुसार पाल तानना या समेटना थोड़ा-बहुत सीख चुका था।

टिप्पणी

(१) पृष्ठ २५—बगाल को मुसलमान शासक जन्नत अर्थात् स्वर्ग कहा करते थे। इसका कारण था वहा की भूमि का उर्वर और शस्य-श्यामल होना। औरगजेब बगाल को स्वर्ग नही, नरक कहा करता था, यद्यपि वह इतना स्वीकार करता था कि यह नरक खाद्य-पदार्थों से भरपूर है।

अकबर के समय में बगाल १९ सरकारो या जिलो में विभक्त था। उसके बाद इसकी सीमा का क्रमश विस्तार होता गया, आसाम, कूचबिहार, त्रिपुरा आदि बगाल के ही अग बन गये। इसके फलस्वरूप सरकारो की सख्या बढी, और उसके साथ राजस्व तथा अन्य मदो से होने वाली आय भी।

(२) पृष्ठ २६—कहा जाता है कि अकबर के शासन-काल मे मखसूस खा नामक किसी व्यापारी ने यहा एक सराय बनवाई और उसी के नाम पर यह स्थान मखसूमाबाद कहाने लगा। मखसूमाबाद या मखसूदाबाद या मकसूदाबाद ही पीछे मुर्शिदाबाद के नाम से विशेष प्रसिद्ध हुआ।

व्यापारिक दृष्टि से इसका महत्व बगाल में रेशम के व्यवसाय का प्रधान केन्द्र होने में था। सतरहवी शताब्दी में ही विदेशी व्यापारी वहा पहुँच चुके थे और उसके आसपास अपनी फैक्टरिया या कारखाने खोल चुके थे। उस समय विशेष ख्याति कासिमबाजार की थी। अगरेज कासिमबाजार में रहते थे, डच कालकापुर में, फरासीसी और अर्मनी सैदाबाद या फरासडागा में। आसपास के और स्थानो के नाम ब्रह्मपुर, अजीमगज, बडनगर, भगवान-गोला, गिरिया, जगीपुर, काडी, किरीटकोना या किरीटेश्वरी, मैदापुर, रागामाटी आदि थे—जिनमे बगाल का इधर प्राय ढाई सौ बरसो का इतिहास सम्बद्ध है।

आज भी मुर्शिदाबाद भागीरथी के तट पर स्थित है। भागीरथी गगा के प्राचीन स्रोत का नाम है। अब गगा वहा से कई मील पूरब होकर बहती है और बंगाल मे प्राय पद्मा कही जाती है। इधर प्राय सवा सौ बरसो मे भागीरथी का मार्ग भी बदल चुका है। इसका एक नतीजा यह हुआ है कि इसके किनारे के कुछ स्थानो की जलवायु स्वास्थ्य की दृष्टि से अहितकर हो गई है और

साथ ही उनका गौरव मिट्टी में मिल चुका है। कासिमबाजार का उदाहरण देने लायक है। जब १८१३ के लगभग भागीरथी अपने पुराने मार्ग से प्राय तीन मील पश्चिम हट कर बहने लगी तब जहा पहले नदी थी वहा 'खाल' हो जाने से कासिमबाजार में ऐसी महामारी फैली कि हजारो लोग काल-कवलित हो गये और सारा स्थान श्मशान-सा बन गया।

नवाबो का मुर्शिदाबाद भागीरथी के दोनो ओर था और पलासी के युद्ध के समय भी खास शहर का रकबा प्राय पच्चीस वर्ग मील बताया गया था। क्लाइव ने लिखा था—"विस्तार में, जनसख्या मे और ऐश्वर्य में मुर्शिदाबाद लदन की बराबरी का है—अन्तर है तो इतना ही कि मुर्शिदाबाद के कुछ व्यक्तियो के पास इतनी धन-सम्पत्ति है कि उनकी बराबरी करने वाले लदन में नही मिल सकते। अगर मुर्शिदाबाद के लोग अगरेजो की खूनखराबी पर आमादा हो जाते तो ईंट-पत्थरो से और छडो-लाठियो से ही उनकी हस्ती मिटा सकते थे।"

यह सब होते हुए भी, मुर्शिदाबाद न तो सुरक्षित ही कहा जा सकता था, न सुन्दर ही। किले की तो बात ही क्या, वहा शहरपनाह भी न थी। कुछ बरसो तक तो इससे कोई हानि नही हुई, पर मराठो की चढाइयो के समय नगर की रक्षा का प्रश्न बडा विकट हो गया। शहर भी किसी किले पर बसाया हुआ नहीं था। मुर्शिदकुली खा को तडक-भडक पसन्द न थी। बडी और खूबसूरत इमारतो के बनवाने की ओर कुछ ध्यान गया तो शुजाउद्दौला का। अलीवर्दी खा का प्राय सारा समय बगाल, बिहार और उडीसा में लडते ही बीता। उसके बाद ऐसी क्रान्ति हुई कि मुर्शिदाबाद नाम-मात्र को राजधानी रह गया। १७९० में तो यह बचा-खुचा गौरव भी उससे छिन गया।

(३) पृष्ठ २८—औरगजेब को अपने जीवन के शेष भाग में, रुपये की बडी तगी रहने लगी थी। प्राय बीस बरस तक निरतर जारी रहने वाली दक्षिण की लडाई या लडाइयो के कारण अर्थाभाव बराबर बना ही रहता था। सैनिकों का वेतन तीन तीन साल तक न चुकना साधारण-सी बात थी। इस समराग्नि में उसने उस धन के भी काफी बडे अश की आहुति दे दी, जो अकबर के समय से आगरे और दिल्ली के किलो के तहखानो में, गाढे समय में काम आने के लिए,

जमा होता आया था। फिर भी पूरा न पड़ा। सैनिक इतने असतुष्ट रहने लगे कि उन पर पूरा अनुशासन या नियन्त्रण रखना असभव-प्राय हो गया । छावनी में उपद्रव मचे ही रहते। कभी कोई सैनिक किसी बस्ती की इज्जत उतार लेता तो कभी कोई किसी के दो टुकडे कर देता । कभी बागी सिपाहियो के जत्थे के जत्थे, दक्षिण की ओर पीठ कर, अपने अपने घर चल देते ।

इलाके के इलाके वीरान और बरबाद हो चुके थे। पेड-पौधो की जगह कही कही दूर तक सिर्फ आदमियो और जानवरो की हड्डिया नजर आने लगी थी। अनुशासन दिन दिन शिथिल होता जा रहा था। अराजकता के बीज बोये जा रहे थे और जहा तहा अकुरो का उगना भी प्रारभ हो गया था। ऐसी स्थिति में औरगजेब का सहारा रह गया था तो बगाल, बिहार, उडीसा-जैसे इने-गिने प्रान्तो का, जो दक्खिन से फैले हुए सक्रामक रोगो से अभी तक अछूते थे और जो औरगजेब की भूखी सेना के लिए बराबर थोडा-बहुत आहार जुटाते जाते थे। बादशाही लश्कर में मुर्शिदकुली खा द्वारा भेजे गये खजाने की राह लोग बडी उत्सुकता से देखा करते थे।

(४) पृष्ठ २९—'टकसाल किस जगह पर थी, यह निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता। कुछ लोगो का ख्याल है कि यह पहले नदी के पश्चिम तट पर इच्छागज के आमने-सामने थी, फिर वहा से हटाकर उस स्थान पर लाई गई जहा इस समय (१९०५) निजामत इमामबाडा का एक अश है। इसके पास ही टकसाल-घाट है । जगत्सेठ की समाधि कहाने वाली इमारत भी यहा से थोडी दूर पर दयाबाग के पास थी । नदी के कटाव से अब इसका लोप हो गया है ! सिक्को की ढलाई से जगत्सेठो का जो घनिष्ठ सम्बन्ध था उससे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि टकसाल इस घाट और उस इमारत के आसपास ही थी। " (श्री पूर्णचन्द्र मजुमदार)

टकसाल में ढलने वाले सिक्को में रुपया मुख्य था। यह शायद शेरशाह का चलाया हुआ था और अकबर के समय में इसके आकार-प्रकार में काफी सुधार हुआ। टकसाल-सम्बन्धी व्यवस्था और तत्कालीन सिक्को

का "आईने अकवरी" में काफी वि॰तृत वर्णन है, जिससे कुछ वातें नीचे दी जाती है —

सोने के सिक्के प्राय २६ प्रकार के थे जिनमे मुख्य थे, मोहर, आफतावी, इलाही और जलाली। मोहरो में ११ माशा सोना होता था और उसकी कीमत होती ९ रुपया। चादी के कुछ सिक्को के नाम थे---जलाला (१ रुपया), दरव (॥)), चरन (।)), अष्ट (=)), दस (-)॥) और कला (-))। जलाला अर्थात् रुपया साढे ११ माशे चादी का होता। तावे के सिक्को में मुख्य था दाम, जिसे पहले पैसा या वहलोली कहा करते थे । दाम का आधा अधेला था, चौथाई पावला और आठवा भाग दमडी। हिसाव-किताव में दाम ही इकाई का काम करता था और ४० दाम एक रुपये के वरावर माने जाते थे। इन सव सिक्को में मुख्य तीन ही थे---सोने की मोहर, चादी का रुपया, और तावे का दाम।

अकवर के समय में एक तोला और दो सुर्ख या रत्ती चादी का मूल्य एक रुपया वैठता था। अर्थात् ९५० रुपये को ९६९ तोले, ९ माशे और ५ सुर्ख चादी खरीदी जा सकती थी । अगर कोई इतनी चादी टकसाल में ले जाकर इसके सिक्के कराता तो उसे वदले में १००६ रुपये मिलते और कुछ चादी वापिस मिलती जिसकी कीमत २७॥ दाम होती ।

खर्च इस प्रकार वैठता —

	रुपये	दाम	जीतल
चादी की कीमत	९५०	०	०
कारीगरो की मजदूरी	२	२२	१२
कोयला, पानी	०	१०	१५
ढलवाई	५०	१३	०
	१००३	६	२

गरज यह कि सराफ को आय में से व्यय निकाल देने के बाद साढे तीन रुपये की बचत होती।

"आईने अकबरी" में 'जलाला' के अलावा एक और रुपये का जिक्र है जिसे 'अकबरशाही' कहते थे। यह जलाला से कीमत में १ दाम कम होता था। अगर इसका वजन दो सुर्ख या रत्ती कम होता तो इसके ३८ ही दाम मिलते। अगर वजन उससे भी कम होता तो सिक्का चादी माना जाता और उसी के मोल बिकता। शिराज-निवासी अजुद्दौला जब अकबर का अर्थ-मन्त्री हुआ तब उसने यह नियम चलाया कि मोहर का वजन ३ चावल और रुपये का वजन ६ चावल तक कम होने पर भी उनका वजन पूरा ही माना जाय—उन पर किसी प्रकार का वट्टा न कटे। पर अकबर को यह अनुचित प्रतीत हुआ, इसलिए फिर यही नियम हो गया कि सिक्के में ठीक जितना सोना या चादी हो उसका मूल्य उसी के अनुसार माना जाय।

(५) पृष्ठ २९—जगत्सेठो का घर भागीरथी के पश्चिम तट पर महिमापुर नामक स्थान में था। मुर्शिदाबाद गजेटियर मे लिखा है (१९१४)—

"इसी मकान में, पलासी के युद्ध के तीन दिन बाद, वाट्स और वाल्श मीर जाफर और राजा दुर्लभराम से मिले थे और लेन-देन के बारे में बातचीत की थी। यही फिर २९ जून १७५७ को क्लाइव, वाट्स, स्क्राफ्टन, मीरन और दुर्लभराम एकत्र हुए थे और क्लाइव ने यह कहकर कि जो इकरारनामा हुआ था, उसमे अमीचन्द का कोई सरोकार न था, उनकी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया था—उन्हें विक्षिप्त-सा बना दिया था। मकान का अधिकाश भागीरथी अपने पेट में डाल चुकी है। बचा-खुचा अश खडहर हो रहा है। जैन मन्दिर की भी यही दशा हुई है, उसके कुछ खभे और कुछ मेहराबे अब भी मौजूद हैं जिनकी बनावट देखते ही बनती है। १८०१ में हरखचन्द ने एक हिन्दू मन्दिर बनवाया था। इसका कुछ अश तो १८९७ के भूकम्प ने नष्ट हो गया था, फिर भी अधिकाश वर्तमान है। इसमें चीनी मिट्टी के पट लगे हुए हैं। जहा पहले टकसाल थी—या दूसरे मत के अनुसार जहा पहले जगत्सेठो की कोठी थी—वहा

घासपात से ढका हुआ भीटा और सगमरमर का एक हौज, वस यही दो चीजें रह गई है। थोडी ही दूर पर पीतल का कलश वाला एक गोलाकार मदिर है जिसे सतीचौरा कहते हे । वहा कभी कोई स्त्री सती हुई थी।"

भागीरथी के इसी तट पर मुरादवाग, हीरा झील और मसूरगज थे। मसूरगज का महल सिराजुद्दौला का वनवाया हुआ था। यही से वह पलासी के मैदान म गया था और वहा हार होने पर फिर यही लौटा था। यही उसका वह खजाना था जिसकी लूट का इस पुस्तक में अन्यत्र उल्लेख है।

(६) पृष्ट २६— मि० मोरलैन्ड लिखते है —"यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि राजस्व-विभाग ने खालसा गावो या परगनो का इजारा देने की प्रथा कब चलाई और जो भूमि-कर पहले सरकार-द्वारा वसूल होता था वह कब से इन इजारेदारो या ठेकेदारो के द्वारा वसूल होने लगा । जान पडता है कि इस प्रथा का प्रारभ कुछ प्रान्तो या प्रदेशो में, शाहजहा के राज्यकाल के अन्तिम दिनो में हुआ और औरगजेब तथा उसके वशजो के समय में इसका प्रचार बढा। बगाल में खालसा-विभाग के हाथ में जब जमीन ज्यादा हो चली तब यह रिवाज बढा कि गाव के गाव या परगने कुछ लोगो को इस शर्त पर दे दिये जाते कि लगान वसूल करना न करना उनका काम होता—वे एक निश्चित रकम सरकार को साल-ब-साल देते जाते। साधारणत यह रकम न घटाई जाती न बढाई जाती । और धीरे धीरे यह स्थायी या दवामी समझी जाने लगी। इस प्रकार इन इजारेदारो की स्थिति वही हो चली जो रजवाडो या नरेशो की थी और दोनो जमीदार कहे जाने लगे। पहले जमीदार उन नरेशो को ही कहते थे।"

लार्ड कार्नवालिस के दवामी या इस्तमरारी बन्दोबस्त ने कोई नई प्रथा नही चलाई। जो प्रथा चली आती थी—चाहे औरगजेब के समय से, चाहे शाहजहा के समय से, चाहे और प्राचीन काल से, चाहे ईस्ट इडिया कपनी का आधिपत्य हो जाने के बाद से—उसने उसी को बहाल रक्खा और गैर-कानूनी तौर से होने वाले उलट-फेर की गुजाइश मिटा दी । हा, जितने लोग जमीदारो की श्रेणी में आ गये, उनके अधिकार समान कर दिये गये और वे नरेशो के-से न

रहे। दरभगा, बेतिया, टेकारी, वर्दवान ये जमीदारिया कार्नवालिस से पहले, कुछ तो वहुत पहले से—वर्तमान थी। इनमें कुछ जमीदार वडे शूर-वीर और निरतर लडते-भिडते रहने वाले भी थे। "मुताखरीन" के लेखक ने टेकारी के 'ब्राह्मण' जमीदार राजा सुन्दर सिंह का वर्णन ऐसे ही लडाके के रूप में किया है। अव इनके वशज भी जमीदार हो चले, पर इनके अधिकार उन जमीदारो के-से न रहे जो अव 'नरेशो' की श्रेणी में आ गये। उदाहरण के लिए, मैसूर के राजा एक समय 'जमीदार' ही कहे जाते थे। "मआसिरुल उमरा" के लेखक ने लिखा है—"(वीजापुरी) कर्णाटक विस्तृत तथा उपजाऊ प्रान्त था। इसके आसपास वहुत से जमीदारो की जमीन थी जो अपने अधिकार के अनुसार कर दिया करते थे। इन्ही में सेरिंगापत्तन का जमीदार मैसूरिया था, जो चार करोड रुपये कर देता था।" यह भी नही कहा जा सकता कि कार्नवालिस के समय में जमीदार वही माने गये जिनकी आय अपेक्षाकृत कम थी। वडी वडी आय वाले भी जमीदार वना दिये गये और नगण्य आय वाले भी 'नरेशों' या विशेष-अधिकार-सम्पन्न राजाओ की श्रेणी में वने रहे। सच पूछा जाय तो अगरेज किसी सिद्धान्त के कायल न थे। उन्होंने अपने प्रभुत्व के विस्तार और शासन की व्यवस्था के मार्ग में कम से कम विरोध या रुकावट की दृष्टि से जहा जो उचित समझा, वही किया।

शाहजहा के समय में सारे साम्राज्य की आय प्राय २० करोड थी। औरगजेव के समय में यह प्राय ३० करोड हो चली थी। आय-वृद्धि का प्रधान कारण था राज्य का विस्तार, विशेषत दाक्षिणात्य में। फिर औरगजेव के शासन-काल के पिछले दिनो में जजिया-कर से भी काफी आमदनी होने लगी थी।

विहार या वगाल में राजस्व-सम्वन्धी व्यवस्था का आधार प्राय वह वन्दोवस्त था जो राजा टोडरमल अकवर के समय में कर चुके थे। "मआसिरुल उमरा" के लेखक ने अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध में लिखा था, "राजा टोडरमल के वनाये हुए नियम अव भी दफ्तरो में जारी हैं। हिन्दुस्तान के प्राचीन राजाओं और सुलतानो के समय में, उपज का छठा भाग जमीन के लगान के रूप मे लिया जाता था। राजा टोडरमल ने भूमि के कई विभाग पहाडी, पडती, ऊसर, वजर आदि किये। उपजाऊ और अन-उपजाऊ खेतो को नाप करके (जिसे

रकवा कहते हैं) तथा उनकी नाप बीघा, विस्वा और लाठा से लेकर हर प्रकार के खेत पर प्रति बीघा नकद और कुछ पर अन्न-कर, जिसे बटाई कहते हैं, लगाया।" (श्री ब्रजरत्नदास-कृत हिन्दी-अनुवाद से)।

राजा टोडरमल के किये हुये मालगुजारी के बन्दोवस्त के बारे में, मौलाना मुहम्मद हुसैन "दरबारे अकबरी" में लिखते हैं—

"अब तक मालगुजारी और माल-विभाग का प्राय सारा प्रबन्ध अनिश्चित और अनियमित-सा था और मालगुजारी केवल कूत पर थी। प्रत्येक देहात की मालगुजारी प्राय वही थी, जो सैकडो वर्षों से बधी चली आती थी। बहुत-सी बातें ऐसी भी थी जो कही लिखी तक न थी, दफ्तर के मुशियो की जबानो पर ही थी। राज्यो के उलट-फेर ने सुप्रबन्ध और सुव्यवस्था का समय ही न आने दिया था। माल-विभाग में सब से बडा दोष यह था कि एक अमीर को एक प्रदेश दे दिया जाता था। दफ्तरवाले उसे दस हजार की आय का बतलाते थे, और वह वास्तव में पन्द्रह हजार की आय का होता था। इतने पर भी वह प्रदेश जिसे दिया जाता था, वह रोता था कि यह तो पाच हजार की आय का भी नही है। विचार यह हुआ कि सब प्रदेशो की पैमाइश या नाप हो जाय और उसकी वास्तविक आय निश्चित कर दी जाय। पहले जमीन की नाप के लिए जरीब की रस्सी हुआ करती थी जो भीगने पर छोटी और सूखने पर बडी हो जाया करती थी, इसलिए बास में लोहे के छल्ले पहना कर जरीबे तैयार की गई। प्रजा के लाभ के विचार से ५० गज के स्थान में ६० गज की नाप स्थिर हुई। सारा देश, रेतीले मैदान, पहाडी प्रदेश, उजाड, जगल, शहर, नदिया, नहरे, झीलें, तालाब, कूए आदि-आदि सभी नाप डाले गये। जमीनो के भेद-प्रभेद आदि भी लिख लिये गये। कोई बात बाकी न छूटी। ज़रा-ज़रा-सी बात लिख ली गई। बस यही समझ लो कि आजकल बन्दोबस्त के कागजो में जो जो विवरण देखने में आते हैं, उनका आरम्भ अकबर के ही समय में हुआ था, और उनकी सब बातें तब से अब तक प्राय ज्यो की त्यो चली आती हैं। उनमें कुछ सुधार भी अवश्य हुए हैं, पर बहुत अधिक नही। और ऐसा सदा से होता आया है।

"पैमाइश के उपरान्त उतनी उतनी जमीन एक एक विश्वसनीय आदमी को दे दी गई जितनी ज़मीन की आय एक करोड तिंगा (एक प्रकार का छोटा सिक्का) होती थी, और उसका नाम करोडी रख दिया गया। उस पर और भी काम करनेवाले आदमी नियुक्त हुए। इकरारनामा लिखा लिया गया कि तीन वर्ष के अदर गैर-आबाद ज़मीन को भी आबाद कर दूगा और रुपये खजाने में पहुँचा दूगा, आदि आदि। इसी प्रकार की और भी अनेक बातें उस इकरारनामे में सम्मिलित की गई।

"पर अकबर जिस प्रकार चाहता था, उस प्रकार यह काम न चला, क्योंकि लोग इसमें अपनी हानि समझते थे। माफीदार समझते थे कि हमारे पास ज़मीन अधिक है और इसकी आय भी अधिक है। पैमाइश हो जाने पर जितनी ज़मीन अधिक होगी, वह हमसे ले ली जायगी। जागीरदार अर्थात् अमीर भी यही सोचते थे। ईश्वर ने मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी बनाई है कि वह किसी के अधिकार में नही रहना चाहता। इसलिए ज़मीदार भी कुछ प्रसन्न और कुछ अप्रसन्न हुए। जब तक सब लोग प्रसन्न होकर और एकमत से कोई काम न करें तब तक वह काम चल ही नही सकता। और फिर जब वे अपनी हानि समझ कर उस काम में बाधक हो, तब तो उस काम का चलना और भी कठिन हो जाता है। दुःख का विषय यह है कि करोडियो ने आबादी बढाने पर उतना अधिक ध्यान नही दिया, जितना अपनी आय बढाने पर दिया। उनके अत्याचारो से खेतिहर चौपट हो गये। उनके घर उजड गये और बाल-बच्चे तक बिक गये, अन्त में वे लोग भाग गये। ये दुष्ट और पापी करोडी कहा तक बच सकते थे। इन्होने तीन वर्ष तक जो कुछ खाया था, वह तो खाया ही था। पर फिर जो कुछ खाया, वह सब टोडरमल के शिकजे में आकर उगलना पडा। तात्पर्य यह कि इतनी उत्तम और लाभदायक व्यवस्था भी इस गडबडी के कारण अत में हानिकारक ही सिद्ध हुई और जो उद्देश्य था, वह पूरा न हुआ। धन्यवाद मिलने के बदले उलटे जगह जगह शिकायतें होने लगी और घर घर इसी का रोना मच गया। करोडियो की निंदा होने लगी और नियमो की हसी उडाई जाने लगी।" (श्री रामचन्द्र वर्मा-कृत हिन्दी-अनुवाद से)

मुर्शिदकुली खा ने अपने शासन-काल में बगाल की जमीन की फिर से नाप कराई और टोडरमल के किये हुए बन्दोवस्त में कुछ हेरफेर किया।

(७) पृष्ठ ३४—भारतवर्ष अपना जो माल दूसरे देशो को भेजता या वेचता था उसके वदले खास कर सोना या चादी लेता था। यूरोप से यहा सोने की अपेक्षा चादी अधिक आती, कारण कि यहा चादी का मूल्य यूरोप से अधिक था। जहा एक औंस सोना देने पर यहा प्राय ९ औंस ही चादी मिल सकती, वहा यूरोप में उसके वदले १० से १३ औंस तक चादी मिल जाती। हम टकसाल के प्रकरण में अभी देख चुके है कि रुपये में ११॥ माशा चांदी होती और मोहर में ११ माशा सोना। फिर भी अकबर के समय में १ मोहर के ९ रुपये ही होते। अर्थात् ११ माशा सोना १०३॥ माशा चादी। अर्थात् १ माशा सोना=९ माशा से कुछ ऊपर चादी।

अबुल फ़जल ने सोने के वारे में लिखा है—

"यो तो हिन्दुस्तान में सोने की आमद वाहर से भी होती है, पर यह इस देश क उत्तर के पहाडो और तिब्बत में भी पाया जाता है। सलौनी क्रिया से यह गगा, सिंधु और दूसरी नदियो की रेत से भी प्राप्त किया जा सकता है, पर इस काम में जो मेहनत-मजदूरी लगती है उसको देखते हुए यह नुफे का नही कहा जा सकता।"

१४९३ में अमेरिका का पता चलने पर, यूरोप में सोना और चांदी दोनो वहुत वडे परिमाण में आने लगे। पहले तो वहा की आदि-निवासी इडियन जाति की लूट-खसोट से ये धातुए प्राप्त की जातीं; फिर वहा पहुंचने वाले स्पेन-निवासी, वोलोम्बिया, पेरू, मेक्सिको आदि में खानो से इन्हें प्राप्त करने लगे। नतीजा यह हुआ कि यूरोप में मुद्रा के काम आने वाली धातुओ का परिमाण सदियो तक वढता ही गया और इससे वहा दामो में तेजी आती गई, वहा की आर्थिक उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी होती गई।

सन् १४९३ से लेकर १८०० तक अर्थात् ३०० सालो में, ससार में कितना

सोना हुआ पैदा और कितनी चादी, और दोनो का पारस्परिक अनुपात क्या था यह नीचे की तालिका में दिया गया है —

	खालिस सोना करोड़ औंस	खालिस चादी करोड औंस	अनुपात
१४९३-१६००	२ ३	७४ ७	३२
१६०१-१७००	२·९	१२७ २	४४
१७०१-१८००	६·१	१८३ ३	३०
जोड़	११ ३	३८५ २	

(१४९३ से १८०० तक का अनुपात ३४)

वरावर वरावर वजन के सोना-चादी के मूल्यो का जो अनुपात इससे पहले १—११ था वह चादी के उत्पादन में वृद्धि के कारण १—१५ हो चला। प्राय. दो सौ साल तक दोनो का पारस्परिक अनुपात यही वना रहा।

कपनी जो चादी इस देश में ला कर वेचती उसका कुछ अश सिक्को के रूप में होता। ये सिक्के प्राय ऐसे डालर होते जो स्पेन-निवासियो-द्वारा मेक्सिको तथा दक्षिण अमेरिका मे ढाले जाते। अमेरिका की चादी अगरेज व्यापारी इगलैण्ड ले जाते और वहा से उसे ढाके की मलमल या मुर्शिदावाद के रेशम या विहार के शोरे की कीमत चुकाने के लिए कलकत्ते पहुचाते । फिर जगत्सेठ की कोठी मे मोल-चाल शुरू होती । इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का क्षेत्र पुराने से नये ससार तक फैल चुका था।

फतहचन्द

सुप्रीतो देवश्चन्द्रगुप्तः समाज्ञापयति एष श्रेष्ठी चन्दनदासः पृथिव्यां सर्वनगरश्रेष्ठिपदमारोप्यताम् ।

बहुत प्रसन्न होकर महाराज चन्द्रगुप्त आज्ञा देते है कि सेठ चन्दनदास को ससारमात्र के नगरसेठ का पद प्रदान किया जाय।

—मुद्राराक्षस

(१)

फतहचन्द के पूर्वज पहले अहमदाबाद मे रहते थे। उनमे से पदमसी १६२७ में खभात जा बसा। उसके दो पुत्र थे—श्रीपति और अमरदत्त, और शायद दोनो ही जौहरी थे। शाहजहा बादशाह की कभी अमरदत्त पर कृपा हुई और वह उसे अपने साथ आगरे ले गया। वहा उसको जवाहरात की मुकीमी का ओहदा मिला। फिर यह मुकीमी उसके बेटो को मिली, जिनके नाम थे राय उदयचन्द और केसरीसिंह। मानिकचन्द की बहन धनबाई का ब्याह इन्ही राय उदयचन्द से हुआ था। इनके चार पुत्र हुए—मित्रसेन, सभाचन्द, फतहचन्द और रायसिंह। तीसरे पुत्र फतहचन्द सन् १७०० मे अपने मामा की गोद गये। उस समय वह पटने ही में थे। इसके बाद वह प्राय बराबर मानिकचन्द के ही साथ रहने और काम-काज में उनका हाथ बटाने लगे।

अपने राज्य-काल के पाचवें वर्ष मे फर्रुखसियर ने एक फरमान निकाल कर फतहचन्द को भी 'सेठ' की उपाधि से सम्मानित किया।

जैसा कि हम पिछले अध्याय मे देख चुके है, मुर्शिदकुली खा पर

उसकी यह कृपा हुई कि इसे जफर खा नासिरी का खिताव मिला और यह उडीसा का नाजिम कर दिया गया।

कपनी को यह लाभ हुआ कि उसकी ओर से सरमन नामक अगरेज कर्मचारी की अध्यक्षता में एक दूत-दल[1] के दिल्ली जाने पर, सम्राट् से उसे १७१७ में मुहमांगा वर मिल गया। अर्थात्

(१) यह निर्विवाद कर दिया गया कि कपनी वगाल, विहार और उडीसा इन तीनो प्रान्तो में नि.शुल्क व्यापार कर सकेगी, उसे साल में ३,००० रु० पेशकश के अलावा और कुछ भी देना न पडेगा।

(२) कपनी को यह अधिकार दिया गया कि वह कलकत्ते के आसपास और जो गाव चाहती थी उन्हें जमीदारो से खरीद ले।

(३) यह हुक्म भी फरमाया गया कि अगर मद्रास की टकसाल में ढले हुए रुपये सूरत की टकसाल के रुपये-जैसे ही हो तो उन पर वट्टा न काटा जाय।

सरमन के कलकत्ते लौटने से पहले ही, कपनी के प्रतिनिधि मुर्शिदावाद जाकर दीवान को दिल्ली से मिले हुए आज्ञापत्रो की नकल दिखा आये थे। पर उनसे वह तनिक भी प्रभावित नही हुआ था। बल्कि उसने स्पष्ट शब्दो में यह कह दिया था कि कंपनी चाहे जो फरमान या हस्वुलहुक्म ले आवे, मै न तो उसे किसी और गाव का जमीदार बनने दूंगा, न उसे टकसाल में घुसने दूगा। जो जमीदार पैसे के लिए अपना स्वत्व बेच देने को तैयार थे उन्हें दीवान के भ्रू-भग के कारण वैसा करने का साहस न हुआ। टकसाल का दरवाजा भी वद ही रहा। २७ अगस्त १७२१ को कासिमवाजार वाले कलकत्ते लिखते है —

"हमारी कोशिश तो जारी है, मगर वह दरवाजा खुलता नहीं दीखता। इधर हमने कुछ दरवारियो से सिफारिश करानी चाही तो

उन्होने यही जवाब दिया कि जब तक फतहचन्द पर नवाब की ऐसी मेहरबानी बनी हुई है, हम कपनी को किसी प्रकार का आश्वासन नही दे सकते। बात यह है कि फतहचन्द को टकसाल का इजारा-सा मिल गया है, फलत और कोई सराफ या महाजन, वहा ढलाई कराने के लिए, एक रुपये की भी चादी की खरीद या बिक्री नही कर सकता।"

९ नवबर १७२१ के कपनी के लेखे मे दर्ज है—

"दो पेटी चादी कुछ समय से कासिमबाजार में पडी हुई थी। वहा वालो को अब मजबूर हो कर उसे बेच देना पडा है, २४० 'सिक्के' भर चादी के लिए २०७।) ('सिक्को') के भाव से। फतहचन्द को छोड कर और कोई टकसाल से फायदा नही उठा सकता, इसलिए चादी को और कोई सराफ छूने के लिए भी तैयार नही। उधर फतहचन्द से जरा भी ऊचा दाम मिलना असभव है। खबर मिली है कि हमारे पुराने ('सिक्को') का वजन मुहम्मद शाह के राज्य-काल के तीसरे वर्ष के बिलकुल नये ('सिक्को') से किया गया, जिसके कारण हमें और भी कसर खानी पडी।"

कुछ ही दिन बाद फिर चादी की चर्चा की जाती है—

"दस पेटी 'डकाटून' सिक्के कासिमबाजार भेजे गए थे। वँहा वाले लिखते है कि उनके दाम के बारे में उन्हें फिर फतहचन्द से काफी हुज्जत करनी पडी। जहा वे फी डकाटून २।)६ पा० के हिसाब से बेचना चाहते थे, वहा फतहचन्द को २।)३ पा० से अधिक देना मजूर न था। अन्त मे हमारे कर्मचारियो ने मजबूर हो कर २।)४।। पा० के हिसाब से औने-पौने कर लिया। दूसरे व्यापारी इस समय चादी के खरीदार नही। कोई खरीद भी ले तो उसे फिर फतहचन्द के ही हाथ वह चादी बेच देनी पड़ेगी और यह सौदा उसके लिए महगा पडे बिना न रहेगा।"

ऊपर मुहम्मद शाह के सम्राट् होने का उल्लेख है। उसके तख्त पर बैठने से पहले फर्रुखसियर मारा[२] जा चुका था तथा दो और सम्राटों की अकाल-मृत्यु हो चुकी थी। उथल-पुथल का कारण यह हुआ कि फर्रुखसियर दिल्लीश्वर होते ही सैयद-बन्धुओ के नियत्रण या अनु-शासन से मुक्त होने का उपाय ढूढने लगा। जाहिरा तौर पर सैयद-बन्धुओ के प्रति सद्‌भाव रखते हुए भी वह दिल से उनका दुश्मन हो गया और यह बात उनसे छिपी न रह सकी। राजा और दोनो मत्रियों के बीच हो जाने वाली अनबन ने बढते-बढते एक दिन ऐसा रूप धारण किया कि उस आग में पहले तो स्वय फर्रुखसियर भस्मीभूत हो गया, फिर एक एक कर दोनो सैयद-बन्धु भी जल मरे। इनके मरने से पहले मुहम्मद शाह तख्त पर बैठ चुका था—पर ऐसे तख्त पर जो घुनता जा रहा था, जिसकी क्षीणता अदर ही अदर बढती जा रही थी।

फर्रुखसियर और उन दोनो भाइयो के सम्बन्ध को कुछ से कुछ कर देने मे थोडे से दरबारियो का बडा हाथ था। इनमे मुख्य थे मीर जुमला,* खानदौरा, निजामुलमुल्क, अमीन खा—जो दरबार के तूरानी दल के अधिनायक और सैयद-बन्धुओ के घोर शत्रु थे। उस समय दिल्ली में दलबन्दी जोरो पर थी। तूरानी, ईरानी, हिन्दुस्तानी और अफगान (पठान) यही उन दिनो के प्रधान दल थे। तूरानी मध्य एशिया के उस भू-भाग से आकर यहा बस जाने वाले थे जो मुगलो का जन्मस्थान माना जाता था। ईरानी सख्या में कम होते हुए भी, अपनी शिक्षा और सस्कृति के कारण यहा के शासन-क्षेत्र में विशेष स्थान रखते थे। ये लोग प्राय शीया-सम्प्रदाय के होते और तूरानी सुन्नी-सम्प्रदाय के।

---

* मीर जुमला के सम्बन्ध में पहले ही कुछ कहा जा चुका है। बाकी का परिचय फतहचन्द-सम्बन्धी प्रकरण के अन्त (टिप्पणी न० २) मे मिलेगा।

हिन्दुस्तानी दल में हिन्दुओं के अलावा ऐसे मुसलमान भी होते
जिनका सम्बन्ध न तूरान से था, न ईरान से—और न अफगानिस्त
से। अर्थात् ये लोग प्राय इसी देश के निवासी थे जो या तो स्वय
जिनके पूर्वज मुसलमान बन चुके थे। हिन्दुस्तानी दल के हिन्दुओ
राजपूत सरदारों की प्रधानता थी। उनके बाद नबर आते थे ख
अग्रवाल, कायस्थ कर्मचारियों के। अफगानो का अपना दल अ
था। इस देश में इनकी खासी बडी सख्या थी और ये लोग अरसे
जहा-तहा बसे हुए थे। पर धन का लोभ इनकी ऐसी बडी कमजो
थी कि गाढे समय में इनका पूरा विश्वास नही किया जा सकता थ
मुसलमानों के और भी छोटे-मोटे दल थे। पर उनकी एक विशेष
यह थी कि हिन्दुओं के विरोध के प्रसंग में वे अपने पारस्परिक भे
भाव को भूल जाते थे और प्राय. एक होकर उनका सामना करते थे

सैयद-बन्धुओं के पूर्वज अरब से यहां आये हुए थे। उनके गांव
नाम बरहा या बारहा था जिसकी भौगोलिक स्थिति मेरठ अ
सहारनपुर के प्राय बीचोबीच थी। बहुत दिनों से यहा रहने और य
के लोगो में हिलमिल जाने के कारण ये भी हिन्दुस्तानी मुसलम
माने जाने लगे थे। इनका सम्प्रदाय शीया था और सुन्नी तूरानियों
तरह ये तअस्सुबी न थे। वजीर अब्दुल्ला खा का अपना दीव
रतनचंद नामक एक अग्रवाल था जिसे राजा की पदवी प्राप्त थी अ
जो दिल्ली के काफी प्रभावशाली व्यक्तियो में था।

बारहा के सैयद नामी थे और बडे शूर-वीर तथा आत्माभिमानी
थे। साथ ही वे अपनी फिजूलखर्ची के लिए बदनाम थे। प्राय वे मद
भी होते। अठारहवी सदी में 'बारहा का अहमक' यह एक कहावत हो
थी। यह भी कहा जाता था कि "बारहा के सभी गधे बहादुर हैं" और "
बहादुर गधे हैं।"—अर्विन।

दिल्ली में होने वाली उथल-पुथल ने सलतनत को और भी कमजोर बना दिया। जहा तहा अशान्ति की आग भडक उठी, सिक्ख, जाट, मराठा, राजपूत आदि जातियां उस आग को चारो ओर फैलाने लगी। अनुशासन नाममात्र को रह गया, अराजकता ने और भी जोर पकड लिया। दिल्ली में भी अव्यवस्था इतनी बढ चली थी कि न तो कोई अपनी जान को सुरक्षित समझता था, न अपने माल को।

संभव न था कि देश की राजनीतिक स्थिति इतनी खराब होते हुए भी उसकी आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक रह सके। यह स्थिति औरगजेब के समय से ही बिगडती आ रही थी। अशान्ति और अव्यवस्था का दौरदौरा होने पर पैदावार बढने के बजाय घटने लगती हैं, लोगो में रुपये-पैसे या जिन्स को दबा कर बैठ रहने की प्रवृत्ति बढ जाती है, वाणिज्य-व्यवसाय को पक्षाघात-सा हो जाता है। बहादुर शाह के मरने पर दिल्ली के तख्त की जो हालत हुई उसने कोढ़ मे खाज पैदा कर दी। जहादार शाह के आदेश से दिल्ली-निवासियो को दीवाली साल मे तीन बार मनानी पड़ी थी, हालाकि तेल का अभाव ऐसा था कि वह रुपये सेर बिकने लगा था। गेहूँ का भाव प्राय ५) मन हो चला था, यद्यपि दरबार या महल में इसकी किसी को फिक्र न थी और लालकुंवर को एक रोज यह बात मालूम हुई भी तो उसने यही कहा कि "नाज बेहद सस्ता हो रहा है। मेरी चले तो मै भाव ४०) मन करा दू।" फर्रुखसियर के शासन-काल में लोगो का कष्ट और भी बढा। उसके नाम से ढलने वाले सिक्को पर जहा यह इबारत होती कि

सिक्का जद, अज फज्लेहक बर सीमोजर—
पादशाहे बहोबर—फर्रुखसियर !

(अर्थात् जल और स्थल के अधीश्वर फर्रुखसियर ने ईश्वर की कृपा से सोना-चादी के सिक्के ढलवाये)

वहां लोग इन पक्तियो को यह रूप देकर उसकी फवती उडाते कि

सिक्का जद बर गदुमो मोटो मटर
पादशाहे दानाकश—फर्रुखसियर।

(अर्थात् दाना दाना खीच लेने वाले फर्रुखसियर बादशाह ने गेहूँ, मोट और मटर के सिक्के ढलवाये)

मुहम्मद शाह के राज्य-काल में दिल्ली की दुरवस्था का वर्णन करते हुए अगरेज इतिहासकार अर्विन फारसी ग्रथो के आधार पर लिखता है कि —

"निजामुल्मुल्क ने कई बिगडी बातो का सुधार करना चाहा। उनमें एक तो यह थी कि पेशकश देने के नाम से, बादशाह की मुट्ठी गरम कर, अयोग्य से अयोग्य व्यक्ति भी ऊचे से ऊचा पद पा जाता। दूसरी यह थी कि शाहजादे, शाहजादिया और सरदार, जागीरो के रूप में वडे वडे इलाके लिये बैठें थे जिसके फलस्वरूप सरकारी आय दिन दिन घटती जा रही थी और खजाने मे इतना रुपया भी न होता कि समय पर किसी का वेतन चुक सके। किसी ने महीनो से कुछ नही पाया था तो किसी ने बरसो से। सम्राट् की सेवा में जिनके बाल सफेद हो चले थे या जो प्रोत्साहन के सर्वथा योग्य थे उन्हें तो भोजन के भी लाले पड रहे थे, पर जो अयोग्य या निकम्मे थे वे गुलछर्रे उडा रहे थे। पुराने सरदारो को अपने अपने घर से गल्ला मगा कर और उसका कुछ अश बेच कर, दिल्ली में जीवन-निर्वाह करना पडता था। सभी चीजें महगी हो रही थी। गेहूँ रुपये को सात सेर से अधिक न मिल

सकता था। जव वजीर दरबार से लौटते तव लोग उन्हें घेर कर खडे हो जाते। कोई गला फाड फाड कर कहता कि, "मैं महावत खा के खानदान में हूँ" तो कोई चिल्ला उठता कि "मै अली मरदान खा का पोता हूँ।" चारो ओर से यह आवाज आने लगती कि 'फरियाद', 'फरियाद' और यह गोहार मच जाती कि "दामो को गिराइए—भूखो मरने से वचाइए"।

ऊपर कहा जा चुका है कि फतहचन्द को 'जगत् - सेठ' की उपाधि से सम्मानित करने वाला सम्राट् मुहम्मद शाह था। यह सम्मान उन्हें इसलिए प्रदान किया गया कि उन्होने दुष्काल में दिल्ली के नागरिको को भूखो मरने और सम्राट् को कलकित होने से वचाया था। इससे पहले फतहचन्द की कोठी की एक शाखा दिल्ली में स्थापित हो चुकी थी। कहा जाता है कि अन्न जुटाने और उसका समुचित वितरण कराने का काम उनकी अपनी देख-रेख में हुआ। जो लोग अर्थाभाव के कारण गल्ले का दाम चुकाने मे असमर्थ थे उन्हें उनकी कोठी से उधार भी मिला। दिल्ली का सकट टल गया और उसके आर्थिक जीवन का स्रोत फिर साधारण गति से वहने लगा। इसी पर प्रसन्न हो कर मुहम्मद शाह ने उन्हे 'जगत्-सेठ' और उनके पुत्र आनन्दचन्द को 'सेठ' की उपाधि से सम्मानित किया। इनाम के तौर पर खिलअत, गोशवारा और एक हाथी भी मिले। इस प्रकार पुरस्कृत *तथा सम्मानित हो कर फतह-

---

* इस सम्वन्ध में मुहम्मद शाह ने जो फरमान निकाला था वह अपने राज्य-काल के चौथे वर्ष मे। उसमें इस वात का उल्लेख नही कि फतहचन्द ने कौन-सी ऐसी खैरख्वाही की थी। जिस सकट से उन्होंने राजा और प्रजा को उवारा था वह अन्न-सकट था या मुद्रा-सकट ? १७१९ में अन्न के अभाव के कारण दिल्ली-निवासियो को वहुत कष्ट उठाना पडा था, यह निश्चित है। पर

चन्द मुर्शिदाबाद लौट गये और प्राय: १७२३ से उनकी कोठी का नाम 'फतहचन्द आनन्दचन्द' से बदल कर 'जगत्-सेठ फतहचन्द सेठ आनन्दचन्द' हो चला।

मुर्शिदकुली खा को औरगजेब ने बगाल का दीवान नियुक्त किया था। फिर वह बंगाल और उडीसा का नायब नाजिम भी कर दिया गया। फर्रुखसियर के सम्राट् होने पर वह उडीसा का नाजिम हो चला। बगाल की निजामत फर्रुखसियर ने अपने बेटे फरखुन्दा बख्श* को दे दी, और उस बच्चे की अकाल-मृत्यु हो जाने पर, तूरानी सरदार मीर जुमला को। पर नायब नाजिम, मुर्शिदकुली खा ही रहा। सैयद-बन्धुओ की उस पर कुछ कडी नजर रहती थी और वह उन्हे अपनी विशेष उन्नति के मार्ग में बाधक समझता था। इसलिए उनके पतन और

अगर उस समस्या का हल निकालने के लिए फतहचन्द पुरस्कृत हुए तो फरमान निकलने में इतनी देर क्यो हुई? १७२१-२२ में उत्तर भारत को एक दूसरे प्रकार के सकट से गुजरना पडा था। इसका उल्लेख आगे किया गया है। संभव है, इस अवसर पर सरकार की विशेष सहायता करने के लिए फतहचन्द ने 'जगत्सेठ' की पदवी पाई। जगत्-सेठ-परिवार मे जो किंवदती चली आई है उसमें फतहचन्द के सम्मान का सम्बन्ध किसी दुर्भिक्ष से दिल्ली की प्रजा को उबारने के साथ जोडा गया है। बहुत सभव है कि दोनों अवसरो पर राजा-प्रजा के काम आने के लिए फतहचन्द इस प्रकार सम्मानित किये गये हों।

* जहा नाजिम कोई राजकुमार या मीर जुमला-जैसा सरदार होता, वहा वह उस पद के साथ मिलने वाली जागीर का हकदार समझा जाता। प्रबन्धादि मुर्शिदकुली खा-जैसे शासक के हाथ में होते हुए भी, उसे घर बैठे एक मोटी रकम साल-ब-साल मिलती रहती। किसी समय बगाल-बिहार का ऐसा ही नाजिम अजीमुश्शान रह चुका था।

विनाश के समाचार से उसे प्रसन्नता होना स्वाभाविक ही था। २१ नववर १७२० *को कपनी के कासिमवाजार वाले कर्मचारी कौंसिल को सूचित करते है कि नवाव ने दिल्ली की घटनाओ का समाचार पाकर "नौवत वजवाई है"। जव दूसरे साल खजाना भेजने का समय आया तव नवाव ने उसके साथ अपनी ओर से नजराना भेजना भी मुनासिव समझा। इसके लिए व्यापारियो से चन्दा तलव किया गया और चन्दा उगाहने का काम फतहचन्द, दरवनारायण और कल्याणमल को सौपा गया। इन लोगो ने डच और अगरेजी कपनियो के वकीलो को वुलवा कर कहा कि आप अपने अपने मालिको को इस काम मे नवाव का हाथ वटाने को लिखिए। डच कपनी से ६०,०००) मागा गया। अगरेजी कपनी के वकील से इतना ही कहा गया कि अगर आप की ओर से अच्छी रकम न मिली तो आप लोग वंगाल मे व्यापार करने न पायेंगे। दोनो वकीलो के घरो पर सिपाही वैठा दिये गये।

अगरेजो को कुछ भी देना मजूर न था। उधर कासिमवाजार में उनका कन्तू नामक दलाल गिरफ्तार कर लिया गया। कौसिल ने अपने वकील को लिखा कि मुर्शिदावाद जाकर वादशाह की दुहाई दो। पर इससे काम न वना। कासिमवाजार वालो ने नवाव की सेवा मे एक आवेदन-पत्र भेजा। नवाव ने फतहचन्द से कहा कि कन्तू के विरुद्ध

---

* हुसैन अली खा ८ अक्टूवर १७२० को मारा जा चुका था। आगरे से प्रायः ७२ मील दूर, टोडाभीम के पास के पडाव पर वह हैदरवेग नमाक तूरानो के खजर का शिकार हुआ। उस समय वह अनिच्छुक मुहम्मद शाह को साथ लेकर निजामुल्मुल्क को दड देने दक्खिन जा रहा था। अब्दुल्ला खा ने वगावत कर दी, पर १३-१४ नवम्वर को दिल्ली से थोडी दूर पर होने वाली लडाई में उसकी हार हुई और वह गिरफ्तार कर लिया गया।

कई अभियोग है, आप सच-झूठ का पता लगाइए। इनमें एक अभियोग यह था कि कन्तू की स्त्री गले में फासे डाल कर प्राण त्याग चुकी थी और इसके लिए बहुत कुछ कन्तू ही जिम्मेवार था। फतहचन्द ने कन्तू से पूछ-ताछ की, और उसके निर्दोष जचने पर उन्होने उसे यह आश्वासन दिया कि तुम्हारी रिहाई के लिए मै कुछ भी उठा न रखूगा। उनकी सिफारिश का नतीजा यह हुआ कि कन्तू छोड दिया गया और चलते समय उसे दरवार से सरोपा भी मिला। कपनी से चन्दा लेने की बात फिर न उठी। शायद फतहचन्द की सिफारिश ने उसे भी दबा दिया।

हकीकत में, कपनी उस समय बडी तगदस्ती में थी। जगह-जगह से रुपये की मांग आ रही थी, पर कौंसिल के हाथ खाली-से थे। व्यापारियों को दादनी देना तो दर-किनार, जो माल खरीदा जा चुका था उसका दाम चुकाने में भी कपनी असमर्थ थी। जान पडता है कि उत्तर भारत में रुपये की टान थी और इसके कारण ब्याज-बट्टे की दर ऊची हो रही थी। जहा मद्रास में कपनी को ९) प्रतिशत ब्याज पर उधार मिल जाता वहा बगाल में १२) देने पर भी मिलना मुश्किल था। कासिम-बाजार से अगस्त १७२१ में खबर आती है कि, "अप्रैल और जून में २८,५४५।) का माल (रेशम) खरीदा गया था, पर आज तक हम व्यापारियो को उसका दाम नही दे पाये है। अब उन्होने हो-हल्ला मचाना शुरू कर दिया है। उनका कहना है कि हमे दूसरो को १।।) से २) सैकडा ब्याज देना पड रहा है, कपनी से यह रकम भी हमें मिलनी चाहिए।" कुछ ही दिन बाद वहा वाले सूचित करते है कि इस समय हमें यहा एक रुपया भी कर्ज नही मिल सकता। पटने से सितम्बर में खत आता है कि, "नवाब ने लोगो का खून इस तरह चूसा है कि यहां रुपये की बड़ी तगी हो गई है। उधर आगरे पर हुडी की दर ६।।)

प्रतिशत हो चली है। सराफो को उस ओर रुपया लगाने में इतना फायदा है कि कोई भी दूसरी ओर रुपया लगाने को तैयार नही। वडी मुश्किल से हम लोगो ने खडगसिह किशनचद को ४) सैकड़ा वट्टा काट कर कुछ उधार देने को राजी किया है और कौसिल के नाम हुडिया कर दी है। हम लोगो ने कुछ शोरा खरीदा था और कुछ छीट भी। दाम नकद चुकाना था, इसलिए यह रकम उधार लेनी पडी।"

पर कलकत्ते की कौंसिल आप भी वैसे ही अर्थ-सकट में थी। जो माल पिछले साल खरीद हो चुका था उसके दाम की मद में २७६, ८०९॥≡)॥ चुकाना था। इधर १५१,५८१।) के जो नये सौदे हो चुके थे उनकी वावत दादनी भी देनी थी। विलायत से जहाज आने की प्रतीक्षा की जा रही थी और कौल-करार हो चुके थे कि उसके आते ही हिसाव वेवाक कर दिया जायेगा। पर जव जहाज के पहुचने मे देर हुई और व्यापारी अधीर हो गये तव उनके साथ कौंसिल ने यह समझौता किया कि अगर ४ अगस्त १७२१ तक जहाज न पहुचा, तो हम हुडिया कर देगे और उस दिन से व्याज देने लगेगे। अन्त मे वैसा ही करना पडा। व्यापारी दादनी के रुपये पर भी व्याज माग रहे थे, पर कौंसिल ने कहा कि उसके लिए आप लोग कुछ दिन और ठहरे। उसने पिछले हिसाव की मद मे हुडिया कर दी। पावनेदारो में कुछ के नाम थे —विशनदास सेठ, जगन्नाथ सेठ, किशोरी सेट, किशनचरन खान, पुरुषोत्तम खान, रामभद्र चौधरी, गोविन्दराम खान, रामकिशन दत्त, चैनसुख दत्त, कालीचरण सेठ, कुजविहारी सेठ, परमानन्द वसाक, प्राण सेठ वसाक, राधावल्लभ सेठ, नैनसुख मेहरा (?), गंगारामदास, नन्दूप्रसाद, राधाकिशन, तेजराम, मल्लिकचन्द, वख्शीचन्द चोपरा (?), ख्वाजा नजीर, वलराम वसाक, गंगाचरण

बसाक, नित्यानन्द दत्त, रामनाथ दास, गोविन्द सेठ, रामेश्वर तेली, राजवल्लभ तेली, रामनारायग दत्त, कुजबिहारीदास, अमीचन्द आदि * । इतने व्यापारियो में सिर्फ एक मुसलमान था। इनमें सब से बडा पावनेदार विशनदास सेठ था, जिसका कपनी के जिम्मे ४७,१५८।।।)।।। निकलता था।

१७२२ में कंपनी को अपनी सिफारिश कराने के लिए फतहचन्द का दरवाजा खटखटाना पड़ा। बात यह हुई कि मुर्शिदाबाद मे अगरेजो का जो वकील था, उसी का भतीजा ढाके मे डचो का वकील था। इस पर ५०,०००) गबन कर जाने का अभियोग चला। मालूम नही क्या कारण हुआ, पर चचा से जमानत तलब की गई और उसके जमानत न देने पर, वह गिरफ्तार कर लिया गया। कौसिल ने फतहचद को कहलाया कि आप मेहरबानी कर नवाब को समझा दे और हमारे वकील की रिहाई करा दें, वर्ना हम मुनासिब कार्रवाई किये विना न रहेंगे। फतहचन्द के बीच मे पडने से, चचा की रिहाई हो गई और नवाब का हुक्म हुआ कि जमानत भतीजे से ही तलब की जाय।

दूसरे साल कपनी को फिर जगत्सेठ से सहायता मागनी पडी। मालदा में वहा के जमीदार और कपनी के बीच झगडा हो गया था और बात यहा तक वढी थी कि जमीदार की जगह खुद नवाब ने ले ली थी। कपनी अपनी कोठी उस जमीदार की जमीदारी की हद से हटा चुकी थी, पर नवाब के हुक्म से राजमहल के फौजदार ने नये स्थान पर भी उसका कारवार चलना असभव कर दिया। कपनी ने जगत्सेठ की शरण ली, पर उन्होने पहले तो इस मामले मे उसकी

* विल्सन के ग्रथ के आधार पर। कुछ नामो के अगरेजी रूप अत्यन्त ही विकृत हैं।

सिफारिश करने से इन्कार कर दिया, और पीछे कपनी के वहुत आग्रह करने पर नवाव का जी टटोला भी तो उन्हे उत्तर निराशाजनक ही मिला। अगरेज अपनी चाल चलने से वाज आने वाले न थे। मालदा में उन्होने फौजदार की गोली का जवाव गोली से दिया, कलकत्ते से गुजरने वाली तिजारती नावो को उन्होने रोक रखा, साथ ही मुर्शिदावाद में जगत्सेठ को यह कहलाते रहे कि व्यापारी के अलावा और कौन व्यापारी के काम आ सकता है? और रो-धो कर नवाव को दयार्द्र कराने की चेष्टा करते रहे। इन सव का फल अच्छा ही हुआ। नवाव ने कुछ समय वाद फतहचन्द के द्वारा कहलाया कि ५०००) पेशकश मिलने पर वह अगरेजो की वात उनकी जवानी सुनने को तैयार होगा और २०,०००) और मिलने पर वह उन्हे मालदा मे फिर से खरीद-विक्री करने देगा। जान पडता है कि १७२५ तक या तो कोई समझौता हो गया था या नवाव की क्रोधाग्नि शान्त हो गई। उस साल कपनी को फतहचन्द के द्वारा नवाव का यह आश्वासन मिला कि मै सदा से अगरेजो का दोस्त रहा हूँ और आगे भी वरावर रहने वाला हूँ।

पर इस 'दोस्ती' के होते हुए भी, १७२६ मे मुर्शिदकुली खा के क्रोध की आग फिर धधकने वाली थी, उसे वुझाने के लिए कपनी फिर फतहचन्द से अर्ज-मिन्नत करने वाली थी। इस वार नवाव के प्रकोप का कारण यह हुआ कि कपनी के कब्जे में कलकत्ता और उसके पास जो गाव थे, वे नवाव की जागीर के अन्तर्गत थे और इधर उसकी ओर से माल मे जो इजाफा किया गया था उसे देने को कपनी तैयार न थी। इस पर नवाव ने उसके मुर्शिदावाद-दरवार के वकील को गिरफ्तार करा लिया। वकील के वाद उन व्यापारियों की वारी आई जो कपनी से कारवार का सम्वन्ध रखते थे। इनमें से कुछ तो कासिमवाजार

छोड़ कर भाग गये, कुछ जहां-तहां जा छिपे। कुछ गिरफ्तार कर लिये गये। कंपनी के दलाल कन्तू ने उसकी फैक्टरी में घुस कर शरण ली। नवाब की जागीर के तहसीलदार का नाम अब्दुल रहीम था। नाम वैसा होते हुए भी वह करदाताओ के साथ बडी ही सख्ती से पेश आता—उन पर जरा भी रहम न करता था। मुर्शिदाबाद या कासिमबाजार में जो परिस्थिति उत्पन्न हुई थी उसकी जड में यही अब्दुल रहीम था।

जगत्सेठ को कौंसिल ने कई बार लिखा कि आप मेहरबानी कर इस मामले को निबटा दीजिए पर वह बीच मे पडने से इन्कार करते गये। कोई सरकारी कार्रवाई होती तो नवाब से कुछ कहने में उन्हें उतना सकोच न होता जितना इस प्रसग में हो रहा था। बात नवाब की खास जागीर से सम्बन्ध रखने वाली थी, उसके सम्बन्ध मे कुछ न कहना ही बेहतर था।

पर अगरेज चुपचाप बैठे रहने वाले न थे। हुगली में अपने वकील मे बादशाह की दुहाई दिलवाकर, वाकयानवीस से उन्होने ऐसी रपट लिखवाई कि अब्दुल रहीम के कारनामो की खबर दिल्ली-दरबार तक पहुच जाय। उनका जो वकील मुर्शिदाबाद में था वह हवालात में कोडो की मार खा रहा और भूखो मर रहा था। एक बार उसने कासिमबाजार फैक्टरी से १२५) यह लिख कर मागा कि अगर आप यह रकम भेज देगे तो मेरे पेट और पीठ को जो यत्रणा पहुच रही है, उससे दो-एक दिन के लिए उन्हे नजात मिल जायगी। अगरेजो से सम्बन्ध रखने वाले व्यापारियो या उनके वकील के साथ जो दुर्व्यवहार मुर्शिदाबाद में हो रहा था उसका बदला वे लूट-पाट या जोर-जबरदस्ती से हुगली और कलकत्ते मे लेने लगे थे। देशी व्यापारियो को अपने माल के लुट जाने से गहरी क्षति पहुची और उसकी पूर्ति के लिए उन्होने

मुर्शिदाबाद मे गोहार मचा दी। फतहचन्द दो लाख रुपये हुगली भेजने वाले थे, पर नवाव ने कहा कि उधर अगरेजो ने उत्पात मचा रखा है, अभी कुछ मत भेजें। उसने यह भी कहा कि हो सके तो कासिमबाजार से उनके दलाल कन्तू को बुलवाइए। फैक्टरी से जवाब मिला कि कन्तू जा सकता है, वशर्ते कि उसे लौटने दिया जाय और इसकी जिम्मेवारी फतहचन्द अपने ऊपर ले ले। समझौते की वातचीत होने लगी और अनिच्छुक होते हुए भी फतहचन्द को वीच में पडना ही पडा।

"हा, तो आप लोग कितना देने को तैयार है? आप के वकील और व्यापारी छोड दिये जायगे, आप को मै यह विश्वास दिला सकता हूँ।"

"धन्यवाद, पर हमे देने-लेने के वारे में कुछ भी तय करने का कोई अधिकार नही। हम कौसिल से पूछे विना कुछ भी नही कह सकते।"

"तो उनसे पूछ कर वताइए।"

"सभवत वे यही कहेगे कि पहले सव आदमियो को नवाव छोड़ दे, फिर लेने-देने की वात की जाय।"

"जैसी आप लोगो की मर्जी। मगर मुझे इसका नतीजा अच्छा होता नही दीखता।"

नवाव की ओर से जव और कडाई हुई तव वात कुछ आगे वढी। जगत्सेठ और ईस्ट इडिया कपनी के प्रतिनिधियो के वीच फिर उसी सिलसिले में वातचीत होने लगी।

जगत्सेठ की ओर से कहा गया कि नवाव से कंपनी की भलाई ही होती आई है, इसलिए उन्हे अप्रसन्न करना या उनकी आज्ञा का उल्लघन करना कंपनी के लिए श्रेयस्कर नही हो सकता। हो सकता है कि तीस हजार रुपये मिल जाने पर ही वह सन्तुष्ट हो जाय। इसमे

यह लाभ होगा कि आप लोग जिस तरह व्यापार करते आये है उसी तरह करते रहेगे और जो राजस्व इस समय दे रहे है, उसमे किसी प्रकार की वृद्धि न होगी।

कौंसिल ने इसके उत्तर मे कहलाया, "हम अधिक से अधिक बीस हजार देने को तैयार है, मगर इस शर्त पर कि हमे मालदा में अपनी फैक्टरी फिर से चलाने की, ढाके मे एक नया मकान बनवाने की और हुगली मे हमने जिस मकान मे हाथ लगा रखा है, उसे पूरा कराने की इजाजत मिल जाय। हमसे यह तो हो नही सकता कि हम अपने मालिकों का पैसा पानी मे फेंक दे। हमारा सारा व्यापार वन्द हो जाय, हमे यह मजूर है, पर यह मजूर नही कि हमें वार-वार इस तरह तंग किया जाय और हम चुपचाप उसे बर्दाश्त करते जाय। हमें आशा है कि नवाव की ओर से फिर कभी ऐसी माग न होगी।"

फतहचन्द के कहने-सुनने पर.नवाब ने हुक्म दिया कि कपनी के वकील और व्यापारी जो कैदखाने में पडे है छोड दिये जाय। उन लोगो की रिहाई के प्राय दो महीने वाद कपनी ने २०,०००) नजराना दाखिल कर अपना वचन पूरा किया।

इधर एक नई विदेशी कपनी वगाल में पाव जमाने की कोशिश करने लगी थी।

इसकी ओर से भी नवाव को २०,०००) नजराना मिला। पर अनुभवहीन होने के कारण, इसके प्रतिनिधि अपने प्रयत्न मे सफलता प्राप्त न कर सके। करीव दो लाख रुपये गवाकर उन्हे वहा से खाली हाथ लौट जाना पडा। वात यह हुई कि उन्होने मुर्शिदकुली खा की भेट की, उसके कुछ मुसाहवो के मुह मीठे किये, पर वगाल में कुछ साल

विताने पर भी वे जगत्सेठ की आखो में घर न कर सके। ७ मई, १७२७ को स्टिफेन्सन कासिमवाजार से कौंसिल को सूचित करता है कि, "जव तक फतहचन्द हमारे इन नये प्रतिद्वद्वियो का पक्ष नही अपनाते तव तक उन्हें नवाव से सनद मिलने वाली नही, और फतहचन्द हमसे वादा कर चुके है कि मै उन लोगो की किसी प्रकार की सहायता न करूगा।" वात भी यही हुई। फतहचन्द तटस्थ वने रहे, नई कपनी की ओर से आने वालो को अन्त मे निराश होकर वोरिया-वधना उठाना पड़ा। नवाव से उन्हे सरोपा तो मिला मगर वह सनद नही मिली जिसके लिए उन्होने दरवार में इतना समय विताया, इतना पैसा खर्च किया।

जगत्सेठ की कोठी मे ईस्ट इडिया कपनी का खाता खुल चुका था और दोनो के वीच लेन-देन का व्यवहार होने लगा था। २८ मार्च, १७२६ को फतहचन्द से कपनी अनुरोध करती है कि ढाके मे हमें रुपये की जरूरत पडने वाली है, आप कृपा कर अपने गुमाश्ते को लिख दे कि हमारी ओर से जो माग हो, वह पूरी कर दे। जवाव में फतहचन्द सूचित करते है कि हमने अपने गुमाश्ते को लिख दिया है कि आप को ५०,०००) दे दे। २९ सितम्वर, १७२६ को कपनी के कर्मचारी ढाके से लिखते है कि "इधर टकसाल मे अधिकारियो के अदल-वदल की वजह से हमे काफी दिक्कत उठानी पडी है, पर हम फतह-चद के गुमाश्ते के साथ वन्दोवस्त कर अपना काम चलाते आये है।"

जून, १७२७ मे मुर्शिदकुली खा की मृत्यु हुई। मरने से दो वरस पहले उसने, महल से थोडी ही दूर पर एक मसजिद वनवाई थी। यह एक कटरे के भीतर थी और कटरा-मसजिद के नाम से मशहूर थी। उसी मसजिद के जीने के नीचे उसकी लाश को मिट्टी मिली। मसजिद

का अधिकांश भाग खुद मिट्टी मे मिल चुका है, पर मुर्शिदकुली खा की कब्र मौजूद है और उसके पास शायद अब भी नियमित रूप से कुरान का पाठ होता है।

इसमें सदेह नही कि मुर्शिदकुली खा कठोर था, क्रूर था और धर्म-सम्बन्धी विषयो मे अत्यन्त सकीर्ण दृष्टि वाला कट्टर मुसलमान था। पर कुछ बाते उसकी प्रशंसा मे भी कही जा सकती है। अपने कडे अनुशासन से उसने शान्ति को सदा सुरक्षित रखा और इसके फलस्वरूप उसके शासन-काल मे खेती-बारी तथा अन्य उद्योग-धधो की अच्छी उन्नति हुई। आदमियो की उसे अच्छी परख थी और जिनके सहयोग की उसे आवश्यकता होती, उन्हें अपने साथ स्नेह-सूत्र मे आबद्ध रखने के कार्य मे भी वह कुशल था। मानिकचन्द और उनके उत्तराधिकारी के साथ उसने स्वामी ही नही, मित्र का-सा भी व्यवहार रखा। जहा उसकी दया-दृष्टि से सेठ-परिवार इतना फूला-फला, वहा इसके आर्थिक सहयोग और साहाय्य से मुर्शिदकुली खा भी कम उपकृत नही हुआ।

मालूम नही इस बात में कितनी सचाई है, पर कहा जाता* है

---

* उदाहरणार्थ, "रियाजुस्सलातीन" का लेखक गुलाम हुसैन सलीम लिखता है कि, "जहा न्याय करना होता, वहा मुर्शिदकुली खा न तो किसी का पक्षपात करता, न किसी के साथ रिआयत। उसके लिए छोटे-बडे सभी एक-से थे और न्याय के तराजू का पल्ला वह किसी धनवान् या प्रभावशाली व्यक्ति के पक्ष में झुकने न देता था। यह प्रसिद्ध है कि अपने पुत्र को भी, किसी को सताने और मार डालने का अपराधी साबित होने पर वह फासी की सजा देने से बाज न आया।" पर इस ग्रथ की रचना बहुत बरसो बाद हुई थी। वास्तव मे इस घटना का पूरा या प्रामाणिक विवरण कही नही मिलता।

कि मुर्शिदकुली खां इतना न्याय-परायण था कि किसी की जान ले लेने के कारण उसके अपने पुत्र को भी जान से हाथ धोना पडा था। इतना निश्चित है कि मरते समय मुर्शिदकुली खा के कोई बेटा नही था। उसकी बेटी जीनतुन्निसा वेगम शुजाउद्दौला उर्फ शुजा खा नामक सरदार को ब्याही थी, जिसे वह उडीसा की सूबेदारी दिला चुका था। ससुर और दामाद की आपस में नही वनती थी, बल्कि शुजा-उद्दौला की वेगम भी अपने पिता के ही घर रहती थी।

(२)

मुर्शिदकुली खा की इच्छा थी कि उसका उत्तराधिकारी शुजाउद्दौला न होकर इसका वेटा सरफराज खा हो, जो अपनी मां के साथ मुर्शिदावाद मे ही रहने लगा था। पर यह इच्छा तभी पूरी हो सकती थी जव सम्राट् से इसकी स्वीकृति मिल जाती। इसके लिए मुर्शि-दकुली खा दिल्ली-दरवार में सिफारिश कराने लगा। उधर शुजाउद्दौला को इस वात की खवर मिली तो वह सम्राट् का निर्णय अपने पक्ष में कराने के लिए समयोचित कार्य्य करने लगा। उसके खास सलाहकार थे अलीवर्दी खां और हाजी अहमद। ये दोनो उसके एक रिश्तेदार के लडके थे और दोनो ही ऊचे दर्जे के कर्मचारियो मे थे। इनकी सलाह से कुछ ऐसे पैरोकार दिल्ली भेजे गये, जिनका पूरा एतवार किया जा सकता था और, इसके अलावा, कटक से मुर्शिदावाद तक जासूसो का जाल-सा बिछा दिया गया, ताकि वंगाल की राजधानी की घडी-घडी की खवर मिलती रहे। वरसात करीव थी, रास्ता वद हो जाने का डर था, इसलिए नावो और मल्लाहो को जुटाने का काम वडी ही तत्परता से पूरा कर लिया गया। गुप्त रूप से जहा-तहां सैनिक भी भेज दिये गये

और उनसे कह दिया गया कि आदेश मिलते ही सब के सब मुर्शिदाबाद पहुँच जायँ। ज्योही यह समाचार कटक पहुचा कि मुर्शिदकुली खां अब पाच-छः दिनो से अधिक जीवित रहने वाला नही, शुजाउद्दौला वहां से लश्कर के साथ चल पडा। पर मुर्शिदाबाद पहुचने से पहले ही खबर मिली कि उसके ससुर दुनिया से कूच कर चुके है। रास्ते मे ही उसे वह सनद भी प्राप्त हुई, जिसके द्वारा सम्राट् ने उसे उडीसा तथा बगाल का दीवान और नाजिम नियुक्त कर दिया था। जिस स्थान पर उसे यह सनद मिली उसका नाम उसके हुक्म से 'मुबारक मजिल' पडा। शुजाउद्दौला को मुर्शिदाबाद पहुचते देर न लगी। पहुचते ही उसने अपने आप को मुर्शिदकुली खा का उत्तराधिकारी घोषित किया और मसनद पर जा बैठा। उसका बेटा सरफराज खा उस समय सोया हुआ था। नगारे की आवाज से जब उसकी नीद टूटी और सब बातें मालूम हुईं, तब आन्तरिक भाव चाहे जो रहा हो—उसने भी झट पिता के सामने हाजिर होकर उसकी कदमबोसी की और नजर पेश कर उसे बधाइया दी। सब प्रकार से निश्चिन्त होकर शुजाउद्दौला अब राज-काज में लगा।

कटक से उसके साथ आने वालो मे अलीवर्दी खा, हाजी अहमद और राय आलमचन्द थे। यह आलमचन्द उसके दीवान रह चुके थे और उसकी दृष्टि मे बडे विश्वासपात्र थे। उसने मुर्शिदाबाद में एक मत्रि-सभा कायम की, जिसके सदस्यो मे, इन तीनो व्यक्तियो के अलावा, जगत्सेठ फतहचन्द थे। इस बात का जिक्र करते हुए एक समसामयिक इतिहास-लेखक, जगतसेठ के विषय में लिखता है कि, "इसका धन करोडो में बताया जाता था" और "इसकी बराबरी करने वाला आज तक कोई नही हुआ"।

नैतिक दृष्टि से, शुजाउद्दौला मे कुछ कमजोरिया जरूर थी और यही कारण है कि उसकी अपनी स्त्री और अपने ससुर से नही बनी—पर उसमे उदारता थी, दयाशीलता थी और न्याय-परायणता थी। जिस समय वह बगाल का नाजिम और दीवान हुआ, उस समय बहुत से जमीदार कैदखाने मे पडे तरह-तरह की यत्रणाएँ भोग रहे थे। जो घोर अपराध करने वाले थे उनके सिवाय बाकी लोग छोड दिये गये और शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करने पर कि हम बराबर आज्ञाकारी बने रहेगे और नियमित रूप से राजस्व देते जायगे, सब के सब सम्मानपूर्वक विदा किये गये। चलते समय नये नवाब से उन्हे यही आदेश मिला कि साल-ब-साल खिराज "जगत्सेठ की कोठी की मार्फत" दाखिल हो जाया करे।

शुजाउद्दौला ने अपने औरस पुत्र सरफराज खा को बगाल का दीवान बनाया। उडीसा मे वह मुहम्मद तकी खा को अपने प्रतिनिधि के रूप मे छोड आया था। यह उसका किसी उपपत्नी से उत्पन्न पुत्र था। अलीवर्दी खा के कोई बेटा न था, पर तीन बेटिया थी जिनका विवाह उसके भाई हाजी अहमद के बेटो के साथ हुआ था। इनके नाम थे—नवाजिश मुहम्मद खा, सईद अहमद खा और जैनुद्दीन अहमद खा। पहले को तो फौज के बख्शी का पद मिला और बाकी दोनो क्रमश. रगपुर तथा राजमहल के फौजदार नियुक्त हुए।

बगाल और उडीसा, इन दोनो सूबो के शासक का पद शुजाउद्दौला को मिल चुका था। पूरब मे रह गया था बिहार जिसकी सूबेदारी अब तक अलग चली आई थी। हम ऊपर देख चुके है कि किसी समय वहा का सूबेदार औरंगजेब का पोता अजीमुश्शान था, और जब अपने पिता बहादुरशाह के समय मे उसे पटने से दूर रहना

पडा था तब कुछ समय तक हुसैन अली खा ने वहा उसके नायब की हैसियत से काम किया था। उसके बाद कई सूबेदार आये-गये। इनमे अन्तिम था फख्रुद्दौला, जिसने पाच बरस तक सूबेदारी की। दुर्भाग्यवश उसने दिल्ली-दरबार मे अपनी बदनामी करा ली, जिसका नतीजा यह हुआ कि उसे तो सूबेदारी से हाथ धोना ही पडा, बिहार अब बगाल के सूबेदार के अधीन कर दिया गया। अगर फख्रुद्दौला एक ऐसे 'फकीर' का अपमान न करता जो वास्तव में दरबार के प्रभावशाली पारषद समसामुद्दौला खान दौरा का भाई था तो बिहार को बगाल का पुछल्ला न बनना पडता, और उस रूप मे प्राय १८० साल न बिताने पडते। यह इस बात का उदाहरण है कि भवितव्यता की दिशा मे तिल की ओट ताड तो क्या, पहाड छिपा रहता है--छोटी या साधारण-सी घटना भी कभी-कभी ऐसी बडी ऐतिहासिक घटना को जन्म देने वाली बन जाती है, जो बरसो तक जनता के जीवन को प्रभावित करती रहती है।

बिहार की सूबेदारी मिल जाने पर, शुजाउद्दौला के सामने यह प्रश्न खडा हुआ कि वहा उसका प्रतिनिधित्व कौन करे? उस प्रान्त के शासन का काम टेढी खीर समझा जाता था, इसलिए वहा अनुभवी और पूर्णत विश्वसनीय आदमी को भेजना आवश्यक था। पहले उसके जी मे आया कि सरफराज खा को भेज दू, पर उसकी स्त्री को यह स्वीकार न हुआ, इसलिए सोच-विचार कर उसने अलीवर्दी खा को भेजना निश्चित किया। मन्त्रि-सभा की भी यही राय ठहरी कि उससे योग्यतर व्यक्ति मिलना कठिन है। दिल्ली से भी इस नियुक्ति की स्वीकृति आ गई और अलीवर्दी खा पटने जाकर नायब नाजिम की हैसियत से रहने लगा।

शुजाउद्दौला के शासन-काल मे जगत्सेठ-घराने की और भी तरक्की हुई। विहार का राजस्व भी अव उन्ही की कोठी में दाखिल होने लगा और इस मद से होनेवाली उनकी अपनी आय वढ चली। "रियाज" में लिखा है की शुजाउद्दौला ने अपनी आर्थिक नीति से सरकारी आय मे वृद्धि कर "जगत्सेठ फतहचन्द की कोठी की मार्फत डेढ करोड रुपये दिल्ली भेजे।"

जान पडता है कि इतनी वडी रकम अव छकड़ों के द्वारा न भेजी जाकर हुडी के जरिए मुर्शिदावाद से दिल्ली जाने लगी थी—अर्थात् जगत्सेठ का आर्थिक वल इतना वढ गया था कि वह करोड-डेढ-करोड का इस तरह आसानी से भुगतान कर सकते थे और रुपयो तथा अशर्फियो की थैलियो से लदे हुए छकडो को मुर्शिदावाद से दिल्ली पहुचाने मे जिन दिक्कतों का सामना करना पडता, उनसे सरकार को वचा सकते थे।

ऊपर कपनी के कासिमवाजार वाले दलाल कन्तू* का जिक्र हो चुका है। यह भी जगत्सेठ की कोठी से लेन-देन का सरोकार रखता था और १७३० मे उस लेन-देन के कारण जगत्सेठ और ईस्ट इंडिया

---

* क्या कासिमवाजार राज की नीव डालने वाले कृष्णकान्त नन्दी—उर्फ 'कन्तू वावू'—और यह एक ही व्यक्ति थे? कन्तू वावू राधाकृष्ण नन्दी के पुत्र थे और इनके पिता की कासिमवाजार में या उसके पास ही कही रेशम की दूकान थी। इन्होंने वारेन हेस्टिंग्स के गवर्नर-जनरल होने के वाद विशेष उन्नति की। हेस्टिंग्स कुछ समय तक कासिमवाजार में रह चुका था। उसने इनके वेटे लोकनाथ को महाराज की उपाधि और गाजीपुर जिले मे जागीर भी दिलाई। १७७८ में कन्तू वावू परलोक सिधारे।

कंपनी के बीच वाद-विवाद ही नही चला,दोनों का सम्बन्ध टूटने पर आ गया।

कन्तू कपनी के लिए कासिमबाजार में रेशम खरीदा करता। एक बार वह सौदा करने चला तो माल बेचनेवालो को अगाऊ देने के लिए उसके पास काफी रुपया न था। पर उसकी साख बहुत अच्छी समझी जाती, इसलिए वह जब चाहता, जगत्सेठ की कोठी से कर्ज लेकर अपना काम चला सकता था। इस मौके पर भी उसने ऐसा ही किया। पर मालूम नही क्यो, वह समय पर अपना देना न चुका सका। सभवत कपनी ने अपना देना चुकाने मे देर या आनाकानी की। कन्तू थोडे समय के लिए लापता हो गया। व्यापारियो ने यह कहकर कपनी के हाथ माल बेचने से इन्कार कर दिया कि जब तक फतहचन्द का हिसाब नही चुक जाता, हम लोग कपनी के साथ काम-काज नही कर सकते। कासिमबाजार में कपनी का कारबार बन्द हो गया। वहा वालो ने कौंसिल को लिखा कि जब तक जगत्सेठ के साथ कोई समझौता नही हो जाता तब तक परिस्थिति सुधरने वाली नही।

कुछ समय बाद कन्तू कासिमबाजार लौटा। हिसाब-किताब होने पर मालूम हुआ कि वह सब मिलाकर ३७८,०००) का देनदार था। जगत्सेठ तथा कुछ अन्य व्यापारियो का उसके जिम्मे २४५,०००) निकला और कपनी का १३३,०००)। कन्तू ने २७२,०००) की जायदाद कपनी के हवाले कर दी—यह कहकर कि इससे अधिक कुछ भी देने में मै असमर्थ हूँ। जगत्सेठ की ओर से तकाजा शुरू हुआ। कन्तू ने कुछ कागज-पत्र उन्हे सौंप दिये थे। कपनी उनकी नकल कराना चाहती थी, पर जगत्सेठ की ओर से यही उत्तर मिला कि, "हमने कन्तू को जो कुछ दिया,उसे कपनी का प्रतिनिधि मान कर

और कंपनी के कार-बार के लिए। कंपनी पहले उस रुपये की देनदारी कबूल कर ले, फिर जो कागजपत्र देखना चाहेगी, हम उसे देखने देंगे।" पर कंपनी यही कहती रही कि हमको इस प्रकार बाध्य करने का कन्तू को कोई अधिकार न था—उसने जो कुछ लिया उसका देनदार वही हो सकता है।

जगत्सेठ की ओर से इस विषय मे कौसिल को एक खत लिखा गया। उसका आशय यह था, "कन्तू के जिम्मे हमारा २१५,०००) पावना है। हमने अपने गुमाश्ता जीवनदास को आपकी फैक्टरी मे भेजा था। वहा उत्तर मिला कि कन्तू कलकत्ते गया हुआ है, आपका हिसाव शीघ्र ही चुकता कर दिया जायगा। पर तव से बीस रोज हो गये, आज तक रुपया न मिला। कपनी लेन-देन मे खरी समझी जाती थी—जो कुछ उसके जिम्मे निकलता था, वक्त पर अदा कर देती थी। पर इस टाल-मटूल से उसकी वदनामी हुई है। हम आशा करते है कि जब कंपनी और कन्तू के बीच हिसाव-किताव साफ हो चुका, तव व्यापार के नियमानुसार हमारा पावना भी शीघ्र ही चुका दिया जायगा।"

जगत्सेठ ने कासिमबाजार फैक्टरी के सरवराहकार मि० स्टैकहौस से एक व्यावहारिक प्रस्ताव भी किया। इसका साराश यह था कि, "कन्तू से कपनी को २७२,०००) की सम्पत्ति मिल चुकी है। कपनी इतने रुपये की देनदारी का हमारे नाम एक रुक्का लिख दे। ५०,०००) का एक और रुक्का हम कन्तू से लिखा लेंगे। उसका देनदार कन्तू ही होगा, कपनी नहीं। इस प्रकार हम ३२२,०००) पाने के हकदार होगे। बदले मे हम अपना पावना काट कर, कपनी को करीव ८०,०००) नकद दे देगे और दूसरो का भी जो कुछ निकलेगा, वेबाक कर देंगे। शर्त यह है कि कपनी कन्तू को आगे के लिए भी अपना दलाल रहने

देगी।" पर इस प्रस्ताव का कोई नतीजा न निकला। कपनी को कसर खाकर जगत्सेठ का देनदार बनना स्वीकार न हुआ।

लाचार फतहचन्द को सरकार का सहारा लेना पडा। नवाब ने हाजी अहमद को हुक्म दिया कि चाहे जैसे हो, कपनी से इनका रुपया वसूल करा दो। हाजी अहमद ने हुक्म की तामील के लिए पहले तो कपनी के वकील को गिरफ्तार करा लिया, फिर उसे कहलाया कि, "जगत्सेठ की सम्पत्ति, सम्राट् की अपनी सम्पत्ति है। चाहे जैसे होगा, नवाब रुपया वसूल करा के ही दम लेगा।" यह रग-ढग देखकर कपनी इस बात पर तो राजी हो गई कि जगत्सेठ से कोई समझौता कर लिया जाय, पर वह कन्तू को दलाल रखने से इन्कार करने लगी। उधर जगत्सेठ को कोई भी समझौता इस आधार पर मजूर न था कि कन्तू उस पद से च्युत कर दिया जाय, क्योकि उस हालत मे कन्तू के नाम पडने वाली रकम को बट्टे खाते मे ही डाल देना पडता। कंपनी ने दो-एक बडे व्यापारियो को दलाल का पद प्रदान तो किया, पर उन्होने यह कह कर उसे अस्वीकार कर दिया कि मौजदा हालत मे कोई भी व्यापारी माल बेचने को तैयार नही। ढाके मे भी यही हाल था। कपनी को वहा से खबर मिली कि जगत्सेठ से झगडा हो जाने के कारण वहा का व्यापार भी मिट्टी मे मिलने पर था। इधर हाजी अहमद की त्योरी चढने लगी थी, यह अफवाह उडने लगी थी कि अगर कपनी ने जगत्सेठ का ऋण न चुकाया तो वह व्यापार ही न कर सकेगी।

कौसिल ने नवाब की सेवा मे एक आवेदन-पत्र भेजना निश्चित किया। सारी परिस्थिति के सम्बन्ध मे उसका विचार क्या था, यह उसके द्वारा स्वीकृत इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है—"अगर नवाब हमारी दरख्वास्त नामजूर कर देगे तो उनके और हमारे बीच

झगडा उठेगा और हमारा व्यापार कुछ समय के लिए बंद हो जायगा। पर हम करे तो क्या ? हमारे सामने दो ही मार्ग है—या तो हम अपनी बात पर अडे रहे या फतहचन्द की बात मानकर कन्तू को फिर अपना दलाल बनने दे। हमारे लिए दोनो ही रास्ते बुरे है, पर एक में दूसरे की अपेक्षा बुराई कम है। यही कारण है कि हम नवाब का कोप-भाजन बनने को तैयार है, पर फतहचन्द का प्रस्ताव स्वीकार करने को नही। अगर कन्तू फिर कपनी का दलाल हो गया तो वह इसके लिए आजन्म फतहचन्द का ऋणी रहेगा और फतहचन्द उससे मनमाना काम निकाला करेंगे। आखिर फतहचन्द कन्तू की पुनर्नियुक्ति पर इतना जोर क्यों दे रहे है ? इसमे उनकी कोई गहरी चाल जान पडती है। व्यापारियो से कन्तू को १॥) सैकडा दलाली मिलती है। फतहचन्द और उसके दोस्तो का कहना है कि अगर कन्तू की यह दलाली बनी रही तो वह धीरे-धीरे अपना सारा कर्ज चुका देगा। मगर कैसे ? उसकी साल भर की दलाली किसी भी हालत में १२०,०००) से ज्यादा हो नही सकती। उधर कपनी का दलाल होने के कारण उसे कुछ ठाट-बाट से रहना ही पडेगा। उसका कुटुम्ब भी छोटा नही, ऐसी हालत में उतनी आमदनी से तो उसका अपना ही खर्च चलना मुश्किल है, वह महाजनो को क्या दे सकेगा ? कन्तू की नियुक्ति से हमारा कोई लाभ होने वाला नही। बल्कि इससे हमारे ऊपर आफत बनी ही रहेगी। जहा किसी महाजन ने फरियाद की कि कन्तू कर्जदार है, वहा दरबार से हुक्म हुआ कि कपनी से रकम वसूल की जाय और न दे तो उसका कार-बार बन्द कर दिया जाय। हमे जान पडता है कि फतहचन्द किसी गूढ अभिप्राय से ही कन्तू को उनकी पुरानी जगह दिलाना चाहते है। सभवत: उनके और व्यापारियो के बीच कोई ऐसा समझौता है कि कन्तू की मार्फत जो

रेशम की खरीदारी होगी, उसका वह बाजार-भाव से ऊचा दाम दिला देंगे। पर इसमे फतहचन्द का और व्यापारियो का लाभ भले ही हो, हमारे मालिको की तो हानि ही हानि है। अगर कन्तू फिर से दलाल नियुक्त हुआ तो हमारा व्यापार चौपट हुए बिना न रहेगा।"

कपनी के आवेदन-पत्र के उत्तर मे नवाब ने यही लिखवाया कि अगर तुम देनदार हो तो जगत्सेठ का रुपया फौरन चुका दो, अगर तुम अपनी देनदारी कबूल नही करते तो दरबार में कन्तू को हाजिर करो कि मामला पचायत से तै हो जाय। कौसिल ने एक खत जगत्सेठ को भी लिखा था, पर उन्होने उसे पढकर लौटा दिया था, उसका कोई जवाब नही दिया था।

कंपनी ने न तो अपनी देनदारी कबूल की, न कन्तू को ही हाजिर किया। बात यह थी कि कन्तू के बयान से कपनी की मुसीबत बढने वाली थी, घटनेवाली नही। वह कौसिल को अपने आर्थिक सकट का कारण बता चुका था और अगर दरबार मे पेश किया जाता तो अपनी उसी बात को दोहराता और कपनी की बदनामी करता। कन्तू ने कौंसिल को लिखा था—

"कासिमबाजार फैक्टरी के भूतपूर्व प्रधान मि० स्टिफेन्सन ने मुझे डरा-धमका कर मुझसे बहुत-कुछ ऐंठ लिया। मुझे उन्हे सब मिलाकर १७५,०००) देना पड़ा और उनके मुतसद्दी को ७,०००)। इससे मेरी आर्थिक स्थिति खराब हो गई और मुझे टाट उलट देना पडा। अगर मि० स्टिफेन्सन के दोनो दलाल—हरकिशन और सदानन्द अपने बही-खातो के साथ बुलवाये जायं और उनके बयान लिये जायं तो मेरी बात की सचाई साबित हो जायगी। मेरी बरबादी छ: नही, छत्तीस

महीनो में हुई है। जब मैंने देखा कि कर्ज लिये बिना मैं अपनी रक्षा नहीं कर सकता, तब मुझे जगत्सेठ की कोठी से इतना उधार लेना पड़ा।"

कन्तू ने यह लिखकर दर्ख्वास्त की थी कि कौंसिल सारे मामले की जाच करावे और मेरे साथ न्याय करे। पर जाच कराई भी गई तो काम के लिए नही, नाम के लिए। कन्तू जो दाद चाहता था वह उसे न मिली और वह दरबार तक अपनी फरियाद पहुचाने ने भी रह गया।

इस बीच मे मुर्शिदाबाद के दो बडे महाजनो ने झगडा निवटा देने के उद्देश से एक प्रस्ताव किया। वह प्रस्ताव यह था कि चूकि कन्तू से २,७२,०००) की जायदाद कपनी को मिल चुकी थी, कपनी ८०,०००) तो अपने लिए रख ले और १,९२,०००) किसी दलाल के हवाले कर दे, और यह दलाल उस रकम को, और महाजनो के बीच कर्ज के हिसाब से बाट कर, यह किस्सा खतम करे। पर कौंसिल ने इसे स्वीकार नही किया। उसकी खास दलील यह थी कि जायदाद २,७२,०००) की जरूर बताई गई है, पर सभव है, बेचने पर उतना न मिले—"कम से कम ५०,०००) का नुकसान तो मान ही लेना चाहिए।" उधर कन्तू का कहना था कि जायदाद की कीमत एक पैसा भी कम मिलने की नही। झगडा बना ही रहा।

कासिमबाजार मे काम-धधा न होने के कारण कपनी के कर्मचारी हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। वे कौंसिल को लिखते कि मामला तै हो जाना चाहिए—बडे स्वार्थ के लिए हमे छोटे स्वार्थ का बलिदान कर देना चाहिए—पर कौंसिल अपनी नीति की विफलता जल्द स्वीकार करने वाली न थी। कभी वह सरफराज खा को भेज कर अपना काम निकालना चाहती थी, कभी अपने प्रतिनिधियो को हाजी अहमद और रायरायां

आलमचन्द के पास भेजकर उनसे अपनी सिफारिश कराना चाहती थी। एक खासा अच्छा घोडा शाहजादे को भेट किया गया, हाजी अहमद और आलमचन्द के सामने आसू वहाये गये, पर इनका कोई नतीजा न निकला। उसे सब यही सलाह देते गये कि कपनी को बगाल, विहार या उडीसा में रहना और व्यापार करना है तो फतहचन्द से समझौता कर ही लेना चाहिए।

अप्रैल (१७३०) मे यह झगडा शुरू हुआ और अक्टूबर से पहले न निवटा। पांच-छ महीनो तक वाद-विवाद बना ही रहा। इस बीच मे कपनी की ओर से कासिमबाजार में माल की खरीद-बिक्री की कोशिश हुई भी तो किसी व्यापारी को सौदा करने का साहस न हुआ। फतहचन्द धीर-गभीर थे, पर उनकी सहनशीलता की भी एक हद थी। जब उन्हे मालूम हो गया कि कौंसिल को दूसरे महाजनो का किया हुआ प्रस्ताव भी मजूर न था, तब पानी मे एक बार उबाल आया और उन्होने कौंसिल का सन्देश पहुचाने वाले कर्मचारी से तमक कर कहा "मै इतना कमजोर नही कि कपनी से कौडी-कौडी वसूल न कर लूं। उसे बाद को मालूम होगा कि हमारे क्रोध से उसकी कितनी हानि हो सकती है।"

नवाब का भी धैर्य जाता रहा। उसने कपनी को कहलाया कि, "जगत्सेठ का पावना सरकार का अपना पावना है" और यह धमकी दी कि पटने से आनेवाली नावे आगे बढने न दी जायगी। फिर भी कौंसिल का निश्चय न बदला। अधिक से अधिक वह फतहचन्द को कन्तू की जायदाद का एक हिस्सा देने को तैयार थी और जब इस पर समझौता न हो सका, तब उसने कासिमबाजार के कर्मचारियो को आदेश दिया कि फैक्टरी मे ताला लगाकर वहा से चल दो। उन्होने

ऐसा ही किया, पर नवाव पर इसका कुछ भी असर न पड़ा। उसने कपनी के वकील को वुलवाया और उससे कहा कि, "तुम्हारे मालिक आप अपना नुकसान करने चले है तो करे, उन्हें रोकता ही कौन है? यहा के अगरेज जहा जाना चाहते हो जाय। मै तुम्हे भी उनके साथ जाने की इजाजत दे सकता हूँ। पर यह नही हो सकता कि मै फतहचन्द की रकम डूव जाने दू।" यह कह कर उसने वकील की रिहाई का हुक्म दे दिया।

जान स्टैकहौस ८ सितम्वर को कलकत्ते पहुचा। कुछ और कर्मचारी वहा पहले ही पहुच चुके थे। फिर से सारी परिस्थिति पर विचार हुआ और यह निर्णय हुआ कि जो लोग कासिमवाजार से आ गये है वे वहा लौट जाय और फतहचन्द से समझौता कर माल खरीदना शुरू कर दे। समझौते के सवध में कौसिल का आदेश हुआ कि फतहचन्द को रुपये मे ॥)—अर्थात् कुल १०७,५००)—दे कर मामला तै कर सकते हो। पर कन्तू को फिर दलाल की जगह देना कौसिल को मंजूर न हुआ। स्टैकहौस भी उसके पक्ष मे न था। उसने कासिमवाजार के एक और ही व्यापारी की सिफारिश की थी। इसका नाम वडदत्त था और इसी को दलाल नियुक्त करना कौंसिल ने निश्चित किया।

अन्त में मामला १३०,०००) पर तै हो गया। २० अक्टूवर (१७३०) को फतहचन्द ने यह लिखकर दे दिया कि—

"मै जगत्सेठ इकरार करता हूँ कि, अगरेजो के कासिमवाजार के दलाल कन्तू और मेरे वीच हिसाव-किताव साफ हो गया और उसके जिम्मे मेरा जो कुछ पावना निकला, उसे कासिमवाजार फैक्टरी के प्रधान मि० स्टैकहौस ने वेवाक कर दिया। अव अंगरेज कपनी या कन्तू के जिम्मे मेरा कुछ भी वाकी न रहा, लेहाजा यह फारखती लिख दी।"

फतहचन्द ने इसके कुछ ही दिन वाद मि० स्टैकहौस और मि० रसल को साथ ले जाकर नवाव से मिलाया। पर उनके दिल मे फरक आ गया था। इसलिए कपनी की विशेष सहायता करने से उन्होने हाथ खीचना शुरू कर दिया। ढाके मे कपनी उनके गुमाश्ते से फिर कुछ कर्ज ले चुकी थी। जव गुमाश्ता तकाजा करने लगा, तव कपनी के कर्म-चारियो ने कौसिल पर हुडी कर उसका हिसाव चुकाया। जनवरी १७३१ की कलकत्ता-कौसिल की रोकड़ वही में उस हुडी के भुगतान का जिक्र है —

"ढाके के प्रधान और उसकी कौसिल द्वारा की हुई हुडी का भुगतान, फतहचन्द आनन्दचन्द को—

	३०,०००)
वट्टा १४।=) ५ पाई सैकडा	४,३२०)
	३४,३२०)"

१३ मई को कासिमवाजार का प्रवान कौसिल को अपनी आर्थिक स्थिति से अवगत कर कुछ रुपया मागता है क्योकि "फतहचन्द कुछ भी देने को तैयार नही।"

फर्रुखसियर ने फरमान-द्वारा कपनी को नि शुल्क व्यापार करने का अधिकार दे दिया था, पर नये वादशाह मुहम्मद शाह को कंपनी ने न तो नजराना भेजा था, न उसकी स्वीकृति ही प्राप्त की थी। यो तो पहले भी उसकी ओर से इस अधिकार का दुरुपयोग हुआ करता था, पर इधर व्यापार वढने के साथ वह दुरुपयोग भी वढ चला था। यह दुरुपयोग इस प्रकार होता कि दूसरे व्यापारी भी कपनी के किसी वडे अधिकारी की मुट्ठी गरम कर उसका दस्तक या परवाना हासिल

कर लेते और अपने माल को कपनी का माल बताकर शुल्क लेने-दने का कोई सवाल ही नही खडा होने देते। सरकार को इससे बडी आर्थिक हानि होने लगी थी। उसके कर्मचारी कही रोक-टोक करते भी तो या तो घूस देकर उन्हे चुप कर दिया जाता या—अगर वे घूसखोर न हुए तो—धीगा-धींगी से उनकी माग विफल कर दी जाती। नावो द्वारा जो माल जाया-आया करता उसके साथ सशस्त्र गोरे सैनिक भेजे जाते और कभी-कभी ये सैनिक 'चोरी और सीनाजोरी' वाली कहावत चरितार्थ कर बैठते। १७३१ मे दो विभिन्न अवसरो पर गोरो ने गोलिया चला दी। एक जगह तो दो सरकारी सिपाही मारे गये और दूसरी जगह, गोली का जवाब गोली से ही मिलने के कारण, एक गोरा सिपाही। इन घटनाओ के कारण शुजाउद्दौला का क्षुब्ध होना स्वाभाविक ही था। उसने कंपनी के वकील से सफाई तलब की और कहा कि अगरेजो की यही चाल-ढाल रही और हमारी प्रजा या हमारे कर्मचारियो के साथ वे इसी तरह पेश आते रहे तो समझ लो कि उनकी खैरियत नही। कासिमबाजार वालो ने नवाब का क्रोध शान्त करने के लिए तरह-तरह के उपायो का अवलम्बन किया, पर उन्हे सफलता न मिली। नवाब ने हुक्म दिया कि मुहम्मद शाह के शासन-काल के प्रारम्भ से आज तक, चुगी का हिसाब कर, सारी रकम कपनी से वसूल की जाय। अगरेजो के वकील ने दरबार मे जाकर कुछ निवेदन करना चाहा तो उसे वहा जाने की इजाजत ही नही मिली। हाजी अहमद से मिलकर उसने जानना चाहा कि नजराने से नवाब की नजर बाधी जा सकती थी या नही तो उसे यही उत्तर मिला कि जनाब, आप वह नजराना अपने ही पास रखिए, हम तो बादशाह का हुक्म तामील करने जा रहे है।

पहले तो अगरेजो को यह आशा थी कि शाहजादा सरफराज खां इस मौके पर उनकी मदद कर उन्हे आफत से बचा लेगा, लेकिन थोडे ही समय में उन्हे यह भान हो चला कि फतहचन्द की शरण गये विना उनका उवार होने वाला न था। २० अक्टूबर को कासिमबाजार वाले लिखते है कि—

"हमें यहा के कितने ही आदमियो से मालूम हुआ है कि फतहचन्द की वेरुखी ने ही हमारी समस्या जटिल कर दी है। हमारा विश्वास है कि जब तक वह हमारी सिफारिश नही करते, यह समस्या हल होने वाली नही। दो रोज हुए, हमने उनका दिल टटोला था। हमारी ओर से एक व्यक्ति ने जाकर पूछा कि, आप अगरेजो के पुराने दोस्त है, क्या वे आशा कर सकते है कि आप फिर एक बार उन्हे बचा देने की उदारता दिखायेंगे ? फतहचन्द ने इसका रूखा-सूखा जवाब यही दिया कि मै न तो अंगरेजो का दोस्त हू, न दुश्मन। अन्त में उन्होंने इतना कहा कि अगरेज अपने किसी विश्वसनीय प्रतिनिधि को भेजें तो मै उसे नवाब से और उसके अधिकारियो से मिला दूगा, पर अपनी ओर से मै उनके पक्ष मे कुछ भी न कहूगा। हमारा खयाल है कि कन्तू वाले मामले मे फतहचन्द की जो क्षति हुई थी उसकी वे हम लोगो से पूर्ति कराना चाहते है। वह अपनी जबान से तो ऐसा न कहेंगे, मगर उनके दिल की बात यही है, और जब तक हम क्षति-पूर्ति नही कर देते, उनका रुख बदलने वाला नही। यह जरूर है कि अगर हमने उनका नुकसान पूरा कर दिया तो वह फिर पहले की ही तरह हमारे मित्र और सहायक वन जायगे। इसमे कुछ खर्च तो पडेगा—और वह भी छोटी-मोटी रकम नही—पर जो आफत आ पडी है उससे बचने का इससे सस्ता और कोई उपाय नजर नही आता। नवाब का

क्रोध शान्त हो सकता है तो फतहचन्द की ही सिफारिश से। अगर वह हमारी मदद नही करते तो हम और दरबारियो को चाहे जितना दें, हमारी जिल्लत होती ही रहेगी, हम ठोकरे खाते ही रहेगे।"

कुछ समय तक कौंसिल इस भ्रम में रही कि उसने एक घोड़ा सरफराज खा को भेट कर उसको अपनी मुट्ठी मे कर लिया था और उसकी सिफारिश से ही वह ऐसी कठिनाइयो पर विजय प्राप्त कर लेने वाली थी। पर समस्या हल होते न देख वह धीरे-धीरे समझने लगी थी कि अब तक वह मन के लड्डू ही खाये बैठी थी। कासिमबाजार से आने वाले खत ने उसकी बची-खुची आशा या भ्रम को दूर कर दिया और उसके मिजाज को अर्श से फर्श पर ला दिया। २३ अक्टूबर को वह लिखती है कि, "फतहचन्द को यह आशा दिला दो कि कन्तू वाले मामले मे उन्हे जो नुकसान उठाना पडा, उसे हम पूरा कर देगे और इस प्रकार अपनी रक्षा करा लो। हां, जब तक हमारी स्वीकृति न मिल जाय, यह मत कहना कि कपनी उन्हे उस मद में करा देगी।" खत भेजते ही कासिमबाजार से खबर मिली कि नवाब एक लाख तो बादशाह के लिए और उसके अलावा "कुछ अपने लिए" माग रहा था। कौंसिल ने दो ही दिन बाद वहा वालो को लिखा कि फतहचन्द से दरियाफ्त करो कि मामला कितना देने से तै हो जायगा— "पर, ध्यान रहे कि बिना हमारी मजूरी के कोई बात पक्की न होने पावे।"

फतहचन्द का उत्तर आशाजनक तो था, पर उन्होने इस बात पर जोर दिया था कि मामला तै करने का कासिमबाजार वालो को अधिकार होना चाहिए। कौंसिल ने लिखा कि ,"नवाब को ४०,०००) और उसके दीवान (सरफराज खा) को ५,०००) देने की बात

करो। इतने पर सौदा तै न हो तो दस-पाच हजार और दे सकते हो, लेकिन इससे अधिक नही। दिल्ली से न कोई माग हुई है, न कोई हुक्मनामा आया है। सारी बातें नवाब की मनगढंत है। अगर बादशाह के लिए कुछ देना पडे भी तो इसी शर्त पर दे सकते हो कि हमे जितनी सनदें मिल चुकी है, सब की सब बहाल रहें।"

कासिमबाजार वाले जगत्सेठ से मिले और उन्हें यह वचन दिया कि अगर आपने हमारा पक्ष अपनाया तो हम भी आपको 'सन्तुष्ट' कर देंगे। उन्होने लेने-देने की कोई बात नही की, पर उनके मुनीम रूपचन्द ने कहा कि अगर उनसे सिफारिश करानी है तो उन्हे ५०,०००) देना कबूल करो। उधर नवाब की त्योरी मे रोज बल पड रहा था—कासिम-बाजार वाले कर्मचारी रोज कौंसिल को लिख रहे थे कि जितनी ही देर हो रही है, उतनी ही बात बिगड रही है—चाहे जितना खर्च पडे, नवाब के साथ शीघ्र से शीघ्र, समझौता कर लेने में ही हमारी भलाई है।

वे कासिमबाजार से महिमापुर (मुर्शिदाबाद) जाते-आते रहे, पर कोई बात तै करने का उन्हें अधिकार न था, इसलिए जगत्सेठ के सामने कोई निश्चयात्मक प्रस्ताव न रख सके। उन्होने एक दिन कहा भी कि "तुम लोगो ने इस मामले को मजाक समझ रखा है। जब नवाब फरमान छीन लेगा और व्यापार बद कर देगा तब होश में आओगे।" कर्मचारियो ने कौंसिल को लिखा कि, "अगर आपका निश्चय हो कि उलझन और न बढे तो हमे तै-तमाम करने की इजाजत दीजिए। सरफराज खा से तो हमे निराशा ही रही। वह बाप से इतना डरता है कि उसके आगे हमारी ओर से एक भी शब्द नही बोल सकता।"

कौंसिल ने कासिमबाजार वाले कर्मचारियो को इजाजत दे दी कि जो रकम देनी थी उसे घटा-बढा कर वे मामले का निबटारा करा

लें। जगन्सेठ से उन लोगो को मालूम हो चुका था कि सख्ती करने के लिए नवाव को दिल्ली-दरवार ने भी आदेश भेज दिया है और कौसिल का यह खयाल गलत है कि वादशाह की इस मामले में कोई दिलचस्पी नही है। कपनी की फैक्टरी पर पहरा वैठ जाने से, उन्हे यह भी विश्वास हो चला था कि और भी कडुए-कसैले दिन आने ही वाले हैं। इजाजत मिलते ही उन्होने लेन-देन की वातचीत शुरु कर दी।

जगत्सेठ ने वताया कि दिल्ली-दरवार की माग तो सात-आठ लाख रुपये की है। नवाव से जव कभी इस विषय मे कुछ कहा जाता तव वह यही जवाव देता कि दिल्ली की जो माग है, कपनी उसे पूरा करे। पर जगत्सेठ ने दो लाख पर ही मामला निवटा देने का आश्वासन दिया—एक लाख सम्राट् के लिए, और एक लाख नवाव के लिए। कासिमवाजार वालो ने कलकत्ते लिखा, "हमारी राय है कि इतना देकर नवाव को खुश कर देना चाहिए। इससे कम मे निवटारा हर्गिज नही हो सकता। दो लाख देकर भी जान वच जाय तो यह फतहचन्द की मेहरवानी समझनी चाहिए।"

नायव दीवान आलमचन्द* ने कपनी के व्यापार को नियन्त्रित करने के उद्देश से इधर यह प्रस्ताव किया था कि (१) एक सख्या निर्धारित कर दी जाय, जिससे अधिक जहाज चलाने का कपनी को अधिकार न हो, और (२) कपनी कुछ खास चीजो की तिजारत न करने के लिए वाध्य कर दी जाय। दीवान उससे एक कवूलियत लिखा लेना चाहता था। कपनी के कर्मचारियो को वात मालूम हुई तो वे किङ्कर्तव्य-विमूढ होकर फतहचन्द के पास पहुचे। फतहचन्द ने

*वास्तव में दीवान का काम यही करते थे, सरफराज खा वस नाम के लिए उस पद पर था।

सिफारिश की और उनकी वात मानकर नवाव तथा आलमचन्द ने कुछ शर्तों को हटा लेना मजूर कर लिया। फतहचन्द ने कवूलियत का मजमून कासिमवाजार भेज दिया और कहलाया कि अगरेजो को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। वे पहले तो उस पर दस्तखत करने से इन्कार करते रहे, पर फतहचन्द के समझाने-बुझाने पर राजी हो गये। उन्होने कहा कि, "जो दरवाजा वद-सा है, उसे नवाब खोलने जा रहा है। फिर उसे भी तो दिल्ली-दरबार को वताना होगा कि हमने अगरेजो को कुछ दिया है तो बदले मे उनसे कुछ लिया भी है।" कपनी को कवूलियत में इतना ही इकरार करना पडा था कि हम इस देश के भीतर नमक, सुपारी तथा कुछ अन्य पदार्थ एक स्थान में खरीद कर दूसरे स्थान मे न वेचेगे और कभी किसी वस्तु के व्यवसाय पर एकाधिकार जमाकर प्रजा को कष्ट न पहुचायेंगे।

फतहचन्द के कहने पर कंपनी के कर्मचारी दो लाख देना स्वीकार कर चुके थे। पर यह रकम वादशाह और नवाव के लिए थी। दीवान तथा दूसरे अधिकारियों को जो देना पडता, वह अलग था। पर फतहचन्द ने सव मिलाकर दो लाख से भी कम में मामला निवटा दिया। कपनी को कुल १,८०,०००) ही देना पडा। इसके अलावा फतहचन्द को ५०,०००) देने की वात तै हुई। कासिमवाजार वालों ने प्रस्ताव किया था कि कन्तू के जिम्मे उनकी जो रकम डूब गई थी, वह उनको दे दी जाय। कौंसिल को यह स्वीकार न हुआ। उसने उनको लिखा कि फतहचन्द को हानि की पूर्ति का नाम हर्गिज मत लेना—उन्हें जो कुछ देना, उनकी सहायता के लिए कृतज्ञता-ज्ञापन के चिह्न-स्वरूप देना। फतहचन्द ने वह ५०,०००) चाहे जो समझ कर स्वीकार किया हो, मोटी वात यह है कि कपनी ने उतना रुपया दिया

और उन्होंने लिया। देने-लेने का नतीजा यह हुआ कि जहां कंपनी से मन फट चुका था, वहा फिर जुट चला—कलकत्ता और कासिमबाजार फिर महिमापुर के सद्भाव से पूर्ववत् लाभ उठाने लगे।

३० अप्रैल, १७३० को कंपनी के वकील ने जगत्सेठ से मिलकर कुछ निवेदन किया और वह उसकी फरियाद नवाव के कानो तक पहुंचाने दरबार मे गये। जुलाई में कासिमबाजार के प्रधान ने किसी कर्मचारी के हाथ कपनी की कोई अर्जदाश्त महिमापुर भेजी। यह थी तो नवाव के लिए, पर उस कर्मचारी को आदेश मिला था कि 'जगत्सेठ से अनुरोध करना कि वह इसे नवाव तक पहुचा देने की कृपा करें। अगर उन्हे यह स्वीकार न हो तो, उनके कहे अनुसार इसे नवाब तक स्वय पहुचा आना।' जनवरी, १७३१ में हम कपनी के वकील को फिर हिरासत में पाते है। कपनी जगत्सेठ की दुहाई देती है और जगत्सेठ उसका छुटकारा करा देते है। नवम्बर में कपनी से कलकत्ते के माल या खिराज की मद में फिर एक वडी रकम मागी जाती है, फिर हुज्जत शुरू होती है, फिर फतहचन्द बीच मे पडते है और कपनी के ४०,०००) देने पर झगडा निपट जाता है, उसे नया परवाना मिल जाता है। इसके बाद एक दिन जगत्सेठ कपनी की फैक्टरी मे पधारते है, वहा उनका स्वागत होता है और उन्हे अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया जाता है।

लेन-देन का भी वही पुराना सिलसिला शुरू हो चुका है। १७३२ में जब कपनी को १५०,०००) पटने भेजने की जरूरत पडती है तब फतहचन्द से उनकी वहा की कोठी के नाम एक खत लिखाकर उससे उधार लिया जाता है और कुछ समय बाद कासिमबाजार वालो को यह हिदायत भेजी जाती है कि जब कभी कर्ज लेना हो तब फतहचन्द से ही लेना, और किसी से नही। १७३६ मे यह हिदायत दोहराई

जाती है। ३ मार्च को कासिमबाजार वाले कौंसिल को सूचित करते है कि हमने इधर दो लाख रुपये फतहचन्द से लिये है, और आगे भी जब कभी कर्ज लेने की जरूरत पडेगी, तब आपके आज्ञानुसार उन्हीसे लेगे। उसी साल जून मे फतहचन्द-द्वारा की हुई २४०,०००) की हुडी की नकल कलकत्ते पहुचती है जिसे कासिमबाजार की फैक्टरी सकार चुकी है। २ मार्च, १७३८ को कासिमबाजार वाले फतहचन्द से १३०,०००) कर्ज लेते है। लेन-देन के ऐसे ही और भी बहुत-से अवसर उपस्थित हुए होगे जिनका आज कही कोई उल्लेख नही मिलता।

१६ जून, १७३८ के कपनी के लेखे मे दर्ज है—"फतहचन्द का गुमाश्ता आया था। उसने कहा कि हमारे मालिक को ६६ थान लाल और ६६ थान सब्ज बनात चाहिए। पर इतना माल इस समय गोदाम में मौजूद नही। पटने की फैक्टरी को लिखा जाय कि वह फतहचन्द के गुमाश्ते को ७ गाठ सब्ज बनात दे दे और ५०), थान की दर से उसकी कीमत हमारे नाम टांक ले। हम फतहचन्द से भुगतान ले लेगे।" पटने वालो ने लिखा कि फतहचन्द के गुमाश्ते ने बनात ले जाने मे देर की, इसलिए माल दूसरे के हाथ बिक गया।" २७ फरवरी, १७३९ के लेखे में लिखा है—"हमे इस बात का खेद है कि फतहचन्द को बनात न मिली और उन्हें निराश होना पडा। पर दोष उन्ही के गुमाश्ते का है। हम आशा करते है कि वर्तमान परिस्थिति में वह इसके लिए हम पर नाराज न होगे।"

जिस 'परिस्थिति' की ओर यह इशारा था वह नादिरशाह के आक्रमण[3], और उसके ईरान लौट जाने से पहले ही मुर्शिदाबाद में शुजाउद्दौला की मृत्यु के कारण उत्पन्न हो गई थी।

१३ मार्च, १७३९ को कासिमबाजार वालो ने कलकत्ते खबर भेजी कि शुजाउद्दौला परलोक सिधार चुका है। उधर ९ मार्च को नादिरशाह दिल्ली मे दाखिल हो चुका था।

भारतवर्ष के इतिहास मे नादिरशाह की चढाई उन प्रचड आधियो में से एक थी जो उत्तर-पश्चिम से यहा आई है और यहाँ की सलतनत को झकझोर कर हमे अपरिमित हानि पहुचा गई है। ऐसी आधी का झटका हमें बहुत दिनो से नही खाना पडा है, फिर भी भविष्य मे सतर्क रहना ही बुद्धिमानी का काम होगा।

नादिरशाह ने लूटमार के तौर पर जो कुछ किया उससे ढोल की पोल खुल गई और यहा की हुकूमत का खोखलापन सारे ससार को प्रत्यक्ष हो चला। अकबर और औरगजेब के वशज, बल-विक्रम मे, उनके पासग भी नही रह गये थे और मुगल-साम्राज्य की इतनी अधोगति हो चुकी थी कि अब उसका संभलना असम्भवप्राय था।

जगत्सेठ-परिवार के लिए यह समय घोर सकट का रहा होगा। मुर्शिदाबाद मे शुजाउद्दौला की मृत्यु और दिल्ली मे नादिरशाही का दौरदौरा—इन दोनो दुर्घटनाओ के कारण फतहचन्द को गहरी हानि उठानी पडी। दिल्ली में उनके दो सगे-संबन्धी मार डाले गये। बचने वालो मे दो—राय मुहकम सिह और राजा ४डालचद—वहां से भाग कर मुर्शिदाबाद जा बसे। उत्तर भारत मे कुछ समय के लिए वाणिज्य-व्यापार बद-सा हो गया। लूटपाट से जो नुकसान हुआ उसके अलावा दिल्ली में जगत्सेठ की कोठी को चदा भी भरना पडा। उधर बगाल से नये नवाब—सरफराज खा—को नादिरशाह की मांग पूरी करने के लिए जो कुछ भेजना पडा या फतहचन्द को जो कुछ जुटाना पडा वह रकम अलग थी।

(३)

कंपनी से सरफराज खा के शासन-काल में दो बार नजराना तलब किया गया और दोनो वार कपनी के कर्मचारियो को सहायता के लिए फतहचन्द के पास जाना पडा। पहली बार नजराना तलब किया गया सरफराज खा के गद्दी पर बैठने के कुछ ही दिन बाद। कपनी के प्रार्थना करने पर फतहचन्द ने हाजी अहमद से बाते की और दस हजार पर ही सौदा पटा दिया। कपनी उतना देने मे भी आनाकानी करने लगी, पर फतहचन्द ने सलाह दी कि इसे फौरन दाखिल कर दो, वर्ना हाजी अहमद चिढ जाने पर कुछ और लेकर रहेगा। हाजी अहमद खा की दूसरी माग अक्टूबर १७३९ में हुई। उस समय तक सरफराज खा को तीनो प्रान्तो की निजामत का फरमान मिल चुका था और वकौल हाजी अहमद, ऐसे अवसर पर भी नवाव नजराना पाने का हकदार था। कपनी की ओर से कहा गया कि हम लोगो ने जो रकम शुजाउद्दौला की नजर की थी वही नये नवाव की भी नजर करेंगे, पर हाजी अहमद ने कहा कि इधर समय असाधारण वीता है और अमन-चैन कायम रखने के लिए नवाव को काफी खर्च करना पडा है, कपनी को कम से कम दस हजार तो देना ही चाहिए। २ मार्च, १७४० को कासिमवाजार फैक्टरी के प्रधान मि० आयर, "फतहचन्द और आलमचन्द" के परामर्श के अनुसार नजर पेश करने दरबार में गये और दस हजार दे आये।

लेन-देन भी पहले की ही तरह जारी रहा। ७ अप्रैल के लेखे में लिखा है—"जगत्सेठ फतहचन्द आनन्दचन्द से हमने १) सैकडा माहवार सूद पर १२१,०००) रुपये कर्ज लिये और ५ तारीख को

उन्हे इसकी दर्शनी हुडी कर दी । उनसे दो लाख लेने की बात थी, उतना पूरा हो गया ।" इससे पहले पटना-फैक्टरी वाले फतहचन्द के गुमाश्ते से २५०,०००) कर्ज ले चुके थे और कलकत्ता कौंसिल के नाम चालीस दिन की मुद्दती हुडी कर चुके थे। इस हुंडी का भुगतान ३० जुलाई को हुआ, ऐसा उल्लेख मिलता है ।

सरफराज खा न तो अपने पिता की तरह लोकप्रिय हो सका न उसकी-सी सफलता ही प्राप्त कर सका । तकदीर ने उसे जहा ले जाकर वैठा दिया था वहा से उसके दुश्मन की तदवीर ने प्राय. एक ही साल वाद हटा दिया और हटने के मानी यह हुए कि उसे राजसिंहासन के साथ अपने प्राण भी गवाने पडे ।

शुजाउद्दौला खा मरते समय पुत्र को यह उपदेश दे गया था कि हाजी अहमद, आलमचन्द और फतहचन्द को मत्री वनाये रखना । सरफराज खा ने पिता के इस उपदेश का कहने को ही पालन किया । नाम के लिए तो यह मन्त्रिसभा कायम रही, पर अव काम दूसरे ही आदमियो की सलाह से होने लगा । इससे दिल फिर गये, मनमुटाव वढने लगा और दरवार मे दो दल पैदा हो गये ।

वंगाल का तत्कालीन इतिहास जिन फारसी ग्रथो से जाना जा सकता है उनमे सव से ऊचा स्थान है "सैरुल मुताखरीन का ।" प्रकाशित ग्रंथो में उसके वाद नाम लिया जा सकता है तो "रियाजुस्सलातीन" का । एक का लेखक था सैयद गुलाम हुसैन खा और दूसरे का गुलाम हुसैन सलीम । इनमे दूसरा सरफराज खा का पक्षपाती था और पहला उसके शत्रु अलीवर्दी खा का—यद्यपि सत्य के अनुरोध से यह कहना पडता है कि सैयद गुलाम हुसैन खा ऊचे

दर्जे का इतिहासकार और लेखक था और उसके दृष्टिकोण मे गुलाम हुसैन सलीम की-सी सकीर्णता न थी। अलीवर्दी खा का पक्षपाती होते हुए भी उसने सरफराज खा के दोष ही नही दरसाये है, उसके गुणो पर भी प्रकाश डाला है।

"मुताखरीन" का कहना है कि सरफराज खा आदमी तो भला था, पर उसमे शासन-सम्बन्धी योग्यता का अभाव था। नमाज पढना, रोजा रखना—ऐसे काम तो वह बडी लगन से किया करता, पर राज-काज से सम्बन्ध रखने वाले मामलो मे वह हाजी अहमद, फतहचन्द या आलमचन्द की सलाह को कोई वजन न देता—बल्कि हाजी लुत्फुल्ला, मर्दान अली खा, मीर मुर्तजा जैसे लोगो के कहे अनुसार चलता जो उसके दिल मे घर कर चुके थे और जो इन तीनो के, खास कर हाजी अहमद के, विरोधी या शत्रु थे। हाजी अहमद की निन्दा करना, उसकी फबतिया उडाना—यह इनका नित्य नियम था। हाजी अहमद इनकी करतूतो से अपने भाई अलीवर्दी खा को आगाह करता रहता और उसे मुर्शिदाबाद पर चढाई करने के लिए उभाड़ता भी रहता था।

"रियाज" मे लिखा है कि शुजाउद्दौला के शासन-काल में अलीवर्दी खा ने मुहम्मद शाह के वजीर कमरुद्दीन खा से लिखा-पढी कर, अपने लिए 'महावतजंग बहादुर' की उपाधि प्राप्त कर ली। शुजाउद्दौला के तो नही, पर सरफराज खा के मन मे खटका हुआ और अलीवर्दी खा के विषय में दोनो के दो मत हो चले। बात यहां तक बढी कि बाप और बेटे मे अनबन भी हो गई। अलीवर्दी खा महत्त्वाकांक्षी था। अपने भाई हाजी अहमद की सहायता से, उसने कूटनीति से काम लेना आरम्भ कर दिया। सरफराज खा और उसके

सौतेले भाई मुहम्मद तकी खा के बीच भेद-भाव इतना बढ गया कि एक दूसरे का जानी दुश्मन हो गया। कुछ समय बाद मुहम्मद तकी खा की मृत्यु हो गई और उसकी जगह शुजाउद्दौला ने अपने दामाद मुर्शिदकुली खा को उडीसा के नायब-नाजिम का पद दिलाया। मुर्शिदाबाद मे हाजी अहमद, फतहचन्द और आलमचन्द इन तीनो का एक गुट बन गया था और जब तक शुजाउद्दौला जीवित रहा, राज-काज का वास्तविक सचालक यही त्रिगुट बना रहा।

"रियाज" मे यह भी लिखा है कि सरफराज खा के नाजिम होने पर यह त्रिगुट राजकीय विषयो में पहले की अपेक्षा अधिक हस्तक्षेप करने लगा। नवाब की इच्छा थी और बेगमो की भी इच्छा थी कुछ पुराने सरदारो–मनसबदारो की तरक्की करने की, पर त्रिगुट के विरोध के कारण यह न हो सका। फिर तो इसका साहस यहा तक बढा कि यह रात-दिन यही बदिश बाधने लगा कि किसी प्रकार अलीवर्दी खा को मुर्शिदाबाद की मसनद मिल जाय और वह तीनो प्रान्तो का नाजिम बन जाय। "रियाज" के लेखक का यह भी कहना है कि अपने षड्यत्र में इस त्रिगुट को पूरी सफलता प्राप्त हुई। नादिरशाह के नाम से मस्जिदो मे खुतबा पढा जाना—उसके नाम पर सिक्को की ढलाई होना—ऐसे काम इसी की सलाह से हुए थे। बगाल से काफी बडी रकम उसके कूच करने से पहले दिल्ली भेजी जा चुकी थी—जिसमे राजस्व के अलावा शुजाउद्दौला खा का निजी धन भी शामिल था। पर नादिरशाह के विदा होते ही दिल्ली में सरफराज खा पर दोषारोपण होने लगा कि उन कामो के लिए वही जिम्मेदार था, और कमरुद्दीन खां तथा निजामुल्मुल्क के कान भरे जाने लगे। नतीजा यह हुआ कि दिल्ली-

दरवार से अलीवर्दी खा को निजामत मिल गई और सरफराज खां के काले कारनामो के लिए उसे प्राण-दड देने का हुक्मनामा भी अलीवर्दी खा को भेज दिया गया। जव त्रिगुट ने देखा कि यहा तक काम वन चुका तव उसने सरफराज खां को यह बता कर कि आमदनी को देखते हुए खर्च वहुत अधिक होता जा रहा है, उससे सैनिको की सख्या घटाने की स्वीकृति ले ली। उसकी सेना के प्राय आधे सैनिक वरखास्त कर दिये गये। पर एक ओर नवाव की सेना से आदमी हटाये जाते, दूसरी ओर वे ही अलीवर्दी खा की फौज के लिए भरती कर लिये जाते। हाजी अहमद ने अपने भाई की धन से भी वडी सहायता की। अलीवर्दी खां चुपचाप लडाई की तैयारी करता गया। जब सरफराज खां को मालूम हुआ कि षड्यत्रकारी मुर्शिदावाद से दिल्ली तक सुरग खोद चुके है तव उसने अलीवर्दी खा की जगह अपने दामाद सैयद मुहम्मद हसन को विहार का नायव नाजिम बनाना तथा कुछ और हेरफेर करना चाहा। पर त्रिगुट के समझाने-वुझाने पर इस कार्य को भी उसने स्थगित कर दिया। मत्रियो ने कहा कि वार्षिक आय-व्यय का हिसाव तीन महीने वाद होनेवाला है—वेहतर होगा कि जमाखर्च हो जाने से पहले कोई अदल-वदल न किया जाय। सरफराज खा भोला-भाला था। उसने फिर उनकी वात मान ली और शत्रु को अपना सगठन और भी ठोस कर लेने का मौका दे दिया।

मुर्शिदावाद में हाजी अहमद के विरुद्ध रोज ऐसी चाल चली जाती—दोनो भाइयो के स्वार्थ पर आघात करने की ऐसी चेष्टाएँ होती—कि अलीवर्दी खा को लडाई के लिए कटिवद्ध हो जाना पडा। व्यवहार-कुशल होने के कारण उसने दिल्ली-दरवार में प्रभावशाली व्यक्तियो से सम्वन्ध स्थापित कर लिया था। अव उसकी ओर से यह

प्रयत्न होने लगा कि तीनो प्रान्तो का नाजिम वह वना दिया जाय और सरफराज खा को उस पद से हटा दिया जाय। उसने राजस्व के अलावा एक करोड भेट करना स्वीकार किया। यह भी करार किया कि सरफराज खा की जो निजी सम्पत्ति होगी उसे जब्त कर दिल्ली पहुचा दूगा। इस प्रयत्न मे अलीवर्दी खा पूर्णत सफल हुआ। शुजाउद्दौला के मरने के प्राय एक ही वरस वाद दिल्ली से अलीवर्दी खा को सनद मिल गई और यह आदेश भी कि अगर सरफराज खां विरोध करे तो उसे जीवित मत रहने देना।—("मुताखरीन")।

अलीवर्दी खां ने अपने दामाद जैनुद्दीन अहमद खा को अपना नायव वनाकर पटने मे छोड़ा और सुसज्जित सेना के साथ मुर्शिदावाद की ओर रवाना हुआ। इससे कुछ दिन पहले वह अपने ज्योतिषी से मुहूर्त्त या साइत निकलवा चुका था और पत्र-द्वारा अपने "मित्र जगत्-सेठ फतहचन्द को" प्रस्थान के दिन की सूचना भेज चुका था। जव उसके सभी हिन्दू और मुसलमान सैनिक—अपनी अपनी रीति से—शपथ ग्रहण कर, उसका अखीर तक साथ देने की प्रतिज्ञा कर चुके, तव उसने अपनी इस यात्रा का असली अभिप्राय जताया और कूच का डका वजवाया। जव मुर्शिदावाद थोडी दूर रह गया, तव उसका भेजा हुआ पत्र जगत्सेठ के हाथ मे पडा। पत्र-वाहक को वह पत्र उसी दिन उन्हें देने का आदेश था। जगत्सेठ ने जो उसे पढा और तारीखें मिलाई, तो समझ गये कि अलीवर्दी खा तिलियागढी के इस ओर पहुच चुका है और मुर्शिदावाद पहुचने मे उसे चार ही पाच रोज और लगने वाले है। फौरन वह घोडे पर सवार हुए, सरफराज खा के पास पहुंचे और अपने रंग-ढंग से घवराहट दिखाते हुए उस पत्र को सरफराज खा के हाथ में देकर कहा कि मुझे सन्देह है कि अलीवर्दी खा राज-

महल पहुंच चुका है। साथ ही उन्होने एक दूसरा पत्र निकाल कर सरफराज खा को दिया। अलीवर्दी खा ने यह पत्र उसी के नाम लिखा था। इसका साराश था—"मेरे भाई हाजी अहमद को अपमानित करने और हमारे परिवार-मात्र की वेइज्जती करने की इधर इतनी चेष्टाएँ हुई है कि मुझे विवश होकर यहा तक आना पडा है। मै आपका वही वफादार नौकर हू और मेरी नेकनीयती के वारे मे आपको कोई शुवहा नही होना चाहिए। मेरी प्रार्थना यही है कि आप हाजी अहमद को सकुटुम्व मेरे पास आने की इजाजत दे दे।" वहुत तर्क-वितर्क के वाद यह तै हुआ कि हाजी अहमद को जाने दिया जाय। अलीवर्दी खा की नेकनीयती का तो किसी को विश्वास न हो सका, पर लोगो ने यही कहा कि हाजी का रहना-न रहना वरावर है। लड़ने की तैयारी कर आगे वढना निश्चित हुआ। सरफराज खा आगे वढा भी, पर तैयारी जैसी होनी चाहिए थी, न हो सकी। दोनो दलो के वीच कुछ समय तक दूत जाते-आते रहे और समझौते की वात चलती रही। पर कोई नतीजा न निकला और लड़ाई न रुक सकी। इस लडाई में सरफराज खा मारा गया। रायराया आलमचन्द भी वुरी तरह घायल हुए और वाद को उन्होने हीरे की कनी खाकर आत्महत्या कर ली। दो दिन वाद अलीवर्दी खा मुर्शिदावाद शहर में दाखिल हुआ। पहला काम उसने यह किया कि सरफराज की मा के पास पहुचा और उससे यह कहकर माफी मागी कि जो होनी थी हो चुकी —"इतिहास में सदा के लिए मेरी कृतघ्नता की कहानी लिखी जा चुकी।" उसे आश्वासन देकर और उससे विदा ग्रहण कर वह 'चहलसतुन' में गया और वही तख्तनशीन हुआ।—("मुताखरीन")

सरफराज खा और अलीवर्दी खां के वीच होने वाली लड़ाई का जो

वर्णन "रियाजुस्सलातीन" में मिलता है, वह इस वर्णन से भिन्न है। उसमें यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि बहुत से पदाधिकारी हाजी अहमद से मिले हुए थे और उनके विश्वासघात के कारण ही सरफराज खां की वैसी हार हुई। जब अलीवर्दी खा का हरावल राजमहल पहुंच चुका, तब सरफराज खा को उसके मुर्शिदाबाद की ओर चल पडने की खबर मिली। फिर भी रायराया आलमचन्द उसे यही समझाने की कोशिश करते रहे कि "अलीवर्दी खा का उद्‌देश बुरा नही, वह केवल आप से मिलने के लिए आ रहा है।" सरफराज खा को उसकी बात पर विश्वास न हुआ। जो सेना बच रही थी और जो सरदार, मनसबदार तथा जमीदार विश्वास करने योग्य थे, उन्हे साथ लेकर वह दुश्मन का मुकाबला करने के लिए मुर्शिदाबाद से चला। चलने से पहले ही उसे यह मालूम हो चुका था कि तोपखाने में बारूद की जगह कूडा-करकट और गोलो की जगह ईंटे भरी हुई थी। हाजी अहमद का एक रिश्तेदार उस विभाग के अध्यक्ष के पद से हटाया गया और उस पद पर एक पुर्तगीज की नियुक्ति हुई। तीन-चार दिन बाद शहर से थोडी ही दूर पर पहली लडाई हुई। इसमें अलीवर्दी खा की फौज को हार खानी पडी। अगर रायराया आलमचन्द ने फिर विश्वासघात न किया होता तो शत्रु के दल मे भगदड मच जाती और हार-जीत का उसी दिन निर्णय हो जाता। पर उसने सरफराज खा से जाकर कहा कि दोपहर की गरमी किसी से बरदाश्त नही हो रही है, अगर लडाई जारी रखी गई तो अपने बहुत से आदमी और घोडे, गरमी और प्यास से ही छटपटा कर, प्राण त्याग देगे, अच्छा हो कि आज लडाई मुलतवी की जाय और कल मोरचा लेकर दुश्मन का खातमा कर दिया जाय।" सरफराज खा के ज्योतिषियो या सरदारो की राय ऐसी न थी—उनका कहना

था कि लडाई स्थगित करने में लाभ नही, हानि ही हानि है—फिर भी नवाव ने उनकी एक न सुनी और जो प्रस्ताव आलमचन्द ने किया था उसी को स्वीकार कर लिया। कुछ देर वाद उसे अलीवर्दी खा का एक खत मिला, जिसमें उसने लिखा था कि मेरी वफादारी मे जरा भी फर्क नही पडा है—मै आपकी सेवा मे उपस्थित होकर केवल अपने को निर्दोष प्रमाणित करने यहा आया हू। सरफराज खा को ससार का अनुभव नही के वरावर था, उसने अलीवर्दी खा की वात अक्षरश. सत्य मान ली, और वेवकूफी से सारे फसाद की जड हाजी अहमद को अपने भाई के पास जाने दिया। उसके साथ शुजा कुली खा और ख्वाजा वसन्त पानी की थाह ले आने के लिए भेजे गये। अलीवर्दी खा ने इनके सामने कुरान की कसम खाकर कहा कि कल दिन चढते ही यह सेवक अपने स्वामी के सामने उपस्थित होकर क्षमा-याचना करेगा। वास्तव मे कसम खाने के लिए जो चीज उसने हाथ में ली थी वह कुरान की प्रति न हो कर वेठन से लपेटी हुई एक ईंट थी। फिर उस से ख्वाजा वसन्त को दो सौ अशर्फिया भी मिली। उन दोनो वेवकूफो ने जो कुछ देखा-सुना, उससे उन्हें विश्वास हो गया कि अलीवर्दी खां अव सचमुच पश्चात्ताप कर रहा है और वह नवाव के पाव पडने ही वाला है। पडाव पर लौटकर उन्होने जो कहानी सुनाई उससे सव लोग निश्चिन्त हो गये और लडाई की तैयारी के वदले अलीवर्दी खां की जियाफत की तैयारी होने लगी। उधर दुश्मन रात भर चौकन्ने रहे और सरफराज खा की फौज के जो लोग साजिश मे शामिल थे, उनसे मिलते-जुलते और सलाह-मशविरा करते रहे। सरफराज खा के दो सेनापतियो ने चेतावनी दी भी तो उसने उस पर कुछ भी ध्यान नही दिया, वल्कि उन्ही लोगो को डाटने-डपटने लगा। पौ फटने से पहले ही

अलीवर्दी खा ने गोलावारी शुरु करा दी। फिर भी कुछ देर तक सरफराज खा यही समझे बैठा रहा कि तोपो की वाढ से शायद उसकी सलामी उतारी जा रही है और अलीवर्दी खा उससे मिलने आ रहा है।

इसके वाद "रियाज" मे उस दिन होने वाली लडाई का विस्तृत वर्णन है, जिसमें उसके दल के कुछ लोग तो मैदान छोड कर भाग चले, कुछ तैयार न रहने के कारण गाजर-मूली की तरह काट डाले गये, और थोडे से लोग उसकी ओर से वीरतापूर्वक लडे भी तो उनसे कुछ वन न पडा। खुद सरफराज खा "अपने ही दल के किसी विश्वासघातक की वंदूक से चली हुई गोली" का शिकार हुआ। रायरायां आलमचन्द को दगावाजी का यह वदला मिला कि सिर में एक तीर लगने से वह वुरी तरह घायल हुआ और फिर अपने घर पहुच कर, पश्चात्ताप के साथ उसने हीरे की कनी चाट ली और यो आत्महत्या कर ली। अलीवर्दी खा के दल मे विजय-दुदुभी वजने लगी, उसे वधाइया मिलने लगी। हाजी अहमद ने शहर मे जाकर लोगो को अपने पक्ष की जीत की खवर सुनाई और शान्ति-रक्षा का सवको आश्वासन दिया। अलीवर्दी खां वहा चार रोज वाद पहुचा और मसनद पर जा वैठा। सरफराज खा जो कुछ धन छोड गया था, वह सव आसानी से उसके हाथ लग गया। अलीवर्दी खा ने पत्नी-व्रत धारण कर रखा था, इससे सरफराज खां के हरम की ओर उसका ध्यान जाने वाला न था, पर वहा जो डेढ हजार उसकी वीविया और दासिया थी, उन्हे हाजी अहमद और उसके वेटे तथा दूसरे सम्वन्धी अपने अपने घर ले गये।

अलीवर्दी खां,और सरफराज खा के वीच यह लडाई, भागीरथी के तट पर गिरिया नामक स्थान में हुई थी—नादिरशाह के ईरान

लौट जाने के ग्यारह और शुजाउद्दौला के प्राण छूटने के प्राय. चौदह महीने वाद।

इस क्रान्ति को सफल वनाने में जगत्सेठ का वहुत वडा भाग था, यह स्पष्ट है। "मुताखरीन" में इसका जो वर्णन है उसके अनुसार सरफराज खा ने अपने व्यवहार से उन्हें इतना असन्तुष्ट और रुष्ट कर दिया था कि उन्हे विवश होकर हाजी अहमद से मिल जाना पडा। "रियाज" में उन्हें त्रिगुट में शामिल वता कर, यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि वह भी प्रभुत्व के भूखे थे और सरफराज खां के समय में पहले से भी अधिक मनमानी करने लगे थे। "रियाज" में जो कुछ लिखा है उसका ध्वन्यात्मक अर्थ यह है कि अपनी दाल गलते न देख कर ही उन्होने अलीवर्दी खा का पक्ष अपना लिया था और सरफराज खा के मत्री होते हुए भी काम उसके हित के विरुद्ध करने लगे थे।

पर जान पडता है कि वहुत पहले ही फतहचन्द इस नतीजे पर पहुच चुके थे कि योग्यता के अभाव के कारण, सरफराज खा मुर्शिदकुली खा का उत्तराधिकारी होने योग्य न था। वास्तव मे नाजिम के पद के सम्वन्ध में उत्तराधिकार या वरासत का कोई सवाल उठ ही नहीं सकता था। सम्राट् जिसको चाहता उस पद पर रख सकता या उससे हटा सकता था। जहा तक जगत्सेठ की पृष्ठपोपकता का सम्वन्ध था, यह सरफराज खा को उस समय भी प्राप्त न हो सकी थी, जव मुर्शिदकुली खा ने अपने दामाद के वजाय अपने नाती को सम्राट् से फरमान या सनद दिला देने की चेष्टा की थी। शुजाउद्दौला के मरने पर, सरफराज खां को दिल्ली से स्वीकृति मिली भी तो देर से, और फिर कुछ महीनो के भीतर ही दिल्ली ने अपना वह निर्णय वदल कर अलीवर्दी खां को नाजिम नियुक्त कर दिया। अगर फतहचन्द ने अलीवर्दी खां की इस

सिलसिले मे सहायता की तो इसी कारण कि बगाल, बिहार, उडीसा जैसे प्रान्तो की निजामत की जिम्मेवारी बहुत भारी थी और यह जिम्मेवारी उठाने की दृष्टि से, अलीवर्दी खा से योग्य व्यक्ति मिलना कठिन था।

पर इस सारी घटना के बरसो बाद, ईस्ट इडिया कपनी के एक अगरेज कर्मचारी ने सरफराज खा और फतहचन्द के बीच अनबन हो जाने का वास्तविक कारण यह बताया कि नवाब ने जगत्सेठ की पौत्र-वधू की मुहदिखाई पर तुल कर उसे अपने महल में बुलवाना चाहा और जब जगत्सेठ किसी तरह उसके प्रस्ताव से सहमत न हुए तब उसने मनमानी की और महल मे उस बालिका को एक रात रख कर दूसरे दिन अपने घर जाने दिया। पर यह सारी कहानी या तो चडूखाने की गप थी या उसकी अपनी मनगढत थी। चूकि उसका हवाला देकर और लेखक भी उसकी बात दोहरा चुके है, सत्यासत्य के निर्णय के लिए एक दूसरे अगरेज लेखक का मत परिशिष्ट के रूप में उद्धृत कर दिया गया है। उसमे ईस्ट इडिया कपनी और जगत्सेठ-परिवार के सम्बन्ध पर विशेष रूप से प्रकाश डालने वाले मि० लिट्ल ने यह भली भाति दिखा दिया है कि कपनी का वह कर्मचारी कितना सच्चा या विश्वसनीय था और उसकी इस कहानी मे क्या तथ्य था। एक किंवदन्ती यह है कि सरफराज खा को बताया गया था कि फतहचन्द मुर्शिदकुली खा से कोई बडी रकम उधार ले चुके थे या उनके जिम्मे उसके कई करोड रुपये बाकी रह गये थे, पर जब उसने उनसे अदायगी के लिए तकाजा किया, तब फतहचन्द ने कहा कि न तो मैने कभी ऐसा कर्ज लिया, न मेरे जिम्मे ऐसी कोई रकम बाकी है। पर यह बात भी निराधार ही जान पडती है। किसी प्रामाणिक इतिहास-

ग्रथ में इसका उल्लेख नही मिलता। अगर इसमे कुछ भी सचाई होती तो कम से कम "रियाजुस्सलातीन" का लेखक इसका उल्लेख किये विना न रहता।

(४)

अलीवर्दी खा राज-सिहासन पर वैठ जाने के वाद भी कुछ समय तक प्रजा के हृदय-सिहासन पर न वैठ सका। प्रजा की दृष्टि में सरफराज खा की हत्या कृतघ्नता की चरम सीमा थी, कारण कि सरफराज खा उसका स्वामी ही नही, उसकी वाह गहने और उसके परिवार-मात्र को ऊपर उठानेवाले शुजाउददौला खा का पुत्र भी था। पीठ पीछे होने वाली आलोचना में तमाम अलीवर्दी खा और हाजी अहमद के नाम धरे जाते और उनके प्रति घृणा तथा निन्दा से भरे हुए भाव प्रकट किये जाते। पर अलीवर्दी खा ने अपने गुणो से ऐसी परिस्थिति पर भी विजय प्राप्त कर ली और अपने नाम पर लगे हुए धब्बे को मिटा-सा दिया। उसमे साहस था, श्रमशीलता थी और साथ ही ऊचे दर्जे की राजनीतिज्ञता थी। उसका ध्यान सदैव इस ओर रहता था कि तीनो प्रान्तो मे अमन-चैन कायम रखने के लिए कुछ भी उठा न रखा जाय। वह सच्चरित्र भी था। गिरिया के मैदान मे जो सफलता अधूरी रह गई थी उसे पूरा करने का विशेष अवसर उसे तव मिला, जव तीनो प्रान्तो पर मराठो के आक्रमण होने लगे और वह जी-जान से अपनी प्रजा की रक्षा करने लगा।

नाजिम हो जाने पर अलीवर्दी खा ने अपने वन्धु-वान्धवो को उदारतापूर्वक पुरस्कृत किया। हम देख चुके है कि उसके तीन भतीजे

थे जिनके विवाह उसकी लडकियो के साथ हुए थे। इनमें नवाजिश मुहम्मद खा को बगाल के दीवान का पद मिला। साथ ही वह ढाका, चटगांव, त्रिपुरा, सिलहट का नायब नाजिम भी नियुक्त हुआ। जैनुद्दीन अहमद खा बिहार का नायब नाजिम बना दिया गया। इसके बेटे को अलीवर्दी खा ने गोद ले रखा था और वही पीछे सिराजुद्दौला के नाम से मशहूर हुआ। उडीसा अभी अलीवर्दी खा के कब्जे में न था, पर सईद अहमद खा को उसने वचन दिया कि उस पर अपना आधिपत्य होते ही तुम वहा के नायब नाजिम बना दिये जाओगे। हाजी अहमद का दामाद अताउल्ला खा भागलपुर का फौजदार नियुक्त हुआ। इसी प्रकार और सम्बन्धी तथा सहायक भी पुरस्कृत किये गये। प्रत्येक की पदोन्नति हुई, प्रत्येक का मनसब बढा, प्रत्येक को नई खिलअत या खिताब मिला। हिन्दुओ मे चैनराय और राजा जानकीराम के नाम भी इसी सिलसिले मे लेने लायक है। चैनराय रायराया आलमचन्द का पेशकार था। वह अब स्वयं रायरायां की उपाधि पाकर अलीवर्दी खा का दीवान हुआ। राजा जानकीराम पहले इसी पद पर रह चुका था। इसकी भी पदोन्नति हुई और यह सेना-विभाग मे दीवान बना दिया गया। अलीवर्दी खां के शासनकाल में दो खास बातें ये हुईं कि तीनो प्रान्तो में शीया-सम्प्रदाय के मुसलमानो का महत्त्व बढा और पटना—मुर्शिदाबाद जैसे नगर शीया-सस्कृति के प्रधान केन्द्र बन गये। उधर सरकारी विभागो मे हिंदू अधिकारियो की भी सख्या-वृद्धि हो चली।

अलीवर्दी खां ने मुर्शिदाबाद पर चढाई करने से पहले बादशाह को जो एक करोड रुपये देने का वादा किया था, उसे तो उसने मसनद

पर बैठते ही भेज दिया, पर सरफराज खा की सम्पत्ति और राजस्व की मद में बाकी निकलने वाली रकम को भेजने मे कुछ देर हुई। इसकी वसूली के लिए दिल्ली से मुरीद खा नामक दरबारी बगाल भेजा गया। ज्योंही अलीवर्दी खा को इसकी सूचना मिली, उसने मुरीद खा को लिखा कि मैं स्वय आपसे मिलने राजमहल आ रहा हू, आप तब तक पटने मे विश्राम करें तो अच्छा होगा। फिर दोनो की सकरीगली में मुलाकात हुई। अलीवर्दी खां ने हिसाब तो चुका ही दिया, मुरीद खा का भी मुह मीठा कर उसे वहा से सम्मानपूर्वक विदा किया। सरफराज खा की जो निजी जायदाद जब्त की जा चुकी थी और जो अब मुरीद खां के हवाले की गई, उसमे "लाखो रुपये नकद" के अलावा "सत्तर लाख के जवाहरात", सोना-चादी के सरोसामान, कीमती कपड़े और कितने ही हाथी-घोड़े भी शामिल थे। *

दिल्ली की ओर से निश्चिन्त होते ही अलीवर्दी खां ने कटक की ओर से भी निश्चितता प्राप्त करने का उद्योग आरम्भ कर दिया।

उडीसा में पहले से ही, शुजाउद्दौला खा का दामाद मुर्शिदकुली खां नायब नाजिम था। उसके और अलीवर्दी खा के बीच सन्धि की

---

* "रियाजुस्सलातीन" में जो कुछ लिखा है वह इसमे कुछ भिन्न है अगर उसकी बात मानी जाय तो सरफराज खा की सम्पत्ति की मद मे अलीवर्दी खा ने कुल चालीस लाख रुपये ही भेजे। हा, सम्राट् के प्रधान मत्री कमरुद्दीन खा को उससे तीन लाख और आसफ जाह निजामुल्मुल्क को एक लाख अवश्य मिले। "रियाज" में यह भी लिखा है कि अलीवर्दी खा ने सरफराज खा के प्रतिनिधि राजा युगलकिशोर से साठ-गाठ करके तीनो प्रान्तो की सनद हासिल कर ली।

वातचीत होने लगी और दोनो यहां तक सहमत हो गये कि लोगो को जान पड़ा कि सन्धि होकर ही रहेगी। वास्तव में होने वाला कुछ और ही था। "मुताखरीन" का कहना है कि मुर्शिदकुली खा की स्त्री और उसके अपने दामाद मिर्जा वाकिर खा ने उसे इतना उभाडा कि अनिच्छुक होते हुए भी उसने सन्धि के नियमो के पालन का विचार त्याग दिया और लडने-भिडने की वात सोचने लगा। अलीवर्दी खा को इसका पता चला तो उसने मुर्शिदकुली खा को लिखा कि, "मै तुमको किसी तरह का नुकसान पहुचाना नही चाहता, फिर भी यह निश्चित-सा है कि अगर तुम कटक मे रहे, तो हम दोनो मे से किसी को भी शान्ति न मिल सकेगी। इसलिए मै आशा करता हू कि तुम अपने परिवार के लोगो और अपने माल-असवाव को साथ लेकर फौरन या तो दक्खिन-प्रदेश चले जाओगे, या—तुम्हारी इच्छा हो तो—मुर्शिदावाद होकर 'हिन्दुस्तान'।" पत्र पाकर मुर्शिदकुली खा कुछ भयभीत अवश्य हुआ, पर अपनी स्त्री और अपने दामाद को लड़ाई के लिए अधीर देखकर उसने फिर सन्धि या सुलह का नाम नही लिया, वल्कि अलीवर्दी खां को यह लिखकर आग मे घी डाल दिया कि, "मेरे प्रतिनिधि* ने मेरी ओर से जो कुछ तै किया, वह मेरी इच्छा के विरुद्ध है—मै उसे स्वीकार नही कर सकता। अव हम दोनो के झगडे का निवटारा तलवार-द्वारा

* "मुताखरीन" के अनुसार यह सूरत का निवासी था और इसका नाम आगा मुहम्मद तकी था। "रियाजुस्सलातीन" के अनुसार सुलह की वातचीत मुर्शिदकुली खा की ओर से मुखालिस अली खा ने शुरू की। यह हाजी अहमद का दामाद था, पर मुर्शिदकुली खा के साथ रहता आया था। अलीवर्दी खा और हाजी अहमद ने इसके द्वारा मुर्शिदकुली खा को ऐसा आश्वासन दिलाया कि वह निश्चिन्त होकर सो गया। उधर मुखालिस खा मुर्शिदकुली खा के सरदारो को फोड-फोड कर अलीवर्दी खा के मतलव का काम करने लगा।

ही होगा।" इस चुनौती के जवाब मे अलीवर्दी खा ने मुर्शिदावाद नगर की रक्षा का भार अपने भाई हाजी अहमद और अपने भतीजे को सौपा और आप रकाब में पैर रख, दस-बारह हजार चुने हुए सवारो के साथ शुभ मुहूर्त में उडीसा-प्रान्त की ओर रवाना हुआ।

यह बात सन् १७४० के अन्तिम दिनो की है। अलीवर्दी खा को उडीसा में एक साल से भी अधिक समय विताना पडा। मुर्शिदकुली खा से उसका मुकाबला वालेश्वर से थोडी ही दूर पर हुआ। इस लडाई में अलीवर्दी खा की जीत कुछ ऐसे कारणो से हुई, जो उसके शत्रु के दुर्भाग्य और उसके अपने सौभाग्य के सूचक थे। अगर मिर्जा बाकिर ने अपने ससुर की इच्छा के विरुद्ध, आवेश में आकर अपना स्थान न छोड दिया होता—अगर उसकी फौज का अफगान-सरदार आबिद खा दुश्मन से मिलकर विश्वासघात न कर बैठता—तो जीत सभवत मुर्शिदकुली खा की होती, अलीवर्दी खा की नही। वास्तव मे हुआ यह कि मिर्जा बाकिर के बुरी तरह घायल हो जाने के कारण फौज मे भगदड मच गई और जब मुर्शिदकुली खा ने बचने का और कोई उपाय न देखा, तब उसको साथ लेकर झटपट एक जहाज में जा बैठा और खुद भी भाग कर मछलीबन्दर जा पहुचा। रतिपुर और जगन्नाथपुरी का राजा *

* "रियाजुस्सलातीन" के अँगरेजी अनुवादक गुलाम हुसैन सलीम ने अपनी पाद-टीका में इसका नाम हाफिज कादिर बताया है और कहा है कि यह रतिपुर (खर्दा) का राजा और पुरी के मन्दिर का प्रबन्धकर्ता था। मालूम नहीं, यह बात किस आधार पर लिखी गई है। इस पुस्तक में पुरुषोत्तम या पुरी के राजा का उल्लेख है। "मुताखरीन" में लिखा है कि यह "रतिपुर का राजा था और जगन्नाथ का भी।" आगे चलकर "मुताखरीन" ने इसे स्पष्टत "हिन्दू" राजा बताया है।

उसके मित्रो मे था और यह गाढे का ऐसा साथी निकला कि इसकी सहायता से उसके वाल-वच्चे, नौकर-चाकर सभी, माल-असवाव के साथ, अलीवर्दी खा के कटक पहुचने से पहले ही वहा से चल पडे और सकुशल दक्खिन पहुच गये। यहा निजामुल्मुल्क के राज्य में मुर्शिदकुली खा को पहले ही शरण मिल चुकी थी। उधर विजेता अलीवर्दी खा ने कटक पहुचकर प्रान्त के वडे-वडे जमीदारो को वुलवाया और राजभक्ति का आश्वासन मिल जाने पर उन्हें सम्मान-प्रदान कर विदा किया। अपने दूसरे दामाद सईद अहमद खा को उडीसा का नायव नाजिम वनाने के लिए वह वचनवद्ध था, इसलिए उसे कटक वुलवाकर उसने अपनी वह प्रतिज्ञा भी पूरी कर दी।

सुशासन की दृष्टि से अलीवर्दी खां को जो कुछ आवश्यक जचा उसे पूरा कर, वह मुर्शिदावाद लौट गया। पर कटक में अहमद खा की अयोग्यता के कारण परिस्थिति सुधरने के वजाय दिन-दिन विगडने लगी, लोगो मे उसके प्रति असन्तोष का भाव वढने लगा, भीतर ही भीतर एक दूसरी क्रान्ति के लिए रग-मच तैयार होने लगा। इस सव के लिए प्रधानत. दोपी शाह अहिया नामक एक 'फकीर' था जिसकी अहमद खा से पुरानी जान-पहचान थी, जो घूमता-फिरता कटक जा पहुचा था और जिसकी अव दरवार में तूती वोलने लगी थी। वास्तव मे यह कोई योगी-यती नही, वल्कि दुश्चरित्र ढोगी था। इसकी कुसगति का फल यह हुआ कि नायव नाजिम दुराचारी वन गया और लपटता की राह पर तेज कदमो से आगे वढने लगा। इससे जनता मे वडा ही असन्तोप फैला और मिर्जा वाकिर के पक्षपातियो को अपनी अभीप्ट-सिद्धि के लिए अनायास ही उपयुक्त वातावरण मिल गया।

अचानक मिर्जा वाकिर ने कटक पहुचकर ऐसा झपट्टा मारा कि

सईद अहमद खा से तख्त और ताज तो छिन ही गये, उसे अपनी निजी सम्पत्ति से भी हाथ धोना पड़ा और सपरिवार वदीगृह मे बन्द होना पड़ा। कटक के नागरिक विद्रोही हो गये थे और उनके इस विद्रोह के फलस्वरूप ही क्रान्तिकारियो को ऐसी आशातीत सफलता प्राप्त हुई थी।

अलीवर्दी खा को कुछ वातो की खवर पहले ही मिल चुकी थी और वह कटक जाने की तैयारी भी कर चुका था। अव मालूम हुआ कि विद्रोहियो की सहायता से मिर्जा वाकिर पूर्णत सफल हो चुका था और अहमद खा को कैदखाने मे जान के लाले पड रहे थे। हाजी अहमद और उसकी स्त्री ने तो सलाह दी कि अगर मिर्जा वाकिर उनके वेटे को सपरिवार छोड दे, तो उससे लडा न जाय और उडीसा उसी को दे दिया जाय। पर अलीवर्दी खा को यह सलाह ठीक नही जची। हा, जितनी तैयारी वह कर चुका था, वह काफी नही थी—उसे लगा कि अगर निजामुल्मुल्क मिर्जा वाकिर की पीठ पर न होता तो यह इतने वल और वेग से आक्रमण न कर सकता। इसलिए उसने लाव-लशकर वढा कर ही कटक जाना और दुश्मन की ताकत की आजमाइश करना युक्तिसगत समझा। अव उसने घुडसवारो की सख्या वढाकर वीस हजार कर दी और सेना को सुसज्जित करने मे कोई भी कसर न छोड़ी। जब तैयारी पूरी हो चुकी, तव उसने कटक की ओर प्रस्थान किया।

वहा दोनो दलो का मुकावला नगर से थोडी ही दूर, महानदी के किनारे हुआ। इसमे फिर मिर्जा वाकिर की हार हुई और फिर उसे मैदान छोड़ कर दक्खिन भागना पडा। अपने कैदी अहमद खा को वह साथ लेता गया था। रथ पर इसके साथ दो तूरानी सरदार तैनात थे। इन्हे आदेश मिल चुका था कि दुश्मन के

पास पहुचते ही अहमद खा के पेट में खजर घुसेडकर उसे मार डालना। रथ के चारो ओर पाच सौ मराठे सवारो का पहरा था और इन्हें भी आज्ञा मिल चुकी थी कि अगर अनहोनी हो जाय और दूसरे दलवाले रथ के पास पहुच जाय तो तुममें से प्रत्येक आदमी पहले अपना बरछा रथ के आर-पार कर दे, फिर अपनी जान बचाने का प्रयत्न करे। पर जब अनहोनी सचमुच होके रही तब न तो तूरानियो के खंजर, न मराठों के भाले ही अहमद खा का बाल बाका कर सके। मराठो को जो आज्ञा मिल चुकी थी, उसका उन्होंने पालन अवश्य किया, पर इसका नतीजा यही हुआ कि एक तूरानी सरदार मारा गया और दूसरा घायल होकर उसकी लाश के नीचे दबक गया। अहमद खा ने भी झुक या लेट कर अपनी जान बचाई*। इतने में ही उस रथ की तलाश में दौडधूप करने वाले मुस्तफा खा, मीर जाफर खां†, मुहम्मद अमीन खा, दिलेरखा आदि सरदार आ पहुचे और उनके पहुंचते ही अहमद खा को कैद से छुटकारा मिला, उसकी जिन्दगी की मीयाद बढ गई। अलीवर्दी खा के दल में हर्ष का पारावार न रहा। जब अहमद खा अपने चचा के पास पहुचा, तब अलीवर्दी खा ने उठकर उसे छाती से लगा लिया और कुछ देर तक आनन्द-विभोर बना रहा। फिर उसने अहमद खा को नहवाया और

---

* "रियाजुस्सलातीन" में यह कथा कुछ और प्रकार से मिलती है। उसमें लिखा है कि अहमद खा के साथ रथ में एक ही शख्स खजर लेकर बैठा था और वह था मुर्शिदकुली खा का भाई हाजी मुहम्मद अमीन। फिर उसमें पाच सौ की जगह कुल दो ही घुडसवारो का जिक्र है, जिनके बरछो ने अहमद खा की जगह हाजी मुहम्मद अमीन का खातमा कर दिया।

† मीर जाफर अलीवर्दी खा का मीरबख्शी था। इसका पूरा नाम था मीर मुहम्मद जाफर खा बहादुर। यह अलीवर्दी खा के सौतेले भाई मीर मुहम्मद अमीन का बहनोई था।

उसे नई खिलअत देकर तथा कलगी, सरपेच, मोतीमाल आदि से विभूषित कर मसनद पर बैठाया। इसकी स्त्री और लड़के-वाले बारहबाटी के किले में कैद थे। वहा से सब के सब मुक्त कराये गये और यही बुलवा लिये गये। इसके बाद अलीवर्दी खा के आदेश से वे मुर्शिदाबाद के लिए रवाना हुए। अहमद खां को देखने के लिए उसके मा-बाप अधीर हो रहे थे, इसलिए उसका जल्द से जल्द मुर्शिदाबाद पहुच जाना आवश्यक था। आप अलीवर्दी खा कुछ समय के लिए कटक में ही ठहर गया और सुशासन की दृष्टि से जो उत्तम प्रबन्ध हो सकता था वह हो जाने के बाद ही उसने मुर्शिदाबाद की राह ली।

उसकी अनुपस्थिति मे वहा हाजी अहमद और जगत्सेठ फतहचन्द उसके प्रतिनिधि-स्वरूप काम करते जा रहे थे। रायरायां आलमचन्द की मृत्यु के बाद मत्रिमडल के सदस्य यही दोनो रह गये थे और इनके उत्तरदायित्व के ही भरोसे अलीवर्दी खा अपनी राजधानी से इतनी दूर के दौरे पर जा सकता था या प्रवास में महीनो बिता सकता था।

फतहचन्द की कोठी और कपनी के बीच आर्थिक सम्बन्ध पूर्ववत् ही बना रहा और इस सम्बन्ध से कम्पनी पूर्ववत् ही लाभ उठाती रही। ७ जुलाई सन् १७४० को उसे १२१,०००) कर्ज लेना पड़ा और इस कर्ज का भुगतान उसने जगत्सेठ की कोठी को चादी बेच कर किया। दिसम्बर १७४० मे कासिमबाजार के कर्मचारियो ने कौंसिल को लिखा कि हमे फतहचन्द को १२) सैकडा सालाना ब्याज देना पडता है, हमे आशा है कि आपके लिखने पर वह यह दर घटा कर ९) कर देंगे। इस पर प्रेसिडेंट ने उन्हे लिखा कि, "बरसो से कपनी १२) सैकडा ब्याज देती आ रही है, पर इतना भारी बोझ उठाने में अब वह असमर्थ है। हमारी प्रार्थना है कि कासिमबाजार की फैक्टरी को जितने

रुपये की जरूरत हो, आप ९) सैकडा सालाना व्याज पर दिया करें।" यह प्रार्थना स्वीकृत हो गई। २१ दिसम्बर को ही वहा वालों को ६०,०००) कर्ज लेना पड़ा। यह रुपया उन्हे ९) सैकड़ा व्याज पर ही मिला।

नमक की खरीद-विक्री करने का कंपनी या उसके अगरेज कर्मचारियो को कोई अधिकार नही था। वास्तव मे इस अधिकार से दूसरे व्यापारी भी वञ्चित थे। नमक की खरीद-विक्री से जो कुछ लाभ होता, उसका हकदार स्वय नवाव नाजिम था। फिर भी अगरेजो की धृष्टता ऐसी थी, कि वे उस क्षेत्र मे समय-समय पर घुस ही जाते और जो कुछ हाथ लगता, लेकर वाहर निकल आते। हाजी अहमद कान मे तेल डालकर वैठने वाला न था। उसने कपनी के वकील को वुलवाया और कहा कि, "व्यापार-सम्वन्धी जो अधिकार अगरेजो को प्राप्त है, वे सम्राट् की अपनी प्रजा को भी प्राप्त नही। उनके लिए यह अत्यन्त लज्जाजनक वात है कि वे फिर भी मर्य्यादा के भीतर नही रह सकते और जो छोटी-मोटी चीजे खास कर यहा के लोगो के लिए छोड दी गई थी, उन्हें भी हथियाने लगे है। फिर नमक के इजारेदार तो खुद नवाव है—उनके साथ इस तरह पेश आने के मानी क्या?" वकील से यही जवाव वन पडा कि, "कपनी इस विषय में कुछ भी नही जानती। अगर उसके कुछ कर्मचारियो ने नमक की खरीद-विक्री की है, तो विना उसकी जानकारी और इजाजत के।" पर हाजी अहमद जानता था कि असलियत क्या है। इसलिए उसने गरम होकर ऐसी झिडकी सुनाई कि वकील को चुप्पी साध लेनी पडी। उसने सारा वृत्तान्त कलकत्ते लिख भेजा। वहां यह तै हुआ कि जगत्सेठ को लिखा जाय कि आप हाजी अहमद को समझा-बुझा कर यह मामला निवटा दें। जगत्सेठ

ने उनके अनुरोध की रक्षा कर हाजी अहमद से क्षमा-प्रदान करा दिया। कपनी को कुल १३,१९३) नकद देना पडा—और यह प्रतिज्ञा करनी पडी कि भविष्य मे अगरेज नमक की खरीद-बिक्री से कोई सरोकार न रखेगे। फतहचन्द की सिफारिश से इस मामले का निवटारा हो जाने की सूचना कौंसिल को देते हुए, कासिमबाजार के कार्यकर्ता फरवरी १७४१ में लिखते है—"हमें अपना भाग्य सराहना चाहिए कि इतना ही देकर हम इस सकट से मुक्त हो गये। यह निश्चित है कि अगर फतहचन्द की कृपा न होती और नवाब यहा से इतनी दूर न होता तो हम इतने सस्ते न छूटते।"

मार्च १७४१ मे कंपनी ने जगत्सेठ से १५०,०००) कर्ज लिया। नवम्बर में उसने ५०,०००) चुका दिया। मार्च १७४२ मे सूद का हिसाब हुआ तो, उस मद में कपनी के जिम्मे १२,०००) निकला। इसका तो उसने कलकत्ते में भुगतान कर दिया, पर असल बाकी ही रहा। कुछ और रुपये की जरूरत पडी। इसलिए कपनी की ओर से तीन हैंड नोट और लिखे गये—एक ११०,०००) का, दूसरा १००,०००) का और तीसरा ९०,०००) का। साथ ही पुराना हैंड नोट बदल दिया गया। किसी हैंड नोट में महाजन का नाम 'जगत्सेठ फतहचन्द आनन्द-चन्द' लिखा था तो किसी में 'सेठ महतावराय।' कही-कही यह नाम 'जगत्सेठ फतहचन्द' ही मिलता है। वास्तव में तीनो ही नाम प्रचलित थे—कम से कम कंपनी के कागजात में तीनो ही मिलते है। सेठ महताबराय फतहचन्द के पौत्र थे—अर्थात् सेठ आनन्दचन्द के पुत्र। कोठी का मशहूर नाम 'जगत्सेठ फतहचन्द सेठ आनन्दचंद' ही था और उन दोनो व्यक्तियो के मर जाने पर भी कई साल तक

इस नाम का व्यवहार होता रहा। यो तो सेठ आनन्दचन्द अपने पिता के जीवन-काल में ही परलोक सिधार चुके थे।

कंपनी को किस हैंडनोट की बावत कितना चुकाना पड़ा, यह नीचे के विवरण से जान पड़ेगा.—

(१)

महाजन जगत्सेठ फतहचन्द को चुकाया गया — ता० २१ मार्च, १७४१-४२

असल	१००,०००)
सूद ८ नवम्बर तक (७ महीने, १८ दिन का ९) सैकड़ा के हिसाब से)	५,७००)
	१०५,७००)
वट्टा १५॥) सैकड़ा	१६,३८३॥)
	१२२,०८३॥)

(२)

महाजन जगत्सेठ फतहचन्द को चुकाया गया — ता० २६ मार्च, १७४१-४२

असल	९०,०००)
सूद (उसी हिसाब से, उसी तारीख तक—अर्थात् ७ महीने १३ दिन का)	५,०१७॥)
	९५,०१७॥)
वट्टा १५॥) सैकड़ा	१४,७२७॥=)६
	१०९,७४५=)६

(३)

महाजन जगत्सेठ फतहचन्द आनन्दचन्द को चुकाया गया	तारीख वही
असल	११०,०००)
सूद (उसी हिसाब से, उसी तारीख तक—अर्थात् ७ महीने १३ दिन का)	६,१३२॥)
	११६,१३२॥)
वट्टा १५॥) सैकड़ा	१८,०००॥) ९
	१३४,१३३) ९

(४)

महाजन सेठ महतावराय को चुकाया गया	तारीख वही
असल	१००,०००)
सूद (उसी हिसाव से, उसी तारीख तक—अर्थात् ७ महीने १३ दिन का)	५,५७५)
	१०५,५७५)
वट्टा १५) सैकड़ा	१६,३६४=)
	१२१,९३९=)
कुल भुगतान	४८७,९००।॥-)३

मुर्शिदाबाद और कलकत्ते के बीच वाणिज्य-व्यापार का स्रोत अपनी साधारण गति से वह रहा था, मिर्जा वाकिर की सहायता

करने के लिए मयूरभंज के राजा का प्राणान्त* कराके, अलीवर्दी खां उधर के जगलो मे शिकार खेलता और प्राकृतिक सौंदर्य को आख भर देखता हुआ वगाल की ओर लौटा जा रहा था। विहार में जैनुद्दीन खा भोजपुर के इलाके को सर कर चुका था—भोजपुर के वाद मगह की वारी आ चुकी थी—और "मुताखरीन" के लेखक का पिता सैयद हिदायत अली खा, टेकारी (गया) के राजा सुन्दरसिंह और पलाम के राजा जयकिशनराय की मदद से रामगढ (हजारीवाग) के किले पर सरकारी झडा फहराकर और आस-पास के पहाडी इलाके में भी अपने मालिक का सिक्का जमाकर उसी ओर कही सुस्ता रहा था—कि अचानक एक टिड्डी-दल के पश्चिम दिशा से टूट पडने की खवर मिली और वगाल-विहार-उडीसा के इतिहास मे एक ऐसे अध्याय का आरभ हुआ, जिसकी भीपणता लोगो को वहुत वरसो तक भूलने वाली न थी।

यह मराठो-द्वारा होने वाली वगाल पर पहली चढाई थी। अलीवर्दी खां के समय मे ऐसी और भी चढाइया हुई। इनसे तीनो प्रान्तो की विशेप क्षति इस कारण हुई कि मराठे उधर जमकर वैठने और शासन करने के उद्देश से नही,वल्कि लूट-पाट करने अथवा चौथ वसूल करने के उद्देश से ही जाते रहे और हाथ लगने वाले धन को नागपुर या अन्यत्र पहुंचाते रहे। उनकी इन चढाइयो के फलस्वरूप जगत्सेठ को भी लुटना पडा, अगरेजो को कलकत्ते की रक्षा के लिए एक काफी लम्वी और गहरी खाई खुदवानी पडी और अलीवर्दी खा को अन्त मे विवश होकर उडीसा-प्रान्त मराठो के हवाले कर देना पडा।

मराठो-द्वारा होने वाले आक्रमण के स्रोत का उद्गम स्थान नागपुर

---

* "रियाजुस्सलातीन" में लिखा है कि अलीवर्दी खा ने कुछ दूर तक उसका पीछा किया, पर वह पकड़ा न जा सका।

था, जहा रघुजी भोंसले ने वरार की ओर से वढते-वढते अपना अधिकार जमा लिया था। यह विम्वाजी भोसले नामक सरदार का पुत्र था और किसी समय सातारा में शिवाजी के पौत्र शाहू का कृपा-पात्र वन चुका था। शाहू के आदेश से इसने अपने चचा कान्होजी को पराजित कर कैदखाने में डलवा दिया और १७३० के लगभग सेना साहेव का पद तथा वरार का अधिकार पाकर यह गिनती मे आ गया। रघुजी महत्त्वाकाक्षी था। पूरव की ओर पाव पसारने की गुजाइश देखकर इसने उधर वही काम करना शुरू किया, जो शिन्दे, होलकर, पवार, गायकवाड आदि दूसरी दिशाओं में कर रहे थे।

वंगाल पर मराठो की पहली चढाई रघुजी के प्रधान-मत्री भास्कर पन्त कोल्हटकर के नायकत्व में हुई। इतिहास में यह भास्कर पडित के नाम से प्रख्यात है। इसके साथ मीर हवीव * भी था, जो पहले ढाके मे और फिर कटक मे मुर्शिदकुली खां का नायव रह चुका था और जो उसके हारकर भाग जाने पर रघुजी भोसले से यह चढाई कराने के उद्देश से नागपुर जा पहुचा था। रघुजी ने इसके अलावा एक और मुसलमान सरदार को उच्च पद देकर भास्कर पडित के साथ भेजा था। इसका नाम अली करावल था।

भास्कर की सेना मे पच्चीस से चालीस हजार घुडसवार थे और उसने छोटा नागपुर-प्रदेश होकर वगाल पर आक्रमण किया था।

---

* इसका पूरा नाम था मीर हवीव अर्दिस्तानी। जिनका जिक्र ऊपर आ चुका है। "मुताखरीन" का वयान है कि मराठो से गुप्त सम्वन्ध रखते हुए भी यह अलीवर्दी खा के वर्दवान पहुचने तक उनके साथ वना रहा; फिर लडाई में घायल होने पर भास्कर पंडित के दल में जा मिला। 'मुताखरीन' में इस सभावना का भी उल्लेख है कि रघुजी को उकसाने वाला निजामुल्मुल्क था।

करने के लिए मयूरभंज के राजा का प्राणान्त* कराके, अलीवर्दी खा उधर के जंगलो में शिकार खेलता और प्राकृतिक सौंदर्य को आख भर देखता हुआ वगाल की ओर लौटा जा रहा था। विहार में जैनुद्दीन खां भोजपुर के इलाके को सर कर चुका था—भोजपुर के वाद मगह की वारी आ चुकी थी—और "मुताखरीन" के लेखक का पिता सैयद हिदायत अली खा, टेकारी (गया) के राजा सुन्दरसिंह और पलाम के राजा जयकिशनराय की मदद से रामगढ (हजारीवाग) के किले पर सरकारी झडा फहराकर और आस-पास के पहाडी इलाके में भी अपने मालिक का सिक्का जमाकर उसी ओर कही सुस्ता रहा था—कि अचानक एक टिड्डी-दल के पश्चिम दिशा से टूट पडने की खवर मिली और वंगाल-विहार-उडीसा के इतिहास में एक ऐसे अध्याय का आरंभ हुआ, जिसकी भीपणता लोगो को वहुत वरसो तक भूलने वाली न थी।

यह मराठों-द्वारा होने वाली वगाल पर पहली चढाई थी। अलीवर्दी खा के समय में ऐसी और भी चढाइया हुई। इनसे तीनों प्रान्तो की विशेप क्षति इस कारण हुई कि मराठे उधर जमकर वैठने और शासन करने के उद्देश से नही,वल्कि लूट-पाट करने अथवा चौथ वसूल करने के उद्देश से ही जाते रहे और हाथ लगने वाले धन को नागपुर या अन्यत्र पहुचाते रहे। उनकी इन चढ़ाइयो के फलस्वरूप जगत्सेठ को भी लुटना पड़ा, अगरेजो को कलकत्ते की रक्षा के लिए एक काफी लम्वी और गहरी खाई खुदवानी पडी और अलीवर्दी खा को अन्त मे विवश होकर उडीसा-प्रान्त मराठो के हवाले कर देना पडा।

मराठो-द्वारा होने वाले आक्रमण के स्रोत का उद्गम स्थान नागपुर

---

* "रियाजुस्सलातीन" में लिखा है कि अलीवर्दी खा ने कुछ दूर तक उसका पीछा किया, पर वह पकड़ा न जा सका।

था, जहां रघुजी भोसले ने बरार की ओर से बढते-बढते अपना अधिकार जमा लिया था। यह बिम्बाजी भोसले नामक सरदार का पुत्र था और किसी समय सातारा मे शिवाजी के पौत्र शाहू का कृपा-पात्र बन चुका था। शाहू के आदेश से इसने अपने चचा कान्होजी को पराजित कर कैदखाने में डलवा दिया और १७३० के लगभग सेना साहेब का पद तथा बरार का अधिकार पाकर यह गिनती मे आ गया। रघुजी महत्त्वाकाक्षी था। पूरब की ओर पांव पसारने की गुजाइश देखकर इसने उधर वही काम करना शुरू किया, जो शिन्दे, होलकर, पवार, गायकवाड आदि दूसरी दिशाओ में कर रहे थे।

बंगाल पर मराठो की पहली चढाई रघुजी के प्रधान-मत्री भास्कर पन्त कोल्हटकर के नायकत्व में हुई। इतिहास में यह भास्कर पडित के नाम से प्रख्यात है। इसके साथ मीर हबीब * भी था, जो पहले ढाके मे और फिर कटक मे मुर्शिदकुली खा का नायब रह चुका था और जो उसके हारकर भाग जाने पर रघुजी भोसले से यह चढाई कराने के उद्देश से नागपुर जा पहुचा था। रघुजी ने इसके अलावा एक और मुसलमान सरदार को उच्च पद देकर भास्कर पडित के साथ भेजा था। इसका नाम अली करावल था।

भास्कर की सेना में पच्चीस से चालीस हजार घुडसवार थे और उसने छोटा नागपुर-प्रदेश होकर बगाल पर आक्रमण किया था।

---

* इसका पूरा नाम था मीर हबीब अर्दिस्तानी। जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है। "मुताखरीन" का बयान है कि मराठो से गुप्त सम्बन्ध रखते हुए भी यह अलीवर्दी खा के बर्दवान पहुचने तक उसके साथ बना रहा; फिर लडाई में घायल होने पर भास्कर पंडित के दल में जा मिला। "मुताखरीन" में इस सभावना का भी उल्लेख है कि रघुजी को उकसाने वाला निजामुल्मुल्क था।

मुवारक मंजिल (मेदिनीपुर) के पास अलीवर्दी खां को पक्की खवर मिली कि मराठे वर्दवान के विलकुल पास पहुच चुके थे। उस समय वहुत थोड़े-से सैनिक उसके साथ रह गये थे, वाकी या तो खेत आ चुके थे या वर्खास्तहो चुके थे या मुर्शिदावाद पहुच चुके थे। फिर भी अलीवर्दी खां ने वर्दवान पहुचकर मराठो का मुकावला किया। वहा उसे काम-यावी हासिल न होसकी—वल्कि उसे हार खाकर किसी तरह जान वचाते हुए मुर्शिदावाद की ओर सरकना पडा। कटवा पहुचने पर दम मारने की फुरसत मिली भी तो मालूम हुआ कि मराठे वहा पहले ही पहुंच चुके थे और लूट-पाट मचाकर तथा खेतो, खलियानो और वखारो में आग लगाकर फिर हवा हो चुके थे।

वरसात करीव थी और अलीवर्दी खा पीछे हटते-हटते अपनी राजवानी के पास पहुच चुका था। भास्कर पडित का विचार वीरभूम के रास्ते नागपुर लौट चलने का हुआ, पर मीर हवीव ने इसका विरोध किया। "मुताखरीन" के लेखक का कहना है कि

"मीर हवीव अपनी जान पर खेलकर मराठो का इतना उपकार कर चुका था कि उसके विरोध की उपेक्षा नही की जा सकती थी। ईरान से चलकर एक मामूली फेरीवाले के रूप मे यहा आनेवाले इस शख्स की तारीफ करनी होगी कि जिसके लिए काला अक्षर भैंस वरावर था, उसने अपनी गुण-गरिमा से अपने लिए विशिष्ट पद प्राप्त कर लिया। कठिन से कठिन परिस्थिति मे भी वह घवराने या डावाडोल होने वाला न था। अगर एक युक्ति विफल हो जाती तो पाच और युक्तियों को पेश करते उसे देर न लगती। सेनापतित्व के सम्पादन में भी वह वरावर धीर-वीर वना रहता। जव उसने भास्कर पडित का प्रस्ताव सुना, तव वगाल से इतना थोड़ा लेकर ही चल देना उसे स्वीकार नहीं

हुआ। उसने अपने प्रधान से कहा कि अगर आप रुपया चाहते है तो मुझे एक हजार घुडसवार दीजिए, मै अलीवर्दी खा के मुर्शिदाबाद पहुँचने से पहले ही वहा पहुच जाऊंगा और जहा शहरपनाह तक नही, उस शहर के एक जगत्सेठ के ही घर से इतना धन ला दूगा कि आप सन्तुष्ट हो जायगे। मीर हबीब की सलाह और उसकी दलीलो का भास्कर पडित पर ऐसा असर पडा कि उसके साथ कोई एक हजार अच्छे से अच्छे सवार कर दिये गये और वह घोडे को एड लगा कर फौरन मुर्शिदाबाद रवाना हुआ। अलीवर्दी खा को इसकी भनक मिल गई। वह राजधानी की परिस्थिति को अच्छी तरह जानता था और उसे यह विश्वास न हो सकता था कि उसका भाई या भतीजा नगर-निवासियो की रक्षा कर सकेगा। इसलिए वह स्वय झटपट चल पडा। पर जहा अलीवर्दी खा को मुर्शिदाबाद पहुचने मे दो दिन लगे, वहा मीर हबीब एक ही दिन मे वहा पहुच गया। अलीवर्दी खा के पहुंचने से पहले ही वह जगत्सेठ का घर लूट चुका था और वहा से दो करोड रुपये तथा कुछ अन्य सम्पत्ति लेकर अदृश्य हो चुका था। उसने नगर के कुछ अन्य भागो को भी लूटा। एक काम यह किया कि अपने भाई मीर शरीफ के घर पहुच कर उस को अपने साथ ले लिया।"

मुर्शिदाबाद के लोगो को मार्च (१७४२) में खबर मिली थी कि मराठे बगाल मे प्रवेश कर चुके है और लूट-पाट करते तथा गावो और शहरो को जलाते हुए वीरभूम की ओर बढते आ रहे है। मराठो का ऐसा आतक था कि इस समाचार के पहुचते ही लोग शहर छोड़कर जहा-तहा भागने लगे। जो लोग भागने में असमर्थ थे, वे भी अपने-अपने माल-असबाब को मुर्शिदाबाद से बाहर भेजने लगे। अप्रैल बीतते-बीतते शहर बहुत-कुछ खाली हो चुका था और वहा प्राय. सरकारी कर्मचारी-

मात्र रह गये थे। कासिमबाजार का भी यही हाल था—वहा एक भी व्यापारी नही रह गया था। जगत्सेठ ने पहला काम यह किया कि अपने परिवार को और कही भेज दिया, फिर जितना धन मुर्शिदाबाद से हटाया जा सकता था, उसे हटवाना शुरू किया। इससे लोगो की घबराहट और भी बढ गई। फतहचन्द ने अपना कुछ धन कलकत्ते भेज दिया, इसका कंपनी के कागजात मे उल्लेख मिलता है। और व्यापारियो ने भी यही किया। एक ही दिन २०७ नावें कलकत्ते पहुची। इनमें एक नाव पर जगत्सेठ के ही पन्द्रह तोडे रुपये थे।

मई में हाजी अहमद को अपने भाई का एक खत मिला था, जिसमें अलीवर्दी खा ने बर्दवान से लिखा था कि मराठे मुझसे एक करोड रुपया माग रहे है, पर मै उन्हे कानी कौडी देने को भी तैयार नही। हाजी अहमद ने फौरन फतहचन्द को बुलवाया और उन्हें अपने खास कमरे मे ले जाकर वह खत पढ सुनाया। उसने यह भी बताया कि मराठों के व्यूह को भेदकर अलीवर्दी खा मुर्शिदाबाद की ओर निकल आया है और इस समय उसका पडाव कटवा मे है, जहा कठिनाइयो के होते हुए भी वह कही अधिक सुरक्षित है। मई में ही मीर हबीब ने जगत्-सेठ के घर पर छापा मारा और जो धन वहा से हटाया न जा सका था, उसे लूट ले गया।

"मुताखरीन" का अंगरेजी अनुवाद करनेवाला* इस प्रसंग में लिखता है कि—

"जिसका घर मीर हबीब-द्वारा लूटा गया, उसका नाम जगत्सेठ

---

* अनुवादक एक फरासीसी था जिसने इस्लाम को ग्रहण कर अपना नाम 'हाजी मुस्तफा' रख लिया था।

आलमचन्द * था। यह व्यक्ति संसार में सब से धनी था। आज भी (१७८६) उस घराने मे कम से कम दो हजार आदमी गुजर-बसर करते है। वही से लुटेरे पूरे दो करोड ले गये। ये सारे रुपये एक ही टकसाल के अर्थात् आरकाट के ढले हुए थे, यह बात और भी विशेषता-पूर्ण थी। यूरोप के किसी भी बादशाह को ऐसा धक्का लगता तो वह वेहोश हुए बिना न रहता, पर जगत्सेठ पर इसका असर नही के बराबर पडा और यह परिवार पहले की ही तरह दर्शनी हुडी के जरिये, सरकार को एक-एक करोड तक का भुगतान करता-कराता रहा। यह बात बंगाल में इतनी विख्यात है कि इसे प्रमाणित करना अनावश्यक है।"

लूट के माल के साथ मीर हबीब भास्कर पडित के पडाव पर पहुचा, जो उस समय वीरभूम जिले में कही था। उसने अपनी सफलता की ओर उसका ध्यान आकर्षित करते हुए इस बात पर बहुत जोर दिया कि बगाल मे अभी और बहुत-कुछ हाथ लग सकता है, पर उसके लिए यहा कुछ और समय बिताने की जरूरत है। उसने यह भी कहा कि जल्दबाजी करना और इतना थोडा-सा धन लेकर ही चल देना बडी मूर्खता होगी और इसके लिए रघुजी भोसले हम लोगो को फटकारे बिना न रहेंगे। भास्कर को उसकी बात ठीक लगी और वह नागपुर लौटने के बजाय कटवा में ही आसन मारकर बैठ गया। मीर हबीब उसके प्रधान मंत्री की हैसियत से अपना समय कटवा और हुगली के बीच बिताने लगा और तरह-तरह की युक्तियो का अवलम्बन कर छोटे-बड़े जमीदारो और व्यापारियो से जितना रुपया ऐंठ सकता था, ऐंठने लगा।

सभवत· अलीवर्दी खा के मुर्शिदाबाद पहुच जाने के बाद भी

* यह गलती है। फतहचन्द होना चाहिए था।

फतहचन्द का घर एक बार और लूटा गया। लूट मे हाजी अहमद के या उसके अपने ही कुछ सिपाही शामिल थे। सभवत. इन लोगो को जो दड मिलना चाहिए था, न मिला। फतहचन्द को बात बहुत बुरी लगी और मुर्शिदाबाद छोडकर वह स्वयं ढाके चले गये। अलीवर्दी खा की ओर से उन्हे लौटा ले आने के लिए कुछ आदमी भेजे गये, पर उन्होने यही उत्तर दिया कि जिस नगर मे कोई सरकार ही नही, वहा हम सुरक्षित कैसे रह सकते है?

कासिमबाजार मे जो अंगरेज कर्मचारी रह गये थे, वे अपने ७ जून के पत्र में लिखते है—

"हमे खेद के साथ लिखना पडता है कि जो व्यापारी रेशमी माल बेचने वाले थे, उनमें से एक भी अभी तक नही लौटा है। जुलाहे भी बाहर ही है। बेचारे करें तो क्या? जिन-जिन स्थानो मे माल तैयार होता था, वे उजड़-से गये है। जुलाहो के घर-बार जलकर राख हो गये है और यही हालत उनके करघो की हुई है। हमने नवाब और हाजी अहमद के पास एक अर्जदाश्त भेजकर प्रार्थना की है, कि जो व्यापारी खरीद-बिक्री का कौल-करार या लिखा-पढी कर चुके है, उन्हे यहा बुलवा दिया जाय, वर्ना हमारा व्यापार मिट्टी मे मिल जायगा। पर सफलता की आशा बहुत कम है। जब तक जगत्सेठ नही लौटते, तब तक और कोई व्यापारी लौटने वाला नही। सब उन्ही का अनुसरण करने वाले है। सुना है कि फतहचन्द ढाके पहुंच गये। नवाब ने कई दूत उनके पास भेजे, पर उन्होने बीमारी का बहाना कर दिया और न लौटे। कल मुर्शिदाबाद का काजी उनके पास भेजा गया है। उसे आज्ञा मिली है कि समझा-बुझा कर फतहचन्द को वापस ले आओ, क्योकि उनका यहा रहना व्यापारियों के लिए ही नही, सरकार के लिए भी जरूरी है। इधर एक

हफ्ते से नवाब और हाजी अहमद का मिलना-जुलना वन्द है। नवाब ने कुछ तोहफा भेजा था तो हाजी अहमद ने उसे लौटा दिया। अनबन का कारण यह वताया जाता है कि मुर्शिदाबाद लौटने पर नवाव ने कहा कि बडे अफसोस की बात* है कि अपने पास दूने सवार होते हुए भी मराठो को अपनी छावनी तथा जगत्सेठ का घर जलाने और लूटने दिया गया!"

इसके प्राय एक सप्ताह वाद फतहचन्द मुर्शिदाबाद लौटे। उनके साथ और कई व्यापारी थे। पर अपने दोनो पोतो को—महताबराय और स्वरूपचन्द को—वे ढाके मे ही छोडते आये। मुर्शिदाबाद अभी निरापद नही हुआ था, इसलिए फतहचन्द वहा कम से कम रुपया-पैसा अपनी तिजोरियो मे रखना चाहते थे। उन्होने कासिमबाजार के अंगरेजो को कहलाया कि रुपये की जरूरत हो तो कर्ज ले सकते हो। अगरेज कुछ चादी वेचना चाहते थे, पर उस समय चादी छूने से भी फतहचन्द को इन्कार था। "जब टकसाल ही बन्द है, तब मै चादी लेकर क्या करूगा? जो रुपया मौजूद है, उसी को हटाना मुश्किल हो रहा है, फिर वोझ को वढाने से फायदा ही क्या?" फतहचन्द का जो गुमाश्ता हुगली मे रहता था, वह कार्यवश कलकत्ते गया तो कौंसिल ने वहुत कहा कि आप कुछ चादी ले लीजिए। पर उसने यही जवाव दिया कि "मालिक की ओर से चादी लेने की मनाही है, वल्कि ढाका तथा अन्य स्थानो मे भी ऐसी ही मनाही हो चुकी है।" मराठो की उपस्थिति और

---

* "तवे हाजि साहेब के नवाव अनेक वुलिल,
एतेक लस्कर रइते वाड़ी लुइटा गेल!"

ये पक्तिया 'महाराष्ट्र-पुराण' नामक ग्रथ से उद्धृत ह, जिसके लिए परिशिष्ट-भाग द्रष्टव्य है।

मीर हबीब की हरकतों ने पश्चिम बंगाल मे राज-काज का चलना बंद-सा कर दिया था। अलीवर्दी खा का प्रभुत्व उधर के कई जिलो मे—मसलन मेदिनीपुर, हुगली, बर्दवान मे—नाममात्र को रह गया था ; बल्कि उडीसा के भी कुछ अश पर मराठो का अधिकार हो चला था। कुछ ही दिन बाद फतहचन्द फिर ढाके लौट गये। और व्यापारी भी रग-ढंग ठीक न देखकर मुर्शिदाबाद से धीरे-धीरे हटने लगे। १० जुलाई को कासिमबाजार के अंगरेज लिखते है कि—

"८ तारीख की रात को जगत्सेठ मुर्शिदाबाद से बाहर चले गये। यहा से हमारे भी कई व्यापारी जा चुके और कई जाने की तैयारी कर रहे है।"

अलीवर्दी खां मराठो को मार भगाने के लिए बहुत बडे पैमाने पर तैयारी करने लगा। पर सैनिको का वेतन चुकाने के लिए रुपया चाहिए था और रुपया जुटाना उस समय बहुत कठिन काम हो रहा था। उधर अलीवर्दी खा के अपने सैनिक भी उद्धत और उद्दड होकर प्रजा पर अत्याचार करने लगे थे। तत्कालीन परिस्थिति मे अनुशासन की शिथिलता अनिवार्य-सी हो गई थी और इस शिथिलता से अराजकता पैदा होने लगी थी। कासिमबाजार के अंगरेजो ने नबाब से डाकेजनी की शिकायत भी की तो कोई नतीजा न निकला। डाका मारने वाले सैनिक थे और उनकी करतूतो से लज्जित होते हुए भी अलीवर्दी खां उन्हें रोकने या दड देने में असमर्थ था।

उसने अपने भतीजे जैनुद्दीन खा को लिखा कि इस सकट-काल मे धन-जन से हमारी जितनी सहायता कर सकते हो, फौरन आकर करो। ढाका, मालदा और राजमहल से नावे मगवाकर उसने बहुत बडा बेडा भी तैयार कराया। प्रत्येक सरदार से कहा गया कि जितने सवार या

सिपाही भरती कर सकते हो, करो और प्रत्येक को इसके लिए प्रोत्साहन के अलावा पुरस्कार भी दिया गया। पुरानी तोपों की मरम्मत कराई गई और कुछ नई तोपे बनवाई गईं। पर यह सारी तैयारी हो ही रही थी कि दिल्ली से मुरीद खां फिर आ धमका और माल का बकाया तलब करने लगा। इस बार परिस्थिति और प्रकार की थी, इसलिए अलीवर्दी खा ने कुछ भी देने में अपनी असमर्थता प्रकट की और सम्राट् को लिखा कि मराठो के आक्रमण की कहानी आप सुन ही चुके होगे, मै आपको बगाल की सुध दिलाता हू और आप से प्रार्थना करता हू कि जल्द से जल्द वहा से किसी बडे सरदार को यहा ससैन्य भेजकर मेरी सहायता करे और बगाल को मराठो के अधीन हो जाने से बचावे। मुहम्मद शाह ने एक खत अवध के सूबेदार को लिखा और दूसरा बालाजी बाजीराव को। बाजीराव के मरने पर इसे ही पेशवा का पद मिला था। यह अरसे से मालवा-प्रान्त की सनद चाहता था और रघुजी भोसले से इसका वैमनस्य भी चला आता था। शत्रु से बदला लेने और वैध रूप से मालवा का अधिकार प्राप्त करने का यह बालाजी को अच्छा मौका मिला।

अलीवर्दी खा ने बरसात बीतते ही मुर्शिदाबाद से कूच किया। कटवा के आमने-सामने, भागीरथी के दूसरी ओर, एक स्थान पर पहुचकर उसने छावनी डाली। वहा सात-आठ दिन तक दोनो ओर से गोलाबारी होती रही। अलीवर्दी खा की वास्तविक इच्छा भागीरथी को पारकर, मराठो पर टूट पडने की थी। इसके लिए नावो का पुल तैयार किया गया और निविड़ अन्धकार में एक रात अलीवर्दी खां की सेना उस पार से इस पार पहुंच गई। कहा गया है कि मराठे भाग पड़े और अलीवर्दी खा ने उनका पीछा किया। हुगली, बर्दवान, मेदिनीपुर—

हर जगह मराठो के पाव उखड गये और वे जिस राह आय थे, उसी राह भागने की चेष्टा करने लगे। पर छोटा नागपुर के जगल इसमे वाधक हुए और भास्कर को मेदिनीपुर-वालेश्वर-कटक होते हुए भागकर अपनी रक्षा करनी पडी। अलीवर्दी खा ने चिलका-झील तक पीछा किया, पर जव भास्कर और मीर हवीव पकड न जा सके, तव खाली हाथ कटक लौट आया। उडीसा में पिछली वार वह शाह मुहम्मद मसूम पानीपती को अपने प्रतिनिधि के रूप मे छोड आया था। यह मराठों-द्वारा हरिहरपुर मे मारा जा चुका था, इसलिए वह पद अव मुस्तफा खा के चचा अव्दुल नवी खा को प्रदान किया गया। राजा जानकीराम का वेटा दुर्लभराम इसका नायव या पेशकार नियुक्त हुआ।

इस वीच अवध का सूवेदार अवुल मसूर खा और पशवा वालाजी वाजीराव सम्राट् का आदेश पाकर, पूरव की ओर प्रस्थान कर चुके थे। अवुल मसूर पटने पहुंच चुका था कि उसे खवर मिली कि वालाजी की फौज अवध होकर आने वाली है। उसने फौरन मनेर के पास गंगा को पार किया और सिर पर पाव रख अवध लौट गया। वालाजी राव को भी विहार पहुचते देर न हुई। वह पटने के पास से तो गुजरा, पर वहां मुकाम नही किया। दाऊदनगर, गया, मानपुर, टेकारी, विहार शरीफ, मुगेर, भागलपुर होते हुए वह वीरभूम की ओर वढ गया। जव अलीवर्दी खां उससे मिला, तव वालाजी ने सव से पहले चौथ का जिक्र छेडा और हिसाव चुकता हो जाने पर ही उसन सम्राट् की आज्ञा का पालन करने का नाम लिया। रघुजी भोसले अपनी सना के साथ वगाल पहुंच चुका था और भास्कर पन्त भी लौट चुका था। रघुजी का पड़ाव कटवा और वर्दवान के वीच था और भास्कर का मेदिनीपुर में। वालाजी वाजीराव से शिकस्त खाकर रघुजी

को नागपुर भागना पडा। भास्कर भी बगाल में न ठहर सका। उडीसा होकर, वह भी जहा से आया था वही लौट गया।

कहने के लिए तो बालाजी बंगाल गया था सम्राट् के आदेश से अलीवर्दी खां की सहायता करने, दर असल उसका उद्देश था अलीवर्दी खा से चौथ वसूल करना—इस मद मे उसके जिम्मे मोटी रकम बाकी ठहराकर, पत्थर तले दबे हुए हाथ से जितना मिल सके, उतना ले लेना और आगे के लिए भी नाजिम को शर्तों से जकडबंद कर जाना। ७ जुलाई सन् १७४३ को उसे मालवा की सनद मिल गई और इसके वाद ही उसका रघुजी से मेल या समझौता भी हो गया। अव उसने अवध, बगाल, बिहार और उडीसा का कर वसूल करने का अधिकार शाहू से रघुजी को दिलवा दिया,* जिससे प्रोत्साहित होकर भोसले ने वर्षा-काल के बाद ही, भास्कर पन्त को फिर पूरब की ओर रवाना किया।

जिस समय फतहचन्द ढाके में प्रवास कर रहे थे, उस समय कपनी को कुछ उधार लेने की जरूरत पडी। फतहचन्द एक लाख से कम देने को तैयार न थे, इसलिए ढाकेवालो को उतना ही लेना पड़ा। अगस्त (१७४२) में कपनी की ओर से पूछा गया कि और कुछ उधार मिल सकता है क्या, और अगर मिल सकता है, तो कितने व्याज पर? फतहचन्द ने कहा कि जितने रुपये की जरूरत हो, कपनी ले सकती है; व्याज की दर वही रहेगी—९) प्रतिशत प्रतिवर्ष। समय के लिहाज से कपनी के कर्मचारियो को यह दर कुछ ऊची जंची। कौंसिल ने ढाका-फैक्टरी को लिखा कि अभी खरीदारी वद रहेगी, इसलिए दादनी देन

---

* "मराठो का उत्थान और पतन"—श्री गोपाल दामोदर तामस्कर लिखित।

था कर्ज लेने की जरूरत नही। पर अक्टूबर मे उसे ४०,०००) कर्ज लेना ही पड़ा। व्याज में किसी तरह की कमी नही हुई। हां, ढाके में उसकी कुछ नावे रोक ली गई थी और उसके कर्मचारियो के साथ 'दुर्व्यवहार' होने लगा था। फतहचन्द के सिफारिश करने पर नावे छोड दी गईं—वह 'दुर्व्यवहार' भी वद हो गया। अक्टूबर मे नवाव और हाजी अहमद दोनो ने ही फतहचन्द को लिखा कि मराठे वगाल से चपत हो चुके, अव आपको लौट आने मे कोई सकोच नही होना चाहिए। फतहचन्द मुर्शिदावाद लौट गये। उनके लौटने पर ही कपनी ने चादी देकर उन चारो हुंड नोटो का भुगतान किया जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

नवम्बर १७४२ मे कौंसिल ने यह निर्णय किया कि—

"चूकि कपनी पर फतहचन्द के कर्ज का भारी वोझ है और उन्होने वहुत कहने-सुनने पर कर्ज के भुगतान मे चादी लेना स्वीकार कर लिया है, हम लोगो की सम्मति है कि उन्हे चादी देकर यह कर्ज चुका दिया जाय।

"उनके साथ यह तै हुआ है कि चादी का दाम तो वही रहेगा जो और व्यापारी इवर देते आये हे, पर कासिमवाजार की परिपाटी के अनुसार वह चादी को 'सिक्को' से तौल कर ही लेगे। और जगह तो प्रेसिडेट हेजेस के समय से चादी की मझोली पेटी का वजन ९३२५ 'सिक्को' के वजन के वरावर मान कर ही इसकी खरीद-विक्री होती रही है।

"आज्ञा दी जाती है कि इस समझौते के अनुसार भुगतान कर देने के लिए खजाने से चादी की ५४ पेटिया निकाल कर प्रेसिडेंट को दे दी जाय।"

जनवरी १७४३ मे ढाके की फैक्टरी से कौसिल को एक खत मिला जिसमें लिखा था कि फतहचन्द मार्च में साल तमाम होने पर चालू खाता बद करने वाले है, इसलिए उनका कहना है कि कपनी या तो हिसाब बेबाक कर दे या तमस्सुक बदल दे। हिसाब बेबाक करने के लिए तीन लाख रुपया चाहिए था। इसके अलावा फतहचन्द की कोठी से कुछ और कर्ज लेने की जरूरत थी। कौंसिल ने जवाब दिया कि जरूरी खर्च के लिए हम एक लाख भेजने का प्रबन्ध कर रहे है, पर इस समय रुपये की ऐसी टान है कि हम पुराना कर्ज चुकाने के लिए कुछ नही भेज सकते। अगर फतहचन्द न मानें तो तमस्सुक बदल देना, लेकिन कोशिश इस बात की करना कि बिना बदले ही काम चलता रहे। सभवत यह न हो सका। फरवरी में ढाका-फैक्टरी को १६०,०००) नये कर्ज के तौर पर भी लेना पड़ा।

इधर अलीवर्दी खा को भास्कर पडित का पीछा करते हुए उडीसा जाना पडा था और वह उसको भगाने मे पूर्णत. सफल भी हो चुका था। फरवरी में कौसिल ने निश्चय किया कि नवाब के मुर्शिदाबाद लौटने पर उसे बधाइया भेजी जायं और हाजी अहमद तथा फतहचन्द को भी इस कामयावी पर अपनी खुशी जाहिर करने के लिए खत लिखे जायं।

अलीवर्दी खा बगाल लौट आया—पर उसके साथ मराठे भी लौट आये, बल्कि कहना चाहिए कि एक ओर से बालाजी बाजीराव और दूसरी ओर से रघुजी भोसले के आ धमकने के कारण परिस्थिति और भी विभीषिका-पूर्ण हो गई। सभवत अलीवर्दी खा को बधाइयां भेजने की बात जहा थी, वही रह गई। फिर मुर्शिदाबाद में घबराहट फैली और फिर लोग बोरिया-बधना उठा-उठाकर मालदा, ढाका, रामपुर बौलिया, गोदागारी की ओर भागने[6] लगे। फतहचन्द फिर

जहांगीरनगर (ढाका) चले गये और अलीवर्दी खा तथा हाजी अहमद ने भी अपना-अपना कुटुम्व और अपना-अपना माल-असवाव वही भेज दिया। आफत टली भी तो सरकारी खजाना खाली कर—तीनो प्रातों का वहुत-कुछ खून चूस कर—जगत्सेठ फतहचन्द को एक और धक्का पहुचा कर। ६ जून १७४३ को कासिमवाजार के अगरेज कर्मचारी लिखते है—"यहा रुपया उधार मिलना असभवप्राय हो रहा है। फतहचन्द तथा अन्य धनी व्यक्तियो के ढाके भाग जाने स यहा रुपये की जैसी टान इस समय हो रही है, वैसी पहले कभी नही हुई थी।" अगस्त तक फतहचन्द मुर्शिदावाद लौट आये थ। २२ अगस्त को कलकत्ता-कौंसिल अपने लेखे में लिखती है—"यह प्रत्यक्ष है कि इधर नवाव को वहुत-कुछ खर्च करना पडा है और वह उसका कुछ अंश फतहचन्द से वसूल करने के लिए उन पर हर तरह से दवाव डाल रहा है।"

मुर्शिदावाद लौटने पर फतहचन्द ने कपनी से वह रुपया मागा, जो कासिमवाजार का प्रधान सर फ्रंसिस रसेल उनकी कोठी से उधार ले चुका था। कपनी यह कर्ज चुकाने में आनाकानी करने लगी, जिसका नतीजा यह हुआ कि फतहचन्द को अपनी फरियाद नवाव के कानो तक पहुचानी पड़ी। वात क्या थी, यह रसेल के उत्तराधिकारी के उस पत्र से स्पष्ट हो जाता है, जो उसने ११ अगस्त को कौंसिल के नाम लिखा था.—

"फतहचन्द का गुमाश्ता सर फ्रंसिस रसेल का तमस्सुक लकर आया था। उसने जान पडा कि असल २५,०००)* था, सूद अलग है। गुमाश्ता रुपया मागने लगा। हमने कहा कि कलकत्ते के 'मेयर' की

* यहा 'सिक्कों' से अभिप्राय है।

अदालत से कोई शख्स रसेल की जायदाद का इतजामकार मुकर्रर हो चुका है, वह अभी रसेल का पावना वसूल कर रहा है; जो कुछ वसूल हो सकेगा, उसे वह रसेल के महाजनो में बाट देगा। फतहचन्द का गुमाश्ता बोला कि, "हमारे मालिक न तो 'मेयर' की अदालत को जानते है और न किसी ऐसे इतजामकार को। वह सिर्फ कपनी को जानते है। यह कर्ज उन्होने कपनी की फैक्टरी को दिया था, इसलिए वह आशा करते है कि कपनी उसे चुका देगी। आप लोगो के सामने दो रास्त है—जिस पर आप की मर्जी हो चल सकते है। या तो इस तमस्सुक का रुपया चुका दीजिए और जगत्सेठ से दोस्ती वनाये रखिए, या उसे चुकाने से इन्कार कर दीजिए और उनसे अपना रिश्ता तोड लीजिए। यह रकम कभी डूवने वाली नही। इतना जरूर है कि इसे वसूल करने के लिए उन्हे जो कुछ करना पडेगा, वह आपको अच्छा न लगेगा।"

प्रधान ने सव-कुछ सुन लेने पर इतना ही कहा कि, "हम अपनी कौंसिल को इसके वारे मे लिख रहे है। वहा से जो जवाव आवेगा, उसे आप के पास भेज देगे।"

अपने पत्र में प्रधान ने यह भी लिखा था कि "कौंसिल को यह वताने की जरूरत नही कि फतहचन्द चाहे जैसे हो, रुपया वसूल करने पर तुल गये है। कौंसिल को मालूम है कि सरकार इस समय कैसी तगदस्त है और उस पर उनका कैसा प्रभाव है। अगर हमने उनको रुष्ट कर दिया तो सरकार को जोर-जवर्दस्ती करने का एक वहाना मिल जायगा और इसका नतीजा हमारे लिए वहुत ही वुरा होगा। हम आशा करते है कि कौंसिल इन सारी वातो पर विचार कर किसी निर्णय पर पहुचेगी।"

नवाव इस मामले की जाच करने का हुक्म चैनराय को दे चुका था और कासिमवाजार की फैक्टरी की ओर से कौंसिल को लिखा जा चुका था कि "हमे डर है कि जव चैनराय तहकीकात शुरू करेगा, तव सारा भेद खुले विना न रहेगा—अर्थात् उसे मालूम हो जायगा कि कंपनी के अगरेज कर्मचारी निजी कारवार भी किया करते है। दरवार मे हमने इसे कभी स्वीकार नही किया है—वरावर यही कहते आये है कि जो कुछ व्यापार होता है, कंपनी की ही ओर से। हमे इस वात का अदेशा है कि अगर सरकार को असलियत का पता चल गया—उसे विश्वास हो गया कि कपनी के कर्मचारी उसकी आड में अपना कारवार भी किया करते है—तो इसका परिणाम हमारे लिए अच्छा न होगा।"

कपनी को जो विशेष अधिकार मिले हुए थे, वे उसके अपने व्यापार के ही लिए थे। दोनो ओर से यह मानी हुई वात थी कि कपनी के नाम से कपनी का कोई भी कर्मचारी निजी व्यापार नही कर सकता। कपनी की ओर से यह स्वीकार तो नही किया जाता, पर वास्तविकता यह थी कि उसके सभी अंगरेज कर्मचारी निजी व्यापार करने के लिए स्वतत्र थे और सभी ऐसा व्यापार किया करते थे। इसका प्रधान कारण यह था कि उन्हें कंपनी की ओर से जो वेतन[७] मिलते थे, वे देश-काल के लिहाज से भी कम—वहुत कम थे। फिर जहा छोटे-वडे सव के सव चोर थे, वहा कौन किस की चोरी का भेद खोल सकता था—कौन किसको दड दे या दिला सकता था? यो तो कपनी की ओर से यह वात प्राय गुप्त रखी जाती, पर जव कोई अगरेज कर्मचारी दिवाला मार देता और महाजन अपने रुपये कंपनी से मांगने लगते तव उन्हें यह जवाव जरूर मिलता कि यह कर्ज उसने अपने कारवार में लगाने के लिए

लिया था—इससे कंपनी का न कोई सरोकार था, न है। जगत्सेठ-जैसा महाजन तो किसी न किसी तरह अपनी रकम वसूल कर ही लेता, पर जिसकी दरबार में पहुच न होती, उसे या तो कंपनी जो कुछ दे देती उसी से सतोष मानना पडता या सारी रकम से ही बाज आना पडता।

कौंसिल ने देखा कि बात आगे बढने में भलाई नही, इसलिए कासिमबाजार की फैक्टरी को जगत्सेठ की कोठी के साथ यह मामला तै कर लेने का पूरा अधिकार दे दिया। ११ सितम्बर को वहा से खबर मिली कि मामला तै हो चुका है। फैक्टरीवालों ने प्रस्ताव किया था कि असल और सूद दोनो की बाबत हम १५,०००) देने को तैयार हैं, सब बातों को देखते हुए आपको यह स्वीकार होना चाहिए। फतहचन्द का गुमाश्ता कह गया था कि सूद की मद में ३,५००) निकलता है, बडी से बडी रिआयत यही की जा सकती है कि असल २५,०००) मिल जाने पर हम एक भी पैसा सूद न लें। कासिमबाजार के कर्मचारी अपने पत्र मे लिखते हैं—

"कल १० तारीख को फतहचन्द ने फिर यही कहलाया कि जहां तक असल का सवाल है, कुछ भी बल खाना हमें मजूर नही। अगर मामला तै करना है तो कपनी हमें सूद न देकर असल का असल दे दे। आपने लिखा था कि जैसे मुनासिब समझना, मामला निबटा लेना। हम लोगो की भी यही राय हुई कि फतहचन्द के साथ लडने-झगडने में अपनी भलाई नही, बल्कि भलाई इसी में है कि वे हमारे व्यवहार से प्रसन्न रहें। इसलिए हम लोगो ने उनके साथ मामला तै कर लिया और उन्हें २५,०००) का तमस्सुक लिख दिया। उन्होंने सर फ्रांसिस रसेल वाला तमस्सुक हमें लौटा दिया। नये तमस्सुक की रकम पर हमे ९) सैकड़ा सालाना ब्याज देना पडेगा। हमें आशा है कि

हम लोगो ने जोकुछ किया है, आप उसे ठीक समझेंगे । मामला तै हो जाने पर फतहचन्द ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। उनका गुमाश्ता आकर यह भी कह गया कि दशहरे के वाद टकसाल खुलन पर हम बता जायगे कि आप लोगो को कितनी चादी मगानी चाहिए।"

हम ऊपर कह आये है कि १७४३ मे वालाजी वाजीराव से मेल हो जाने पर रघुजी भोसले की वक्रदृष्टि फिर बगाल पर पडी और बरसात समाप्त हो जाने पर भास्कर पन्त फिर उस ओर भेजा गया।

इस वार उसके साथ प्राय बीस हजार घुड़सवार थे, जिनमे छ-सात हजार का मनसब अली करावल (उपनाम अली भाई) को मिल चुका था। "रियाज" का कहना है कि यह पहले एक मराठा सरदार था और हिन्दू से मुसलमान वन चुका था। भास्कर ने बगाल पहुचकर फिर कटवा में ही डेरा डाला और सकल्प-सिद्धि के लिए आवश्यक अनुसधान तथा संगठन करने लगा।

अलीवर्दी खा ने इस वार मराठो से पार पाने के लिए वल की जगह छल का प्रयोग करने का निश्चय कर, अपने अफगान सेनापति मुस्तफा खां से जी खोलकर वातें की और कहा कि अगर तुमने भास्कर और उसके सरदारो को लाकर मेरे चगुल मे फसा दिया, तो मै तुम्हें इनाम के तौर पर विहार की नायव निजामत दे दूगा। मुस्तफा खां वहादुर होने के साथ चालवाज भी था। उसने भास्कर पन्त को यह विश्वास दिलाया कि अलीवर्दी खां लडाई नहीं, सुलह चाहता है। राजा जानकीराम को साथ लेकर वह स्वय कटवा गया और वहा भास्कर पन्त से मिला। लगे दोनो वाते वना-वनाकर उस इतमीनान दिलाने और अपनी लोरियो से उसे वच्चे की तरह सुलाने। दिल-जमई के लिए अगर एक कोई वात कुरान हाथ मे लेकर कहता, तो दूसरा

उसी को तुलसीदल तथा गगा-जल उठाकर दोहरा देता । फिर भी भास्कर पडित के मन में कुछ सन्देह बना ही रहा । उसने अली करावल से सलाह की और कहा कि तुम खुद जाकर अलीवर्दी खा से मिलो और उसके मन की थाह ले आओ । पर अलीवर्दी खा ऐसा मायावी था और इस दूत के साथ इतनी अच्छी तरह पेश आया कि इसे सूखे पानी में डूबते देर न लगी । कटवा लौटकर इसने भी यही कहा कि उधर छल-कपट का लश भी नही, अलीवर्दी खा आपकी सारी शर्ते मान लेने को तैयार बैठा है, बस, आप दोनो के मिलने भर की देर है । भास्कर पर राजा जानकीराम की बातो का विशेष प्रभाव पहले ही पड चुका था, अब अली करावल ने अपना अनुभव सुनाकर उस रग को और भी जमा दिया । भास्कर के मन में किसी प्रकार का भी सन्देह नही रह गया और वह अलीवर्दी खा के पास जाने को तैयार हो गया । उस समय अलीवर्दी खा का पडाव अमानीगज में था । यह निश्चित हुआ कि दोनो का सम्मेलन मनकरा मे हो, जो अमानीगज और कटवा के बीचोबीच था । वही अलीवर्दी खा की ओर से एक खेमा खडा किया गया और इसी खेमे के भीतर मसनद पर बैठकर अलीवर्दी खा भास्कर पन्त की प्रतीक्षा करने लगा । उस समय वहा जो लोग मौजूद थे,उनमें तीन ही व्यक्ति—राजा जानकीराम, मुस्तफा खा और मिर्जा हाकिम बेग—शुरू से यह जानते थे कि भास्कर पन्त के पहुचने पर क्या गुल खिलने वाला है । कुछ देर बाद अलीवर्दी खा के आदेश से सईद अहमद खा और अताउल्ला खा को भी सारा रहस्य बता दिया गया । बाकी सरदारो या सैनिको से भेद न खोला गया ।

भास्कर पन्त के मनकरा पहुचने से पहले ही प्राय पचास मराठे सरदार वहा पहुच चुके थे । इनमें इक्कीस-बाईस को खेमे के भीतर

तैनाती हो चुकी थी। ज्योही वह स्वयं पहुचा, राजा जानकीराम और मुस्तफा खा ने आगे बढकर उसकी अभ्यर्थना की और अपना-अपना हाथ धराकर उसे खेमे के भीतर ले गये। वहा किसी ने उससे बैठने को भी न कहा। राजा जानकीराम और मुस्तफा खा तो कोई बहाना कर खेमे के बाहर चले गये और अलीवर्दी खा ने तीन बार यह पूछा कि इन सरदारो मे वीर भास्कर पडित कौन है ? प्रत्येक बार भास्कर को पहचानने वालो ने उसकी ओर इशारा कर अलीवर्दी खा के इस प्रश्न का उत्तर दिया। जब वह अपने पराक्रमी शत्रु को अच्छी तरह देख चुका, तब उसने मराठो के कत्ल का हुक्म देकर सब को मरवा डाला। सब से पहले भास्कर पंडित मारा गया। इसका हत्यारा मीर कासिम खां था। बाकी मराठे सरदार भी मारे गये, पर वैसी परिस्थिति मे भी वे धीरता-वीरतापूर्वक लडते हुए—कुछ रुंड-मुड गिराते हुए—मरे। जो सेना कटवा मे रह गई थी, वह बात की बात मे तितर-बितर हो गई—अलीवर्दी खा को मराठो के आक्रमण और उत्पात से कुछ समय के लिए शान्ति मिल गई।

पर उसके सामने और ही समस्याये उठ खडी हुई। इनमे प्रधान थी अर्थ-सम्बन्धी समस्या, जिसके हल के लिए उसने देशी-विदेशी व्यापारियो से चदा मागना और वसूल करना शुरू किया। सेना का बाकी वेतन चुकाने के लिए काफी रुपया चाहिए था। अलीवर्दी खा ने विदेशी व्यापारियो से दो महीने का वेतन मांगा। यह बीस लाख रुपया होता था।

चदे की बात सुनते ही कंपनी पहले तो बेहोश-सी हो गई, फिर होश संभाल कर अपने वकील को लिखा कि फतहचन्द से जाकर पूछो कि वह क्या सलाह देते है। फतहचन्द ने उसके पूछने पर कहा कि,

"मै क्या सलाह दू ? जमाने का रग-ढग खराब है। इस समय तो जान पडता है कि कोई सरकार है ही नही। हुकूमत करनेवालों को न तो खुदा का डर है, न बादशाह का। चाहे जैसे हो, लोगो से रुपया ऐंठना ही उनका एकमात्र कर्तव्य हो रहा है। मै स्वय बहुत-कुछ नुकसान उठा चुका हू। कपनी को मै सलाह दूगा तो यही, कि जहा तक जल्द हो सके, देने-लेने के विषय मे नवाब से कुछ तै कर ले। कौंसिल को सारी हकीकत लिख भेजो और उसका उत्तर मगा लो। पर शीघ्रता होनी चाहिए। यदि इस कार्य मे विलम्ब हुआ, तो कपनी को और भी गहरी हानि उठानी पडेगी।" साथ ही फतहचन्द ने यह भी कहा कि, "जहां तक मुझसे और चैनराय से बन पडेगा, हम दोनो दरबार मे कपनी के साथ रिआयत कराने की कोशिश जरूर करेगे।"

१० जुलाई १७४४ को नवाब न अगरेजो के वकील को बुलवाकर कहा कि, "जिस समय तुम्हारी कपनी को बादशाह फर्रुखसियर से फरमान मिला था, उस समय उसके कुल चार-पाच जहाज चलते थे। इस बीच में कंपनी का व्यापार कही से कही बढ गया है, पर सरकार को जो कर मिलना चाहिए था, वह नही मिला है। अब दिल्ली से मेरे पास हुक्मनामा आया है कि अगरेजो के जिम्मे जो कुछ बाकी निकले, वह उनसे पैसा-पैसा वसूल कर लो। मै उसकी तामील करने जा रहा हू। अगरजो को अपने बढे हुए व्यापार पर, शुरू से आज तक, सरकारी कर देना पडेगा।" अलीवर्दी खा ने यह भी कहा कि, "मेरी शिकायत थी कि अगरेज मराठो की मदद किया करते है। मैंने तो उनका कसूर माफ कर दिया, पर उन्होने आज तक न तो मुझे कभी याद ही किया, न मेरे लिए घोडे की पूछ की पशम तक भेजी।" नवाब के अन्तिम शब्द बडे ही भयावह थे। उनका अभिप्राय यह था कि अगर

और दो-तीन दिन में कपनी का कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला, तो नवाव अपनी फौज को कासिमवाजार और कलकत्त भेजकर अगरेजो स नाको चने चववान वाला है।

वकील ने जाकर हाजी अहमद और फतहचन्द से सारी वात कही तो उन्होने यही सलाह दी कि कपनी को चाहिए कि इस अवसर पर एक अच्छी रकम नवाव को भेंट कर।

जव कौंसिल को मालूम हो गया कि विना कोई ऐसी रकम दिये छुटकारा नही होने का, तव उसने कासिमवाजार के कर्मचारियो को इजाजत दी कि चालीस-पचास हजार दकर मामला तै कर लो। पर इतनी छोटी रकम से काम निकलने वाला न था। कासिमवाजार वाले अपने २२ जुलाई के पत्र में लिखते हैं—

"नवाव ने मामला निवटाने का अधिकार फतहचन्द और चैनराय को दे दिया है। आपके आज्ञानुसार अपने वकील उनके पास गये और उनसे कहा कि कंपनी सव मिलाकर पचास हजार दे सकती है। उन्होने जवाव दिया कि नवाव की माग के आगे यह रकम इतनी छोटी है कि हम दरवार में इसका जिक्र भी नही कर सकते। अपने वकीलो ने वड़ी वहस की और यह दिखा दिया कि नवाव की माग जायज नही है। उन्होने यह भी वताया कि इधर जो उपद्रव होते रहे है, उनके कारण कम्पनी को वड़ी हानि भी हुई है। पर इन वातो के जवाव मे फतहचन्द ने यही कहा कि अगर समय और होता तो इन वातो पर विचार किया जा सकता था। पर इस समय तो सेना का वतन चुकाने के लिये नवाव को रुपये की जरूरत है और आप लोग अच्छी तरह जानते है कि नवाव को इतनी वड़ी सेना रखनी पड़ी है देश की तया व्यापार की रक्षा के ही लिए। उन्होने यह भी कहा कि आजकल नवाव का सारा ध्यान वस

रुपये की वसूली की ओर है और वह अगरेजों से काफी बड़ी रकम पाने की उम्मीद किये बैठा है। अन्त में उन्होंने यही सलाह दी कि कौंसिल को खत लिखकर पूछो कि वह कहा तक जाने को तैयार है। २१ तारीख को अपने वकील फिर फतहचन्द और चैनराय से मिले। हमने उन्हे यह पता लगाने के लिये भेजा था कि आखिर नवाब चाहता क्या है? इसबार फतहचन्द ने उनसे कहा कि "साहबान! जमाना बदल गया। पुरानी बातें जाती रही, अब नयी बातो का दौरदौरा है। पहले के हुक्काम और तरह के होते थे—उन्हें हम समझा-बुझा कर आसानी से रजामन्द कर लेते थे। पर आजकल के हुक्काम का यह हाल है कि ये लोभी है, धोखेबाज है और साथ ही मिजाजदार भी है। इन्हें समझाना-बुझाना या ठीक रास्ते पर ले आना कठिन से कठिन काम है। अगर कपनी का यह खयाल है कि मौजूदा सरकार पहले की सरकार की ही तरह है, तो यह उसकी भूल है। कोई नही कह सकता कि अपनी माग पूरी कराने के लिए अलीवर्दी खां कब क्या कर गुजरेगा"। जब अपने वकीलो ने यह जानना चाहा कि कितना मिल जाने पर नवाब सन्तुष्ट होगा, तब फतहचन्द ने कहा कि यो तो उसके मन की बात बताना असभव है, पर कुछ अनुमान किया जा सकता है। वह अपनी सेना का दो महीने का वेतन मागता है। इसके लिए उसे बीस लाख रुपया चाहिए। अधिक से अधिक छोड देगा तो दस लाख। बाकी दस लाख तो तीनो कपनियो को जुटाना ही पडगा। ऐसी हालत में अगर कपनी पाच लाख देने को तैयार हो, तो हम नवाब से उसका चदा मजूर कराने की कोशिश करे। डच और फरासीसी कपनियो की ओर से कहलाया गया है कि पहले अगरेजो के साथ बात तै हो जाय, फिर हम भी अपना-अपना चंदा लेकर हाजिर हो जायगे। चैनराय ने

कहा कि पाच लाख मे चालीस-पचास हजार कम होन पर भी हम चेष्टा करेगे कि नवाव उस रकम को मजूर कर ले। वस, इन मन्त्रियो स तो और कुछ की आशा करना ही व्यर्थ है। हा, फतहचन्द ने वातो-वातो मे कहा कि आज कपनी चालीस-पचास हजार ही देना चाहती है, पर उसे अपने पुराने वही-खातो के पन्ने उलटकर यह भी देखना चाहिए कि शुजाउद्दौला के समय मे वह सरकार को क्या दे चुकी है। मालूम नही, यह उन्होने किसी गूढ अभिप्राय से कहा या वात यो ही उनके मुह स निकल गई। हमने तो फैक्टरी लौटकर पुराने वही-खाते निकलवाये और इस वात की जाच कराई कि शुजाउद्दौला को क्या दिया गया था। पता चला कि १७३१ मे कपनी ने फतहचन्द की मार्फत दरवार को १८४,५००) * दिया था। उसका व्योरा हम आपके पास भेज रहे है। यह कहना कठिन है कि वीती वात की याद दिलाकर फतहचन्द ने कोई इशारा किया या नही। सभव है, उनका यह अभिप्राय रहा हो कि अगर कपनी इस वार भी उतना ही दे दे तो उसे नजात मिल सकती है। सभव है, यह अनुमान गलत हो। इतना तो स्पष्ट है कि अगर हमने पिछली वार से कम दिया तो नवाव को यह रकम कभी मंजूर न होगी। इस समय यह अवस्था है कि काम-काज वद है। कोई भी व्यापारी माल लेकर अपनी कोठी के अहाते में आ नही सकता। इस पर तुर्रा यह कि रोज धमकी दी जाती है कि सरकारी फौज आकर कोठी को घेर लेगी और कंपनी का गला घोट देगी।"

इसके वाद फिर वे २७ तारीख को लिखते है—

"अपने वकील रोज फतहचन्द, चैनराय और हाजी अहमद के पास जाते है, पर तीनो यही कहते है कि पहले कौसिल से मामला तै

* 'सिक्के'

करने का अधिकार मंगा लो, फिर हम और बाते करेंगे। नवाब तो इस समय भूखा भेडिया हो रहा है। उठते-बैठते, सोते-जागते वह बस शिकार की ही फिक्र मे रहता है, और जिसके बदन पर थोडी-सी भी चरबी नजर आती है, उस पर टूट पडता है। किसी भी मालदार असामी का पता चलते ही उसे गिरफ्तार करा लता है और माग पूरी करने से इनकार करने पर उसकी खाल खिचवा लेता है। और तो क्या, जिनकी हैसियत हजार-दो हजार की भी नही, उन्हें भी आधी सम्पत्ति तक दे देनी पडी है। अपने एक ही व्यापारी से तीन लाख तलब किया गया है। फतहचन्द ने वकीलो से कहा भी कि तुम खुद समझ सकते हो कि जहा तुम्हारे एक ही व्यापारी से नवाब तीन लाख लेने जा रहा है, वहा वह तुमस कितना लेना चाहेगा।"

कौंसिल ने सारी बातों पर विचार कर, उत्तर दिया कि कपनी एक लाख तक देने को तैयार है।

फतहचन्द और चैनराय ने यह सुनकर यही कहा कि, "हमारी जबान से तो एक लाख की भी बात नही निकल सकती। अगर कपनी चार-पाच लाख तक देने को तैयार होती, तो हम उसका चदा मजूर कराने की कोशिश करते। लकिन जब वह एक लाख से आगे न बढने की कसम खा चुकी है, तब हम भी चुपचाप बैठकर तमाशा देखना चाहते है कि नवाब क्या करता है।"

कासिमबाजार वालों ने लिखा कि हमारी तो समझ मे ही नही आता कि अब हमें क्या करना चाहिए!

कौसिल ने नवाब की सेवा मे एक आवेदन-पत्र भेजा, जिसमें कहा गया था कि जब-जब सरकार के और कपनी के बीच ऐसा प्रसग उपस्थित हुआ है, तब-तब उलझन सुलझाने का काम फतहचन्द और

दरवार के मुत्सद्दियो को सौंपा गया है, फिर इस वार भी वही क्यों न मामले को तै-तमाम कर दे ? ७ अगस्त को कासिमवाजार की फैक्टरी लिखती है.—

"अपने वकील दरख्वास्त लेकर नवाव के पास पहुचे। फतहचन्द और दूसरो के द्वारा मामला तै-तमाम कराने का प्रस्ताव पढते ही नवाव ने पूछा कि हमने इससे कव इनकार किया है ? फिर उसने अपने मुशी को वुलवाकर कहा कि इन वकीलो को फतहचन्द और चैनराय के पास ले जाओ और उनसे कहो कि मामला निवटा दे। पर जव हमारे वकील उन दोनो से मिले, तव उन्होने यह जवाव दिया कि, 'हम वीच मे पड़ें तो कैसे ? नवाव आसमान की वात करता है—कपनी जमीन की। नवाव २५ लाख से कम लेना नही चाहता—कपनी एक लाख से अधिक देना नही चाहती। ऐसी हालत में दोनो को कौन मिला सकता है—कौन उनका समझौता करा सकता है ? कपनी का कहना है कि हम पचास हजार से एक लाख पर आ चुके, पर नवाव पर इसका कुछ भी असर पड़ने वाला नही। मुस्तफा खा उससे कह चुका है कि हम अगरेजो से पच्चीस लाख वसूल करा देगे।' अपने वकीलो ने कहा कि आप यकीन करें, अगरेजो से इतना तो किसी भी हालत मे मिल नही सकता।

इस पर फतहचन्द और चैनराय वोले कि, "न तो नवाव कंपनी से पच्चीस लाख पाने की आशा करता है और न उसे एक लाख मिलने-न मिलने की ही कोई परवा है। पर हम लोग एक वात कहना चाहते है। जितना कंपनी खुद नही दे सकती, उतना दूसरो से तो दिला ही सकती है। इधर इतने व्यापारी मराठो के भय से कलकत्ते भाग गये है—इतने व्यापारियो को कंपनी से काम पड़ता है, इतनो का वही आश्रय या

अवलम्बन है। उन सब से चदा वसूल कर नवाब के पास पहुचा देने का काम तो कपनी कर ही सकती है। समय असाधारण है। सेना का वेतन चुकाने का प्रश्न बडा विकट हो रहा है। राजा को यह सेना रखनी पड़ती है, प्रजा की रक्षा के लिए। सरकारी खजाने में जो कुछ था, वह उसका वेतन चुकाने में लग चुका। नवाब अपनी तिजोरिया भी खाली कर चुका। फिर भी पूरा न पडा। मजबूर होकर उसे अपने रिश्तेदारो से और अपने कारिन्दो तक से रुपया लेना पडा है। ऐसी स्थिति में उसका यह कहना सर्वथा उचित ही है कि कलकत्ते के व्यापारियो को भी सरकार की यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए। आखिर सरकार की छत्रच्छाया में ही तो विना किसी प्रकार की विघ्न-बाधा के, हर एक का काम-धधा चल रहा है, हर एक चादी काटता आ रहा है। वहा नागरिकों पर कपनी को कर लगा देना चाहिए। अगर कोई शख्स कर नही चुकाता या चदा नही देता, तो कपनी को चाहिए कि उसे सीधे यहा नवाव के पास भेज दे—नवाव उसकी फस्द खुलवा देगा।"

अपने वकीलो ने कहा कि, "आज तक कपनी ने ऐसा काम नही किया। अगर यह व्यापारियो को जेरबारी से नही वचाती रही, तो उसके व्यापार का चलना ही असभव हो जायगा।" फतहचन्द बोले कि "सब कुछ समयानुसार होता है। पहले कभी ऐसी परिस्थिति नही हुई, इसलिए कपनी से इतना मागा भी नही गया। आज परिस्थिति असाधारण है, इसलिए नवाव की माग भी असाधारण है। असाधारण समय की वात साधारण समय के लिए नजीर नही वन सकती। फिर कपनी को यह भी सोचना चाहिए कि रुपया देने से वह वच ही कैसे सकती है? ढाके से पटने तक, नवाव ने उसका कारवार वद करा दिया है। उधर के सारे कारखाने इस समय नवाव के कब्जे मे है—सारी

सम्पत्ति नवाव के हाथ मे है। अगर अगरेजो ने उसकी वात न मानी तो वह कुछ भी अपने चगुल से निकलने न देगा। कासिमवाजार की फैक्टरी पर भी चढाई की वात थी, पर हाजी अहमद, चैनराय और मेरे कहने पर नवाव रुक गया है। फिर भी यह कहना कठिन है कि वह कब तक चुपचाप वैठा रहेगा। कपनी के सभी व्यापारियो के गुमाश्ते वुलवाये जा चुके है। मुमकिन है, नवाव उन्हें अपना कुल माल मुर्शिदावाद ले आने को मजवूर करे। गरज यह कि व्यापारियो से जो कुछ मिल सकेगा, उसे तो ले ही लेगा, कपनी पर भी अपना दावा खड़ा रखेगा। हर तरह कपनी घाटे मे ही रहेगी।" अन्त मे उन्होने यह कहा कि, "कौसिल से ऐसी रकम देने की इजाजत मगाओ, जिसका हम लोग उसके सामने नाम ले सके और जिसकी स्वीकृति की भी कुछ आशा कर सके। इतना तो निश्चित है कि एक लाख पर कोई समझौता नही हो सकता।"

जव दूसरे दिन फतहचन्द और चैनराय नवाव से मिले, तव उसने पूछा कि अगरेजो के साथ क्या तै हुआ ? उन्होने कहा कि हुजूर पच्चीस लाख से कम लेना नही चाहते और अगरेज एक लाख से ज्यादा देना नही चाहते—कुछ भी तै हो तो कैसे ? नवाव कुछ देर चुप रहा। फिर उसने अपने दरवारियो से कहा कि कपनी के साथ अव जोर-जवर्दस्ती करनी ही पडेगी। फतहचन्द ने कासिमवाजार के अंगरेजो को कहलाया कि, "सैनिक अवीर हो रहे है और रोज ही नवाव से तुम्हारे कारखानो को लूट लेने की इजाजत माग रहे हैं। अपनी भलाई चाहते हो तो नवाव को सन्तुष्ट कर दो।"

दो ही दिन वाद चैनराय ने कंपनी के वकील से कहा कि, "नवाव कितना मिलने पर सन्तुष्ट होगा, यह उसने फतहचन्द को वता दिया है। पर फतहचन्द यह वात प्रकट करने वाले नहीं। अव तुम उन्हें वताओ

कि कपनी कहा तक वढने को तैयार है। रकम बड़ी होनी चाहिए। दो लाख से भी बात नही बनने की। हा, जो निश्चय हो, फतहचन्द को ही वताना, और किसी को नही। वह घटा-वढा कर मामला तै करा देंगे। अगर तुम लोगो की यह धारणा है कि अन्त में सरकार वही करेगी जो न्यायसगत होगा, तो उसे निर्मूल समझो। आजकल वगाल में सरकार कहने को ही है। वास्तव में सव कुछ करने-घरनेवाले सैनिक है और सैनिक इस वात पर जोर दे रहे है कि नवाब सबसे—अपने रिश्तेदारो तक से—रुपया सख्ती के साथ वसूल करे।"

कौंसिल कुछ समय तक हीला-हवाला करती रही, पर अन्त मे जव उसने देख लिया कि इससे पिंड छूटने वाला नही, तब उसने कासिम-बाजार फैक्टरी के प्रधान जान फार्स्टर को लिखा कि चार लाख में औना-पौना कर मामला तै कर लो। फार्स्टर ने साढे तीन लाख में ही सौदा पटा लिया। १६ सितम्वर को कासिमबाजार की कौंसिल लिखती है.—

"१५ तारीख को फतहचन्द यहा नवाब के हुक्म से आये थे। हुगली, पटना, ढाका आदि स्थानो के लिए जो परवाने निकल चुके है, उन्हें दे गये। प्रधान ने कौसिल के मेंवरो को सूचित किया कि वह कपनी की ओर से साढे तीन लाख देना स्वीकार कर चुका है। फतहचन्द ने यह रुपया मागा और कहा कि हम नवाव से हुक्मनामा जारी करा चुके है कि कपनी का कारवार पहले की ही तरह चलने दिया जाय। हमने कहा कि इतना रुपया तो हमारे पास मौजूद नही, आप अपनी कोठी से कर्ज दिला दें तो आपकी वडी मेहरवानी हो। वह राजी हो गये। हमने उतने रुपये ('सिक्को') का तमस्सुक लिख दिया है। अव कलकत्ते से रुपया आ जाय तो हम उनका और दूसरे महाजनो

का हिसाव चुकता कर दें। सव मिलाकर यहा ५४०,०००) ('सिक्के') देना है।"

रुपया मिल जाने पर अलीवर्दी खा ने दरवार से कलकत्ता-कौंसिल के अध्यक्ष के लिए एक हाथी के साथ सरोपा भिजवाया। कासिमवाजार फैक्टरी का प्रधान कलकत्ते जाने वाला था। फतहचन्द ने नवाव का एक खत ले जाकर उसे दिया और कहा कि इसे अपने अध्यक्ष के हाथ मे दे देना। कासिमवाजार वालो ने कलकत्ते लिखा कि जव हाथी और सरोपा वहा पहुच जाय, तव इस सम्मान-प्रदान के उपलक्ष्य मे कपनी की ओर से उल्लास प्रकट किया जाय और नवाव को धन्यवाद भेजे जाय। ५ दिसम्वर को जव खिलअत और हाथी कलकत्ते पहुच गये, तव ५७ तोपो की सलामी उतारी गई और इस दयादान के लिए वडी धूमधाम के साथ नवाव के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन किया गया।

१६ नवम्वर (१७४४) के लेखे में यह वात दर्ज मिलती है —

"कासिमवाजार से जान फार्स्टर लिखता है कि वह एक दिन दरवार मे गया था। वहा नवाव के साथ फतहचन्द और चैनराय वैठे थे और फार्स्टर की सव से वातचीत होने लगी। कुछ ही देर वाद नवाव उठ पडा और उन तीनो को एक कमरे में ले गया। वहा उसने फार्स्टर ने कहा कि जासूसों से सरकार को खवर मिली है कि मराठों की वडी सेना फिर वगाल पर चढाई करने आ रही है। हमें उसका मुकावला करने जाना पडेगा। लेकिन मुश्किल यह है कि हमारे आदमियो को अंगरेजो की तरह तोप-वदूक चलाना नही आता। इसके लिए तुम अपनी कपनी से तीस-चालीस सिपाहियों के साथ एक अंगरेज प्रधान

भिजवा कर हमारी सहायता करो। जो वेतन कपनी नियत कर देगी हम देने को तैयार है।" नवाव ने यह भी कहा कि, "हमे अपने लिए एक अच्छा ताजी घोडा भी चाहिए। अगर कलकत्ते में कोई मिल सके, तो मगा दो।"

कौसिल ने घोडा तो २७५०) को खरीद कर भेज दिया, पर गोलदाजो को भेजने से इनकार कर दिया।

प्राय उसी समय, नवाव के दबाव डालने पर फतहचन्द अगरेजो से कुछ चादी खरीदने को तैयार हो गये पर सव कुछ तै हो जाने के बाद भी उन्होने दाम इतना घटा दिया कि कोई सौदा न हो सका। अगरेजो ने हैरान होकर उनके गुमाश्ता रूपचद से इसका रहस्य पूछा। उसने वताया कि, 'इधर टकसाल के कामो में अताउल्ला खां और चैनराय काफी दखल देने लगे थे—यहा तक कि जहा पहले फतहचन्द को हफ्ते में पाच दिन सिक्के ढलवाने के लिए मिलते, वहां अव एक दिन भी मिलना मुश्किल हो गया था। इससे वह वहुत असन्तुष्ट थे। फिर उन्होने यह भी सोचा कि अगर सिक्के ढलने से पहले ही मराठे आ गये, तो चादी धरी ही रह जायगी। इन्ही कारणो से उन्होने नवाव से कह दिया था कि कपनी चादी का इतना ऊचा दाम मागती है कि वह उसे खरीद ही नही सकते। वह चाहते यह थे कि पहले मराठों के लौटने-न-लौटने की वात निश्चित रूप से मालूम हो जाय—फिर चादी के वारे में कोई फैसला हो।'

फतहचन्द के जीवन के अव इने-गिने दिन शेष रह गये थे। २८ दिसम्बर को कासिमबाजार वालो ने कौंसिल को उनकी मृत्यु की सक्षिप्त सूचना देते हुए लिखा कि, "२६ तारीख को प्रात काल फतहचंद

संसार से चल बसे। उनके विपुल ऐश्वर्
महतावराय और स्वरुपचन्द हुए है। ले
वाणिज्य-व्यवसाय में अपनी वश-परम्प
इस अवसर पर यह उचित होगा कि ह
अभिनन्दन किया जाय।"

जिसकी जिन्दगी की नाव किनार
अस्थियो को 'जगत्-विश्राम' में सदा के
उसके नाम पर आसू बहानेवालो मे अ
तो इसका उल्लेख नही मिलता। पिछ
जवानी सुन चुके है कि जब-जब उसे स
के पास जाना पड़ा, तब-तब उन्होने कैसं
संकट से उबारने मे कैसी सरलता, उ
परिचय दिया। क्या उनके मरते ही क
अगर बात ऐसी न होती, तो महतावरा
देने से पहले उन्हे सात्वना दी जाती, जि
स्वागत करते समय जिससे काम पड़ चु
उपेक्षा न की जाती।

फतहचन्द को अपने मामा मानिक

या सेठ-साहूकार ससार भर में और कोई न था—इसलिए वह बिना किसी प्रकार की अतिशयोक्ति के 'जगत्सेठ' कहे जा सकते थे। वर्क ने कहा था कि जगत्सेठो का कारबार उतना ही फैला हुआ था और उसी पैमाने पर था, जिस पर बैंक आव् इगलैण्ड का। इस विस्तार या उन्नति में विशेष भाग था तो प्रथम जगत्सेठ फतहचन्द का। उनके उत्कर्ष का आधार था उनका मुर्शिदाबाद की मसनद से घनिष्ठ सम्बन्ध और इस सम्बन्ध का रहस्य यह था कि उनके सहयोग से ही प्रत्येक शासक की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक रह सकती थी, वह मसनद पर कायम रह सकता था। दिल्ली-दरबार मे बंगाल की साख बराबर अच्छी बनी रही। वल्कि जव से फतहचन्द ने हुडी के जरिए राजस्व का भुगतान करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी, तव से वह साख और भी ऊची हो चली थी। टाट उलटनेवालो की जमात में कोई साहूकार बच गया था तो बगाल। जव बाजीराव ने मुहम्मद शाह पर दबाव डालकर पचास लाख रुपया लेना चाहा था, तव उसने लिखा था कि अगर आप इतना रुपया नकद नही दे सकते तो मुझे वगाल पर परवाना भेज दीजिए। खानदौरा ने काबुल से रुपये की माग आने पर, वहा के सूवेदार नासिर खा को कहलाया था कि वगाल के नाजिम को खत लिखा जा रहा है, वरसात वाद वहा से खजाना आते ही हम तुम्हारे पास रुपया भेज देगे। मुहम्मद शाह का एकमात्र भरोसा या वल वगाल रह गया था और मुर्शिदाबाद से रुपया या हुडी आने मे देर होते ही उसका दम सूखने लगता था। जब मुरीद खा को पिछली वार मराठों की चढाई के कारण विफल होकर दिल्ली लौटना पडा था, तव अलीवर्दी खा ने वादशाह को वगाल की उपयोगिता की याद दिलाते हुए लिखा

था कि शाही खजाने और तोशाखाने को खाली न होने देने का श्रेय बगाल के ही किसानो और कारीगरो को है—ऐसी दशा मे आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि अगर इस प्रान्त पर सदा के लिए मराठो का अधिकार हो गया, तो केन्द्र की कितनी बडी हानि होगी। बगाल की रक्षा के द्वारा अपनी रक्षा के उद्देश से ही मुहम्मद शाह ने बालाजी बाजीराव को मालवा की सनद दे देने का वचन देकर रघुजी भोसले के विरुद्ध भेजा था। ऐसे कल्पवृक्ष को सदाबहार बनाये रखने मे जगत्-सेठ का भाग विशेष महत्त्वपूर्ण होने के कारण ही, मुर्शिदाबाद से दिल्ली तक उनकी ऐसी धाक बध गई थी कि उनके बिना हाँ किये बगाल में ऊचे से ऊंचे पद पर भी किसी की नियुक्ति नही हो सकती थी—कम से कम बादशाह से उसे सनद या फरमान नही मिल सकता था।

घर के मालिक के रूप में फतहचन्द तीस वर्ष ससार मे रहे। उनके दो पुत्र हुए—आनन्दचन्द और दयाचन्द। इनके अलावा दो कन्याये * भी हुईं। दोनो ही पुत्र शुजाउद्दौला के शासन-काल में ही चल बसे थे। इनमें आनन्दचन्द के पुत्र † का नाम महताबराय था और दयाचन्द के पुत्र का स्वरूपचन्द। यही दोनो चचेरे भाई फतहचन्द के उत्तराधिकारी हुए। इनमे महताबराय जगत्सेठ की और स्वरूपचन्द महाराजा की पदवी, मुहम्मदशाह के पुत्र अहमदशाह ने, १७४८ मे पाने वाले थे।

---

* इनमें एक नयनसुख गाधी को ब्याही थी, दूसरी मानसिंह रामदढिया को।

† आनन्दचन्द के एक कन्या भी थी जिसका नाम अजबू बाई था।

टिप्पणी

(१) पृष्ठ ६८—वहादुरशाह के राज्य-काल में कपनी ५२॥ हजार रुपया देकर व्यापार-सम्वन्धी सनद प्राप्त कर चुकी थी, पर उसकी इच्छा थी पूरी स्वतत्रता प्राप्त कर वगाल के दीवान या अन्य पदाधिकारियो के नियत्रण से सदा के लिए मुक्त हो जाने की। ३,०००) सालाना पेशकश देने के अलावा किसी भी प्रकार की चुगी भरने से उसे इनकार था।

कपनी को अजीमुश्शान से वडी आशाएँ थी, क्योकि उसी से उसे सुतानुती, गोविन्दपुर और कलिकाता, इन तीन गावो की जमीदारी कुल १६,०००) देने पर मिल चुकी थी। १७ अगस्त १७११ को कौंसिल ने एक अर्जदाश्त भेजकर उससे शाही फर्मान दिला देने की प्रार्थना की। उसके साथ एक पत्र-द्वारा यह भी प्रलोभन दिया गया था कि, "हम अपनी ओर से नजराने के तौर पर कुछ सामान वहा भेजने वाले है, पर उनके पहुँचने में कुछ देर हो सकती है। इधर माल खरीदकर इगलैण्ड भेजने का समय करीव आ गया है, इसलिए तव तक दीवान के नाम एक हस्वुल्हुक्म भिजवा देने की कृपा करें कि वह हमारे व्यापार में किसी प्रकार की वाधा न डाले।"

इधर अजीमुश्शान को यह आवेदन-पत्र अगस्त १७११ मे भेजा गया, उधर कपनी ने कासिमवाजार के कर्मचारियो को यह आदेश दिया कि वहा की फैक्टरी वन्द कर चल देने के लिए तैयार रहो। पर अक्टूवर मे ही दीवान से ५२,५००) पर समझौता हो गया और कासिमवाजार छोडने की नौवत नहीं आई। फिर भी दिल्ली-दरवार का दरवाजा खटखटाने का जो निश्चय कपनी कर चुकी थी, उसका उसने कभी परित्याग नही किया। नजराना भेजने की वात भी उसे वरावर याद रही। हा, इसका समय टलता गया। कभी तो यह हुआ कि जो सामान मद्रास से दिल्ली भेजने के लिए मगाये गये वे दरवार मे कपनी की प्रतिष्ठा वढाने योग्य न निकले, कभी सामान जाने की तैयारी हो जाने पर दिल्ली से परवाना न पहुँच सकने के कारण यात्रा स्थगित करनी पडी। कभी यह प्रश्न उठा कि नजराने के साथ कपनी का पटने का वकील दिल्ली जाय या

और कोई योग्यतर व्यक्ति ? इसी बीच शाह आलम या बहादुरशाह की मृत्यु हो गई और कुछ ही दिनो बाद अजीमुश्शान की भी। जहादार शाह के राज्य-काल में जब फर्रुखसियर का पटने पर कब्जा हो चुका था और कपनी के कर्मचारी उसके चदे की माग के कारण दम साध कर गगा पार लालगज में समय बिता रहे थे, कलकत्ते से कौंसिल ने उसकी सेवा में भी अपना आवेदन-पत्र भेजा और उसे अपने नजराने की याद दिलाकर लिखा कि, "यह हुगली के पास कलकत्ते में तैयार है, बरसात बीतते ही हम इसे यहा से भेजने की आशा करते है।" फिर भी वह न भेजा गया। अन्त में जब फर्रुखसियर की जीत हो गई, वह तख्त पर बैठ चुका और कपनी को इस बात का निश्चय हो गया कि उसके पाव जम चुके, तब फिर वही पुराना राग अलापते हुए उसने २७ मार्च १७१३ को एक आवेदनपत्र भेज कर, मुर्शिदकुली खा की शिकायत की और सम्राट् से 'नि शुल्क व्यापार' करने की इजाजत मागी। टेक या 'स्थायी' वही पुराना था कि "जो नजराना हमारी ओर से दरबार में जाने वाला है, उसे मछलीबदर मे कुछ देर हुई, पर अब वह यहा पहुँच गया है। हम उसे जल्द से जल्द दिल्ली भेजना चाहते है। उम्मीद है कि सब सूबेदारो के नाम ऐसे हस्बुल्हुक्म जारी हो जायगे कि रास्ते में कही कोई रोक-टोक न हो।"

३ जनवरी १७१४ को मुर्शिदकुली खा के नाम दिल्ली से वजीर का आदेश-पत्र आया कि कपनी को ब-दस्तूर व्यापार करने दिया जाय, अर्थात् उससे चुगी तलब न की जाय। समाचार कलकत्ते पहुचते ही कौंसिल ने बडी खुशिया मनाई। तोपो की बाढें दाग कर बादशाह की सलामी उतारी गई—रात को आतिशबाजी छोडी गई। अगरेज सिपाहियो के लिए शराब की छूट कर दी गई। मुर्शिदाबाद में रामचन्द्र कपनी की ओर से वकील नियुक्त हुआ। इसको ४०) माहवार देना निश्चित हुआ। इसके साथ यह 'स्टाफ' दिया गया—

६ कहार— १२ रु० माहवार।
५ चपरासी— १२॥ रु० माहवार।
१ मशालची— २ रु० माहवार।
दूसरे नौकर-चाकर—३॥ रु० माहवार।

जोड़—३० रु० माहवार।

पूरी तैयारी हो जाने पर, १९ अप्रैल १७१४ को जान सरमन की अध्यक्षता में कपनी का दल उपहार-सहित कलकत्ते से दिल्ली रवाना हुआ। सरमन के बाद दर्जा था खोजा सरहाद का जो अगरेज नही, अर्मनी व्यापारी था। इसकी दिल्ली-दरबार में रसाई थी और यह पहले भी कपनी के काम आ चुका था। जब फर्रुखसियर बालक था, तब इसने कुछ विलायती खिलौने उसकी भेट किये थे—इससे भी कपनी को आशा थी कि वह जो कुछ चाहती थी उसे दिलाने में यह बडा उपयोगी सिद्ध होगा। इसके पक्ष में एक बात और थी—फारसी भाषा पर इसका पूरा अधिकार था। इसके अलावा दो सहायक और एक सर्जन भी थे। ये तीनो अगरेज थे। सरहाद के साथ यह तै हो चुका था कि —

(क) जो अधिकार कपनी को पहले प्राप्त थे, वे फिर फरमान-द्वारा उसे मिल गये और कपनी को कलकत्ते की जमीदारी की हद बढाने की इजाजत मिल गई और अगर उसने मछली बदर के पास वह टापू कपनी को दिला देने की कोशिश की, जिस पर मद्रास की कौंसिल की नजर थी, तो उसे पुरस्कार-स्वरूप ५०,०००) मिलेगा। अगर वह यह सब न दिला सका, तो वह कुछ भी पाने का हकदार न होगा।

(ख) अगर सरहाद ने सूरत में भी कपनी का व्यापार नि शुल्क करा दिया, तो उसे ५०,०००) और मिलेगा। अगर वह यह न करा सका, तो वह यह रकम पाने का हकदार न होगा। पर व्यापार नि शुल्क करा देने में सफलता न भी हो, तो चुगी की दर २॥) सैकडा करा देने का प्रयत्न तो उसे करना ही होगा।

दूत-दल को विभिन्न कारणो से पटने में प्राय एक साल रुक जाना पडा। मार्च १७१५ में कौंसिल को खबर मिली, कि सरहाद बख्शी से मिलने गया तो वहा शेख ईसा, फतहचन्द और लालजी भी मौजूद थे और सब ने यही कहा कि, "जब तक आप लोग और सिपाही अपने साथ नही ले लेते, तब तक आगे बढना खतरनाक है।" पर सरमन और सरहाद की आपस में अनबन शुरु हो गई थी, इसलिए सरमन ने इस बात पर कुछ भी ध्यान नही दिया। "जहा-तहा

फौजदार अपनी-अपनी जगह छोडकर लापता हो चुके है। उज्जैनियो * ने कई जगह रास्ता रोक रखा है।" यह सारी खबर सरहाद की भेजी हुई थी। उधर सरमन का कहना था कि "पूछताछ से मालूम हुआ है कि रास्ता खुला हुआ है, व्यापारियो का जाना-आना जारी है।" सरमन उस समय नौबतपुर में था और सरहाद पटने मे। इसे सरमन ने आगे बढने का आदेश भेजा।

जून १७१५ में दूत-दल दिल्ली पहुच गया। जो सामान नजर करने के लिए यह साथ लेता गया था, उसमे कमखाब, बनात, रग-बिरगे मखमल के थान, दस्ताने, पिस्तौलें, तमचे, तलवारें, कलमतराश, तरह-तरह के खिलौने, क्लाक (घड़िया), आईने इत्यादि थे। दल के साथ घुडसवार, चपरासी, कहार, गाडीवान आदि तो थे ही।

दिल्ली में इस दल को प्राय दो बरस ठहरना पडा। कपनी के सौभाग्य से जो सर्जन † दूत-दल के साथ गया था, उसके इलाज मे फर्रुखसियर बवासीर-रोग से मुक्त हो गया था। फिर भी आज, कल होता ही रहा। दरबार का काफी अनुभव हो जाने पर दूत-दल ने वजीर अब्दुल्ला खा का पल्ला पकडा। वह उदार और शीलवान् था। कपनी के दूत-दल से उसने शीराज की कुछ शराब के सिवा और कुछ भी स्वीकार नही किया और जो जो रिआयत वह दल चाहता था, वह उसे दिला भी दी।

फरमान और हस्बुल्हुक्म उस समय पहले की अपेक्षा कही सस्ते हो चले थे। अगर बात ऐसी न होती, तो सरमन दिल्ली से खिलौनो और आईनो के बदले ३ फरमान और ३२ हस्बुल्हुक्म लेकर कलकत्ते न लौटता।

इस बीच मे कपनी और दीवान के बीच जो झगडा चला आता था, वह बना ही रहा। मुर्शिदकुली खा को कासिमबाजार वाले कभी कुछ नरम पाते

---

* उज्जैनी या उज्जैनिये भोजपुर इलाके के क्षत्रिय थे।

† उसका नाम विलियम हैमिल्टन था। १० दिसम्बर १७१५ को उसे सम्राट् ने एक सरपेच, एक जडाऊ कल्गी, हीरे की दो अगूठिया, एक हाथी, एक घोडा और पाच हजार रुपये इनाम के तौर पर मिले।

तो कभी कुछ गरम। पर कपनी जो कुछ भी रिआयतें चाहती थी, वे उसे मिलने वाली न थी। एकाध वार उसकी ओर से उसके वकील ने बादशाह की दुहाई भी दी और समाचार-पत्र न होते हुए भी जहा-तहा जो वाकयानवीस या अखवारनवीस नियत थे, उनकी जेब गरम कर कपनी ने उनके द्वारा अपनी फरियाद भी दिल्ली तथा मुर्शिदाबाद तक पहुचवाई। एक अवसर पर हुगली का वाकयानिगार अपनी रिपोर्ट में लिखता है—

"अगर मुर्शिदाबाद-कचहरी का चुगी का दारोगा, सम्राट् या दीवान की आज्ञाओ के विरुद्ध अगरेजो से चुगी लेना, बन्द नही करता और जो चुगी ली जा चुकी है, उसे लौटा नही देता, तो सभव है कि बहुत से व्यापारियो को हानि उठानी पडे। कारण कि अगरेजो के व्यपार को रोक देने का अर्थ है वगाल-मात्र के व्यापार को रोक देना।" ५ मई १७१५ के लेखे में लिखा है—"जो वात वाकयानवीस लिख चुका है उसी को सवानेहनवीस दोहरा चुका है।"

नवम्बर १७१७ में सरमन कलकत्ते लौटा। जितने शाही आज्ञापत्र जारी हुये थे, उन्हें वह साथ लेता आया। उनकी नकलें पदाधिकारियो के पास दिल्ली से पहले ही पहुच चुकी थी। कपनी की ओर से दूत-दल और उसके साथ आने वाले आदेशपत्रो के स्वागत की धूमधाम से तैयारिया की गई। अगवानी के लिए कपनी के छोटे-वडे कर्मचारी, व्यापारी तथा अन्य नागरिक हुगली से कुछ दूर आगे, त्रिवणी तक गये। दूत-दल को वहा वधाइया दी गई, सम्राट् को धन्यवाद दिये गये। फिर कलकत्ते में आनन्दोत्सव मनाया गया। एक हजार रुपया खर्च कर इसके लिए एक शामियाना तैयार कराया गया था। सभा में कपनी की ओर से अध्यक्ष ने फिर सम्राट् के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उन्हें अनेकानेक धन्यवाद दिये। आमन्त्रित व्यक्तियो मे हुगली के वाकयानिगार, सवानेहगार, हरकारा-दारोगा इत्यादि भी थे। दिल्ली से एक गुर्जवरदार भी साथ आया था। उसे त्रिवेणी में ही २,०००) सम्राट् की भेंट के तौर पर दिया जा चुका था और वाकयानिगार उसकी खवर भेज चुके थे। कलकत्ते में गुर्जवरदार को ५००), एक सरोपा, एक थान कमखाव, पगडी के लिए वीरा और एक पटका दिये गये। रह गये सवाददाता और हरकारा दारोगा।

वाकयानिगार को मिले:—

६ गज सुर्ख बनात।

२ थान नारगी बनात।

२ थान साधारण हरे रग का कपड़ा।

सवानेहगार को मिले—

१ थान नारगी बनात।

१ थान साधारण हरे रग का कपडा।

हरकारा-दारोगा के हिस्से में नारगी बनात और उस हरे रग के कपडे के दस दस गज आये।

बगाल, बिहार आदि के लिए फरमान और हस्बुल्हुक्म पहुँच गये—कपनी इनके मिलने के उपलक्ष्य में बडे समारोह से उत्सव मना चुकी—तोपो की बाढ़ें दग चुकी—आतिशबाजी छोडी जा चुकी—सवाददाता बढा-चढा कर इन सारी घटनाओं की खबर मुर्शिदाबाद और दिल्ली भेज चुके, पर इनका मुर्शिदकुली खा पर कुछ भी असर न हुआ। कपनी को नि शुल्क व्यापार करने देना तो वह खुद मंजूर कर चुका था, पर बाकी बातें जहा थी, वही रही। न तो कपनी के लिए टकसाल का दरवाजा खुला, न वह अपनी जमींदारी की हद की ही बढा सकी।

फिर भी सरमन-कसौठी निष्फल रही, यह इतिहासकारो को स्वीकार नहीं हो सकता। मुर्शिदकुली खा ने कंपनी को उससे तात्कालिक लाभ नहीं होने दिया, पर कपनी को बराबर यह कहने रहने का मौका तो मिल गया कि उसने सम्राट् के आदेश की अवहेलना कर अगरेजो के साथ घोर अन्याय किया, उन्हें गहरी हानि पहुँचाई। विल्सन ने लिखा है कि जब कई बरस बाद क्लाइव ने खुल्लमखुल्ला तलवार सूत कर इस देश पर कब्जा करना शुरू किया, तब उसे अपनी कार्रवाइयों के लिए यह बहाना या दलील अच्छी मिल गई कि सरमन ने कपनी के लिए जो अधिकार दिल्ली से प्राप्त किये थे, उनसे भी एक प्रान्तीय

शासक की निरकुशता के कारण वह वञ्चित ही रही। उस दूत ने जो काम शुरू किया था, उसे इस 'रणवीर' ने पूरा किया।

(२) पृष्ठ ७०—अब्दुल्ला खा की प्रकृति नरम थी, हुसैन अली खा की गरम। पर दोनो का सास्कृतिक स्तर ऊँचा था और दोनो ही स्पष्टवक्ता थे। उनके विरुद्ध जो मन्त्रणायें होती, जो चालें चली जाती—उनकी जानकारी रखते हुए भी उन्होंने कभी कपट या कुटिलता से काम नही लिया। वे दोनो भयंकर से भयंकर परिस्थिति का सामना करने के लिए वरावर तैयार रहते, पर अपने तई इस वात की कोशिश करते कि खून-खरावी न हो। यह उनकी भलमनसाहत कही जाय, या उनकी कमजोरी, इतना जरूर है कि पदाधिकारियो के चुनाव या नियुक्ति के सम्वन्ध में उन्होने कडाई से काम नही लिया और फर्रुखसियर को वहुत कुछ निरकुश रहने दिया। नतीजा यह हुआ कि दरवार उनके दुश्मनो का अखाडा वन गया और इन लोगो ने वादशाह के कान भरते भरते उसके और सैयद-वन्धुओ के वीच एक चौडी खाई खोद दी।

सैयद-बन्धुओ के शत्रुओ में —

(क) खानदौरा का पूरा नाम था समसामुद्दौला खानदौरा वहादुर मसूरजग। इसके पूर्वज वदख्शा से आकर आगरे के पास वस गये थे। खानदौरा विद्वान् तो न था, पर दरवार के तौर-तरीके वहुत अच्छी तरह जानता था। उसकी वाक्पटुता भी ऊँचे दर्जे की थी। षड्यन्त्रो में खूब भाग लेता, पर मार-काट से वहुत घवराता। १७३९ में नादिरशाह के साथ होने वाली लडाई में इसे मजवूर होकर मोरचा लेना पडा और उसी लडाई में यह खेत आया।

(ख) निजामुल्मुल्क का नाम पहले मीर कमरुद्दीन था, फिर चिंकिलिच खा पडा। इसके पूर्वज समरकद से आये थे। गोरखपुर में फौजदार रह कर इसने नाम कमाया और आगे वढते-वढते दक्खिन का सूवेदार नियुक्त हुआ। पर जव यह पद हुसैन अली खा को मिल गया, तव यह चोट खाकर दिल्ली लौट आया और सैयद-वन्धुओ के विरोधी-दल में सम्मिलित हो गया। जिस समय फर्रुखसियर सिंहासन-च्युत हुआ, उस समय यह मुरादावाद का फौजदार था।

सैयद-बन्धुओ के विनाश के बाद यह कुछ समय तक वजीर रहा, फिर दक्खिन जाकर स्वतन्त्र-सा हो गया। इतिहास में यह आसफजाह निजामुल्मुल्क के नाम से विशेष प्रसिद्ध है। हैदराबाद के वर्तमान निजाम-वंश का यही प्रवर्तक था।

(ग) अमीन खा निजामुल्मुल्क का चचा और तूरानी-दल का प्रधान नेता था।

सैयद-बन्धुओ ने फर्रुखसियर से कई बार कहा कि, "यह स्पष्ट है कि आप हमारे किये हुए उपकार को भूल गये और अब हमारे दुश्मनों की ओर हो रहे है। ऐसी हालत में आपको हमारा इस्तीफा मजूर कर हमें अपने गाव चले जाने की इजाजत दे देनी चाहिए। अगर हमें अपनी सेवा में रखना ही है, तो हमारे दुश्मनो से कहिए कि एक बार मैदान में मुकाबले पर आयें और अपने जौहर दिखायें। शर्त यह होगी कि जो दल मैदान मार ले, वही दरबार में रहने पावे; जो हार जाय, उसे दरबार-निकाला मिल जाय। अगर आप को यह भी मजूर न हो, तो हमें बल्ख और बदख्शा पर चढाई करने की इजाजत मिल जाय। हमारी प्रार्थना यही है कि अगर हम उन्हें जीत लें, तो हम उन दोनो प्रदेशो के जागीरदार माने जायें।"

पर इनमें से कोई बात फर्रुखसियर को मंजूर होने वाली न थी। नैतिक बल के अभाव के कारण वह इतना भी स्वीकार न करता कि उनके प्रति उसके मन में किसी प्रकार का असन्तोष था। बराबर यही कहता कि, "आप अपनी परछाई से डरते हैं। दरबार में न तो आपका कोई शत्रु है, न आपके विरुद्ध किसी प्रकार का षड्यन्त्र है। आप पर मेरा पूरा विश्वास है। भला ऐसी कृतघ्नता मुझसे कभी हो सकती है कि मैं आपकी सेवाओ को भूल जाऊं! आप जहा है, वही बने रहें, इस्तीफा देने या बल्ख-बदख्शा जाने की कोई जरूरत नही।"

फर्रुखसियर एक ओर तो हुसैन अली खा को पुरस्कृत करने के बहाने कही उच्च पदाधिकारी बनाकर भेजता, दूसरी ओर किसी सरदार को इनाम-इकराम का प्रलोभन देते हुए लिखता कि देखना, यह दिल्ली जिन्दा न लौटने पावे। जब ऐसे खत सैयद-बन्धुओ के हाथ लग जाते और वे सम्राट् से उनका

जिक्र करते, तब वह उनके लेखक या प्रेषक होने से साफ इनकार कर जाता और कहता कि जिस खत की आप बात कर रहे है, वह जरूर जाली होगा। हमने तो स्वप्न में भी कभी किसी को ऐसा आदेश नही दिया !

सैयद-बन्धुओ के दरबारी शत्रुओ का यह हाल था कि वे पीठ पीछे बातें बघारते, जहर उगलते, तरह-तरह की बदिशें बाधते, पर उनमें आमने-सामने हो कर उनका विरोध या उन पर वार करने की हिम्मत करने वाला कोई नही था। वे सब के सब, एक इतिहासकार के शब्दो में,'शेरे-कालीन' थे,'मर्दे-मैदान' नही। "यो आबरू बनावे जग में हजार बाता, जब तेरे आगे आवे गुफ्तार भूल जावे"— प्रत्येक का यही हाल था।

अब्दुल्ला खा का पल्ला हलका करने के लिए हुसैन अली खा दक्खिन का सूबेदार बनाकर उधर भेज दिया गया। इधर दिल्ली में उनके विरुद्ध सगठन होने लगा—अब्दुल्ला खा ने आत्म-रक्षा के लिए जो दीवार खडी कर रखी थी उसमें छिद्र ढूढे जाने लगे। हुसैन अली खा को सम्राट् ने अपनी आखो से आसू बहाते हुए विदा किया था, यद्यपि उन आसुओ से वह धोखे में आने वाला न था और चलते समय यह स्पष्ट कह गया था कि अगर मेरे भाई पर किसी प्रकार का आघात हुआ तो औरगाबाद से दिल्ली पहुँचना मेरे लिए बीस दिनो से अधिक का काम न होगा।

दो-तीन साल तो अब्दुल्ला खा ने किसी तरह बिताये, फिर जब वह दुश्मनो की हरकतो से तग आ गया, तब उसने अपने छोटे भाई को लिखा कि प्याला अब छलकने पर है, जितना जल्द हो सके, तुम यहा आ जाओ। खत मिलते ही हुसैन अली खां ने मराठो से सन्धि कर उन्हें चौथ देना स्वीकार कर लिया और रकाब में पैर रखकर अपने भाई की रक्षा के लिए रवाना हो गया। उसके साथ सहायको के रूप में प्राय पन्द्रह हजार मराठे घुडसवार भी थे। आनन-फानन वह १६ फरवरी १७१८ को दिल्ली जा पहुँचा और पहुँचते ही फर्रुखसियर के होश ठिकाने करने के काम में लग गया। जब उसने देखा कि कोरी बातो से कुछ बनने वाला नही, तब उसने लाल किले को घेर लिया और अपने बड़े भाई के द्वारा समझौते की बातें कराने लगा—इस आशा स कि शायद फर्रुखसियर अब भी होश में आ जाय !

पर वह आने वाला न था। "विनाशकाले विपरीतवुद्धि"—वह इसका एक खासा अच्छा उदाहरण है। किले में वस्तुत कैदी होते हुए भी, वह अपने को क्या समझे वैठा था, यह कहना तो कठिन है, पर जो अब्दुल्ला खा के मुह पर उचित वात कहने का भी साहस न करता, वही अव आपे से वाहर होकर उसे गालिया भी दे वैठा। "तेरे गांव में मै गधो के हल न चलवा दू और तेरी वहू-वेटियो की सुथनियो में चूहे न डलवा दू, तो मै तैमूरलग का सच्चा वशज नही!"

पर होने वाला कुछ और ही था। २७ फरवरी को हुसैन अली खा की फौज ने किले को घेर लिया था और उसी दिन फर्रुखसियर से अब्दुल्ला खा की यह आखिरी मुलाकात थी। भय और क्रोध ने फर्रुखसियर को विवेकहीन कर दिया था। एक वार उसके मन में आया भी कि आत्मसमर्पण कर दू तो यह विचार कर कि अव उसे अब्दुल्ला खा के पास जाकर दया-भिक्षा मागनी पड़ेगी, उसने वह इरादा छोड दिया। किले के भीतर भी सैयद-वन्धुओ के सैनिको और सहायको का कडा पहरा था। इन सहायको में जोधपुर के महाराज अजित सिंह,* कोटा के महाराव भीमसिंह हाडा† और नरवर‡ के गजसिंह नरवरी मुख्य थे। अजितसिंह फर्रुखसियर को अपनी लडकी का डोला दे चुके थे, पर उन्होंने साथ वरावर सैयद-वन्धुओ का ही दिया। जयपुर के विराज राजा सवाई जयसिंह § उन दोनो भाइयो के विपक्षी थे, और दिल्ली में यह आशा की जाती थी कि वह वहां पहुँचकर फर्रुखसियर की रक्षा करेंगे। पर इस मौके पर वह उधर जाने से रह गये।

---

* महाराज जसवन्त सिंह के पुत्र, जिन्हें राठोर सरदार दुर्गादास ने औरगजेव के चगुल में फसने से वचाया था। यह मुहम्मद शाह के समय में अपने ही पुत्र वख्त सिंह के हाथो मारे गये।

† कोटा राज्य के सस्थापक माधोसिंह हाड़ा के वशज।

‡ आगरा-प्रान्त के अन्तर्गत यह सभवतः राजा रामदास नरवरी के वशज थे।

§ जयपुर को इन्ही ने वसाया। वडे ज्योतिष-प्रेमी थे और इन्होने कई मान-मन्दिर वनवाये।

घटनाओ की रफ्तार बहुत तेज़ हो चली थी। २८ फरवरी को अब्दुल्ला खा ने कुछ कागजो पर दस्तखत कराने के लिए फर्रुखसियर को जनाने में बुलावा भेजा तो उसने बाहर निकलने से इनकार कर दिया। इस पर कुछ आदमी एक दूसरे राजकुमार को ले आने के लिए भेजे गये। इसका नाम बेदारबख्श था और जो राजकुमार बच रहे थे, उनमें यह सब से योग्य समझा जाता था। पर स्त्रियो ने यह समझकर कि सैयद-बन्धु एक-एक कर सभी शाहजादो को खतम करना चाहते हैं, उसे ऐसी जगह छिपाया कि उसका कही पता न चला। इतने में खोजने वालो की नजर एक दूसरे राजकुमार रफी-उद्दरजात पर पडी और वे उसी को लेकर चल दिये। बादशाह के दस्तखत हुए बिना कई जरूरी काम रुके पडे थे, इसलिए रफी-उद्दरजात को चटपट तख्तताऊस पर बैठाकर सम्राट् घोषित कर दिया गया। फिर राजा रतनचन्द, राजा बख्तमल, दीनदार खा, नज्मुद्दीन खां आदि सरदारो को हुक्म हुआ कि जैसे हो सके, फर्रुखसियर को यहा लाकर हाजिर करो। इनके साथ चार सौ सिपाही भी दिये गये। ये लोग अन्त पुर में घुसे, तो वह स्त्रियो के आर्तनाद से प्रतिध्वनित हो उठा। फर्रुखसियर ढाल-तलवार लिये किसी कमरे में बैठा था। उसने प्राणो की ममता छोडकर इन लोगो का अकेला मुकाबला भी किया, पर उसे गिरफ्तार होते देर न लगी। स्त्रियो ने उसे बचाने की भरपूर चेष्टा की, पर उससे होना ही क्या था! हुक्मी बन्दे उसे घसीट कर बाहर ले ही गये। जो अभी थोडी देर पहले तक भारत का सम्राट् था, उसे नगे पाव और नंगे सिर ही नही जाना पडा, कुछ गालिया भी सुननी पडीं, कुछ ठोकरें भी खानी पडी।

दीवानेखास में फर्रुखसियर अब्दुल्ला के सामने पेश किया गया और उसके हुक्म से अधा कर दिया गया। इसके बाद वह तिरपौलिया की कालकोठरी में पहुँचाया गया, जहा प्राय दो महीने बाद उसे जल्लादो के हाथ मरना पडा। उसके काले कारनामो को याद कर इतिहासकार को कहना पडता है कि अपने ही छोटे भाई से लेकर सिक्ख-जाति के धर्मवीर बन्दा तक सैकडो आदमियो के नृशसतापूर्वक बहाये हुए खून से हाथ लाल करने वाले इस नर-पिशाच के साथ दैव ने किसी प्रकार का अन्याय नही किया।

इस क्रान्ति के वाद महाराज अजितसिंह अपनी वेटी इन्द्रकुवर को दिल्ली से जोधपुर ले गये। उसके साथ एक करोड रुपये से अधिक की निजी सम्पत्ति भी गई। जोधपुर में इन्द्रकुवर की 'शुद्धि' हुई और उसे अपने पिता के घर रहने का अवसर मिला। अजितसिंह ने जो कुछ किया, वह मुसलमानो की दृष्टि में मुगलवश-परम्परा और मुगल-राजसत्ता का घोर अपमान था। पर आलोचक आखिर करते ही क्या? उन्होने अजितसिंह को 'दामादकुश' कहकर सन्तोष किया।

रफी उद्दरजात की उम्र कुल बीस साल होते हुए भी वह ससार में अधिक समय तक रहने वाला न था। उसे तपेदिक की वीमारी थी और तख्तनशीन होने के चार महीने के भीतर ही उसे काल-कवलित होना पडा। उसके वाद रफी-उद्दौला सम्राट् वनाया गया। यह वहादुर शाह का पोता था—अर्थात् रफी उश्शान का वेटा। पर स्वास्थ्य सन्तोषजनक न होने के कारण इसे भी तीन ही चार महीने वाद परलोक सिधारना पडा। २८ सितम्वर १७१९ को वहादुर शाह के चौथे लडके खुजिस्ता अख्तर का वेटा रोशन अख्तर—मुहम्मद शाह के नाम से—अठारह साल की उम्र में अव भारत का सम्राट् हुआ। इसी के राज्य-काल में पहले हुसैन अली खा की हत्या हुई, और फिर कुछ समय वाद अव्दुल्ला खा की कारागार में मृत्यु। इसके वाद निजामुल्मुल्क का चचा मुहम्मद अमीन खा वजीरे आजम हुआ और इसके मर जाने पर १७२२ में स्वयं निजामुल्मुल्क। पर प्राय एक ही साल वाद यह दक्खिन चला गया और इसकी जगह मुहम्मद अमीन खा का वेटा कमरुद्दीन खा प्रधानमत्री हुआ।

(३) पृष्ठ १०७—नादिरकुली नाम का एक तुर्कमान दरिद्र कुल में जन्म लेने पर भी, योग्यता के वल से, ईरान का वादशाह वन गया। वही शहशाह नादिरशाह के नाम से मशहूर हुआ। उसका अफगानो से वैर था और कन्धार से भागे हुए अफगानो को मुगल-सरकार हिन्दुस्तान में शरण न देती तो नादिरशाह इस मुल्क पर चढाई न करता। उसने दो-तीन दूत दिल्ली भेजे, और मुहम्मदशाह को लिखा कि आप हमारे साथ मित्र का-सा व्यवहार नही कर रहे है। पर दिल्ली-दरवार से एक साल तक कोई जवाव न मिला। फिर नादिरशाह ने चढाई कर

दी। कावुल-प्रान्त इसी देश के अन्तर्गत था, पर वहा आय से व्यय अधिक हुआ करता था, इसलिए टोटा पूरा करने के लिए दिल्ली से कुछ लाख रुपये हर साल वहा भेजे जाते थे। इधर शासन-सम्वन्धी शिथिलता के कारण यह रकम नियमित रूप से नही भेजी जा रही थी, जिसके फलस्वरूप वहा के सैनिको या रक्षको का वेतन पाच साल से नही चुका था। नादिरशाह का विरोध नही के वरावर हुआ। उसने पेशावर और लाहौर पर वात की वात में कब्जा कर लिया और ११ फरवरी १७३९ को वह सरहिन्द-अम्वाला-शाहावाद होता हुआ करनाल पहुँच गया।

१३ फरवरी को होनेवाली लडाई में मुहम्मदशाह को बुरी तरह हारना पडा। खानदौरा, अपने तीनो वेटो के साथ, खेत आया, अवध का सूवेदार सआदत खा घायल होकर गिरफ्तार हुआ, नादिरशाह को यह कहने का मौका मिला कि यहा के लोग मरना जानते है, लडना नहीं जानते। मुहम्मदशाह भी करनाल में ही था। दूसरे ही दिन उसने निजामुल्मुल्क को नादिरशाह के पास भेजा। सन्धि-सम्वन्धी वातचीत होने लगी। नादिरशाह की माग पचास लाख रुपये की हुई—जिसमें २० लाख वह तत्काल चाहता था और बाकी ३० लाख कावुल पहुँच जाने तक। उसकी इच्छा दिल्ली की ओर वढने की न थी। निजामुल्मुल्क ने उसकी शर्तें मजूर कर ली और लोगो ने समझ लिया कि वादल हट चले, आसमान साफ हो गया।

लेकिन निजामुल्मुल्क के दुश्मन भी थे। जव उसे शाबाशी मिली और उसका वेटा फ़ीरोज जग, खानदौरा की जगह, मीर वख्शी कर दिया गया, तव वे जल-भुन कर खाक हो गये। सआदत खा ने निजामुल्मुल्क की शिकायत करते हुए उससे कहा कि "आपने धोखा खाया। अगर आप दिल्ली चलें तो जवाह-रात के अलावा आपको २० करोड रुपये नकद मिल सकते हैं।" इससे नादिर शाह की आखें खुल गई, और वह दिल्ली की ओर चल पडा।

९ मार्च को उसने सदल-वल दिल्ली में प्रवेश किया और लाल किले में जाकर डेरा डाल दिया। मुहम्मदशाह उसके स्वागत की तैयारी के लिए वहा पहले ही पहुँच चुका था। सआदत खा डपोरसख सावित हुआ और नादिरशाह

के फटकारने पर उसने आत्महत्या कर ली। १० मार्च को बाजार में यह अफवाह उडी कि नादिरशाह मारा जा चुका है। कुछ नागरिक उत्तेजित होकर ईरानी सैनिको पर टूट पडे और प्राय तीन हजार आदमी उनकी तलवारो के शिकार हो गये। नादिरशाह को इस पर क्रोध हो आना स्वाभाविक ही था और उसने खून का वदला खून से लेने का निश्चय कर, दूसरे ही दिन, कत्लेआम का हुक्म दे डाला, जिसके फलस्वरूप कम से कम बीस हजार दिल्ली-निवासी मौत के घाट उतार दिये गये।

नादिरशाह दिल्ली में प्राय. दो महीने रहा। २६ मार्च को एक मुगल-राजकुमारी के साथ उसके छोटे बेटे का ब्याह हुआ। उसका वाकी सारा समय राजा और प्रजा के रक्त-शोषण में ही बीता।

दिल्ली–निवासियो की मुहल्लेवार तालिकायें तैयार कराई गईं और जिससे जो कुछ वसूल किया जा सकता था, जबरन वसूल कर लिया गया। इस जोर-जबर्दस्ती और लूट-पाट का नतीजा यह हुआ कि हजारों घर बरबाद या खाली हो गये। कोहनूर और तख्त-ताऊस तो हडप ही लिये गये, शाही खजाने में भी जो कुछ हाथ लग सका, ले लिया गया। आर्थिक के अलावा भारतवर्ष की राजनीतिक हानि भी हुई। काश्मीर से सिन्ध तक जो प्रदेश सिन्धु नदी के पश्चिम पडता था, उस पर नादिरशाह का आधिपत्य हो चला। कुछ समय बाद पजाब को भी यही दशा हुई। मुगल सल्तनत को जबर्दस्त धक्का पहुचाकर नादिरशाह ने ५ मई १७३९ को अपने घर की राह ली। एक इतिहासकार का अनुमान था कि वह प्राय ७० करोड की धन-सम्पत्ति अपने साथ ले गया।

(४) पृष्ठ १०८—अपने "हिन्दी के निर्माता" नामक ग्रंथ के प्रथम भाग में, बाबू श्यामसुदर दास राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद के सम्बन्ध में लिखते है —"सुप्रसिद्ध रणथभौर गढ में धधार नाम का एक परमार राजा राज्य करता था। उसके पुत्र का नाम गोखरू था। हमारे राजा साहब इसी गोखरू गोत्र में थे। बादशाही समय में इनके पूर्वज दिल्ली में जौहरी का व्यवसाय करते थे। वे नादिरशाही में दिल्ली से भागकर मुर्शिदाबाद

चले गये। नवाव कासिमअली खा के अत्याचार से राजा शिवप्रसाद के पितामह राय डालचद काशी में आ वसे। उनके पुत्र वावू गोपीचद थे जिनके पुत्र हमारे चरितनायक राजा शिवप्रसाद थे। राजा साहव का जन्म मिती माघ सुदी २ सवत् १८८० मे हुआ था।"

(५) पृष्ठ ११८--गिरिया की लडाई के दिन, आलमचन्द के साथ, शायद फतहचन्द भी सरफराज खा की ओर से मैदान में मौजूद थे। "मुताखरीन" में लिखा है कि—"एक ओर सन्धि की वात चल रही थी, दूसरी ओर फतहचन्द अलीवर्दी खा के सरदारो को फोडने की चेष्टा कर रहे थे। उनकी ओर से प्रत्येक सरदार को कहलाया गया कि तुम अलीवर्दी खा को गिरफ्तार करा दो। जिसका जैसा पद था, उसे वैसी ही रकम मिलने की आशा दिलाई गई। विश्वास कराने के लिए फतहचन्द ने उनके पास दस्तखती पुरज़े भी भेजे। उन पर लिखा था कि इस पुरजे की रकम का भुगतान मिलेगा, पर उसी हालत में जव अलीवर्दी खा को गिरफ्तार कर उसके सैनिक सरदार सरफराज खा के हवाले कर देंगे।" कई सरदारो के पास ऐसे पुरजे पहुँचे, जिनमें मुस्तफा खा भी था। मुस्तफा, कुछ सरदारो के साथ, अलीवर्दी खा के पास गया और उन पुरजो को दिखाकर कहा कि—"अगर हम लोगो को लडना है, तो अव इसमें जरा भी देर न करनी चाहिए। कल सुवह होते ही लडाई छिड जाय, नही तो परसो वात विगड जायगी।" अलीवर्दी खा को मुस्तफा की सलाह वहुत ठीक जँची और उसने उसी दम हुक्म दिया कि सारी फौज कल सुवह चोट करने के लिए तैयार हो जाय। यहा प्रश्न उठता है कि "क्या "मुताखरीन" का वयान सच्चा है और क्या फतहचन्द ने सचमुच सरफराज खा की ओर से वैसा काम किया था?" "मुताखरीन" के अनुवादक का कहना है कि वात ठीक उलटी हुई थी। उसने यहा फुटनोट देकर लिखा है कि, "मै कुछ दिनो तक मुर्शिदावाद में रह चुका हूँ और मै जानता हूँ कि अलीवर्दी खा ने फतहचन्द की मार्फत सरफराज खा की फौज को रिश्वत दिलाई थी। जिस समय मै यह अनुवाद करने में लगा था, उस समय सरफराज खां की फौज का एक सरदार जिन्दा था। उसने मुझसे कहा था कि तोप को

गोला-वारूद की जगह कूडा-करकट से भरने के लिए मैंने खुद चार हजार रुपये पाये थे।" इस वात की पुष्टि और प्रमाणो से भी होती है। ऐसी अवस्था में "मुताखरीन" की वात का अर्थ यही हो सकता है कि फतहचन्द ऐसे पुरजे वटवा कर किसी की सहायता कर रहे थे तो अपने 'मित्र' अलीवर्दी खा की, न कि सरफराज खा की। जान पड़ता है कि उन्होने अलीवर्दी खा की सम्मति या अनुरोध से ही यह काम किया था। अलीवर्दी खा लडाई शुरू करने के लिए कोई बहाना ढूढ रहा था और जव उसने नवाव की ओर से किसी तरह की छेड-छाड होते न देखी, तव उसने फतहचन्द से वैसे पुरजे लिखवाकर अपनी फौज में बँट-वाये और एक हीला-हवाला खडा कर लिया। यदि फतहचन्द ने सचमुच सरफराज खा की ओर से वैसी चेष्टा की होती तो रण में विजय लाभ करने वाला अलीवर्दी खा उनसे इसका वदला लिए विना न रहता। पर इतिहास का साक्ष्य तो यह है कि अलीवर्दी खा आजन्म अपने को फतहचन्द का ऋणी मानता रहा और दोनो में कभी मनमुटाव तक न हुआ। (मि० लिट्ल)

(६) पृष्ठ १४७—"रियाजुस्सलातीन" के अगरेजी अनुवादक मौलवी अब्दुस्सलाम ने यह मत प्रकट किया है कि मराठो के आतक से वहुतेरे कुलीन मुसलमान पश्चिम और दक्खिन वगाल छोडकर पूरव और उत्तर वगाल में जा वसे और यही कारण है कि पश्चिम वगाल में—तथा मुर्शिदावाद के आसपास भी—हिन्दुओ से मुसलमानो की सख्या इतनी कम है। पर अठारहवी शताब्दी के मुसलमान इतिहासकारो ने भी जो कुछ लिखा है, उससे इस मत की पुष्टि नही होती कि मराठो के डर से भागनेवाले अधिकतर मुसलमान थे। आखिर पूरव या उत्तर वगाल के मुसलमानो में ऐसे भागे हुये सरदारो, जागीरदारो या अहलकारो के वशज निकलेंगे ही कितने ? जगत्सेठ मुर्शिदावाद छोड़कर ढाके चले गये थे। पाइकपाडा राज्य के स्वत्वाधिकारी पहले मुर्शिदावाद जिले के काडी इलाके में रहते थे, पर उन्हें भी मराठो की दहशत से कुछ समय के लिए रामपुर वोलिया भाग जाना पड़ा था। वगाल में कही हिन्दुओ की तो कही मुसलमानो की संख्या अधिक होने के कारण चाहे जो भी रहे हो, वे अलीवर्दी खा तो क्या, मुर्शिदकुली खा के समय में भी पुराने हो

चुके थे। मराठो की चढ़ाइयो से कोई नयी बात नही हुई। लूटपाट की दृष्टि से उनके लिए हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—सब एक से ही थे।

(७) पृष्ठ १५०—कलकत्ते के अगरेज कर्मचारियो को मिलनेवाला वेतन इस प्रकार था—

	पौंड	=	रुपया	
गवर्नर	३००	"	२४००	प्रतिवर्ष
बड़ा पादरी	१००	"	८००	"
कौंसिल का प्रत्येक सदस्य	४०	"	३२०	"
सर्जन	३६	"	२८८	"
क्लर्क	५	"	४०	"

पर वेतन के अलावा उन्हें कुछ सुविधायें प्राप्त थी, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण यह थी कि वे निजी व्यापार कर सकते थे।

महताबराय

"रात्रिर्गमिष्यति, भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति, हसिष्यति पंकजश्रीः"—
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे
हा हन्त, हन्त, नलिनीं गज उज्जहार !!

पडितराज जगन्नाथ

कंज के कोस मैं भौंर वंध्यो,
अफसोस कियो मन मैं अति ऊवा।
ह्वै है प्रभात, उदै है दिवाकर,
छूटिहौं मैं अलि जाल मैं डूवा।
'वेनी' न सोचेउ मूढ अजौं,
अरु काल को ख्याल न जान्यो अजूवा।
तोरि लई नलिनी गज त्यों,
रहिगो मनको मन ही मनसूवा ॥

'वेनी' कवि

(१)

फतहचन्द के मरने के वाद भी तीनो प्रान्तो पर मराठो क आक्रमण होते ही रहे। कहना चाहिए कि भास्कर पडित को मारकर अलीवर्दी खा ने अपनी उलझन सुलझाई नही, और भी वढा ली। अन्त में उस लेने के देने पडे।

महाराष्ट्र-अध्याय की समाप्ति १७५१ में हुई, यद्यपि इसका यह अर्थ नही कि उडीसा मिल जाने पर मराठे बगाल को भूल गये। उडीसा तो बरसो उनके अधिकार मे रहा ही, बगाल पर भी जब-तब उनके हमले होते ही रहे।

पूरब में कलकत्ता, पश्चिम में पलामू, उत्तर मे भागलपुर और दक्षिण में कटक, यह मराठो की चकफेरियों की चौहद्दी थी। इसके भीतर वे अपन घोडे दौडाते, शहर और गाँव लूटते, लोगों को तरह-तरह से सताते, पर अलीवर्दी खाँ को आग बरसाने पर उद्यत देखते ही नौ दो ग्यारह हो जाते।

जब मराठे बगाल में पहले पहल आये थे, तब हिन्दू जनता को लगा था कि वे मुसलमानी राजसत्ता का अन्त कर हिन्दू-धर्म का उद्धार करने आये थे। पर थोडे ही समय में उसकी आँखें खुल गई थी और उसने देख लिया था कि ये मराठे रक्षक नही, भक्षक—बल्कि आततायी थे। फिर तो लोगो को सहानुभूति की जगह घृणा होने लगी थी और अली-वर्दी खा को उनका पूरा सहयोग मिलने लगा था।

मराठो के अत्याचार कई प्रकार के होते थे। गाँव के गाँव जला देना, लोगो का सर्वस्व लूट लेना, निरपराधियो के भी नाक-कान काट लेना—यह सभी उनके काले कारनामो मे शामिल था। किसानो के जहाँ-तहाँ भाग जाने या दिन-रात आतक बना रहने के कारण खेती-बारी, वाणिज्य-व्यापार को बहुत भारी धक्का लगा। हालत नाजुक थी, इसलिए धनी व्यक्ति भी रुपया और सोना-चाँदी दबाकर बैठ गये। जगत्-सेठ का भी यह हाल था कि वह रुपये की माँग पूरी नहीं कर पाते थे। टकसाल के लिए जितनी चाँदी चाहते, उतनी उन्हे विदेशी

व्यापारियों से प्राप्त नही होती थी। वह चाँदी मुर्शिदाबाद न जाकर और ही कही चली जाती थी। उधर सरकार की आय घटती जा रही थी, सैनिक व्यय वढ़ता जा रहा था। अलीवर्दी खाँ को मराठो और अफगानो से पार पाने के लिए जब-जब रुपये की जरूरत पडी, तब-तब उसको अपना खजाना प्राय. खाली मिला। काम चला तो कर्ज या चदे से जिसके लिए उसे कभी तो सेठ-साहूकारो, ज़मीदारो और अपने रिश्तेदारो को फुसलाना पडा और कभी उन पर अनुचित दबाव डालना पडा। आये दिन ईस्ट इडिया कंपनी और दूसरी कम्पनियाँ जगत्-सेठ से कर्ज माँगती रहती थी। वह खीजते, भौंह तानते, कभी सहायता करते, कभी कुछ भी देने से साफ इनकार कर देते। मराठों से १७५१ में सधि हो जाने तक यह अर्थ-सकट बना ही रहा।

फिर भी यह याद रखना चाहिए कि मराठे कभी गगापार नही गये। इसलिए पूरब बंगाल और उत्तर विहार उनसे सुरक्षित ही रहे। १७४५ में मराठों और अफगानो का मेल हो जाने पर राजनीतिक स्थिति और भी विकट हो गई। अगर मुस्तफा खाँ मारा न जाता और १७४८ में अलीवर्दी खाँ अफगानो को परास्त कर, अपने मार्ग के दो काँटो में से एक को सदा के लिए नष्ट न कर देता, तो बंगाल और विहार में मराठे राज्य करते या अफगान, या दोनों ही, यह कहना तो कठिन है, पर इसमे सदेह नही कि कुछ समय के लिए गगा के दोनो ओर लूट-मार का वाजार गरम हो जाता और प्रजामात्र के कष्ट की कोई सीमा न रहती।

अलीवर्दी खाँ और मुस्तफा खाँ का झगडा भास्कर पत की हत्या के वाद शुरू हुआ। मुस्तफा खा ने अलीवर्दी खाँ को उसके कौल-करार की

याद दिलाकर उससे बिहार की नायब निजामत माँगी और अलीवर्दी खाँ ने उसे देने से इनकार कर दिया। बहुतेरे सदेसे भुगते, लोगो ने मुस्तफा खाँ को समझाने-बुझाने की बहुत कोशिश की, पर उसने बिहार के बदले और कुछ भी इनाम-इकराम के तौर पर लेना स्वीकार नही किया। अलीवर्दी खाँ बात का धनी तो न निकला, पर अफगानो को छोडकर और किसी की भी सहानुभूति मुस्तफा खाँ के साथ नही हुई। उसे जो कुछ पद-प्रतिष्ठा प्राप्त थी, वह अलीवर्दी खाँ की ही कृपा का फल था। फिर उसने बिहार-जैसा प्रान्त पाने लायक कोई खैरख्वाही भी तो नही की थी। भास्कर पन्त को फँसा कर मरवा डालने की जो कीमत वह माँग रहा था, वह इतनी ऊँची थी कि लोगो ने यही कहा कि मुस्तफा खाँ लोभ से अधा हो गया है, उसके दुराग्रह की उपेक्षा करना ही अलीवर्दी खाँ का कर्तव्य है।

बात यहाँ तक बढी कि मुस्तफा खाँ ने पहले तो दरबार में जाना-आना छोड दिया, फिर एक दिन नौकरी से इस्तीफा देकर खुल्लम-खुल्ला बगावत कर दी और प्राय दस हजार अफगान सवारो के साथ बिहार पर धावा बोल दिया। हाँ, कूच करने से पहले उसने वेतन के हिसाब मे सत्रह लाख रुपये सरकार के जिम्मे बाकी बताकर उसे अदा करा लिया।

जब मुस्तफा खाँ मुगेर पहुँचा, तब पटने से जैनुद्दीन अहमद ने कहलाया कि अगर तुम्हारे पास कोई सनद हो तो दिखा दो, मै यो ही तुम्हारे मार्ग से हट जाऊँगा। मुस्तफा खाँ ने जवाब दिया कि सनद मैं तुम्हें वही दिखाने वाला हूँ जिसे तुम्हारे चचा ने गद्दी छीनते समय सरफराज खाँ को दिखाया था। पटने के पास दोनो के बीच घमासान लड़ाई हुई। कई हिन्दू जमीदारो ने इस अवसर पर जैनुद्दीन अहमद

की मदद की। उनमें मुख्य थे टेकारी के राजा सुन्दर सिंह, सरीस कुटुवा के विशन सिंह और ससराम चैनपुर के पहलवान सिंह। हिन्दू कर्मचारियो में विशेष उल्लेखनीय थे महता जसवन्त नागर, राजा कीर्त्तिचन्द और राजा रामनारायण। लडाई में मुस्तफा खाँ की हार हुई और एक ऑख भी जाती रही। गुलाम हुसैन* इस पर खुशी जाहिर करता हुआ लिखता है कि "मुस्तफा खाँ हजरत अली को और भलाई करनेवालो को बायी आँख से देखा करता था। अगर उसकी दाहिनी आँख फूट गई तो उसके साथ किसी प्रकार का अन्याय नही हुआ।" मुस्तफा चुनारगढ भाग गया। अलीवर्दी खाँ भी पटने जा पहुँचा था। जैनुद्दीन अहमद को साथ लेकर उसने गाजीपुर जिले मे जमानिया तक उसका पीछा किया। जब वह पकडा न जा सका तब अफगानो के उस कस्बे मे आग लगवा दी और पटना होता हुआ मुर्शिदाबाद लौट गया।

चुनारगढ में सुस्ता कर और नई सेना सगठित कर मुस्तफा खाँ ने फिर विहार पर चढाई की। यह दूसरी लडाई शाहाबाद में जगदीशपुर के आसपास हुई। वह चाहता था उस इलाके के जमीदारो को अपने पक्ष मे कर, उनकी आर्थिक सहायता से लडना। मराठो से भी उसकी लिखा-पढी जारी थी और वह उनकी राह देख रहा था। पर जैनुद्दीन अहमद ने राजा सुन्दर सिह, रहीम खाँ रुहेला आदि को साथ लेकर झट सोन नदी को पार किया और ऐसा झपट्टा मारा कि मैदान भी मार लिया। इस बार मुस्तफा खाँ खेत आया। यह २० जून १७४५ की बात है।

---

* "मुताखरीन" का लेखक शीआ था और सभी अफगानो की तरह मुस्तफा खाँ सुन्नी।

उसका सिर तो काट कर दिल्ली भेज दिया गया और धड के दो टुकड़े कर दोनो पटने में दो जगह गाड दिये गये।

भास्कर के खून का बदला लूट से लेने के लिए, रघुजी भोसले मार्च १७४५ में ही उडीसा पर चढाई कर चुका था। इसके वाद मुस्तफा खाँ के उकसाने पर वह बंगाल की ओर बढा। अलीवर्दी खाँ की परिस्थिति से लाभ उठाकर मोटी रकम वसूल करने क उद्देश से उसने तीन करोड़ रुपये माँगे। अलीवर्दी खाँ पहले मुस्तफा खाँ से पार पाना चाहता था, इसलिए उसने रघुजी के पास एक दूत भेजकर कहलाया कि मै सधि करने को तैयार हूँ। सदेसे जाने-आने लगे। चाहे इस वातचीत के कारण हुआ हो, चाहे और किसी कारण, रघुजी मुस्तफा खाँ को किसी तरह की मदद न भेज सका। और जब मुस्तफा खाँ मारा जा चुका, तब अलीवर्दी खाँ ने त्योरी वदल कर, रघुजी को कहला दिया कि रुपया दे-लेकर सुलह करना नामर्द का काम है, मै तो लडाई के लिए तैयार बैठा हूँ।

मुस्तफा खाँ की वगावत के समय उडीसा का नायव नाजिम उसका भतीजा अब्दुल रसूल खाँ था। जव वह भी वागी हो गया, तव अलीवर्दी खाँ ने राजा जानकीराम के वेटे दुर्लभराम को वहाँ का शासक बनाकर कटक भेजा। पर वह पूजा-पाठ करनेवाला दुर्वलराम निकला और रघुजी ने उसे अनायास ही कैदकर नागपुर भेज दिया। पीछे जानकीराम के तीन लाख रुपये देने पर दुर्लभराम की रिहाई हुई। उडीसा मराठो के अधिकार में होत हुए भी, अलीवर्दी खाँ ने अव मीर जाफर को नायव-नाजिम नियुक्त किया।

अलीवर्दी खाँ की ओर स चुनौती मिलते ही, रघुजी ने वर्दवान और वीरभूम पर कब्जा कर लिया और मुस्तफा खाँ के वेटे मुर्तजा को

बचाने के उद्देश से मुगेर तथा गया होता हुआ तीर की तरह रोहतास जा पहुँचा। उसका उबार कर और सोन नदी को दोबारा पार कर वह पटने की ओर बढा। तब तक अलीवर्दी खाँ वहाँ पहुँच चुका था। मराठे दक्खिन की ओर सरकन लगे। दोनो दलो की मुठभेड़ सोन के तट पर महीव अलीपुर मे हुई। वहाँ अठारह दिन तक लडाई होती रही, जिसमें रघुजी ने अलीवर्दी खाँ क छक्के छुडा दिये। अलीवर्दी खाँ को सन्देह हुआ कि मीर जाफर और शमशेर खाँ मराठो से साँठ-गाँठ कर चुके है। उसकी बेगम ने सुलह की बातचीत शुरू कराई। पर रघुजी को ऐसी बातचीत का कुछ कटु अनुभव हो चुका था, इसलिए उसमें समय बरबाद न कर, वह मुर्शिदाबाद को लूटने चल पडा।

अलीवर्दी खाँ कब पीछ रहन वाला था? उसन भी धावा मारा। भागलपुर के पास दोनो की छोटी-मोटी लड़ाई भी हुई। रघुजी सथाल परगना और वीरभूम के जगल-पहाड होकर मुर्शिदाबाद की ओर बढ गया। शहर क पास पहुँच कर उसने लूट-मार शुरू करा दी, पर अलीवर्दी खाँ भी दूसरे ही दिन पहुँच गया, इसलिए रघुजी वहाँ से हट कर क़टवा चला गया। वहाँ दिसम्बर १७४५ में दोनों के बीच बडी लडाई हुई, जिसमें अलीवर्दी खाँ ने मैदान मार लिया। रघुजी मीर हबीब की अधीनता में दो-तीन हजार मराठे और छः-सात हजार अफगान सवार छोडकर आप नागपुर लौट गया।

मराठ दबने वाले न थे। बर्दवान, बाँकुड़ा, मेदिनीपुर, कटक, बालश्वर, इन इलाको मे उनके उपद्रव बने ही रहे। १७४७ में रघुजी ने अपने पुत्र जानोजी को बड़ी सेना क साथ कटक भेजा। मीर जाफर अपना कर्तव्य-भार ग्रहण करने वहाँ जा ही रहा था कि मेदिनीपुर में

खबर मिली कि जानोजी चला आ रहा है। वही थम गया। अलीवर्दी खाँ को यह मालूम हुआ तो वह मीर जाफर पर बहुत बिगडा और उसकी मदद मे अताउल्ला खाँ को बर्दवान भेजा। पर यह मीर जाफर के मेल में होकर अलीवर्दी खाँ को ही मार मिटाने के बाँधनू बाँधने लगा। इसलिए नाजिम को खुद उधर जाना पडा। जानोजी की बर्दवान मे हार हुई और वह मेदिनीपुर चला गया।

मराठो के उत्पात आर्थिक दृष्टि से हानिकारक सिद्ध हुए बिना कब रह सकते थे? किसान और कारीगर दोनों चक्की में पिसने लगे थे, इसलिए हर तरह की पैदावार कम होती गई, मजदूरी और दाम बढ चले और वाणिज्य-व्यापार के स्रोत का स्वच्छदतापूर्वक बहना बद हो गया।

चाँदी के अभाव के कारण टकसाल प्राय बन्द रहती थी, इसलिए मुद्रा-स्फीति का प्रश्न तो उठ ही नहीं सकता था। दामो की तेजी की तह में केवल उत्पादन की कमी और वस्तुओ का अभाव था।

मि० लिट्ल लिखते है —

"मारकाट के इतिहास में तो महतावराय या उनके घरान का नामोल्लेख नही के बराबर मिलता है, पर कपनी के कागजात मे उनका बार-बार जिक्र आता है। बगाल में अपना व्यापार जारी रखने के लिए कपनी को जितना कर्ज उनसे इस समय लेना पडा, उतना पहले कभी नही लेना पडा था। इसका कारण स्पष्ट है। और कही भी रुपया उधार मिलना बहुत ही कठिन था। अलीवर्दी खाँ के डर के मारे सेठ-साहूकारो ने अपने-अपने धन को छिपा दिया था। कोई यह बात प्रकट होने देना नही चाहता था कि उसके पास कुछ भी पूजी बच रही है।

वगाल में इस समय मुद्रा का घोर अभाव था। तूफान में पडकर औरों की नावे तो डूब गई थी, एक जगत्-सेठ की नाव चल रही थी। हाँ, उनके लिए भी उसके पालो को बहुत-कुछ समट लेना आवश्यक हो गया था। सरकार की माँग की वह बिलकुल उपेक्षा तो नही कर सकते थे, पर जितना वह चाहती, उतना दे भी नही सकते थे। यही बात प्रान्त के विभिन्न भागो से आने वाली माँग के बार मे भी कही जा सकती थी। अगर वह काम-काज वद कर दत तो अनर्थ पैदा हो जाता, इसलिए उन्होने उसे यथासंभव कम कर दिया था और अपनी नाव को धीमी चाल से ही चला रह थे।"

इधर कपनी की प्राय. प्रत्येक शाखा के लिए कर्ज लेना अनिवार्य हो गया था और प्रत्येक का अनुभव यह था कि कर्ज मिलना पहले की तरह आसान नही था। जुलाई १७४५ में ढाका-फैक्टरी को ५०,०००) की जरूरत पडी, पर फतहचन्द की कोठी से उसे टका-सा जवाव मिल गया—"हमारे पास न मुर्शिदावाद के ढले हुए रुपये है, न आरकट के।" ढाकावालो ने कलकत्ते की कौंसिल को इसकी सूचना दी। कौंसिल ने कासिमवाजार के कर्मचारियो को लिखा कि सेठों से जाकर मिलो और कहो कि अपनी ढाके की गद्दी पर एक लाख की हुडी दे दें। पर सेठो ने भी यही कहा कि ढाके में इतना रुपया ही नही कि हम एक लाख की हुडी दे सकें। फिर कपनी की ओर से कहा गया कि अच्छा जो चाँदी हम वेच चुके है, उसी के पेटे मे इतना दे दीजिये। इसका जवाव यह मिला कि देने के लिए 'सिक्के' कहा है? ज्यो-ज्यो टकसाल में सिक्के ढलते जायँगे, चाँदी की कीमत का भुगतान होता जायगा। ५ अगस्त को कासिमवाजार वालो ने ५०,०००) ढाका-फैक्टरी वालो के पास भेजा और यह भी लिखा कि महतावराय स्वरूपचद वहा अपने

गुमाश्ते को आदेश भेज चुके है, उससे तुम्हें ५०,०००) और मिल जायगा। पर इस रकम के भी मिलने में काफी देर हुई। सितम्बर से पहले वह ढाका-फैक्टरी को प्राप्त न हो सकी।

इसी प्रकार, कासिमबाजार और पटने मे भी कपनी को समय-समय पर जगत्सेठ की कोठी से कर्ज लेना पडा और प्राय प्रत्येक बार यही किस्सा रहा कि गुमाश्ता पहले तो मुद्राभाव के कारण कुछ भी उधार दे न सका, फिर लिखा-पढी या बातचीत होन पर महताबराय ने कर्ज देना मजूर कर लिया, फिर कपनी ने चाँदी देकर उस कर्ज का भुगतान किया या उसने कागज बदल दिया। १७४६ में हम कपनी को व्याज के सम्बन्ध में उन्हें यह लिखते पाते है कि उस मद में जो कुछ निकलता है, उसे आप असल में जोड लीजिये। मई मे कासिमबाजार की फैक्टरी को एक लाख कर्ज मिल चुका है, शायद एक लाख और मिलने की बात है। फिर भी वहाँ के कर्मचारी कलकत्ते लिखते है कि "रुपये की ऐसी टान है कि फतहचन्द की कोठी को जो चादी बेची गई थी, उसकी कीमत भी वह मुश्किल से चुका सकी है। हमें तो यही जान पडता है कि अगर सेठो के पास रुपया है भी तो वे सरकार क डर से उसे जाहिर करना नही चाहते।" जुलाई मे कपनी के कर्मचारी कासिमबाजार मे कर्ज माँगते फिरते है। पर न कर्ज मिलता है, न कपनी विलायत भेजने के लिए माल खरीद पाती है। ढाके का भी यही हाल है। कौसिल का आदेश था कि ।।।) प्रतिशत प्रतिमास से अधिक व्याज पर रुपया हर्गिज उधार न लिया जाय, पर वहाँ के कर्मचारियो के हैरान-परेशान होने पर भी ।।।) व्याज पर कही रुपया नही मिलता।

अक्टूबर में कुछ चाँदी कलकत्ते पहुँची। कौसिल ने महताबराय को लिखा कि आप यह चाँदी खरीद लीजिये और दाम मे हमे तब तक दो

लाख दे दीजिये। प्रान्त में अमन-चैन न होने क कारण कौंसिल ने उनसे यह भी अनुरोध किया कि आप हमसे चाँदी सदा की भाति मुर्शिदावाद में न लेकर यही अपनी कोठी पर ले लीजिये। महतावराय ने कौंसिल का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दो लाख में से एक लाख रुपया कपनी को अपनी ढाका-फैक्टरी के लिए चाहिए था। उसके लिए हुडी करनी होती और ऐसी हुडी की बाजार-दर १) सैकड़ा थी। महताबराय ने कहलाया कि कपनी को यह हुडावन देना पडेगा। उन्होने यह भी कहलाया कि 'हम चॉदी लेंगे मुर्शिदाबाद के भाव से और कलकत्ते का भाव १९७)* से ऊपर नही। फिर चाँदी यहाँ ले आने में कुछ खर्च पड़ेगा और कुछ जोखिम भी उठानी होगी। एसी हालत मे, चाँदी मिल जाने पर भी हम एक महीने तक ब्याज के देनदार न होगे'। कलकत्ते की कौंसिल अपने कासिमबाजार के कर्मचारियो को लिखती है—"महतावराय स्वरूपचद ढाके के लिए जो १) सैकडा हुडावन माँग रहे है वह उन्हे शोभा नही देता। उनसे जाकर कहो कि फतहचन्द के समय मे तो हमे कभी ऐसा हुडावन नही देना पडा। हमारे साथ उनके घराने का व्यवहार सदा और ही तरह का रहा है। लेकिन अगर वह न मानेंगे, तो उनकी माँग पूरी करनी ही होगी। कलकत्ते मे चाँदी मिल जाने के वाद भी वे एक महीने का ब्याज नही देना चाहते। यह भी मुनासिव नही। यो तो कहने-सुनने पर भी न मानेगे तो हमें वल खाना ही होगा।"

१७४७ के पूर्वार्द्ध में कपनी ने कुछ चाँदी कासिमबाजार भेजी। पर वगाल-विहार में राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति इतनी चिन्ताजनक थी कि मुर्शिदावाद की टकसाल ही वद कर देनी पड़ी थी।

---

*२४० 'सिक्को' के वजन की चादी का दाम। मुर्शिदावाद में उतनी चादी की कीमत थी २०१ से २०३ 'सिक्के'।

महताबराय ने कहलाया कि जब टकसाल तीन-चार दिन बाद खुलेगी, तब वह चाँदी तो ले लेगे, पर आगे २०१) से ऊचा दाम न दे सकेंगे। कारण कि,"सिक्के मे खालिस चाँदी पहले की अपेक्षा अधिक हो चली है, इसलिए ढलाई में अब उतना मुनाफा नही रह गया है।" १७४७ के उत्तरार्द्ध मे भी रुपये का अभाव बना ही रहा। उधर महताबराय की ओर से यह शिकायत की गई कि जहाँ कपनी साल बीतते ही ब्याज चुका देती थी, वहाँ वह अब ब्याज को असल मे जोड कर सिर्फ कागज बदल देती है। १० अगस्त को कौंसिल कासिमबाजार की फैक्टरी को लिखती है कि, "चादी का दाम बढवाने की कोशिश जारी रखना। जगत्सेठ महताबराय से जोर देकर कहना कि जो दाम वह दे रहे है, वह इतना नीचा है कि विलायत स यहाँ चाँदी ले आने मे कुछ भी फायदा न रहेगा। हाँ, अपने व्यवहार से उन्हे कभी असन्तुष्ट मत होने देना। उनका ब्याज का हिसाब तो फौरन कर दो। फिर इस बात की चेष्टा करो कि ढाका-फैक्टरी को एक लाख नही तो कम-से-कम पचास हजार अपनी कोठी से उधार दिला दे। वहाँ वालो ने लिखा है कि अगर रुपया न मिल सका तो उनका काम चलना असभव हो जायगा।"

कौंसिल को अपने इस खत का जवाब सोलह दिन बाद मिला। कासिमबाजार वालो ने लिखा—

"जगत्सेठ का गुमाश्ता रै (रवि ?)दास दो साल का ब्याज माँगने आया था। इधर बीस पेंटी चाँदी मिली थी, पर प्राय सारा रुपया ब्याज चुकाने में लग गया। अब माल की खरीदारी क लिए यहाँ अपने पास रुपया नही। इसके साथ हिसाब भेज रहे है, आप समझ लेंगे। ढाका-फैक्टरी के लिए सेठो से एक लाख माँगा था, पर कुल २५,०००) की हुडी मिली। यह हुडी कासिद के जरिए वहाँ भेज दी है। सेठो ने

चाँदी २०३) के भाव से लेना स्वीकार कर लिया है। पर उनका गुमाश्ता कह रहा था कि मुझे मालूम है कि कपनी के दलालो ने कलकत्ते में चाँदी १९७॥=) की दर से बेची है। अगर बात एसी है, तो आप सहज ही अनुमान कर सकते है कि इधर सेठो का जी क्यो खट्टा हो चला है।"

अगर सेठो का दिल थोडी देर के लिए फिर गया था तो इसका कारण सचमुच यही था कि जो चाँदी विलायत से आती, उसका बडा हिस्सा तो कपनी प्राय बाजार में बेच लेती और उनको व्याज तक नहीं चुकाती। कौंसिल को सेठो के सतोष के लिए यह बताना पडा कि उसकी ओर से कितनी चाँदी बाजार मे बेची जा चुकी थी और क्यों। पर उनके 'सन्तुष्ट' हो जाने पर भी कासिमबाजार की फैक्टरी को वह कर्ज न मिल सका जिसकी उसे सख्त जरूरत थी।

सितम्बर मे फिर कुछ चाँदी कलकत्ते पहुँची। इधर महतावराय की ओर से फिर ब्याज का तकाजा होने लगा था। कौसिल ने निश्चय किया कि पाँच पेटी चाँदी तो उन्हें ब्याज की मद मे दे दी जाय, पाँच पेटी कलकत्ते में रख ली जाय और बाकी बीस पेटी चाँदी कासिमबाजार भेज दी जाय—इस आदेश के साथ कि टकसाल मे बिक जाने पर अपने कर्मचारी दस पेटी की कीमत तो यहाँ भेज दे और दस पेटी की कीमत से वहाँ माल की खरीदारी करें। कौसिल ने महतावराय को यह भी कहलाया कि और चाँदी आने ही वाली है। महतावराय ने इस पर प्रसन्नता प्रकट की, पर कहा कि हम २०१) स ऊचा दाम नही दे सकते। लाचार, कंपनी को उसी दर से चाँदी बेचनी पडी।

जनवरी १७४८ तक सौ पेटी चाँदी कलकत्ते पहुँच चुकी थी। कौंसिल ने अपने कासिमबाजार वाल कर्मचारियो को लिखा कि महतावराय से पूछ कर लिखो कि चाँदी वह यहाँ लेना चाहते है या वहाँ।

कौंसिल का प्रस्ताव था कि चाँदी मिल जाने पर जगत्सेठ दो लाख तो लेन-देन के हिसाब मे हमारा जमा कर लें, एक लाख कासिमबाजार-फैक्टरी को और ५०,०००) ढाका-फैक्टरी को दे दे और बाकी जो कुछ निकले, यहाँ कलकत्ते भेज दे। प्रेसिडेन्ट ने इस विषय मे महताबराय को एक पत्र भी लिखा। पर जनवरी बीतने से पहले ही खबर मिली कि जैनुद्दीन अहमद पटने मे मारा जा चुका था और अलीवर्दी खाँ पर ऐसी कौटुंबिक आपदा आ जान के कारण मुर्शिदाबाद में हड़ताल मनाई जा रही थी। ८ फरवरी क लेखे में महताबराय स मिलने वाले उत्तर का उल्लेख है। उन्होने लिखा था कि, "यो तो हम कपनी की बराबर मदद करत आये हैं और आज भी चाँदी खरीद लेने को तैयार है, पर पटने में जो दुर्घटना घटी है, उसके कारण इस समय कुछ भी करना-धरना हमार बस की बात नही। तमाम गडबड मची हुई है। काम-काज बद है। लोग अपनी-अपनी जान बचाने के लिए शहर से भाग रहे है। हम खुद नवाब से विदा ग्रहण कर गंगापार चले आये हैं। टकसाल बद कर देनी पडी है। इसलिए हम इस समय रुपया देने में असमर्थ हैं। जब शान्ति हो जायगी और काम-काज फिर चलने लगेगा, आप के प्रस्ताव पर ध्यान देंग। इस समय तो लाचारी है।"

पटने की 'दुर्घटना' की कहानी यह है —

मुस्तफा खाँ मारा जा चुका था, पर अफगान-समस्या हल नही हुई थी। मुर्शिदाबाद में कुछ एसे अफगान रह गये थे, जिन्होने मुस्तफा खाँ की बगावत के समय उसका साथ तो नही दिया था, पर जो अलीवर्दी खाँ के पूरे वफादार भी नही हो सके थे। इनके नेता थे दरभंगा-निवासी शमशेर खाँ, सरदार खा और मुराद शेर खाँ जो मीर हबीब से पत्र-

व्यवहार करते रहते थे और मराठो की सहायता स फिर अफगान-राज्य स्थापित करने की तदवीर सोचा करते थ।

"मुताखरीन" के लेखक ने अफगानो के गुण-दोष वताते हुए जहाँ उन्हें शूर-वीर स्वीकार किया है, वहाँ साथ ही उनकी उपमा जगली जानवरो से दी है। कहा है कि "अफगानो क न दिल होता है, न दिमाग। वडे लालची होते है, पर नमक का हक अदा करना नही जानते। अफगान से झगडा करना वर्र के छत्ते मे हाथ डालना है। अगर कोई अफगान मारा जाता है, तो उसका फिरका उस बात को कभी भूलता नही, चाहे कितना ही समय क्यो न बीत जाय। मौका मिलने पर वह वदला लेकर ही रहता है।"

अलीवर्दी खाँ ने उन अफगानो का रग वेढग देखकर उन्हे वर्खास्त कर दिया और व दरभगे चले गये। उसी समय जैनुद्दीन अहमद के सिर पर एक हौसला-रूपी भूत सवार हुआ। वह अलीवर्दी खाँ को गद्दी से हटाकर खुद उसकी जगह जा वैठने का विचार करने लगा। दरभगे के अफगानो से पत्र-व्यवहार कर उसने उन्हे पटने बुलाया। सरदार खा, शमशेर खाँ आदि हाजीपुर जा पहुँचे और वाकी सैनिको को वही छोड कर प्राय पाँच सौ सवारो क साथ १३ जनवरी १७४६ को गगापार दरवार मे हाजिर हुए।

वहाँ उनके स्वागत का आयोजन किया गया था। पर जिस समय जैनुद्दीन अहमद पान-सुपारी वँटवा रहा था, उसी समय एक अफगान ने उसके पेट मे खजर घुसेड दिया और अपने साथी का अधूरा काम मुराद शेर खाँ ने पूरा कर डाला। अफगानो की दिलजमई के लिए जैनुद्दीन अहमद ने आज्ञा दे दी थी कि उसके अपने सैनिक उस दिन के दरवार में

न आवें। राजा सुन्दर सिंह, मेहदी निसार खाँ आदि सरदार किसी दौरे पर पटने से वाहर भेज दिये गये थे। कुछ दरबारी और सावारण कर्मचारी-मात्र उपस्थित थे। अफगानो ने वात की वात मे शहर और किले पर कब्जा कर लिया।

जैनुद्दीन अहमद का पिता हाजी अहमद भी उस समय पटने में ही था। वह वृद्धावस्था और धन क लोभ के कारण भाग न सका। उसकी अवस्था ८२ वर्ष की थी और उसके पास सचित धन ७० लाख रुपये से कम न था। वह कैद कर लिया गया और कुछ दिन बाद कैद-खाने मे ही उसकी मृत्यु हो गई। महल मे और शहर मे लूट-खसोट होने लगी। लोगो को दिल्ली में नादिरशाही का जमाना याद आने लगा। अफगानो ने अपने माथे पर कलक का एक और टीका यह लगा लिया कि जैनुद्दीन अहमद की स्त्री अमीना बेगम और उसके वेटे-वेटी को वैलगाडी में वैठा कर अपने पडाव पर ले गये। वह वहली चारो ओर से खुली हुई थी, जिस पर भीना भी ओहार या घटाटोप न था।

जिस समय अलीवर्दी खाँ को यह दु खद समाचार मिला, उस समय उसका पडाव अमानीगज मे था और वह मराठो से भिडने जा रहा था। समाचार मिलते ही सन्न हो गया। पर वह वडा धीर-वीर था, इसलिए फौरन होश सँभाल कर उसने पटने जाने का निश्चय किया और कूच का डका वजवाया। ऐलान करा दिया कि, "अफगानो की खवर लेना सव से जरूरी हो गया है, इसलिए नवाव नाजिम पटने जा रहे है। वहाँ से लौट कर मराठो की भी खवर लेंगे। तव तक लोग अपनी रक्षा का जो प्रवन्ध कर सकते हो, आप ही करे।" पर 'हिम्मत थी आली, जेंवे थी खाली।'

सैनिको की ओर से कहा गया कि जब तक वेतन नही चुक जाता, तब तक हम लोग इस धावे पर जाने का नाम भी नही ले सकते। बडी मुश्किल पडी। इस मौके पर उसकी बेटी घसीटी बेगम, दामाद नवाजिश मुहम्मद खाँ और जगत्सेठ महताबराय काम आय और परिस्थिति को सँभालने में उसकी वडी सहायता की। नवाजिश मुहम्मद से उसे ९० लाख मिला और महतावराय से ६० लाख। २९ फरवरी को अलीवर्दी खाँ अमानीगज से चला था। १७ मार्च को वह भागलपुर पहुँच चुका था। १६ अप्रैल को तोपें दगने वाली थी।

लडाई पटना जिले मे वाढ के पास रानीसराय के मैदान में हुई। अलीवर्दी खाँ को इसमें अफगानो का ही नही, मराठो का भी सामना करना पड़ा। कारण कि जानोजी और मीर हवीव बंगाल से उसका पीछा करते ही आये थे। पर उसकी ओर से लड़ने क लिए विहार के कुछ जमीदार भी अपनी-अपनी सेना लेकर पहुँच गये थे। जीत अलीवर्दी खाँ की ही हुई। शमशेर खाँ, मुराद शेर खाँ, सरदार खाँ आदि मारे गये। अफगानो का गर्व खर्व हो गया। मराठो को लापता होते देर न लगी। पटने में अलीवर्दी खाँ को विजयमाल पहनाई गई, अफगानों की पराजय पर आनन्दोत्सव मनाया गया।

अलीवर्दी खाँ को मालूम हुआ कि शमशेर खाँ अपने वाल-बच्चो को वेतिया में छोड़ आया है। वहाँ क राजा ने लिखा कि आज्ञा हो तो इन्हे अपने घर जाने दें। यह आज्ञा तो न मिली, पर शिकार खेलने के वहाने अलीवर्दी खाँ स्वय वेतिया जा पहुँचा। शमशेर खाँ के अनुरोव की रक्षा करने के लिए राजा को भला-वुरा कह कर उसन आज्ञा दी कि उसके कुटुम्व को दरभगे पहुँचा दो। शमशेर खाँ की लडकी का व्याह भी उसन सव की रजामदी स एक खानदानी अफगान के साथ करा दिया। उसकी

माँ क लिए उसने राह-खर्च तो दिलाया ही, परवरिश के लिए दरभगे मे कुछ गाँव भी दिला दिय। अलीवर्दी खाँ में और चाहे जो दोष रहे हो, ओछापन न था। शमशर खाँ और सरदार खाँ उसकी अपनी वेटी के साथ जो व्यवहार कर चुके थे, वह याद होते हुए भी, उसने बुराई का जवाव भलाई से ही दिया।

अलीवर्दी खाँ पटने में प्राय छ महीन रहा। मुर्शिदावाद लौटने से पहले उसने जैनुद्दीन अहमद के बटे सिराजुद्दौला को नायव नाजिम घोषित किया और राजा जानकीराम को सिराजुद्दौला का पेशकार या दीवान। सईद अहमद खाँ और सिराजुद्दौला को साथ ले कर वह नवम्बर १७४८ के अन्त मे मुर्शिदाबाद लौटा।

दिसम्बर मे हुगली के फौजदार ने कंपनी पर एक अभियोग लगाया। वहाँ के कुछ अर्मनी और मुसलमान व्यापारियो के माल से लदे हुए दो जहाज कही से कलकत्ते आ रहे थे कि कपनी के एक वडे जहाज ने उन पर कब्जा कर लिया था। अलीवर्दी खाँ को अगरेजो की इस धीगामुश्ती पर वडा क्रोध आया और उसने कपनी के गवर्नर को लिखा कि, "इन व्यापारियो के कारबार से सलतनत को इतना फायदा है, फिर भी इन्हें इतना भारी नुकसान पहुँचाया गया है कि इन्हे मै दाद दिलाये विना नही रह सकता। तुम लोगो ने समुद्र में डाकाजनी कर ऐसा घोर अपराध किया है कि अगर उनका माल उन्हे फौरन लौटा न दिया गया और जो सामान मेरे लिए आ रहा था, वह यहाँ पहुँचा न दिया गया, तो मै तुम्हें ऐसा दड दूगा जिसकी तुमने कभी कल्पना भी नही की होगी।" कासिमवाजार वालो का अनुमान था कि अर्मनी व्यापारियो के हो-हल्ला मचाने पर नवाव ने ऐसा कडा खत लिख तो दिया है पर वह सचमुच कोई वैसी सख्ती करने वाला नही है। वह उनकी भूल थी।

नवाव ने प्रान्तमात्र में कंपनी का व्यापार बन्द करा दिया। जहाँ-तहाँ कपनी के कारखानो या कोठियो पर पहरा बैठ गया और अँगरेजो को खाने-पीने की चीजो के भी लाले पडने लगे। कपनी से हर्जाना वसूल करने का काम दो मुसलमान कर्मचारियो को सौंपा गया। इनके नाम थे हुकम वेग और करौली वेग। इन्होने अपनी माँग चार लाख से शुरू की। फिर उतरते-उतरते दो लाख पर आये। कासिमबाजार वालो ने कौंसिल को लिखा कि हमारा विश्वास है कि मामला एक लाख पर तै हो जायगा। हाँ, सभव है कि उसके अलावा पच्चीस-तीस हजार इन दोनो को भी देना पडे। प्राय. एक साल बाद अक्टूवर १७४९ में यह मामला १,२०,०००) पर तै हो गया।

इस वीच कंपनी के प्रतिनिधि कई वार महिमापुर हो आये थे। पर प्रत्येक वार उन्हे महतावराय से यही उत्तर मिला था कि मेरी सहानुभूति कपनी के साथ अवश्य है, पर मै नवाव के और उसके वीच के झगडे मे पड़ना नही चाहता। कपनी को चाहिए कि नवाव को खुश कर यह झगडा निवटा ले। वात दर असल यह थी कि कपनी ने इधर अपने व्यवहार से जगत्सेठ को अप्रसन्न कर दिया था और उस अप्रसन्नता के कारण, उसके लिए चक्कर खाना जरूरी हो गया था।

ढाके में कपनी के एक अँगरेज कर्मचारी के जिम्मे जगत्सेठ की खासी मोटी रकम वाकी चली आई थी। उसक मर जाने पर उस रुपये की देनदारी को लेकर एक वाद-विवाद खडा हुआ, जिसमे एक ओर तो महतावराय थे और दूसरी ओर कंपनी के कुछ अधिकारी। कपनी का अपना व्यवहार भी आपत्तिजनक था। जो चाँदी आती, उसका उपयोग उसे पहले अपने कर्ज के भुगतान में करना चाहिए था, फिर और कामो मे। कम से कम महतावराय की कोठी के साथ उसका

समझौता यही था। पर वह उस चाँदी की पूरी खबर उन्हें या उनके गुमाश्तो को मिलन न देती और अक्सर उसे बाजार मे बेच कर रुपया तो माल की खरीदारी में लगा देती और जब कभी उनकी ओर से ब्याज का भी तकाजा होता, तब हीला-हवाला करने लगती। एक हद तक महताबराय ने लगाम ढीली रहने दी। पर जब वह देख चुके कि कपनी बार-बार यही चाल चलती है, तब उन्होने उसे कसना शुरू कर दिया। यही प्रधान कारण था कि कपनी की ओर से बहुत अनुनय-विनय होने पर भी उन्होने इस अवसर पर उसकी कोई विशेष सहायता नही की। वह चाँदी से ही प्रसन्न किये जा सकते थे, चिकनी-चुपड़ी बातो या टलते जाने वाले वादो से नही।

पर नवाब को देने के लिए अपने पास १,२०,०००) न होने के कारण कपनी को फिर उन्ही की शरण जाना और उनस उधार माँगना पडा। २० अक्टूबर १७४९ को कासिमबाजार वाले कर्मचारी कौंसिल को लिखते है —

"हमने अपने वकील महिमापुर भेजे और सेठो को कहलाया कि अगर आप इस मौक पर कर्ज न देंगे तो कपनी के लिए इसका नतीजा बहुत ही बुरा होगा। उन्हें यह भी आश्वासन दिलाया कि चाँदी या रुपया हाथ में आते ही हम इस कर्ज का भुगतान कर देंगे। इसका सेठों पर कुछ प्रभाव पडा और उन्होनें रैदास को हमारे पास भेजा। उसने इस बात की बड़ी शिकायत की कि कपनी के जिम्मे इतनी बड़ी रकम बाकी होते हुए भी और इतनी चाँदी आने पर भी उसने इधर कुछ भी नही दिया है। गुमाश्ते ने कहा कि अगर कपनी यह पक्का वादा नही करती कि विलायत से जहाज आते ही वह तीन लाख चुका देगी, तो हमारी कोठी से अब कुछ भी मिलने का नही। हमने यह उत्तर दिया कि

विना कौसिल की इजाजत के हम जवान तो नही दे सकते, पर अगर आपकी कोठी ने इस मौक पर हमारी मदद की, तो हम कलकत्ते यह जरूर लिखेंगे कि जितनी भी चाँदी कौंसिल दे सकती हो, आपको दे दे। पर इससे उसे सतोष न हुआ। अन्त मे उसने कहा कि हम तीन शर्तो पर डेढ लाख दने को तैयार है—(१) आप कलकत्ते पर दो लाख 'सिक्को' की हुडी कर दे, (२) आपके पास हमारी सकारी हुई २३,०००) 'सिक्को' की जो हुडी है, उस हमे लौटा दे और (३) चार पेटी चाँदी जो आपकी फैक्टरी मे पडी हुई है, उसे सेठो की कोठी पर भेज दे। हमने तीनो शर्ते मजूर कर ली।"

कासिमबाजार वालो ने १७ अक्टूवर को कलकत्ते लिखा कि "सेठ मानिकचन्द सेठ आनन्दचद से कर्ज लेकर हमने आप पर दो लाख 'सिक्को' की दर्शनी हुडी कर दी है। आप उसका भुगतान कर देंगे।" २१ अक्टूवर को कौंसिल ने खजाची को उसक भुगतान की आज्ञा दे दी।

जून मे ढाका-फैक्टरी कौंसिल को लिख चुकी थी कि, "सेठो का गुमाश्ता वह ५४,०००) माँगन आया था, जो हम 'सेठ महतावराय वावू खुशालचद' स ल चुक है। हमने यह कह कर उसकी दिलजमई कर दी कि जो जहाज आने वाले है, उनक पहुँचते ही और हमारा कारवार फिर चालू होते ही हम उस पुरजे का भुगतान कर देंगे।" खुशालचद महतावराय के ज्येष्ठ पुत्र थे और जगत्सेठ की कोठी से कही-कही इनका नाम भी सम्वद्ध हो चला था।

उस कोठी और ईस्ट इंडिया कपनी के वीच इधर लेन-देन के और भी कई मौके आये, पर सव का उल्लेख करने से कहानी वहुत लम्वी चौड़ी हो जायगी। हाँ, यह कह देना जरूरी जान पड़ता है कि जनवरी

१७५० में कासिमबाजार के कर्मचारियो ने नवाव के एक हुक्मनामे की नकल कलकत्ते भेजी और कौंसिल को लिखा कि, "अपने वकीलों का कहना है कि इसके द्वारा नवाव ने यह आदेश दिया है कि अब आगे सेठो को छोडकर और कोई न तो आरकटी रुपये ले सकता है और न चाँदी ही खरीद सकता है।" इस निषेध-पत्र का उद्देश था ईस्ट इडिया कपनी को वाजार मे चाँदी वेचने से रोककर उस क्षेत्र पर जगत्सेठ का आधिपत्य पूरा कर देना।

वाढ की लडाई के वाद ही जानोजी को अपनी माता की मृत्यु का समाचार मिला था, इसलिए मीर हवीव को सेना के साथ मेदिनीपुर की ओर भेजकर वह स्वय नागपुर चला गया था। कुछ ही समय वाद रघुजी ने अपने दूसरे पुत्र मानाजी के नेतृत्व मे कुछ और सैनिक मीर हवीव की सहायता के लिए भेजे। अलीवर्दी खाँ ने मुशिदावाद लौटकर मराठों से युद्ध की तैयारी शुरू कर दी और कटक की ओर प्रस्थान किया। मीर हवीव भी मेदिनीपुर से उसी ओर चल पडा। अलीवर्दी खाँ ने कटक पहुँच कर अपना अधिकार तो जमा लिया,* पर ज्यो ही वह मुर्शिदावाद लौटा, मीर हवीव वहाँ जा धमका और अलीवर्दी खाँ के प्रतिनिधि को मारकर फिर मराठो की ओर से कर्त्ता-धर्त्ता वन वैठा।

नवाजिश मुहम्मद खाँ, जगत्सेठ और कुछ प्रधान पदाधिकारी इधर अरसे से अलीवर्दी खाँ को सलाह देत आ रहे थे कि मराठो से सधि कर ली जाय। पर उसकी आन क आगे ऐसे सलाहकारो की कुछ

*मराठो की ओर से सैयद नूर, सरदाज खाँ और धरमदास ने वारहवाटी के किले पर कब्जा कर लिया था। अलीवर्दी खाँ ने कूटनीति का प्रयोग कर इन्हें अपने फदे में फँसा लिया और सव को मरवा डाला।

नही चल सकी थी। जव समय-सरित् के प्रवाह के साथ अलीवर्दी खाँ की अपनी शक्ति भी क्षीण हो चली और हाजी अहमद, जैनुद्दीन अहमद जैसे अगो के कट जाने से उसे बुढापे में और भी कमजोरी महसूस होने लगी, तव उसने अपनी पुरानी टेक छोड दी और मराठो को चौथ देना स्वीकार कर लिया। इसके फलस्वरूप रघुजी और उसके वीच १७५१ मे एक सधि* हुई, जिसके द्वारा उसे तो शान्ति मिल गई और मराठो को उडीसा-प्रान्त। दोनो के बीच यह तै हुआ कि —

(१) अलीवर्दी खाँ भोसले को तीनो प्रान्तो की चौथ दिया करेगा।

(२) जमानत के तौर पर वह उडीसा-प्रान्त भोसले के हवाले कर देगा और कटक में मीर हवीव को अपना नायव नियुक्त करेगा।

(३) मीर हवीव की नियुक्ति अलीवर्दी खाँ-द्वारा होने पर भी, वह रघुजी भोसले के प्रतिनिधि-स्वरूप उडीसा का शासन करेगा और आय में जो कुछ वचत होगी, उसे सैनिकों के वेतन के वकाये की मद में नागपुर भेज दिया करेगा।

(४) अलीवर्दी खाँ रघुजी को हर साल उस आय के अलावा १२ लाख रुपये[२] चौथ की मद में दिया करेगा।

(५) सुवर्णरखा नदी दोनो क राज्यो के वीच की सीमा समझी जायगी और मराठो की सेना कभी भी उस नदी में न तो पैर धरेगी और न उसे पार करेगी।

---

*"रियाज" में लिखा है कि मीर हवीव के मारे जाने के वाद अलीवर्दी खाँ और रघुजी भोंसले के वीच सधि हुई और इस अवसर पर मराठो के प्रतिनिधि मस्लेहुद्दीन मुहम्मद खाँ (मीर हवीव का भतीजा) और सदरुलहक खाँ थे। इनमें सदरुलहक खाँ कटक में नायव नाजिम नियुक्त हुआ। पर "मुताखरीन" का वयान इससे भिन्न है। ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसी के आधार पर।

इस सधि का एक फल यह हुआ कि मेदिनीपुर जिला अब उडीसा से कटकर वगाल का अग बन गया।

अलीवर्दी खाँ से सधि हो जाने के वाद जानोजी और मीर हवीव के वीच ऐसा वैमनस्य हो गया कि जानोजी ने अन्त में उसकी जान ले ली। मीर हवीव के वाद उसका भतीजा मिर्जा सालेह, मस्लेहुद्दीन मुहम्मद खाँ के नाम से मराठो का प्रतिनिधित्व करने लगा।

उस सधि का दूसरा और सब से महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि लोगो के घाव धीरे-धीरे भरने लगे। मराठो की ओर से निश्चिन्त हो जाने पर सरकार को कई उपयोगी कामो के लिए अवकाश मिल गया। सेना वहुत वडी हो चली थी, इसलिए सैनिको की सख्या घटा दी गई। उजडे हुए गाँव फिर से वसाये गये। पडती में फिर हल चलने लगे, जहाँ उल्लू वोलने लगे थे, वहाँ फिर किसानो के ढोल या ढफ वजने लगे।

पिछले अध्याय मे हम चैनराय को अलीवर्दी खाँ के अर्थ-सचिव के पद पर देख चुके है। उसकी मृत्यु हो जाने पर वीरदत्त या वीरुदत्त को यह पद मिला और जव १७५१ मे उसकी भी मृत्यु हो गई तव उसका नायव उम्मेदराय स्थानापन्न दीवान हुआ। रायरायाँ आलमचद का पुत्र राजा कीर्तिचंद पटने में जैनुद्दीन अहमद खाँ का वजीर रह चुका था। यह फारसी का अच्छा विद्वान् और सुलेखक समझा जाता था। अताउल्ला खाँ* के साथ कुछ समय विताने के वाद यह वनारस मे रहने

*सिराजुद्दौला इससे जलता था, इसलिए उसने अपने नाना से कह-सुनकर अताउल्ला को देश-निकाला दिला दिया। अताउल्ला दिल्ली चला गया और कुछ समय वाद वजीर सफदरजग के आदेश से फर्रुखावाद जाकर रुहेलो के विरुद्ध एक लडाई में भाग लिया। इसी लडाई में वह मारा गया।

लगा था। अलीवर्दी खाँ ने उसे मुर्शिदावाद बुलवाया और उसी को खालसा-विभाग का दीवान नियुक्त किया। गुलाम हुसैन* ने लिखा है कि उसने राजस्व-सवधी कुछ ऐसे पुराने भेद खोले, जिनसे कई जमीदार तथा दूसरे व्यक्ति सरकार के देनदार सावित हुए। इनमे मुख्य थे जगत्सेठ और वर्दवान के राजा। इन सव ने देनदारी स्वीकार कर ली और सरकार को एक करोड से ऊपर रुपये की आय हो गई। इससे कीर्तिचद को वाहवाही मिली और वह अलीवर्दी खाँ का वडा ही विश्वासपात्र हो गया। पूरे दो वरस दीवान रहने क वाद उसकी मृत्यु हुई। मरते समय वह सिफारिश कर गया था कि दीवान का पद उम्मेदराय को ही दिया जाय। अलीवर्दी खाँ ने यही किया और उम्मेदराय को खिलअत क साथ रायरायाँ का खिताव देकर खालसा-दीवान वना दिया।

राजा रामनारायण का नाम ऊपर आ चुका है। यह शाहावाद जिले के किशनपुर गाँव के निवासी श्रीवास्तव कायस्थ थे। मुहर्रिरी से तरक्की करते-करते जानकीराम के दीवान हुए थे। जव १७५२ में जानकीराम की मृत्यु हो गई, तव अलीवर्दी खाँ ने उसकी जगह रामनारायण को दे दी। जानकीराम का वटा दुर्लभराम सैनिक-विभाग मे नायव दीवान रह चुका था। वह उस विभाग का दीवान कर दिया गया।

१७५२ में सिराजुद्दौला के छोटे भाई इकरामुद्दौला की अकाल-मृत्यु हुई। इसे अलीवर्दी खाँ का भतीजा नवाजिश मुहम्मद खा (सहामतजंग) गोद ले चुका था। तीन साल वाद सहामतजग भी जाता

* "मुताखरीन"।

रहा और इसके मरने के प्राय. एक वर्ष वाद इसका भाई सईद अहमद खाँ (सौलतजंग) । इतिहासकारो का कहना है कि विषय-लोलुप होते हुए भी सहामतजग दयाशील और उदार था।

१७५६ में अलीवर्दी खाँ[3] खुद वीमार पड़ा और ८० वर्ष की अवस्था मे उसी साल उसकी मृत्यु हुई।

मसनद पर वैठन के वाद, अपने शासनकाल के अन्तिम चार-पाँच वर्षों को छोडकर वह कभी सुख की नीद न सो सका था। उसके लिए ये चार-पाँच साल भी कौटुविक विपत्तियो के कारण दु.खदायी ही रहे। पर इसमें संदेह नही कि वह पुरुषार्थी था और बुढ़ापे मे भी आसमान के तारे तोड़ देने की हिम्मत् रखता था। मराठो से अगर वह आठ-नौ साल पहले ही सधि कर लता तो जो त्याग उसे १७५१ में करना पड़ा, वह न करना पड़ता और सभवत वगाल का इतिहास भी दूसरी ही तरह लिखा जाता।

जगत्सेठ के घराने से अलीवर्दी खां का सम्बन्ध पहल-पहल तव हुआ था, जव शुजाउद्दौला के शासनकाल मे वह विहार का नायव नाजिम था। वह सम्वन्ध धीरे-धीरे मित्रता में परिणत हुआ था और वह मित्रता अलीवर्दीखाँ को मुर्शिदावाद की मसनद दिलाने मे सहायक हुई थी। १७४० से १७५६ तक दोनो का सम्वन्ध राजा-मत्री का-सा रहा। इस वीच में मराठों के उपद्रव होते ही रहे। फिर अफगानो के विद्रोही हो जाने के कारण पेचीदगी और भी वढ गई। अलीवर्दी खां को इस कठिन काल मे, अपनी आर्थिक कठिनाई हल करने के लिए, कई वार फतहचन्द और, उनके मर जान के वाद,महतावराय पर दवाव भी डालना पडा। लूट-पाट या व्यापारिक सन्निपात से जगत्सेठ की जो हानि हुई, वह अलग थी। इन कारणो से उन्हे कभी-कभी क्षुव्ध भी

होना पडा और इस वात की शिकायत करनी पडी कि प्रान्त की तो वात ही क्या, राजधानी में भी कोई सरकार नही रह गई है। पर वल खाने पर भी अलीवर्दी खाँ और जगत्सेठ का पारस्परिक सम्वन्ध कभी टूटा नही, वल्कि घनिष्ठ ही वना रहा।

अलीवर्दी खाँ के मरने के वाद राजसत्ता, ईस्ट इडिया कपनी के हाथ में जाने वाली थी—राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में वडे उलट-फेर होने वाले थे—और भँवर मे पडकर महतावराय के घराने की भी नाव डूवने वाली थी। पर १७५६ में पहली या दूसरी नही तो तीसरी दुर्घटना कुछ दूरस्थ थी और उस नाव के मस्तूल की ऊँचाई अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। एक आधुनिक इतिहासकार* ने लिखा है कि, "जहां फतहचन्द का विभव लोगो को आश्चर्यचकित कर देता, वहाँ महतावराय और स्वरूपचद का विभव उनकी आँखो में चकाचौंध लगा देता।" उनके धन की इयत्ता वताना तो सभव नही, पर उस पर थोडा-वहुत प्रकाश अवश्य डाला जा सकता है—

उस समय यह किंवदन्ती थी कि अगर जगत्सेठ चाहते तो रुपयो से ही भागीरथी के उद्गम को वाँध सकते थे। ऐसी ही और भी जन-श्रुतिया रही होगी। अत्युक्ति के उदाहरण होते हुए भी, इनसे यह सूचित होता है कि जगत्सेठ-परिवार की धन-सम्पत्ति के सवध में सर्वसाधारण का क्या अनुमान था। पर जो जानकार कहे जा सकते थे, उनका भी अदाज यही था कि जगत्सेठ अपने समय के अद्वितीय धनी थे। उनकी आमदनी के जरिये क्या थे, यह ऊपर वताया ही जा चुका है। फिर भी पाठको को कुछ वातो की याद दिला देना और कुछ नई वातो की ओर उनका ध्यान आकर्षित कर देना आवश्यक जान पडता है।

* मि० लिट्ल।

(१) जो कुछ भी सरकारी आय होती, वह जगतसेठ की ही कोठी में जमा कराई जाती। इस आय का अधिकाश माल के रूप मे आता।

जिस समय ईस्ट इडिया कपनी को बगाल, विहार और उडीसा की दीवानी मिली थी, उस समय (१७६५) क्लाइव ने अदाज किया था कि तीनो प्रान्तो से खर्च काटकर प्राय २ करोड ६८ लाख 'सिक्को' की आय हुआ करेगी। इसके अन्तर्गत वगाल और विहार की ही आय* थी—उडीसा* की नही, कारण कि वहा अभी तक मराठो का आधिपत्य वना हुआ था। क्लाइव ने कपनी के सचालको को लिखा था कि दीवानी मिलने का अर्थ है प्राय ढाई करोड 'सिक्को' की आय, यद्यपि उसमें कम से कम वीस-तीस लाख की बढती तो निश्चित-सी है। इस प्रकार तीनों प्रान्तो को मिलाकर सरकारी आय प्राय तीन करोड तक जा पहुचती थी और तीन करोड 'सिक्को' के प्राय साढे तीन करोड़ रुपये होते थे।

फिर माल या मालगुजारी के अलावा तरह-तरह के अववाव भी थे—और मुर्शिदकुली खाँ के समय से इस प्रकार की आय मे उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती आ रही थी। अलीवर्दी खाँ के ही समय में तीन तरह के नये अववाव लगाये गये, जिनका जोड २२,२५,५५४) वैठता था। इनमें मुख्य थी "मराठा चौथ" जिससे १५,३१,८१७) की आय थी।

महिमापुर जाकर जिन्हे माल दाखिल करना पडता, वे पहले तो वंगाल के ही जमीदार या अहलकार होते, फिर जव विहार और उडीसा का भी शासन मुर्शिदावाद से ही होने लगा, तव उन प्रान्तो मे होनेवाली

---

* औरगजेब के मरने मे पहले उड़ीसा से होने वाली आय ३६ लाख रुपये थी।

बचत का रुपया भी सरकार के पास जगत्सेठ की कोठी के रास्ते ही पहुँचने लगा।

माल दाखिल हो जाने पर, सिक्को की जाँच होती और वे तरतीबवार रखे जाते। खोटे सिक्को को अलग कर देनेपर जो बाकी बचते, उन पर बट्टा काट कर उनकी असली कीमत ठहराई जाती और हर जमीदार या दूसरे देनदार के खाते में उतना रुपया जमा कर लिया जाता। नियत समय पर जगत्सेठ को रुपये का हिसाब और सरकार के इच्छानुसार भुगतान देना पडता।

जगत्सेठ को सरकारी फोतेदारी से क्या लाभ था, इस विषय में कुछ भी निश्चित रूप से कहना कठिन है। पर अनुमान किया गया है, कि यह लाभ चालीस लाख रुपये प्रतिवर्ष से कम न रहा होगा। कपनी के कर्मचारी स्क्राफ्टन ने तो स्पष्ट शब्दो में उनकी इतनी आय बताई है। वाट्स नामक एक दूसरा कर्मचारी भी एक जगह कुछ ऐसी बात लिख गया है, जिससे इस अनुमान की कुछ पुष्टि होती है कि सरकार को जगत्सेठ जो कुछ भुगतान देते, उस पर उन्हें दस प्रतिशत कमीशन मिलने का नियम था।*

(२) जमीदारों को अक्सर जगत्सेठ की कोठी से उधार लेकर हिसाब चुकता करना पडता था। विलियम बोल्ट्स नामक एक अँगरेज व्यापारी, जो कपनी का कर्मचारी भी रह चुका था, १७७२ में बगाल और बिहार की आर्थिक व्यवस्था की आलोचना करते हुए लिखता है—

* रजीतराय के एक पत्र के आधार पर।

"जब माल की किस्त चुकाने का समय आता है और जमीदार के पास रुपया नही होता, तव उसे वकाये पर अहलकारो को फी रुपया दो पैसे माहवार ब्याज देना पडता है। जगत्सेठो का यह कायदा था कि वे रुपये की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेते और नवाव या सरकार को रसीद के तौर पर 'पात' लिख कर दे देते थे। विहार में ईस्ट इंडिया कपनी का दीवान भी वैसी स्थिति में यही करता है और कपनी के खजाने में 'पात' दाखिल कर देता है। ऐसी रकम पर उसे जमीदार से दस रुपया सैकडा ब्याज मिलता है, जिसे 'पटान' कहते है। जव कभी कंपनी को रुपये की जरूरत पड़ती है और 'पात' की रकम दीवान से तलव की जाती है, तव वह वात की वात में सराफो से उधार लेकर हिसाव वेवाक कर देता है। विहार मे जमीदार को ब्याज या बट्टे के अलावा ५) सैकडा 'रसूम' या 'दस्तूरी' के तौर पर देना पड़ता है जिसके हकदार माल-विभाग के छोटे कर्मचारी होते है।"

(३) हीरानन्द के समय से ही जगत्सेठ-घराने का खास घंधा महाजनी या रुपये का लेन-देन चला आया था और फैलते-फैलते इस व्यवसाय-वृक्ष ने उत्तर भारतवर्ष क वहुत वड़े भाग को आच्छादित कर लिया था। शायद ही कोई व्यापार-केन्द्र था, जहाँ इसकी शाखा-प्रशाखा न थी, जहाँ से उनके पास हर तरह के समाचार नियमित रूप से न पहुँचते रहते थे। उनकी कोठी ही उस समय वडी से वडी वैंक थी और उसी का यह काम था कि मुर्शिदावाद में एक करोड लेकर उसका दिल्ली में भुगतान दे सकती थी। हुडावन तथा वट्टे से जगत्सेठ-वंश इतना लाभ उठाता रहा कि "उस पैमाने पर यूरोप में कभी किसी ने लाभ उठाया ही न था।"*

---

* वोल्ट्स।

(४) जगत्सेठ का प्राय सभी विदेशी कपनियो से सम्बन्ध था और उनके यहाँ इनके खाते खुल चुके थे। आपत्काल में भी इन्हे कर्ज मिल सकता था तो जगत्सेठ की ही कोठी से। अलीवर्दी खाँ के जमाने मे जब कभी ईस्ट इडिया कपनी को किसी टेढी आर्थिक समस्या का सामना करना पडता, तब वह उन्ही का दरवाजा खटखटाती और उनकी सहायता से उसकी प्राय प्रत्येक समस्या हल भी हो जाती। इस पुस्तक में इसके उदाहरण भरे पडे है। सितम्बर १७४९ में कपनी की ढाका-फैक्टरी के ही जिम्मे सेठो का ५,८४,०००) निकला था। १७५१ में कासिमबाजार-फैक्टरी ५,१२,८२०) की देनदार ठहरी थी। महताबराय और स्वरूपचंद से अँगरेज ही नही, फ्रेच और डच भी समय-समय पर कर्ज लेते रहते थे। इस बात का उल्लेख मिलता है कि १७५७ में फरासीसी प्राय पन्द्रह लाख के देनदार थे। इसी प्रकार यह उल्लेख भी मिलता है कि डच कपनी उनकी कोठी से ।।।) फी सदी माहवार व्याज पर ४,००,०००) कर्ज ले चुकी थी। अगर पुराने बही-खाते या दूसरे कागजात मौजूद होते, तो इस तरह के लेन-देन के और भी अनेकों उदाहरण दिये जा सकते।

(५) मुद्रा-सम्बन्धी परिस्थिति मुद्राओ की विभिन्नता के कारण अत्यन्त असतोषजनक थी—यह हम ऊपर बता चुके है। अनेकता में एकता ले आने के लिए विभिन्न मुद्राओ को काल्पनिक रुपये में परिणत करना पडता था और यह काम बट्टा काटकर पूरा किया जाता था। बंगाल में बट्टे की दर प्राय. इन बातो पर निर्भर होती थी कि 'सिक्के' कितने पुराने थे—उनके बदले जो मुद्रा माँगी जाती, उसकी आमदनी कैसी थी—मुद्रा को एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजने का खर्च क्या बैठता था, इत्यादि। अदल-बदल का यह काम जिस पैमाने पर जगत्सेठ

कर सकते थे, उस पर दूसरे सराफ या कोठीवाल नही। इसलिए इस व्यवसाय से उनकी ही सब से अधिक आय थी। लोगो को मुद्रा-विनिमय क लिए वट्टे के नाम से जो दाम चुकाना पडता, उसकी घटा-बढी के कारणो को समझ लेना कोई आसान काम न था। अँगरेज तो प्राय ही उसे गोरखधधा कहते और जगत्सेठ को ही उसके लिए जिम्मेवार ठहराते। अगर विलियम वोल्ट्स को उन समालोचको या आक्षेपको का प्रतिनिधि मान लिया जाय, तो उनकी शिकायत यह थी —

"नवाब को और अर्थ-विभाग के अधिकारियो को चकमा देकर जगत्सेठ ने एक ऐसा रिवाज चला दिया जो आज भी (१७७२) कायम है और जो मुद्रा-प्रसार की दृष्टि से इस देश के लिए बहुत ही हानिकर सिद्ध हो चुका है। यह रिवाज 'सिक्को' पर कटने वाले वट्टे का था। 'सिक्के' टकसाल मे ढलते है। उनमे चाँदी कितनी होनी चाहिए, इसके लिए पहले से ही नियम बना हुआ है। पर जो 'रुपया राइज' या 'प्रचलित रुपया' कहा जाता है, वह काल्पनिक मुद्रा-मात्र है, जैसे इंगलैंड का पौंड स्टर्लिंग। 'सिक्को' की तुलना में प्रचलित 'रुपये' का मूल्य १६ प्रतिशत कम है। मुगल सल्तनत के बरबाद हो जाने के बाद से इस देश के विभिन्न भागो मे विभिन्न प्रकार के रुपये या सिक्के चल पडे है। इन सब की पारस्परिक विषमता को दूर कर इनमे समानता ले आने और हिसाब मिलाने के लिए, इनके 'रुपये राइज' या 'प्रचलित रुपये' बना लेना आवश्यक हो जाता है।

"जब वट्टा कटने लगा, तब यह नियम बना कि टकसाल में ढलने के बारह महीने बाद तक काल्पनिक रुपयो के मुकाबले मे 'सिक्को' की कीमत १६ प्रतिशत ऊँची रहे, पर साल तमाम होते ही उस कीमत मे ३ प्रतिशत की कमी मान ली जाय। ऐसे 'सिक्के' 'हरसन्' कहलाते

और प्रचलित रुपयों की अपेक्षा कीमत में १३ प्रतिशत ऊँचे माने जात है। पर ढलाईसे तीसरा साल शुरू होते ही, 'हरसन्' का नाम वदल कर 'सनवात' हो जाता है और 'सनवात' की कीमत और २ प्रतिशत के हिसाव से गिर जाती है। गरज यह कि जहाँ एक साल तक रुपये की तुलना मे 'सिक्के' का मूल्य १६ प्रतिशत ऊँचा रहता है, वहाँ दूसरा साल शुरू होते ही वट्टा लगने पर वह फर्क १६ की जगह १३ हो जाता है और दूसरा साल बीतते ही १३ की जगह ११। नियमानुसार इससे अधिक वट्टा तो नही लगना चाहिए, पर अगर सराफ चाहे तो एक प्रकार की मुद्रा की वहुतायत और दूसरे प्रकार की मुद्रा की कमी बताकर, लगा सकते है।

"इस देश में रुपयो की ऐसी विभिन्नता है कि अगर मुर्शिदावाद का कोई व्यापारी पास के किसी दूसरे प्रान्त में नकद दाम चुकाकर माल खरीदना चाहता है, तो उसक लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सराफो से ऐसी मुद्रा खरीदे, जिसका या तो उस प्रान्त में चलन हो या जिस पर कम से कम वट्टा कटने की सभावना हो। याद रखना चाहिए कि पटने की टकसाल में ढले हुए 'सिक्के' जव वगाल में आते है या मुर्शिदावाद-कलकत्ते की टकसालो में ढले हुए 'सिक्के' जव विहार भेजे जाते है, तव उन पर भी वट्टा कटे विना नही रहता। रुपयो के अदल-वदल के धधे मे वडी उलझनें, वडी पेचीदगियाँ है। सच कहा जाय तो वट्टा एक तरह की जेव-कतरनी है। इसी का उपयोग कर मुर्शिदावाद का यह सेठ-परिवार मालामाल हो गया था। देश के वर्तमान शासको से भी अभी तक इसका उपयोग वद नही हो सका है।"

वट्टे का रिवाज चलानेवाले जगत्सेठ थे, यह तो इस लेखक की

खामखयाली ही थी। सिक्को के छीजने पर उनका मूल्य कम हो जाना अर्थात् उन पर वट्टा लगना कोई नई बात नही थी। 'आईने अकवरी' में भी इसका जिक्र है। मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आजाद' अपने "दरवारे अकवरी" मे लिखते है कि, "महाजन उन दिनो भी पुराने राजाओं के सिक्को पर मनमाना वट्टा लगाया करते थे और गरीबो का लोहू चूसा करते थे।" इसलिए अकवर को आज्ञा देनी पडी थी कि, "सब पुराने सिक्के एकत्र करके गला डालो। हमारे राज्य में केवल हमारा ही सिक्का चले और नया-पुराना सव वरावर समझा जाय।" अकवर का ही आदेश था कि वजन और सोना-चादी के खरापन के अनुसार ही उनका मूल्य निर्द्धारित हो, जिससे लेने या देने वाले को कुछ भी कसर न खानी पडे। अकवर के वाद इस देश में सिक्कों की विभिन्नता और वढ गई और एक ही टकसाल में विभिन्न अवसरो पर ढले हुए रुपये या अन्य सिक्के विभिन्न प्रकार के होने लगे। फिर और कारणो से भी वट्टा घटने-वढने लगा। कासिमवाजार से ईस्ट इडिया कपनी के ही एक अँगरेज कर्मचारी ने १६६१ मे लिखा* था कि, "सिक्को पर कटने वाले वट्टे के हिसाव से चादी के दाम मे घटा-वढी होती रहती है"। उस समय जगत्सेठ की कौन कहे, मानिकचन्द की भी महत्ता भविष्य के ही गर्भ में थी। पर यह सच है कि मुद्रा-सवधी विभिन्नता जव तक वनी रही, तव तक वह इस देश की एकता और उन्नति के मार्ग मे प्रवल वाधक रही और साथ ही यह भी सच है कि उस विभिन्नता के कारण पैदा होने वाली वट्टे की परिपाटी से अठारहवी शताब्दी मे जगत्सेठ-वश ने वहुत-सा धन कमाया।

(६) जव से मानिकचन्द टकसाल के इतजामकार या ठेकेदार हुए

---

* विल्सन, भाग १, पृष्ठ ३७६।

थे, तव से वगाल मे चादी का सव से वडा खरीदार उन्ही का घराना हो चला था। कुछ समय वाद जगत्सेठ टकसाल के इजारेदार-से* हो गये और चाँदी के वाजार पर उनका एकाधिपत्य हो गया। ऐसी स्थिति में वट्टा काटकर मुद्रा-विनिमय करने का व्यवसाय उनकी कोठी के लिए विशेप लाभदायक वन गया। नियमानुसार जगत्सेठ जमीदारो से नये 'सिक्को' मे ही माल लेने को वाध्य थे। अगर 'सिक्को' की उम्र एक साल की भी होती, तो उन पर वट्टा कटना अनिवार्य हो जाता। दो साल पुराने होते ही 'सिक्को' की कीमत ५ प्रतिशत कम हो जाती। पर उन्ही पुराने 'सिक्को' को जव टकसाल में फिर नया कलेवर मिल जाता तव उनका मूल्य पूर्ववत् ही ऊँचा हो जाता। जगत्सेठ का इसमें सारा खर्च १) सैकडा वैठता— ॥) सरकारी ढलावन और ॥) ढलाई का खर्च, यद्यपि एक अँगरेज ने १७६० में अनुमान किया था कि अगर काफी वडी तादाद में 'सिक्को' की ढलाई हो तो खर्च ॥) सैकडा से भी वहुत कम पडे।

हम अन्यत्र देख चुके है कि ईस्ट इडिया कपनी इस वात के लिए वरावर प्रयत्नशील रहती आई थी कि वह अपनी चाँदी मुर्शिदावाद की टकसाल मे भेजकर उसके 'सिक्के' करा सके और जगत्सेठ की ओर से इस प्रस्ताव का वरावर विरोध होता आया था। उस विरोध † के कारण १७५७ से पहले कपनी को वैसी इजाजत

---

* कपनी के कागजात में कही तो जगत्सेठ स्वय इजारेदार वताये गये और कही दूसरे। असलियत यह जान पडती है कि इजारेदार दूसरे ही थे, पर जगत्सेठ की कोठी को टकसाल मे कुछ विशेप अधिकार या सुविधाएँ प्राप्त थी।

† १७५३ में कासिमवाजार वालो ने कौंसिल के आदेशानुसार चुपचाप चेष्टा की कि कपनी को कलकत्ते में टकसाल खोलने का अधिकार मिल

न मिल सकी। अगर मिल जाती तो जगत्सेठ का चाँदी या सराफे के बाजार पर एकाधिपत्य न रह सकता और बट्टे के जरिये उन्हे जो आमदनी होती आई थी, वह न हो सकती। कपनी को यह अनुभव जरूर होने वाला था कि युद्ध के क्षेत्र मे नवाव नाजिम को हरा देना एक वात थी, आर्थिक क्षेत्र मे जगत्सेठ पर विजय प्राप्त कर लना और वात। कलकत्ते में टकसाल खुल जाने पर भी कई साल तक वहाँ के ढले हुए 'सिक्के' स्वच्छदतापूर्वक न चल सके। १७६० में नाजिम नियुक्त होने पर मीर कासिम को यह हुक्म जारी करना पडा कि कलकत्ते के 'सिक्को' पर वट्टा माँगना या काटना जुर्म समझा जायगा।

अलीवर्दी खाँ के मरने पर महतावराय को उसके नाती सिराजुद्दौला से वास्ता पडने वाला था और पारस्परिक सघर्पण के कारण कुछ ही दिन वाद चन्दन से भी आग प्रकट होने वाली थी।

(२)

सिराजुद्दौला का जन्म अलीवर्दी खाँ के विहार की नायव

जाय। पर उन्होने लिखा कि "जगत्सेठ के विरोध के कारण यहाँ सफलता की कोई आशा नही दीखती। दिल्ली में सिफारिश कराई जाय तो कम से कम एक लाख रुपया तो वहाँ खर्च पडेगा और एक लाख यहाँ। पर जगत्सेठ या उनके किसी भी कर्मचारी को इसकी भनक भी नही मिलनी चाहिए"। स्वयं कासिमवाजार वालो को यह आशा न थी कि दो लाख या उससे अधिक खर्च करने पर भी कपनी को टकसाल-सवधी विशेष अधिकार कभी भी प्राप्त हो सकेगा।

निजामत पाने से कुछ ही दिन पहले हुआ था। यह बात १७३३* की है। अलीवर्दी खाँ मरने से पहले ही उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुका था और सभवत. १७५३ मे मसनद पर बैठा भी चुका था। उस समय सिराजुद्दौला उन्नीस-बीस साल का रहा होगा। अलीवर्दी खाँ ९ अप्रैल १७५६ को मरा। २३ जून १७५७ को पलासी के मैदान में सिराजुद्दौला की हार हुई और नौ ही दिन बाद मीरन† के हुक्म से वह मारा गया। इस प्रकार स्वतत्र रूप से नाजिम होने के पन्द्रह महीनो के भीतर ही उसके शेष जीवन की सारी कहानी समाप्त हो गई।

अकबर भी कम उम्र मे ही राजसिंहासन पर बैठा था—बल्कि तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था मे ही। पर वह तो "मां के पेट से ही ऐसी-ऐसी योग्यताओ और गुणो का समूह बनकर बाहर निकला था, जो हजारो मे से एक बादशाह को भी नसीब न हुए होगे‡"। उसका लालन-पालन भी और ही तरह के वातावरण में हुआ था। उसे दूध पिलानेवाली मिली थी तो माहम अतगा-जैसी, अभिभावक मिला था तो बैरम खाँ-जैसा। पाँच साल की उम्र मे ही उसे गोलो की वर्षा का अनुभव हो चुका था। अलीवर्दी खाँ के लाड-दुलार ने सिराजुद्दौला को कभी घडी भर के लिए भी नियत्रण की कठोरता का अनुभव होने न दिया। निरंकुशता ने उसे उद्धत और अभिमानी बना दिया और कमसिनी में ही उसका दिमाग आसमान

---

* श्री कालीकिंकर दत्त के मतानुसार। सिराजुद्दौला के जन्मवर्ष के सम्बन्ध में कुछ मतभेद है।

† मीर जाफर का बेटा।

‡ "दरबारे अकबरी" (हिन्दी अनुवाद)

पर चढ गया। जिसे मखमली गद्दो से कभी अलग न होना पडा, वह मिजाज में तेजी होते हुए भी, युद्ध-कला-कौशल से कोरा रह गया। फिर अकबर में यह विशेषता थी कि शिक्षा-रूपी सस्कार से वञ्चित होते हुए भी वह व्यापक अर्थ मे अशिक्षित नही कहा जा सकता था। भले-बुरे की उसे अच्छी पहचान थी, मनुष्य-रूपी रत्नो का वह अच्छा पारखी था। सिराजुद्दौला का मानसिक धरातल न तो उतना ऊँचा था, न उसके ज्ञान और अनुभव का क्षेत्र उतना विस्तृत। नाजिम होने पर उसने राजमुकुट के लिए कुछ नगीने खरीदे भी तो वे प्राय नकली पत्थर निकले। जो लाल-जवाहर अपने खजाने मे थे, उन्हे उसने अपनी बेवकूफी और हेकडी से ठुकरा दिये।

शासन की बागडोर पूरी तरह हाथ मे आते ही, सिराजुद्दौला ने हर तरफ टक्कर लड़ाना शुरू कर दिया। दुर्भाग्यवश उसने न तो अपने चरित्र में ही कोई सुधार किया, न अपने घर को ही सँभाला। अपनी करतूतो से उसने मुर्शिदाबाद मे ईस्ट इडिया कपनी का दूसरा 'फोर्ट विलियम' खडा कर दिया। नतीजा यह हुआ कि बात बढ़ने पर जब उसने कपनी से तीसरी टक्कर ली, तब उसका माथा चकनाचूर हो गया। अँगरेजो की धीगाधीगी इस हद तक बढ चुकी थी कि नाजिम की हैसियत से उन्हें दड देना उसका धर्म था। पर साथ ही उसका यह भी धर्म था कि दंड देने के लिए जो कुछ करता, अपनी सघ-शक्ति बढ़ाकर, आवश्यक साधनो को जुटाकर, अपनी तलवार की धार तज कर। वास्तव मे उसने किया यह कि अपनी दुर्नीति से अपने पुरान सगठन को भी तीन-तेरह कर दिया; जो सहायक हो सकते थे, उन्हे गरदनियां दे दी—और जो बख्तर पहनकर लडाई पर जाने वाला था, उसमें सैकड़ो नये छ्द पैदा कर लिये। पंद्रह दिनो या हफ्तों मे

नही, तो पंद्रह महीनो में ऐसे निरकुश और विवेक-भ्रष्ट शासक का विनिपात अवश्यभावी था।

नवाजिश मुहम्मद खाँ के मरते ही उसकी स्त्री घसीटी वेगम से उसकी चखाचखी शुरू हो गई थी। वह वदचलन समझी जाती थी और उसके पास धन भी वहुत था। अलीवर्दी खाँ के जीवित रहते उसका वाल वाँका होना तो असभव था, पर सिराजुद्दौला ने उसके दीवान राजा राजवल्लभ को गिरफ्तार करा लिया और उससे हिसाव-किताव तलव किया। राजवल्लभ ने जो कुछ देकर छुटकारा कराना चाहा, वह सिराजुद्दौला को मजूर न हुआ और उसके घर पर सिपाही वैठा दिये गये। राजवल्लभ ने कासिमवाजार की फैक्टरी के प्रधान मि० वाट्स को कहलाया कि "मेरा पुत्र कृष्णदास* सस्त्रीक जगन्नाथपुरी जाना चाहता है। दोनो कलकत्ता होकर जायँगे। पर कृष्णदास की स्त्री गर्भवती है, इसलिए अभी दो महीने वे वही रहना चाहते है। आप कौसिल को लिखकर जरूरी इजाजत मँगा दें।" इजाजत आ गई और कृष्णदास रवाना हो गया। वह अपनी स्त्री और वाल-वच्चो के अलावा वहुत-कुछ धन भी साथ लेता गया। वास्तव में वह शरणार्थी होकर ही कलकत्ते गया था। सिराजुद्दौला को इसकी खवर मिली तो वह आग-ववूला हो गया। अलीवर्दी खाँ उस समय वीमार था, उसने सिराजुद्दौला को समझाया-वुझाया और कहा कि चगा होते ही मै कृष्णदास को गिरफ्तार करा लूगा, तव तक तुम धीरज धरो। इसी वीच उसकी मृत्यु हो गई। सिराजुद्दौला ने अपने दूत नारायण सिंह† की मार्फत कंपनी के

---

* "मुताखरीन" में इसका नाम कृष्णवल्लभ मिलता है।

† यह मेदिनीपुर के फौजदार राजाराम का भाई और हरकारा (जासूस) विभाग का प्रधान अधिकारी था।

गवर्नर के नाम एक परवाना भेजा कि कृष्णदास को सपरिवार गिरफ्तार कर और उसकी धन-सम्पत्ति जब्त कर फौरन मुर्शिदावाद भेज दो। पर कलकत्ते मे गवर्नर या कौंसिल ने उस पर कुछ भी ध्यान नही दिया और नारायणसिंह क साथ वुरी तरह पेश भी आये।

इधर वीवी घसीटी मोतीझील मे रहने और पैसा पानी की तरह वहाकर सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यत्र करने-कराने लगी थी। तनातनी वढने पर अलीवर्दी खाँ की वेगम और सिराजुद्दौला की ओर से महताव-राय ने पास जाकर उसे आश्वासन दिया। उसका विशेष कृपापात्र और विश्वासपात्र मीर नजरअली नामक एक अधिकारी था। उसको मुर्शिदाबाद छोड देना पडा। लोगो को लगा कि मनमुटाव का कारण दूर हो गया। पर सिराजुद्दौला ने उसके वाद ही वहुत से सिपाही भेज कर अपनी चाची को नजरवन्द और उसकी सारी धन-सम्पत्ति खालसा करा ली।

कलकत्ते से लौटकर नारायण सिंह ने आप-वीती तो सुनाई ही, इस खवर की भी तसदीक की कि वहाँ तो अँगरेज, और चन्दननगर में फरासीसी, जोरो से किलेवन्दी करते जा रहे थे। 'फोर्ट विलियम' में किले की मरम्मत के वहाने कुछ नये हिस्से जोड दिये गये थे। दो-एक वडे मकान भी वनवा लिये गये थे, जहा से जरूरत पडने पर गोले वरसाये जा सकते थे। शहर के इर्द-गिर्द जो खाई थी, वह और गहरी कर दी गई थी। सिराजुद्दौला का हुक्मनामा कलकत्ते पहुँच चुका था कि कोई नई इमारत न वनने पावे; जो मकान इधर वन चुके है, वे तोड़-फोड़ दिये जायँ और खाई को भर दिया जाय। कंपनी ने यह सव तो किया नही, उलटे सिराजुद्दौला को ऐसा उत्तर भेजा जिससे उसकी क्रोधाग्नि और भी प्रज्वलित हो उठी।

जिस समय सिराजुद्दौला को कंपनी का असंतोषजनक उत्तर मिला, उस समय वह राजमहल मे था। चला था पूर्निया के फौजदार और अपने चचेरे भाई शौकतजंग को सर करने, पर यह देखकर कि अँगरेजों ने कलकत्ते मे उसकी आज्ञा का पालन करने से इनकार कर दिया था, वह उन्हे दड देने के विचार से लौट पडा और कासिमबाजार पहुँचकर उनकी कोठी पर कब्जा कर लिया। इसके बाद ही उसने कलकत्ते की ओर प्रस्थान किया। उसकी माँ अमीना बेगम ने और अपने भाई के साथ जगत्सेठ ने बडी कोशिश की कि तकरार न बढे, सिराजुद्दौला का क्रोध शान्त हो जाय और वह कलकत्ते पर चढाई करने का विचार त्याग दे। पर वे सफल न हो सके। सिराजुद्दौला का कहना था कि "अँगरेज न जाने कितनी बार मेरा अपमान कर चुके है। जब कभी कोई अपराधी कलकत्ते भाग जाता है, तब उसे वहाँ शरण मिल जाती है और अँगरेज उसे सरकार के हवाले नही करते। एक बार इसी कासिमबाजार फैक्टरी मे मै अपनी अम्मा के साथ आया था। इसके प्रधान को कहलाया कि हम लोग तुम्हारी फैक्टरी देखना चाहते है। उसने जवाब दिया कि हम भीतर आने की इजाजत नही दे सकते। उसका यह अपमानजनक उत्तर मुझे आज तक नही भूला है।" जगत्सेठ ने बहुत कहा कि अँगरेज लडाई-झगडे से दूर रहने वाले व्यापारी है, अगर उनसे कोई अपराध हो भी गया हो, तो उन्हें क्षमा कर देना चाहिए। सिराजुद्दौला पर उनकी बातो का कोई असर न हुआ। बल्कि उसने जगत्सेठ से शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करा ली कि मै आगे कभी अँगरेजो की सिफारिश न करूँगा।

कंपनी के कुछ अँगरेज अधिकारी भी आरंभ से ही कृष्णदास को

कलकत्ते में शरण देने के विरोधी* थे। उनके मतानुसार वैसे भगोडे को पनाह देना और फिर उसे मुर्शिदाबाद भेजने से इन्कार कर देना राजसत्ता का अपमान करना और सरकार को लड़ाई के लिए ललकारना था। कौंसिल ने सिराजुद्दौला को आपत्तिजनक पत्र लिखकर बात और भी बिगाड दी थी। पर ऐसे अंगरेज अल्पसंख्यक थे। जो बहुमत कहा जा सकता था वह झगडा-रगडा ही चाहता था। इसका कारण यही जान पडता है कि मुर्शिदाबाद की परिस्थिति से उसे प्रोत्साहन मिल चुका था और बंगाल के पानी में दाल गलने की पूरी आशा हो चली थी।

सिराजुद्दौला सिर्फ तीन बातें चाहता था —

(१) जो अपराधी या अभियुक्त भागकर कंपनी के पास पहुँचे उन्हें वह शरण न दे।

(२) कंपनी के अधिकारी दस्तक बेच बेचकर सरकार को आर्थिक हानि न पहुँचावें।

(३) किलेबन्दी के सिलसिले मे जो कुछ बन चुका था वह ढहवा दिया जाय।

कासिमबाजार का प्रधान विलियम वाट्स और उसके सहकारी गिरफ्तार हो चुके थे। उन लोगो ने एक मुचलका लिखकर दिया भी तो उससे नवाब को संतोष न हुआ। ९ जून १७५६ को सिराजुद्दौला कासिमबाजार से चला, १६ को कलकत्ते पहुँचा और पहुँचते ही

---

* इन्ही विरोधियो में ढाके की कौंसिल के प्रधान रिचर्ड बेचर और अन्य सदस्य थे। बेचर अपने एक पत्र में लिखता है कि मानिकचन्द और जगत्सेठ ने भी मेजर किलपैट्रिक को लिखा था कि अंगरेज पर नवाब के कोप का कारण यही हुआ कि जो अपराधी भागकर कलकत्ते पहुँच जाते, उन्हे वहा शरण मिल जाती थी। हिल, भाग २, पृष्ठ १६०।

शहर पर कब्जा कर लिया। फिर 'फोर्ट विलियम' पर घेरा डाला। उस समय यह किला लालदीघी के पास हुगली-नदी के किनारे था। आत्मरक्षा का कोई उपाय न देखकर अधिकाश अगरेज अधिकारी और व्यापारी नदी के रास्ते जहा-तहा भाग गये। इन भागने वालो में विलियम ड्रेक नामक गवर्नर तथा कमाडर-इन-चीफ साहब भी थे। जो अगरेज किले मे वच गये उन्हे कुछ समय तक लडने के बाद २० जून को आत्म-समर्पण कर देना पडा। इन्ही का मुखिया हालवेल था जिसने ड्रेक और उसके साथियो पर वाद यह अभियोग लगाया कि वे औरो को मुसीवत मे छोडकर भाग गये थे और अपने को कायर ही नही, गैर-जिम्मेवार भी सावित कर चुके थे। उसी मुसीवत को वढा-चढाकर वताने के लिए, हालवेल ने वह कहानी गढी जो "कालकोठरी-काड" के नाम से ब्रिटिश शासन-काल मे इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है।

जहाजो और नावो पर सवार हो भाग जाने वाले कुछ समय तक तो मारे मारे फिरे। फिर उनके वेडे ने फलता के पास पहुचकर लगर डाला। कुछ महीनो के लिए यही स्थान सभी अगरेज शरणार्थियो का शिविर वन गया। पर वहा उन्हे नाना प्रकार के कष्ट झेलने पडे। तबू-डेरे तो थे ही नही, खाने-पीने का सामान मिलना भी मुश्किल था। खास कर वरसात में वौछाडो से वचने का कोई उपाय न होने के कारण, मर्द-औरते-वच्चे वीमार पडने और मरने लगे। जुलाई के अत मे मद्रास से मेजर किलपैट्रिक कुछ आदमियो के साथ, उनकी खोज-खवर लेने आया भी तो परिस्थिति मे किसी प्रकार का सुधार न हो सका और वह स्वय जीवित भी रहा तो उसके अपने सैनिको की वही दशा हुई जो दूसरे अगरेजो की हो चुकी थी। जव वाकी लोग भूखो मरने लगे तव उसने अगस्त मे सिराजुद्दौला के पास एक आवेदनपत्र भेजा कि वीती

हुई वातो को विसारकर, अव अगरेजो पर रहम कीजिए और ऐसा हुक्म दीजिए कि उन्हे दाना-पानी तो मिल सके। इस पत्र को वारेन ह्रेस्टिग्स ने नवाव तक पहुचने न दिया।

सिराजुद्दौला कलकत्ते में राजा मानिकचन्द*को किलेदार के रूप मे छोड कर मुशिदावाद लौट गया था। उस से पहले 'फोर्ट विलियम' के भीतर और वाहर वे सारी वारदाते हो चुकी थी जिनका ऐसे अवसर पर न होना ही आश्चर्यजनक हो सकता था। अर्थात् कुछ अगरेज मारे जा चुके थे—कुछ यत्रणाये भोगकर मर चुके थे—कुछ कैद हो चुके थे—और नवाव के सैनिको ने कपनी का ही नही, दूसरे व्यापारियो का भी वहुत कुछ माल-असवाव लूट लिया था। इतना निश्चित-सा जान पडता है कि जो ज्यादतिया हुई उनके लिए सिराजुद्दौला जिम्मेवार न था। उसका कलेजा ठंढा करने के लिए इतना ही काफी था कि अंगरेजो के किले पर उसका झडा फहराने लगा था।

पूर्निया मे सईद अहमद खाँ (सौलतजग) के मरने पर उसका वेटा शौकतजग वहाँ का फौजदार हो चुका था। कई वातो मे वह सिराजुद्दौला के ही समान था। मीर जाफर के उभाडने पर वह मुशिदावाद की गद्दी पर वैठने का मनसूवा वाँधने और साथ ही डून की हाकने लगा था। सिराजुद्दौला से ये वातें छिपी न रह सकी। यही कारण है कि कलकत्ते पर चढाई करने से पहले वह पूर्निया पर चढाई करने चला था, पर जैसा कि हम देख चुके है, उसे राजमहल से ही लौट जाना पडा था। उसने राजा जानकी राम के वेटे (अर्थात् दुर्लभराम के भाई) राय रासविहारी को शौकतजग के पास भेजा और माल का वकाया

* राजा मानिकचन्द पहले वर्दवान में दीवान रह चुका था। "मुताख्खरीन" के लेखक ने उसे अयोग्य और अभिमानी वताया है।

तलव किया। शौकतजंग कुछ इलाके दवा बैठा था। उन्हे भी लौटा देने को लिखा। पर माँग पूरी न होने पर उसने कलकत्ते से लौटते ही मोहनलाल को फौज के साथ चढाई पर उधर भेजा और आप भी चल पडा। पटने से राजा रामनारायण पूर्निया की ओर वढा। मनिहारी और नवाबगज के बीच दोनो दलो की भिडत हुई। उसमें शौकतजंग की हार हुई और वह खुद भी मारा गया। सिराजुद्दौला ने मोहनलाल को पूर्निया का फौजदार नियुक्त किया। यह अपने बेटे को नायव मुकर्रर कर मुर्शिदावाद लौट गया।

राजनीतिक परिस्थिति शौकतजग के वहुत कुछ अनुकूल होते हुए भी वह उससे लाभ न उठा सका था। "मुताखरीन" का लेखक सैयद गुलाम हुसैन उस समय पूर्निया में उसका खास सलाहकार था। उसने राय दी थी कि वरसात वीतने पर अगरेजों के और सिराजुद्दौला के वीच युद्ध हुए विना न रहेगा—इसलिए जल्दवाजी न कीजिये, रासविहारी को दम-दिलासा देते और चुपचाप अपनी सैनिक शक्ति वढाते जाइये। पर शौकतजग को यह सलाह ठीक नही जँची थी और उसने सिराजुद्दौला को अपमानजनक पत्र भेजकर सारा गुड गोवर कर दिया था। मि० लिट्ल ने इस प्रसग में लिखा है — "मुताखरीन" मे शौकतजग का जो चरित्र-चित्रण है उससे तो यह सभव नही जान पडता कि जगत्सेठ उसे सिराजुद्दौला से अच्छा समझ सकते या उसका पक्ष ग्रहण कर सकते थे। पर लोकमत सिराजुद्दौला के इतना विरुद्ध था कि दोषो के होते हुए भी अगर शौकतजग चेष्टा करता तो वहुत संभव है कि मुर्शिदावाद की मसनद पर जा बैठता। उसने अपनी ही वेवकूफी से वह मौका खो दिया। मो० ला नामक फरासीसी ने इस वात पर अफसोस जाहिर किया है कि उसके देशवासी इस अवसर से

जो लाभ उठा सकते थे न उठा पाये। उसका कहना है कि, इसके लिए तीन-चार सौ फरासीसी और थोडे-से हिन्दुस्तानी सिपाही ही काफी थे। अगर वे सिराजुद्दौला के शत्रुओ से मिलकर काम करते तो उसकी जगह ऐसे शख्स को नवाव नाजिम वना सकते थे जिसके पक्षपाती जगत्सेठ और दूसरे प्रभावशाली हिंदू-मुसलमान भी हो जाते। पर मेरे देशवासी ऐसा न कर सके, और पूर्निया के नवाव ने अपनी जल्दवाजी से हार खाकर वगाल मे यह स्पष्ट कर दिया कि अव क्राति करने-कराने वाले वहाँ अंगरेज ही रह गये थे। पर अगरेज उस समय स्वय दुर्दशाग्रस्त थे, इसलिए जगत्सेठ को और ही अवसर की प्रतीक्षा करनी पडी।"

कलकत्ते में ईस्ट इडिया कंपनी के साथ अमीचन्द सेठ का घनिष्ठ सवंघ चला आया था, यद्यपि यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि कपनी के कुछ विशिष्ट अधिकारियो का उन पर पूरा विश्वास न था। गवर्नर ड्रेक ने तो 'फोर्ट विलियम' छोडकर भागने से पहले उन्हे गिर-फ्तार भी करा लिया था। २२ अगस्त को अमीचद ने मेजर किलपैट्रिक को लिखा कि आप जगत्सेठ से सहायता माँगिये। पर उस समय मुर्शिदावाद में परिस्थिति कुछ ऐसी हो गई थी कि किल्पैट्रिक के लिखने पर भी अमीचद उसका पत्र जगत्सेठ के पास न भेज सके। एक ओर सिराजुद्दौला ने मीर जाफर को और दूसरे सरदारो को शौकतजग से लडने को भेजा, दूसरी ओर उसने महतावराय से कहा कि व्यापारियो से तीन करोड रुपये चदा उगाहकर दो। साथ ही इस वात की शिकायत की कि दिल्ली दरवार से उन्होंने अभी तक फरमान नही मँगा दिया था। जव जगत्सेठ ने चदा उगाहने मे अपनी असमर्थता प्रकट की तव सिराजुद्दौला ने उनके गाल पर एक तमाचा जड दिया* और उन्हें

* शायद यह भी कहा कि मैं तेरी सुन्नत कराके छोड़ूँगा।

तलव किया। शौकतजग कुछ इलाके दवा बैठा था। उन्हे भी लौटा देने को लिखा। पर माँग पूरी न होने पर उसने कलकत्ते से लौटते ही मोहनलाल को फौज के साथ चढाई पर उधर भेजा और आप भी चल पडा। पटने से राजा रामनारायण पूर्निया की ओर वढा। मनिहारी और नवावगज के बीच दोनो दलो की भिडत हुई। उसमे शौकतजग की हार हुई और वह खुद भी मारा गया। सिराजुद्दौला ने मोहनलाल को पूर्निया का फौजदार नियुक्त किया। यह अपने वेटे को नायव मुकर्रर कर मुर्शिदावाद लौट गया।

राजनीतिक परिस्थिति शौकतजग के वहुत कुछ अनुकूल होते हुए भी वह उससे लाभ न उठा सका था। "मुताखरीन" का लेखक सैयद गुलाम हुसैन उस समय पूर्निया में उसका खास सलाहकार था। उसने राय दी थी कि वरसात वीतने पर अगरेजों के और सिराजुद्दौला के वीच युद्ध हुए विना न रहेगा—इसलिए जल्दवाजी न कीजिये, रासविहारी को दम-दिलासा देते और चुपचाप अपनी सैनिक शक्ति वढाते जाइये। पर शौकतजग को यह सलाह ठीक नही जँची थी और उसनें सिराजुद्दौला को अपमानजनक पत्र भेजकर सारा गुड गोवर कर दिया था। मि० लिट्ल ने इस प्रसग में लिखा है — "मुताखरीन" मे शौकतजग का जो चरित्र-चित्रण है उससे तो यह सभव नही जान पडता कि जगत्सेठ उसे सिराजुद्दौला से अच्छा समझ सकते या उसका पक्ष ग्रहण कर सकते थे। पर लोकमत सिराजुद्दौला के इतना विरुद्ध था कि दोपो के होते हुए भी अगर शौकतजग चेष्टा करता तो वहुत संभव है कि मुर्शिदावाद की मसनद पर जा वैठता। उसने अपनी ही वेवकूफी से वह मौका खो दिया। मो० ला नामक फरासीसी ने इस वात पर अफसोस जाहिर किया है कि उसके देशवासी इस अवसर से

जो लाभ उठा सकते थे न उठा पाये। उसका कहना है कि, इसके लिए तीन-चार सौ फरासीसी और थोडे-से हिन्दुस्तानी सिपाही ही काफी थे। अगर वे सिराजुद्दौला के शत्रुओ से मिलकर काम करते तो उसकी जगह ऐसे शख्स को नवाब नाजिम बना सकते थे जिसके पक्षपाती जगत्सेठ और दूसरे प्रभावशाली हिंदू-मुसलमान भी हो जाते। पर मेरे देशवासी ऐसा न कर सके, और पूर्निया के नवाब ने अपनी जल्दबाजी से हार खाकर बगाल मे यह स्पष्ट कर दिया कि अब क्राति करने-कराने वाले वहाँ अगरेज ही रह गये थे। पर अगरेज उस समय स्वय दुर्दशाग्रस्त थे, इसलिए जगत्सेठ को और ही अवसर की प्रतीक्षा करनी पडी।"

कलकत्ते में ईस्ट इडिया कपनी के साथ अमीचन्द सेठ का घनिष्ठ सबध चला आया था, यद्यपि यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि कपनी के कुछ विशिष्ट अधिकारियों का उन पर पूरा विश्वास न था। गवर्नर ड्रेक ने तो 'फोर्ट विलियम' छोडकर भागने से पहले उन्हें गिरफ्तार भी करा लिया था। २२ अगस्त को अमीचद ने मेजर किलपैट्रिक को लिखा कि आप जगत्सेठ से सहायता माँगिये। पर उस समय मुर्शिदाबाद में परिस्थिति कुछ ऐसी हो गई थी कि किलपैट्रिक के लिखने पर भी अमीचद उसका पत्र जगत्सेठ के पास न भेज सके। एक ओर सिराजुद्दौला ने मीर जाफर को और दूसरे सरदारो को शौकतजग से लडने को भेजा, दूसरी ओर उसने महतावराय से कहा कि व्यापारियो से तीन करोड रुपये चदा उगाहकर दो। साथ ही इस बात की शिकायत की कि दिल्ली दरबार से उन्होंने अभी तक फरमान नही मँगा दिया था। जब जगत्सेठ ने चदा उगाहने मे अपनी असमर्थता प्रकट की तब सिराजुद्दौला ने उनके गाल पर एक तमाचा जड दिया* और उन्हे

* शायद यह भी कहा कि मै तेरी सुन्नत कराके छोडूँगा।

गिरफ्तार भी करा लिया। यह सुनते ही मीर जाफर मुर्शिदाबाद लौट गया और जगत्सेठ की रिहाई पर जोर देने लगा। जब सिराजुद्दौला ने उसकी एक न सुनी तब उसने और कुछ दूसरे सरदारो ने उससे साफ कह दिया कि जब तक शाही फरमान* नही आता तब तक हम आपकी आज्ञा का पालन करने या आपकी ओर से लडने वाले नही।

जो अगरेज फलता मे जहाजो के तखतो पर पडे हुए सर्दी-गरमी झेल रहे थे उनका आखिर उद्देश क्या था? 'फोर्ट विलियम' छोड़कर भागने वालो को यो तो सीधे मद्रास जाना चाहिए था, फिर वे वैसे स्थान में किस आशा से अटके और हवा-पानी के झटके खाते रहे? रहस्य यह जान पडता है कि किला और शहर गँवा देने पर भी अंगरेज निराश नही हुए। उनका यह विश्वास बना ही रहा कि एक न एक दिन वे उन्हे फिर दखल किये बिना न रहेगे। इसलिए वे कलकत्ते के ही पास ताक लगाये बैठे रहे और मौका पाते ही फिर अपने किले मे जा बैठे। मेजर किलपैट्रिक को सभवत आदेश मिल चुका था कि जब तक मद्रास से सेना नही आ जाती तब तक जहाँ के तहाँ बने रहो। उसने बडी ही खूबी से इसका पालन किया। एक ओर तो रोता-धोता रहा—जिससे लाभ यह हुआ कि कुछ समय बाद शरणार्थियो को अन्न-जल मिलने लगा और सिराजुद्दौला अगरेजो से निश्चित-सा हो गया—दूसरी ओर वह मुर्शिदाबाद से पक्की खबर मँगाता और उसे मद्रास पहुचाता रहा। उसने धीरे धीरे जगत्सेठ और खोजा वजीद से सपर्क

---

* चिचुरा से डाक्टर वर्य ११ दिसम्बर, १७५६ को लिखता है—"सिराजुद्दौला को बादशाह से फरमान मिल गया है। उसका सारा खर्च पड़ा है २,०२५,०००)। यहा भी फरमान की नकल पहुँच चुकी है।" हिल, भाग २, पृष्ठ ५३।

स्थापित कर लिया और उनसे जो कुछ भी सहायता ले सकता था लेता गया। वजीद सिराजुद्दौला के दरवार मे विशेष प्रभाव रखने वाला एक अर्मनी व्यापारी था। जो काम उससे निकल सकता निकाल लिया जाता—बाकी कामो के लिए महताबराय का पल्ला पकडा जाता। नवम्बर में किलपैट्रिक उन्हे लिखता है कि, "आपके सिवाय हम लोगो का और कोई सहारा नही। हमे पूरी आशा है कि आपकी सहायता से हम कलकत्ते मे फिर बस सकेगे।" ११ दिसम्वर को चिचुरा से समाचार मिलता है कि जगत्सेठ और अमीचद इस बात का प्रयत्न कर रहे है कि उलझन सुलझ जाय। साथ ही फलता से महताबराय के नाम जाने वाले दो पत्रो की प्राप्ति भी स्वीकार की जाती है। अगरेजो के और जगत्सेठ के बीच पत्र-व्यवहार का रास्ता अव सीधा न रहकर टेढा-मेढा हो चला था।

बगाल, बिहार और उडीसा मे इधर अगरेजों की जो परिस्थिति हो चली थी उसका नकशा बदलने ही वाला था। इसके लिए मद्रास की कौंसिल ने पूरी तैयारी कर लेने के बाद, क्लाइव और वाट्सन को सदल-बल कलकत्ते भेजा। १५ दिसम्बर को दोनो फलता पहुँच गये। मद्रास से जो पत्र वहा के अधिकारियो के नाम आया उसमे यह स्पष्ट कर दिया गया था कि क्लाइव और वाट्सन को भेजने का उद्देश केवल कलकत्ते पर अधिकार जमा लेना न था। 'वादशाह फर्रुखसियर ने फरमान द्वारा हमें जो अधिकार दिये थे वे सब के सब प्राप्त हो जाने चाहिए और इधर हमारी जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति भी हो जानी चाहिए।' मद्रास की कौसिल का आदेश था कि दोनो सेनापतियो के पहुचते ही लडाई जोर-शोर से शुरू कर दी जाय, पर इसके साथ यह भी हिदायत थी कि 'तलवार से ही नही, कलम से भी काम लिया जाय और

दोनो का ऐसा सहयोग हो कि कम से कम समय और व्यय मे कपनी का अधिक से अधिक काम निकल जाय।'

उन दोनो सेनापतियो मे क्लाइव का स्थल पर अधिकार था और वाट्सन का जल पर। क्लाइव कपनी का नौकर था और वाट्सन इगलैण्ड के वादशाह का। सात समुद्र पार भी इगलैण्ड की सरकार बरावर अपने व्यापारियो को पूरी मदद पहुँचाती रही। इसका नतीजा यह हुआ कि सारा भारतवर्ष एक दिन इगलैण्ड का उपनिवेश बन गया। अगर फ्रास की सरकार इसी प्रकार फ्रेंच कपनी की पीठ पर होती तो कहना चाहिए कि यहा फ्रास का सितारा भी वुलद हुए बिना न रहता।

यहीं पर एक और वात कह देने लायक है।

क्लाइव और वाट्सन में पूरा मेल-जोल रहा हो, यह नही कहा जा सकता। प्रत्येक का अपना स्वभाव, अपना दृष्टिकोण, अपनी नीति-रीति थी। स्थानीय कौंसिल के सदस्य वाट्सन के तो नही, पर क्लाइव के घोर विरोधी थे—इसलिए कि क्लाइव को मद्रास की कौंसिल से विशेष अधिकार मिल चुके थे और वह अपने क्षेत्र मे उनसे विलकुल स्वतत्र था। फिर भी अगरेज अपने ऊपर वालो का अनुशासन यहाँ तक मानते थे कि ऐसे पारस्परिक मतभेद या विरोध के कारण कपनी की नीति-धारा का कभी अवरोध न हो सका। उसके स्वच्छद प्रवाह मे सभी सहयोगी ही वने रहे।

कलकत्ते पहुँचने के दो ही दिन वाद वाट्सन और क्लाइव की ओर से सिराजुद्दौला के पास ऐसे पत्र भेजे गये जैसे अभी तक मुर्शिदावाद तो क्या, हुगली भी नही भेजे गये थे। एक ने अपने पत्र में लिखा था कि ऐसे सम्राट् ने मुझे नौ-सेनापति बनाकर भेजा है जिसे ससार के सभी नरेश आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते है। दूसरे ने लिखा था कि

आप सुन ही चुके होगे कि जितनी वडी फौज साथ लेकर मै आया हूँ उतनी वडी बगाल मे आज तक आई ही नही। दोनो ही पत्रो मे कपनी की ओर से यह माग पेश की गई थी कि हमारे मकान और कारखाने हमे लौटा दिये जायँ, हमे, हमारे कर्मचारियो को और हमारी रिआया को जो नुकसान पहुँचाया गया है वह पूरा कर दिया जाय और हमारे सारे अधिकार वही समझे जायँ जो बादशाह फर्रुखसियर ने हमें बख्शे थे। राजा मानिकचद, जगत्सेठ महतावराय, खोजा वजीद इन सब से पत्र-व्यवहार होने लगा। पर कलम चल रही थी तो तलवार भी म्यान में बैठ रहने वाली न थी। दिसम्बर बीतने से पहले ही क्लाइव ने लडाई शुरू कर दी। मानिकचन्द बजबज जाकर उससे भिडा तो उसे मुंह की खानी पडी। २ जनवरी को वाट्सन ने उससे 'फोर्ट विलियम' भी छीन लिया। एक कदम और आगे वढकर अगरेजो ने आठ ही दिन वाद हुगली से भी नवाव की फौज को मार भगाया और शहर पर कब्जा कर लिया। यह चढाई भी जल-मार्ग से ही हुई थी।

इससे पहले क्लाइव जगत्सेठ को एक पत्र लिखा चुका था। और बहुत से पत्रो की तरह वह तो इस समय अप्राप्य है, पर जगत्सेठ ने १४ जनवरी को जो उत्तर दिया वह इस प्रकार था —

"आपका पत्र मिला। उसे पढकर बडी प्रसन्नता हुई।

"आपने लिखा कि मै जो कुछ कहता हूँ नवाव उस पर ध्यान देते है। अगर यह सच है तो मुझे आशा है कि मै आपकी और सूबे की थोडी-बहुत भलाई कर सकूगा। कम से कम मै जो कुछ कर सकता हूँ अवश्य करूँगा।

"मै व्यापारी हूँ, सभव है कि मेरी सिफारिश का नवाव पर कुछ असर हो। पर मै कुछ कहूँ भी तो कैसे? जरा अपने कार-

नामो को देखिए। कलकत्ते पर आपने जोर-जबर्दस्ती से कब्जा कर लिया। फिर वही वात हुगली मे हुई। उस शहर को तो आपने मिटा भी डाला। स्पष्ट है कि आप सुलह या समझौता नही चाहते—आप सिर्फ लडाई चाहते हैं। फिर मै आपकी ओर से क्या कहूँ और कैसे यह झगडा निबटाऊँ ?

"आपकी कार्रवाइयो से जान पडता है कि आपका अपनी तलवार पर भरोसा है। हा, अपने आवेदन-पत्र में आपने और राग जरूर अलापा है। अगर आप सचमुच चाहते है कि मै आपके और नवाव के वीच में पड़कर झगडा निवटा दू तो आप पहले अपना रग-ढग वदले, फिर मुझे यह वतावे कि आपकी माग क्या है। मै मामला तै करा देने के लिए, कुछ भी उठा न रखूगा। एक ओर तो आप इस सूवे के मालिक पर तलवार सौते और दूसरी ओर यह आशा करें कि वह इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखकर रह जायँगे—यह तो असगत ही कहा जा सकता है। आप स्वय विचार ले"*।

जगत्सेठ ने यह पत्र चन्दननगर में फ्रेंच कपनी के प्रधान मो० रेनाल्ट की मार्फत भेजा था। खोजा वजीद ने भी रेनाल्ट को लिखा था कि आप मध्यस्थ होकर यह झगडा मिटा दे। कपनी के अधिकारियों का अनुमान था कि जगत्सेठ ने क्लाइव को और खोजा वजीद ने रेनाल्ट को जो कुछ लिखा था वह सिराजुद्दौला के ही आज्ञानुसार। पर फ्रांस और इगलैण्ड के वीच युद्ध छिड चुका था, इसलिए—अथवा अन्य कारणो से—कपनी को रेनाल्ट की मध्यस्थता स्वीकार नही हुई। २१ जनवरी को क्लाइव ने 'सेठ महतावराय और महाराज स्वरूपचद' को लिखा —

* हिल, भाग २, पृष्ठ १०४। और पत्र भी इसी सग्रह से लिये गये है।

"आपका कृपापत्र मिल गया। आपने जो कुछ लिखा उससे मैंने यहां के गवर्नर और कौंसिल के सदस्यो को भी अवगत कर दिया।

"मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि आप बीच मे पडकर इस सूबे को खून-खराबी से बचाने को तैयार है।

"आपको यह बताने की आवश्यकता नही कि इधर अगरेजो पर क्या क्या जुल्म हो चुके है। नवाब नाजिम की ओर से होने वाली ज्यादतियों की दास्तान सुनाऊँ तो आपके रोगटे खडे हो जायँ। आज बगाल इतना सम्पन्न है तो इसका अधिकाश श्रेय अगरेजो को ही प्राप्त है। फिर भी उनके प्रति कैसे अत्याचार किये गये, नृशसता और बर्बरता की चक्की में उन्हे किस तरह पीसा गया ? एक ही रात को कम से कम १२० अगरेज—जिनमे अधिकाश घरानेदार थे—बेरहमी से मौत के घाट उतार दिये गये। मै बराबर सुनता आया हूँ कि नवाब नाजिम वीर है, दयावान् है। पर यह हत्याकाड तो ऐसी कायरता और क्रूरता का काम था कि मै यही कहूँगा कि जो कुछ हुआ वह विना उनकी जानकारी के ही।

"आज हमारा खून उबल रहा है, पर आप हमे दोषी नही ठहरा सकते। क्या हमने पत्र पर पत्र भेजकर नवाब के कानो तक अपनी फरियाद नही पहुंचाई—इस आशा से कि हमे कुछ तो उत्तर मिलेगा, हमारे साथ कुछ तो न्याय होगा ? क्या हमने अरसे तक फलता में बैठ कर उनकी प्रतीक्षा नही की ? क्या बजबज में उनके किलेदार ने ही हमारे जहाजो पर पहले गोली-गोले चलाकर लड़ाई नही छेडी ? जब हमारे साथ ऐसा व्यवहार हुआ तब हम उत्तेजित हुए और जवाब दिये विना कैसे रह सकते थे !

"पर यह सब गुजरने पर भी, हम ऐसी सधि के लिए तैयार हैं

जिस से दोनो की हितरक्षा हो सके। हमारी शर्तें क्या है, यह हम आपको अलग जता रहे है। आप समझदार है। आपको यह बताना अनावश्यक जान पड़ता है कि हम जो कुछ मागते है वह न्याय के आधार पर ही। अगर आप समझा-बुझा कर नवाव नाजिम से हमारी शर्तें मजूर करा दे तो आप इस सूवे को वरवाद होने से वचा लेगे और इसके वहुत वडे शुभचिन्तक समझे जायगे।

"अगरेज जाति महान् है। आपके दिल्लीश्वर से उसके अधीश्वर की शक्ति तनिक भी कम नही। जव इगलैण्डाधीश को मालूम होगा कि यहा इतने अगरेज मार डाले गये तव उन्हे कितना क्रोध आयेगा, यह आप स्वय अनुमान कर सकते है। ध्यान रहे कि उनका जल-सेनापति यहा अपने बेडे के साथ आ गया है। स्थल-सेनापतिकी हैसियत से मेरा अपना दर्जा भी उसी के वरावर है। मै डीग हाकना तो नही चाहता, पर इतना कह देना आवश्यक समझता हूँ कि मद्रास की ओर वगाल के नवाव नाजिम जैसे शक्तिशाली शत्रुओ से हमे कामपड चुका है और हम उन पर विजय प्राप्त कर चुके है। हो सकता है कि यहा भी वही वात हो। मुझे आशा है कि परिस्थिति हमें लडाई के लिए कटिवद्ध होने को विवश न करेगी। यो तो जीत ईश्वर की कृपा से होती है और ईश्वर अपनी कृपा का पात्र उन्ही को समझता है जो पर-पीडित होते है।"

क्लाइव ने एक पत्र खोजा वजीद को भी लिखा जिसका सारांश यह था कि कपनी को किसी फरासीसी की मध्यस्थता तो स्वीकार नही हो सकती, पर आप से और जगत्सेठ से उसका यह आग्रह है कि दोनो वीच मे पड कर नवाव नाजिम से सुलह करा दे।

नवाव की अवस्था यह थी कि जहां वह अगरेजो से चिढा हुआ

था वहां, उनका दमखम—खास कर जहाजी ताकत—देख कर उनसे भयभीत भी हो रहा था। जनवरी के अन्तिम सप्ताह में उसने कलकत्ते की दूसरी यात्रा की और झगडा रफा-दफा कर लेने के विचार से ही एक ऐसे व्यक्ति को साथ लेता गया जो इस दृष्टि से विशेष उपयोगी हो सकता था। इसका नाम लाला रजीतराय था। पुराने कागजात में यह जगत्सेठ का वकील बताया गया है। इधर कुछ समय से जगत्सेठ के इच्छानुसार यह कपनी का भी वकील हो चला था और इसी की मार्फत सधि-सबधी सदेसे भुगतने लगे थे।

कलकत्ते के पास पहुचने पर सिराजुद्दौला ने क्लाइव को लिखा कि अगर कपनी लूटमार करना छोड कर फिर वाणिज्य-व्यापार करने की इच्छुक हो तो अपने प्रतिनिधि को मेरे पास भेजे और कहलावे कि वह क्या चाहती है। कलकत्ते मे और अन्यत्र उसे जो स्वतत्रता पहले प्राप्त थी वह मै उसे दे दूगा और उसकी जो हानि हुई है उसकी भी कुछ पूर्ति कर दूगा। ३ फरवरी को उसकी सेना कलकत्ते पहुच चुकी थी और सेठ अमीचन्द के बगीचे में उसका पडाव पड चुका था। उसने क्लाइव को आश्वासन देते हुए लिखा कि 'कपनी निश्चित रहे। मै खुदा की और उनके पैगबर की कसम खाकर कहता हू कि उसकी ओर से सधि-विषयक बातचीत करने जो लोग आयेगे वे सही-सलामत घर लौट सकेंगे।' कपनी की ओर से वाल्श और स्क्राफ्टन दूत बना कर भेजे भी गये। पर क्लाइव के मन की बातें कुछ और ही थी। वह सिराजुद्दौला को धोखा देकर उस पर प्रहार करना चाहता था। ४ फरवरी को दोनो दूत तो इधर-उधर की बात कर लौट गये और ५ फरवरी को क्लाइव ने नवाब की छावनी पर छापा मार दिया। उस समय इतना घनघोर कुहरा लगा हुआ था और सिराजुद्दौला के सैनिक इतनी निश्चिन्तता

से विस्तरो पर पडे हुए थे कि उनसे तो कुछ वन न पडा और क्लाइव हाथ की सफाई दिखाता हुआ, कुछ लाशे गिरा गया—सारी सेना को चकित तथा स्तभित कर गया*।

सिराजुद्दौला ने अमीचन्द के वगीचे मे ठहरना निरापद न समझ कर दमदम के पास जा डेरा डाला। सधि के सवध मे दूसरे दिन रजीतराय ने क्लाइव को लिखा—

"मेरा तो खयाल था कि अगरेज जवान के पक्के होते है और जो वात स्वीकार कर लेते है उससे कभी टलते नही। इसी खयाल से मैं उनके मामले मे दिलचस्पी लेता और नवाव नाजिम से उनकी सिफारिश करता आ रहा था। आपकी ओर से जो व्यक्ति आये थे उनसे काम वनने वाला न था, इसीलिए मैंने ही उन्हे लौट जाने को कहा। आपको लिखा भी कि आप अपनी माग पत्र-द्वारा सूचित करे तो मैं नवाव से उसे मजूर करा दू। वह इन वातो के लिए तैयार है कि फरमान मे जिन अधिकारो का उल्लेख है उन्हें आपको दे दें, आपको कलकत्ता लौटा दे—कासिमवाजार या अन्यत्र आपकी जो हानि हुई हो उसकी पूर्ति कर दें—कलकत्ते (अलीनगर †) मे आपको टकसाल खोलने की इजाजत दे दे—और वहाँ आप जैसी भी किलेवन्दी करना चाहे आपको करने दें। पर यह सव होते हुए भी आपने कल सुवह जो कुछ किया उससे मुझे आश्चर्य-चकित और नवाव के सामने लज्जित भी होना

---

* हेनरी डाडवेल ने लिखा है कि क्लाइव ने इस अवसर पर वही तरीका अख्तियार किया जो दाक्षिणात्य में फ्रेंच नासिरजग के खिलाफ दो वार अख्तियार कर चुके थे और जो कारगर भी सावित हो चुका था।

† यह नाम सिराजुद्दौला का रखा हुआ था।

पड़ा। खोजा पिट्रस (पिंदू) यह पत्र लेकर जा रहा है। उससे आप सुन लेंगे कि नवाव के और मेरे बीच क्या बातें हुई।

"खैर, जो होना था हुआ। बात अभी तक बिगडी नही है। अगर आप सचमुच मामला तै करा लेना चाहते है तो अपने प्रस्ताव नवाव को लिख भेजिए। मै उन्हे स्वीकृत करा दूगा। नवाब से स्वीकृतिपत्र के साथ आपके लिये सिरोपा, हाथी और कोई आभूषण भी भिजवा दूगा। नवाव यहा से शीघ्र मुर्शिदाबाद लौट जाने वाले है। अगर आप सधि नही करना चाहते और लडाई पर ही आमादा है तो मुझे साफ लिखिए, ताकि मुझे इस मामले में और हैरानी-परेशानी न उठानी पडे।"

खेत मे बीज बोया जा चुका था। रजीतराय ने क्लाइव को कहलाया कि देर न कीजिए, ऐसा मौका फिर आसानी से न मिल सकेगा। क्लाइव क्यो देर करने लगा था ? उसने झटपट अपनी शर्ते लिख भेजी और बीज के उगने की राह देखने लगा। सिराजुद्दौला की आन्तरिक इच्छा वैसी सधि करने की तो थी ही नही। कुछ आनाकानी करने लगा। ज्योही क्लाइव को इसकी सूचना मिली, उसने रजीतराय को लिखा—

"आपका पत्र मिला। उसके साथ सुलहनामे का वह मसौदा भी, जो कपनी की ओर से भेजा गया था।

"आश्चर्य है कि आप और आपके नवाव सारी बात को मजाक समझ रहे है। मालूम हो गया कि हमारी शर्तें आप लोगो को मजूर नही। ईश्वर इस बात का साक्षी है कि मै हृदय से शाति चाहता हूँ और छलछद तो मुझे आता ही नही।

"खैर, मसौदा साफ कराके मै इसके साथ भेज रहा हूँ। अगर नवाब नाजिम सुलह चाहते है तो हर शर्त के नीचे 'मजूर' लिख कर

और सही भर कर कागज लौटा दे। उन्होने यह कर दिया तो समझ लीजिए कि शाति हो चुकी। अगर ऐसा नही करते तो आप आगे कुछ न कीजिए। फिर तो युद्ध छिड़े विना रहेगा ही नही।

"हमारे गवर्नर और कौसिल की ओर से जो इकरारनामा होगा उसके वारे मे मै यकीन दिला सकता हूँ कि फरमान की और अपने इकरारनामे की शर्तों की वे वरावर पावन्दी करेगे। सरकार की प्रजा को न तो वे शरण देगे और न अकारण किसी पर हाथ उठायेगे।"

जिस दिन यह पत्र भेजा गया उसी दिन—अर्थात् ८ फरवरी को—सधि हो गई। अपने इकरारनामे पर दस्तखत करने वालो में सिराजुद्दौला तो था ही, उसके दीवान* राजा दुर्लभराम वहादुर और फौज के वख्शी† मीर जाफर खा वहादुर भी थे। पर सुलहनामा विलकुल एक-तरफा था। सिराजुद्दौला को स्वीकार करना पडा कि—

१—फर्रुखसियर से कपनी को जितने अधिकार मिल चुके थे वे उसे मान्य होगे। विशेष कर जिन गावो की जमीदारी कपनी को मिल चुकी थी उन्हे वह वे-रोकटोक हासिल कर सकेगी।

२—कपनी के दस्तक के साथ जाने वाले माल पर वंगाल, विहार या उडीसा में किसी प्रकार की चुगी वसूल न की जायगी।

३—कपनी की सारी कोठिया सरो-सामान के साथ उसे लौटा दी जायगी। कंपनी का जो नुकसान हुआ था उसके लिए उसे मुनासिव मुआवजा मिलेगा।

---

* सभवत उस अधिकारी के भी दस्तखत थे, जो वगाल में दीवानेकुल कहा जाता था।

† स्पष्ट है कि सिराजुद्दौला ने मुर्शिदावाद लौटने पर मीर जाफर को इस पद से हटाया।

४—कपनी को कलकत्ते मे किलेबदी का पूरा अधिकार होगा।

५—कपनी अपनी टकसाल खोल सकेगी और उसके सिक्को पर वट्टा न कटेगा।

जब कपनी को इतने अधिकार मिल चुके, तब कुछ अँगरेजों की राय हुई कि नवाब को और दबा कर उससे कुछ और लिया जाय। पर क्लाइव, किलपैट्रिक आदि ने इसका विरोध किया। उनका कहना था कि नवाब को डराने-धमकाने का नतीजा यह हो सकता है कि जो हाथ लग चुका है हम उसे भी गवा बैठे। उन्होने इस बात पर जोर दिया कि रजीतराय भी इसके विरुद्ध था।

"सेठो के वकील रजीतराय की भी राय यही है। वह शुरू से ही हमारे मामले के पैरोकार रह चुके है। अपने अन्तिम पत्र में उन्होने कर्नल क्लाइव को लिखा है कि नवाब नाजिम से जो कुछ मिल चुका है अगर कपनी को उससे सन्तोष नही तो मै इस धधे से किनारा खीचता हू। वह गोली-बारूद की आजमाइश कर देख ले।"

यद्यपि क्लाइव अभी गोली-बारूद से काम लेने के पक्ष में न था, तथापि वह भी इस प्रस्ताव से सहमत था कि कूटनीति का प्रयोग कर—अर्थ की खीचातानी कर—सधि-रूपी गागर को कपनी के हक में सागर बना दिया जाय। १६ फरवरी को विलियम वाट्स दरबार में कपनी का प्रतिनिधित्व करने के लिए कासिमबाजार भेजा गया और उसे जो आदेश * दिये गये उनसे स्पष्ट है कि कपनी की नीयत कहा तक खराब थी। उनका अभिप्राय यही था कि हम म्यान से तलवार खीचने

* हिल, भाग २, पृष्ठ २२५-२२७।

का नाम तो अभी न लेंगे, पर कलम और जवान* से जो झगडा-रगडा किया जा सकता है करते जायगे।

उसी दिन क्लाइव ने जगत्सेठ से मिलने वाली सहायता के लिए उन्हे धन्यवाद देते हुए लिखा—

"अमीचन्द सेठ मुझे वता चुके है कि नवाव के साथ लाला रजीतराय को आपने ही भेजा था। उनके आने का फल यह हुआ कि बगाल मे शाति-भग की आशका जाती रही और कपनी को फिर अपना व्यवसाय करने की इजाजत मिल गई। मैने रजीतराय के परामर्श के विरुद्ध कभी कुछ नही किया है। सुलह हो गई—उसकी शर्तों की पावन्दी के दोनों तरफ इकरार भी हो चुके। आपने इस अवसर पर कपनी की अमूल्य सहायता की है। उसके कारवार का फिर पहले की ही तरह चलना सभव हो सका है तो उसी सहायता के फल-स्वरूप। इधर मैने जो पत्र इंगलैण्ड भेजे है उनमे इस वात का विशेप रूप से उल्लेख कर चुका हूँ।"

पर उस सहायता का दूसरी ओर फल यह हुआ कि सिराजुद्दौला मन-ही-मन जगत्सेठ से और भी खिच गया। महतावराय का घराना वरसो से कपनी का पृष्ठपोषक चला आया था। सिराजुद्दौला को यह अच्छी तरह मालूम था कि रजीतराय का उस घराने से क्या सबध था और वह किस की ओर से वकालत कर रहा था। अगर उसे वैसी सधि करना मजूर न था तो रजीतराय को साथ ले जाने की और

---

* "नवाव से यह इजाजत भी मागना कि जव हमारे दस्तक हर प्रकार के कर, महसूल या चुगी से वरी कर दिये गये, तव हमें यह अधिकार भी मिलना चाहिए कि जो कोई इस हुक्म को न माने उसे हम स्वय दड दे सकें, ताकि हमें अपनी फरियाद दरवार तक पहुँचा कर महीनो उसके फैसले की राह न देखनी पडे।"

बात-बात में उससे सलाह करने की जरूरत ही क्या थी ? क्लाइव की धमकी मे आकर उसने सधि-पत्र पर सही भरना स्वीकार किया हो—या अगरेजो का लोहा मानकर—उसने जो कुछ किया उसका उत्तरदायित्व उस पर था—न कि महताबराय या रजीतराय या मीर जाफर पर। असलियत यह थी कि उसने कलकत्ते की यह दूसरी यात्रा अगरेजो से सधि कर लेने के ही विचार से की थी। इकरारनामे पर दस्तखत हुए ८ फरवरी को। ६ फरवरी को ही रजीतराय क्लाइव को लिख चुका था कि कपनी की ओर से वह जो कुछ माग रहा था, सिराजुद्दौला उसे दे देने को तैयार था।

इसमें सदेह नही कि कपनी की नब्ज की जैसी पहचान सिराजुद्दौला को थी वैसी महताबराय को नही। जगत्सेठ की और कितने ही दूसरे लोगो की दृष्टि में अगरेज या फरासीसी व्यापारी-मात्र बने हुए थे। सिराजुद्दौला को मालूम था कि इधर दक्षिण में दोनो क्या खेल खेल चुके थे और दोनो की विचारधारा किस दिशा में प्रवाहित हो रही थी। वह इस नतीजे पर पहुंच चुका था कि अगर इन विदेशी व्यापारियो को—विशेषत अगरेजो को दबाया न गया तो बगाल मे कर्णाटक[५] के इतिहास की पुनरावृत्ति हुए बिना न रहेगी। कहा गया है कि कपनी के कुछ अधिकारियो ने उसे छोटी-मोटी बातो में अपने व्यवहार से रुष्ट कर दिया था, इसीलिए वह कपनी का शत्रु बन गया था। वास्तव में उसके कलेजे का घाव व्यक्तिगत अपमान से कही गहरा था। पर साथ ही उसमे योग्यता का ऐसा अभाव था कि रोग को पहचानते हुए भी वह उसका इलाज न कर सका। बल्कि फोडे को नासूर बना लिया और परिस्थिति पर गालिब होने के बजाय उसी का शिकार हो गया।

बहुरुपिया न होते हुए भी सिराजुद्दौला ने मुर्शिदाबाद लौटते

पर कुछ समय के लिए अपना रूप बदल दिया और जहां सेठो को पहले फूटी आखो न देख सकता था वहा अब उन्हे सिर आखो पर वैठाने लगा। पर व्यवहार मे यह सौजन्य या नम्रता दिखाने को ही थी। उसके आतरिक भाव मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही हुआ था। जगत्सेठ भी धोखे में आने वाले न थे। उन्हे पक्की खवर मिलती रहती थी कि सिराजुद्दौला प्रच्छन्न रीति से उनके विनाश का मार्ग ढूढ रहा था। क्या आश्चर्य कि वे भी दूसरो से मिल कर उसके विनाश का उपाय ढूढते ? मो० ला* का विश्वास था कि अगर जगत्सेठ चाहते तो बिना अंगरेजो की या फरासीसियों की सहायता के ही एक दल खडा कर सिराजुद्दौला का नाश करा सकते थे। पर इसमे खर्च तो काफी पडता ही, समय भी वहुत लगता। और शर्त यह थी कि जगत्सेठ बगावत का वीडा उठाते तो !

उधर सिराजुद्दौला सेना-विभाग के पुराने पदाधिकारियों से भी शत्रुता मोल ले चुका था। मीर जाफर वरसो से वख्शी के पद पर था। उससे यह पद छीन कर मीर मदर्न† को दे दिया गया था। राजभक्त न होते हुए भी मीर जाफर काफी प्रभावशाली व्यक्ति था और सिराजुद्दौला ने अपनी इस कार्रवाई से उसे जख्मी शेर वना दिया था। मीर जाफर के अलावा रहीम खा, उमर खा, सलावत खा, दिलेर खा आदि और कई सरदार थे जो विभिन्न कारणो से भीतर ही भीतर राजद्रोही वन गये थे और उलट-फेर की घडी गिन रहे थे।

---

* कासिमवाजार में फ्रेंच फैक्टरी का प्रधान।

† यह वयान "मुताखरीन" का है। "रियाजुस्सलातीन" की वात मानी जाय तो मीर मदन तोपची था और वख्शी का पद ख्वाजा हादी अली खा को दे दिया गया था।

जो नये अधिकारी सिराजुद्दौला के द्वारा नियुक्त हुए वे प्राय. निकम्मे ही निकले। वे उसकी हा मे हा मिलाने वाले और अपनी जेबे भरने वाले थे। अनुभव-हीन होने के कारण वे ऊचा-नीचा बता भी न सकते थे। इनकी नियुक्तियो ने सिराजुद्दौला के मार्ग मे कुछ ऐसे काटे बिछा दिये जो तत्कालीन परिस्थिति में उसके लिए घातक ही सिद्ध हुए।

पुराने अधिकारियो को संभवत सब से अधिक खलने वाली नियुक्ति प्रधान मत्री के पद पर मोहनलाल की थी। यह पहले सिराजुद्दौला का खास दीवान था। गुलाम हुसैन ने लिखा है कि पदोन्नति होने पर उसका दर्जा पजहजारी मनसबदार का कर दिया गया और महाराज के खिताब के साथ उसे पालकी, नगारा आदि भी मिले। "मुताखरीन" के अगरेजी अनुवादक ने मोहनलाल की बहन से सिराजुद्दौला का अनुचित सम्बन्ध बताया है। "रियाजुस्सलातीन" में लिखा है कि "मोहनलाल सिराजद्दौला के तन और मन को इस प्रकार आवेष्टित कर चुका था कि प्रधान मत्री होते ही वह अपने स्वरूप को भूल गया और यह समझ बैठा कि मेरे सिवाय और कोई गिनती में आने योग्य ही नही। उसने माल-विभाग में तमाम अपने रिश्तेदार भर दिये और पुराने अधिकारियो को धता बता दिया। एक दिन नवाब गुलाम हुसैन खा बहादुर को कहलाया कि अगर २००) माहवार पर रहना मजूर हो तो रह सकते हो, वर्ना इस सूबे से हट जाओ। लाचार नवाब साहब, काबा जाने का बहाना कर, हुगली चले गये।" यही गुलाम हुसैन "मुताखरीन" का लेखक था। सताये जाने पर भी उसने दिल के फफोले नही फोडे, यह उसकी शराफत ही कही जा सकती है।

दुश्चरित्र न होकर अलीवर्दी खा नियम के अपवाद-स्वरूप लका मे विभीपण हो चुका था पर इससे उसके घर के वाहर-भीतर के वातावरण मे तनिक भी सुधार न हो सका। सिराजुद्दौला भी चरित्रहीन ही निकला। साथ ही वह हृदयहीन भी था। जहा तक दरवारियो का सम्बन्ध था, अगर उसमें वदतमीजी या वदजवानी न होती तो वात वहुत अधिक न विगडती। "मुताखरीन" में लिखा है कि जगत्सेठ और राजा दुर्लभराम जैसे पुराने पार्पदो और अधिकारियो को उसने अपने दुर्व्यवहार या दुर्वाक्यो से यहा तक रुष्ट कर दिया कि वे भी उसके शत्रु-दल में सम्मिलित और उसके विनाश पर कटिवद्ध हो गये । इस दल का मुखिया मीर जाफर था। जगत्सेठ ने उससे गठ-वधन कर वादा किया कि मुझसे जहां तक सहायता वन पड़ेगी मै करने से वाज न आऊगा। इस प्रकार उस षड्यत्र का सूत्रपात हुआ जिसका परिपाक सिराजुद्दौला को रसातल मे पहुचाने वाला था।

सिराजुद्दौला के साथ सधि हो जाने से पहले ही यूरोप में फ्रान्स और इंगलैण्ड के वीच फिर युद्ध छिड जाने का समाचार कलकत्ते पहुच चुका था। अगरेजों का विचार चदननगर पर चढाई कर, उसे ले लेने का हुआ पर परिस्थिति को अनुकूल न देख कर वे चुपचाप वैठ रहे। उन्हे डर था तो यह कि सिराजुद्दौला को यह मंजूर न होगा और वह दुश्मन की ओर हो गया तो वे दोनो का मुकावला न कर सकेंगे । पर जव सधि हो चुकी तव वे यह कह कर सिराजुद्दौला पर दवाव डालने लगे कि 'आप पत्रो द्वारा हमें आश्वासन दे चुके है कि हमारे शत्रुओ को आप अपने शत्रु समझेंगे। हमारी ओर से भी आप को ऐसा ही आश्वासन मिल चुका है। ऐसी स्थिति

मे आप हमें चन्दननगर पर चढ़ाई करने भी न दे तो ऐसी सधि का मूल्य ही क्या?' एक ओर अगरेज सिराजुद्दौला को कोच रहे थे, दूसरी ओर फरासीसियो से ऐसे समझौते की भी वात कर रहे थे जिससे बगाल में दोनो कपनिया तटस्थ बनी रहें और कोई किसी पर वार न करे।

मुर्शिदाबाद दरबार मे दोनो ओर के प्रतिनिधि जाने-आने लगे। अगरेजो का प्रतिनिधित्व करने के लिए वाट्स था ही, फरासीसियो ने यह काम अपने कासिमबाजार के प्रधान मो० ला को सौपा। अगरेज चाहते थे कि सिराजुद्दौला उन्हें अपने दुश्मनो से निबट लेने दे। फरासीसी चाहते थे कि वह अगरेजो को वैसी इजाजत न दे और आवश्यकता पडने पर उनकी रक्षा भी करे। सिराजुद्दौला स्वय उनकी रक्षा करना चाहता था। उसके दुश्मन उसे अगरेजो से उलझाना चाहते थे। सिराजुद्दौला को डर था कि कही उसे अगरेजो से चपत न खानी पडे। जगत्सेठ को फिक्र थी कि फ्रेंच कपनी के जिम्मे उनका जो पावना था उससे उन्हें कही हाथ न धोना पडे।

वाट्स अपनी कूटनीति-निपुणता का परिचय देने लगा। १८ फरवरी १७५७ को उसने हुगली से 'दस कोस दूर' कही से क्लाइव को लिखा कि अमीचन्द की वहा के दीवान और कायम मुकाम फौजदार नन्दकुमार से बातें हो चुकी थी और उससे यह तै हो चुका था कि दस-बारह हजार रुपये मिल जाने पर वह इस मामले मे अगरेजो के अनुकूल रहेगा और अगर नवाब ने फरासीसियो की मदद के लिए कुछ सैनिक चदननगर भेजे भी तो उन्हे कम से कम दो हफ्ते वहा पहुचने न देगा। अमीचन्द* ने सलाह दी थी कि कपनी नन्दकुमार

---

* अमीचन्द के हो के वश में भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र हुए। लिखा है कि

को उतने रुपये दे दे और चन्दननगर पर फौरन चढाई कर दे। वाट्स लिखता है—

"अगर नन्दकुमार को यह रकम देना मजूर हो तो आप इस चिट्ठीरसा की मार्फत उसे बस 'गुलाब का फूल' कहला दीजिए। इस सदेसे से ही उसे तसल्ली हो जायगी। अमीचन्द कहता है कि बात अच्छी तो नही, पर लाचारी है। सरकार ही ऐसी है कि कोई भी काम आप या तो डडे के जोर से निकाल सकते है या किसी न किसी की मुट्ठी गरम कर। अमीचन्द का और मेरा अपना भी खयाल है कि नन्दकुमार को यह रकम देना व्यर्थ न होगा। हा, हम अपनी प्रतिज्ञा मतलब सध जाने पर ही पूरी करेगे। अगर आपका विचार कुछ भी देने का न हो तो 'गुलाब के फूल' का नाम ही न लें।

"अमीचन्द ने एक बात और बताई। फरासीसियो के जिम्मे जगत्सेठ की कोठी के तेरह लाख से भी अधिक रुपये निकलते है। मै समझता हूँ कि इस कारण वह इस मामले में हमारी मदद न करेंगे। अमीचन्द का कहना है कि खोजा वजीद और मानिकचन्द ने उसकी गैरहाजिरी में चाल चल कर परिस्थिति को फरासीसियो के कुछ अनुकूल बना दिया है, पर अगरेजो के कूच बोलते ही वह उनकी चाल

"सुप्रसिद्ध सेठ अमीचद के दोनो पुत्र राय रतनचन्द बहादुर और शाह फतहचन्द काशी में आ बसे थे। शाह फतहचद के पौत्र बाबू हरखचन्द ने अपने ही सद्व्यवहार से असख्य सपत्ति कमाई और उसे सत्कार्य में व्यय कर के बडी बड़ाई पाई। इनके पुत्र बाबू गोपालचन्द हुए जो हिन्दी भाषा के बडे अच्छे कवि हो गए है। इन्होने पौराणिक आधार पर ४० काव्य ग्रथ रचे और सस्कृत में भी कुछ कविता की। इनके सुपुत्र बाबू हरिश्चन्द्र हुए। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म तारीख ९ सितम्बर सन् १८५० ई० को हुआ था।" —बाबू श्यामसुन्दर दास कृत "हिन्दी के निर्माता" मे।

का जवाब दे देगा। जो ब्राह्मण यह पत्र ले कर जा रहा है वही आपके और नन्दकुमार के बीच सदेसे भुगताया करेगा।"

अमीचन्द इस मामले में काफी दिलचस्पी लेने और कलकत्ते से मुर्शिदाबाद तक दौड-धूप करने लगे थे। जब कभी वह सिराजुद्दौला से मिलते तब अगरेजो की तारीफ और फरासीसियो की बुराई करते। २१ फरवरी को वाट्स लिखता है—"अमीचन्द ने नवाब से कहा कि मै चालीस बरस से कलकत्ते मे हू और इतने लबे समय में मैने उन्हें कभी प्रतिज्ञा-भग करते न देखा। किसी ब्राह्मण के पाव छू कर उसने शपथ-ग्रहण भी किया और कहा कि इगलैण्ड मे यह कायदा है कि झूठ बोलने वाले पर लोग थूकने लगते है और उसकी किसी बात का फिर विश्वास नही किया जाता। इसका नतीजा यह हुआ कि नवाब पहले तो मीर जाफर को फरासीसियो के सहायतार्थ जाने का हुक्म दे चुका था और खुद भी जाने वाला था, पर अमीचन्द की बात सुन कर उसने वह हुक्म रद्द कर दिया।"

क्लाइव के नाम ४ मार्च को एक पत्र भेजकर सिराजुद्दौला ने इस बात पर सतोष प्रकट किया कि अगरेजो ने उसकी बात मान ली थी और फरासीसियो से झगडने वाले न थे। पर उसी दिन वाट्सन ने सिराजुद्दौला को कलकत्ते से लिखा कि "आप धन-जन से फरासीसियो की सहायता करते आ रहे है। यह आपकी उस प्रतिज्ञा का पालन नही कहा जा सकता कि मै अगरेजो के शत्रुओ को अपने ही शत्रु समझूगा। अब स्पष्टवादिता का समय आ गया है। अगर दस दिन के भीतर आप अपनी प्रत्येक बात पूरी नही करते तो आप के लिए इसका नतीजा बुरा होगा और मै बगाल मे ऐसी आग लगा दूगा जो सारी गगा के पानी से भी न बुझाई जा सकेगी।"

८ मार्च को क्लाइव नन्दकुमार को लिखता है कि नवाव के और मेरे वीच पूरी मित्रता और शान्ति है और उनके इच्छानुसार मै अपनी सेना के साथ* मुर्शिदावाद जा रहा हू।

९ मार्च को क्लाइव चन्दननगर की फ्रेंच कौंसिल को विश्वास दिलाता है कि इस समय आपसे लड़ने-झगडने का मेरा तो कोई इरादा नही।

१३ मार्च को वह चन्दननगर के प्रधान मो० रेनाल्ट को सूचित करता है कि अगर आप वहा का किला हमारे हवाले नही कर देते तो लडाई रुकने की नही।

१४ मार्च को उसने चढाई कर ही दी। २२ मार्च को क्लाइव ने सिराजुद्दौला को लिखा कि अव तक तो हमारी ओर से वदूकें ही चली है, पर कल से तोपे भी चलने वाली है। तोपो की वाढ शुरू होने के दो ही एक घटे वाद फरासीसियो ने आत्मसमर्पण कर दिया और किले पर अगरेजो का कब्जा हो गया।

सक्षेप मे फरासीसियो की पराजय की यही कहानी है। इसकी पृष्ठभूमि मे दोनो ओर से जो पैतरावाजी हो चुकी थी उसका भी कुछ वर्णन मिलता है और यहा दे देने लायक है।

फरासीसी प्रतिनिधि मो० ला लिखता है —

"मै प्रतिदिन दरवार में जाता और प्रतिदिन आश्वासन पाकर

---

* सिराजुद्दौला अहमदशाह अवदाली द्वारा विहार-वगाल पर आक्रमण की आशका से पटने जाने वाला था और क्लाइव की फौज के लिए एक लाख रुपये माहवार देना स्वीकार कर उसे मुर्शिदावाद वुला चुका था। पर १५ मार्च को ही उसने क्लाइव को लिखा कि उसे आश्वासनात्मक पत्र मिल चुका था और उसने पटने जाने का विचार त्याग दिया था।

वहा से लौटता। मेरे सामने नवाब ने ऐसे आदेश दिये जिनसे मुझे विश्वास हुआ कि सरकारी सेना फरासीसियो के सहायतार्थ चन्दननगर जाने ही वाली थी। उसकी ओर से वाट्सन और क्लाइव दोनो को कई पत्र भेजे गये। नवाब ने लिखवाया कि 'सम्राट् की इच्छा है कि इस देश में विदेशी व्यापारी झगडा-फसाद न करें। शान्ति-रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। अगर अगरेजो ने चन्दननगर पर चढाई कर दी तो मै उनका विरोध किये बिना न रहूगा।' उसे कपनी की ओर से नाना प्रकार के उत्तर मिले। किसी में तो यह लिखा था कि आपकी आज्ञा हमारे लिए शिरोधार्य है। किसी से यह भाव प्रकट होता था कि हम अभी कुछ कह नही सकते। किसी की शैली ऐसी थी मानो अगरेज मालिक हो और सिराजुद्दौला नौकर। अगरेज सिराजुद्दौला को अपनी बात की याद दिला कर कहते जाते कि आप हमारे शत्रुओ को अपने शत्रु समझने के लिए वचनबद्ध है, आपको अब अपने उस वचन का पालन करना होगा। सिराजुद्-दौला का यह हाल था कि जहा किसी ने उस प्रतिज्ञा-पत्र या सधि-पत्र का नाम लिया वहा वह आग-बबूला हुआ। साथ ही उसे यह बात भूली न थी कि अगरेज उसे कुश्ती मे पछाड चुके थे। इसलिए जहा क्रुद्ध होता वह मन ही मन भयभीत भी। अगरेजो को उसकी इस कमजोरी का पता था और वे इससे जो लाभ उठा सकते थे उठाने लगे।

"फिर भी, मुर्शिदाबाद से फौज भेजने की तैयारी हो चुकी थी, सैनिको को वेतन मिल चुका था, कूच का डका भर बजने की देर थी। मैंने नवाब के पास जाकर कहा कि अगर आपकी सहायता से चन्दननगर सुरक्षित रहा तो मै एक अच्छी रकम आपकी नजर

करूँगा। और अधिकारियो को भी इनाम-इकराम देने का वादा किया। मैने कहा कि अगर सेना के पहुचने मे तनिक भी विलंब हुआ तो अगरेज चन्दननगर पर घेरा डाले बिना न रहेगे, और अनुरोध किया कि जो सेना के नायक की हैसियत से जाने वाला है उसे इसी दम कूच कर देने का हुक्म मिल जाय। पर इसके उत्तर मे नवाब ने यही कहा कि 'सब कुछ तैयार है, पर मेरी राय है कि उस ओर कदम उठाने से पहले एक बार फिर कोशिश की जाय कि तकरार न बढे। अगरेजो का अभी अभी एक खत मिला है जिसमे उन्होने लिखा है कि हम आपका हुक्म मानने के लिए तैयार है। ऐसी हालत मे मै यह मुनासिब समझता हू कि लडाई न होने देने के लिए अपनी ओर कोई भी दकीका बाकी न रखा जाय।'

"मै फौरन ताड़ गया कि यह सेठो की करतूत थी। वे झूठी बातें कह कह कर नवाब को भटका चुके थे। उन्होनें उससे कहा था कि अगरेज फरासीसियो को डरा-धमकाकर उनसे केवल ऐसा समझौता कर लेना चाहते थे कि यूरोप मे दोनो देशो के बीच लडाई होते हुए भी यहा बगाल में दोनो तटस्थ बने रहे और आपस मे लडाई-झगडा न करे। इसके साथ ही उन्होने यह दलील भी पेश की थी कि 'आप जानते ही है कि अगरेज कितने बलवान् है। फरासीसियो की सहायता करना अपने लिए खतरनाक है। अगर अगरेज चन्दननगर ले लेने का निश्चय कर चुके है तो आप तो सेना भेज कर भी उन्हे रोक नही सकते और बहुत सभव है कि अगरेजो को आप पर भी चढाई कर देने का एक बहाना मिल जाय।' सेठो ने नवाब को भटकाने का काम इस खूबी से किया था कि जो बात मै सुबह को बना आया था उस पर शाम होते होते वे हरताल लगा चुके थे।

"मै सेठो से जा मिला। मिलते ही उन्होने अपने रुपये की बात शुरू कर दी। बोले कि इधर आपके जिम्मे पावना बढ चला है और आपकी ओर से सूद भी नियत समय पर नही मिल रहा है। मैने कहा कि मै आज उसके बारे मे बातचीत करने नही आया हू, मै और ही विषय में कुछ कहने आया हू। यह विषय जितना ही हम लोगों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है उतना ही आप लोगो की दृष्टि से भी, कारण कि उस कर्ज का चुकना भी उसी पर निर्भर है। मैने पूछा कि आप हमारे विरुद्ध अगरेजो के सहायक क्यो हो रहे है? जगत्सेठ ने कहा कि बात गलत है, आप नवाब को कुछ कहलाना चाहे तो मैं कहने को तैयार हू। अपनी सफाई देकर बोले कि मेरा तो विश्वास है कि अगरेज चढाई न करेगे, आप निश्चिन्त रहे। मैने कहा कि हम दोनो को अच्छी तरह मालूम है कि अगरेजो का इरादा क्या है। चन्दननगर की रक्षा का एक ही उपाय है और वह यह कि नवाव प्रतिज्ञानुसार अपनी पलटन वहा जाने दे। जब आप हमारी मदद करने को तैयार है तो नवाव से कह कर उस पलटन को फौरन रवाना करा दें।' उन्होने उत्तर दिया कि नवाब अगरेजो से उलझना नही चाहते। फिर कुछ और बाते कही जिनसे यह स्पष्ट हो गया कि सहानुभूति रखते हुए भी वे हम लोगो के हक में कुछ भी करने वाले न थे।

"रजीतराय—जो उनका विशिष्ट कर्मचारी और अगरेजो का वकील था—पास ही बैठा था। उसने मुझसे व्यग्यपूर्वक कहा कि 'आप तो फरासीसी है, फिर आप अगरेजो से क्यो डरते है? अगर अगरेज चढाई कर बैठें तो आप इसका जवाब दीजिए और अपने आपको बचाइए। दक्षिण की ओर आपके देशवासी जो वीरता दिखा

चुके हैं उसे कौन नही जानता ? अपनी वही वीरता यहा भी दिखाइए।' मैंने कहा कि, 'किसी वगाली से तो मुझे आशा न थी कि वह लडाई के मैदान मे वीरता देखने को इतना उत्सुक होगा। पर कभी कभी ऐसी उत्सुकता रखने वाले को पछताना ही हाथ लगता है।' वैसे शख्स के लिए यही काफी था, पर मैंने देखा कि उस मंजलिस मे कोई भी मुझे दाद देने वाला न था। फिर भी सेठो ने वातचीत में सौजन्य ही दिखाया। अन्त मे उनसे छुट्टी माग कर मैं चला गया।

"सेठो की वातचीत में कृत्रिमता न थी। कम से कम उस समय तक स्थिति ऐसी ही थी। वे चाहते थे क्राति। और क्राति फरासीसियो को नष्ट किये या उन्हे पगु वनाये विना सफल नही हो सकती थी। दूसरी ओर यह वात भी थी कि हम उनके वहुत वडे देनदार थे। अगरेजो की चन्दननगर पर चढाई से उनका चिंतित होना स्वाभाविक ही था। मेरा तो खयाल है कि शुरू मे जगत्सेठ इतना ही चाहते थे कि हमे डरा-धमका कर अगरेजो के और हमारे वीच वह सधि या समझौता करा दे जिसका अगरेजो की ओर से प्रस्ताव किया जा चुका था। इस अनुमान की पुष्टि करनेवाली एक वात मुझे याद आती है। सिराजुद्दौला की उग्र प्रकृति की चर्चा चली। उन्होने कहा कि उस उग्रता का जैसा कटु अनुभव हमे है वैसा ही आपकी कपनी को भी हो चुका है। मैंने कहा कि मै आपका मतलव समझ गया—आप किसी और को ही यहा की मसनद पर वैठाना चाहते है। उन्होने मेरी वात का खडन न कर वहुत ही धीमे स्वर मे कहा कि यह वात खुले आम कहने की नही। अमीचन्द भी मौजूद था, वही अमीचन्द जो अगरेजो का पिट्ठू होते हुए भी जहां जाता वहा यही कहता कि 'कम्वख्त चले जाते तो अच्छा होता'। अगर मेरा

कहना गलत होता तो सेठ-बन्धु उसका खंडन किये बिना न रहते। बल्कि मुझे भला-बुरा भी कहते। अगर वे मुझे अपना विरोधी समझते तो भी वही बात होती। पर सेठो की दृष्टि मे हमारी स्थिति भिन्न थी। नवाब हमे भी तग कर चुका था; हम भी उसकी मदद करने से बारबार इनकार कर चुके थे—इसलिए सेठो की धारणा थी कि अगर अंगरेजो ने लडाई नही की तो फरासीसी क्राति के ही पक्षपाती निकलेंगे। उस समय तक सेठ हमे अपने शत्रु नही समझते थे। हो सकता है कि उनका यह सच्चा विश्वास रहा हो कि अगरेज हम पर आक्रमण न करेंगे। पर जब अगरेजो की ओर से लडाई शुरू हो गई तब वे करते ही क्या? जगत्सेठ के लिए उनका विरोध करने का अर्थ आत्मघात करना होता। अगरेजो के लिए उन्हें इतना समझा देना कुछ कठिन काम न था कि हमारे चदननगर ले लेने में आपकी भी भलाई है, क्योकि उसके बाद ही हम सिराजुद्दौला पर प्रहार कर सकेंगे। सभव है अगरेजो ने यह भी कहा हो कि नये नवाब के मसनद पर बैठ जाने के बाद फरासीसियो को व्यापार करने की स्वतत्रता फिर दे दी जायगी। आवश्यकता पडने पर अगरेज हमारे कर्ज की जिम्मेवारी भी अपने ऊपर ले ही सकते थे।"

मो० ला की जीवन-स्मृति में यह उल्लिखित होने पर भी, आज़ यह जानना कठिन क्या असभव है कि उस दिन महिमापुर मे सेठो से सचमुच उसकी क्या बाते हुई थी। न जगत्सेठ का ही कोई बयान मिलता है न और किसी उपस्थित व्यक्ति का ही। हो सकता है कि ला ने कुछ बाते घटा-बढा कर लिखी हो। मि० लिट्ल का कहना है कि सिराजुद्दौला पर प्रहार करने-कराने के सम्बन्ध मे जो कुछ निश्चित हुआ वह चदननगर पर अगरेजो का अधिकार हो जाने के

वाद। पर उनका कयास है कि मो० ला की मुलाकात से पहले ही जगत्सेठ कर्ज की रकम को वट्टाखाते में डाल चुके थे। अर्थात् उन्हे मालूम था कि अगरेज चदननगर ले लेने वाले थे और इसके फलस्वरूप उनकी रकम डूब जाने वाली थी। "मो० ला से वास्तविक स्थिति छिपा कर वह उसके साथ वैसा ही कपट-व्यवहार कर रहे थे जैसा कि आवश्यकतानुसार वह स्वयं नवाव* के और अगरेजो के—और अगरेज दूसरो के साथ कर रहे थे या करने वाले थे।" वात चाहे जो रही हो, जगत्सेठ ऐसे मूर्ख न थे कि एक ओर अगरेजो की मदद करते और दूसरी ओर अपने ही तेरह लाख रुपये से वाज आते। ऐसा होता तो वह व्यवसायी न कहे जाते। वास्तव में उन्होने फरासीसियो के कासिमवाजार से प्रस्थान करने से पहले उनका माल वधक रखा लिया। पीछे उस माल के लिए जव गोदामो की जरूरत पड़ी तव उन्होने कासिमवाजार के डच प्रधान वर्नेट को कहलाया, पर इसने गोदाम नही दिये। हुगली से डच कपनी के डाइरेक्टर ने ९ अप्रैल को उसे लिखा कि "फतहचन्द के उत्तराधिकारी फरासीसियो से जो माल गिरवी करा चुके है उसके लिए तुमसे गोदाम माग रहे है और तुमने देने से इन्कार कर दिया है, यह वात मालूम हुई। तुमने ठीक काम किया, वर्ना अगरेज यह कह सकते थे कि हम लोगो ने फरासीसियो का माल अपने गोदामो मे छिपा दिया था। हर्गिज जगत्सेठ को गोदाम न देना। उनके अनुरोध की रक्षा न कर सकने

* कम्पनी और सिराजुद्दौला के वीच सधि हो जाने पर, रजीत राय नवाव की ओर से कुछ उपहार के साथ कलकत्ते भेजा गया था। वहा क्लाइव ने उससे कहा कि नवाव से हमें चन्दननगर पर चढाई करने की इजाजत दिला दीजिए। पर रजीतराय ने हाँ नही किया। इससे तो यही जान पडता है कि जगत्सेठ क्लाइव के प्रस्ताव के विरोधी नही तो समर्थक भी नही थे।

का कारण यह बता देना कि गोदाम खाली ही नही या और कोई बहाना कर देना।" हम आगे देखेगे कि उस माल से ही जगत्सेठ का रुपया न पटा और बाकी रुपये की जिम्मेवारी अगरेजो को ही अपने ऊपर लेनी पडी।

महतावराय और स्वरूपचद से मिलने के दूसरे ही दिन सुबह ला सिराजुद्दौला से मिला और उसे यह बताना चाहा कि क्या क्या चालें चली जा रही थी और उन चालो का वास्तविक उद्देश क्या था। पर सिराजुद्दौला ने उसकी बात हस कर ही उडा दी। फिर शाम को वह दरबार मे गया और नवाब से मिला। वाट्स भी वही था। नवाब के सामने दोनो के बीच सुलह की बातचीत होने लगी। उसके पास वाट्सन का पत्र पहुच चुका था और वह उसका उत्तर भेजना चाहता था। मो० ला के मुह से निकल गया कि आप चाहे जो लिखे, वाट्सन उस पर कुछ भी ध्यान न देगा। सिराजुद्दौला तमतमा गया। बोला कि तो मै तुम लोगो की निगाह मे कुछ भी नही! उसी दम अपने मुशी को बुलवाया और कहा कि जवाब लिखो। इस मुशी को वाट्स चटाता आ रहा था। फौरन मसौदा बना कर ले आया और नवाब ने उसे मजूर कर खत भिजवा दिया। उसके अखीर में लिखा था कि, "आप समझदार है, और उदार भी। अगर आपका शत्रु शुद्ध हृदय से प्राण-भिक्षा माँगता है तो आपको उसकी जान नही लेनी चाहिए। पर वह भिक्षा उसे तभी मिल सकती है जब वह निश्छल हो। अगर वह आपको इसका विश्वास नही दिला सकता तब आप जो कुछ उचित समझे कर सकते है"। इन अन्तिम शब्दो का अर्थ कलकत्ते मे यह लगाया गया कि नवाब ने आक्रमण करने की अनुमति दे दी थी। १४ मार्च को क्लाइव ने

चन्दननगर पर घेरा डाला और २३ मार्च को शहर पर कब्जा कर लिया।

अब कासिमबाजार की बारी आई। वहां थोडे से फरासीसी फरासडागा में रहते थे। मो० ला ही उनका मुखिया था। वाट्सन और क्लाइव इस बात पर जोर देने लगे कि या तो फरासीसी उनके हवाले कर दिये जायँ या अगरेजो को उन्हें कैद कर लेने दिया जाय। सिराजुद्दौला को फिर दबना पडा। ला ने उसकी नौकरी* कर ली थी। उसने नवाब से कहा कि आप मुझे यहा से न हटावें, जब तक मैं यहा हू कोई आपका कुछ कर नही सकता, पर मेरे हटते ही आपके दुश्मन आप पर टूट पडेंगे। सिराजुद्दौला भी मन-ही-मन समझता था कि उसकी बातो मे बहुत कुछ सचाई थी, पर वह लाचार था। अगरेज तो धमका ही रहे थे, जगत्सेठ और दूसरे सलाहकारो ने भी कहा होगा कि ला को रहने देने में खतरा है। अन्त मे उसने ला से मुर्शिदाबाद छोड देने को कहा। ला ने न तो चन्दननगर जाना स्वीकार किया, न चिचुरा (चिसुरा), न कलकत्ते, यद्यपि वाट्स का आग्रह था कि उसे अन्यत्र जाने न दिया जाय। सिराजुद्दौला ने उसे पटने जाकर रहने को कहा और जब वह १६ अप्रैल को चलने लगा तब उसे यह आश्वासन दिया कि परिस्थिति बदलते ही मै तुम्हे बुलवा लूगा। ला ने कहा कि "मुझे बुलवाने की बात तो मन से निकाल ही दीजिए। यही हम दोनो की आखिरी मुलाकात है। मेरे ये शब्द

---

* "मुताखरीन"। १८ अप्रैल को वाट्स क्लाइव को लिखता है कि 'मैं कह नही सकता कि ला और इसके मायी नवाब से कुछ वेतन पाते है या नहीं। जगत्सेठ और मानिकचन्द कहते है कि नही पाते। पर मुझे खबर मिली है कि पाते है।'

याद रखिएगा कि हमारा फिर मिलना असभव* है।" ला ने लिखा है, "अगरेजो के वारबार धमकाने और जगत्सेठ के समझाने-बुझाने का फल यह हुआ कि मुझे मुर्शिदाबाद छोडना पडा। मेरे आश्चर्य की तब सीमा न रही जब नवाब ने मुझे बुलवा कर अपने वादो के खिलाफ यह कहा कि अगर तुम्हे आत्मसमर्पण कर देना स्वीकार नही तो फौरन बगाल छोड दो।"

वाट्स अपने १६ अप्रैल के खत मे क्लाइव को लिखता है कि, "आज फरासीसी शहर होते हुए चले गये। उनके दल में १०० फिरगी, ९० तिलगे, ९० छकडे और ४ हाथी थे। मैंने उसके साथ दो जासूस लगा दिये है कि जितने सिपाहियो को फोड सकते हो फोड कर ले आवें।"

वाट्स को ऐसे काम खूब ही आते थे। उसकी कूटनीति-निपुणता का एक उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है। कुछ और उदाहरण देने लायक है। अमीचन्द और नन्दकुमार दोनो से ही उसकी बडी घनिष्ठता हो चली थी और वह दोनो का ही यथेष्ट उपयोग करने लगा था। २६ मार्च को वह लिखता है कि, "अमीचन्द जी-जान से कपनी की खिदमत करता रहा है। हम लोगो से पुरस्कार पाने योग्य ऐसा व्यक्ति दूसरा नही। बराबर मेरे साथ रहता है और उसकी सूझ-बूझ का मै ऐसा कायल हूँ कि हर काम में उसकी सलाह लेता हू।" नन्दकुमार को भी पुरस्कार-योग्य बताता हुआ वह ५ अप्रैल को क्लाइव से सिफारिश करता है कि, "अगर नन्दकुमार आपसे फिर मिले और आप मुनासिब समझें तो उससे इतना कह दें कि 'गुलाब का फूल' ताजा बना हुआ है। पर अमीचन्द की और मेरी अपनी भी

* "मुताखरीन।"

राय यह है कि अभी उसे गुलाव सूघने न दें। केवल यह आशा दिला दे कि अमीचन्द के साथ उसका जो समझौता हुआ था अगर वह उसके अनुसार काम करता रहा तो हम यथासमय अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर देगे।" अपने उसी पत्र मे वह क्लाइव को सलाह देता है कि आप जगत्सेठ के गुमाश्ते को कलकत्ते और उनके दूसरे गुमाश्ते वैजनाथ को हुगली बुलवा ले और जो शिकायत करनी है कर दें। उसका विश्वास है कि जगत्सेठ का ध्यान उन बातो की ओर आकर्षित होते ही वह सब कुछ ठीक करा देगे। वाट्स को खबर मिल चुकी थी कि जिस समय सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर घेरा डाला था उस समय वैजनाथ ने कपनी का कुछ माल आधे दाम पर खरीद लिया था। वह उससे बाकी आधा दाम वसूल कराना चाहता था।

क्लाइव और दूसरे अधिकारियो को वाट्स बराबर सिराजुद्दौला के विरुद्ध उभाडता रहता था। १४ अप्रैल को वह वाल्श को लिखता है कि, "चन्दननगर पर हम लोगो का अधिकार हो जाने से पहले रंजीतराय और दूसरो के सामने नवाव ने मुझे यह धमकी दी थी कि तुम्हारा सिर कटवा दूगा। कल भी वही बात हुई। जगत्सेठ, मानिकचन्द, खोजा वजीद, मीर अब्दुल कासिम, रजीतराय और अमीचन्द के सामने उसने फिर वही धमकी दी। मै इस बात का ढिढोरा पीटना नही चाहता। जो कुछ लिख रहा हूँ सिर्फ आपकी और कर्नल क्लाइव की जानकारी के लिए। नवाव की धमकी की मुझे जरा भी परवा नही। मेरी रक्षा के लिए आप जो भी कार्रवाई करना मुनासिब समझें जोरो से करे।"

वाट्स के सहायक के रूप मे एक अगरेज ढाके से कासिमबाजार भेजा गया जिसका नाम ल्यूक स्क्राफ्टन था। वह भी प्रपंची था,

साथ ही वाट्स से कही अधिक धृष्ट था। वाट्स से उसकी वनती भी कम थी।

सिराजुद्दौला अपनी प्रत्येक प्रतिज्ञा पूरी कर चुका था—प्रतिज्ञा-पत्र में जो सीमा निर्धारित थी उससे भी कही आगे जा चुका था। उदाहरणार्थ, १७ मार्च को वाट्स कलकत्ते की सेलेक्ट कमिटी को लिखता* है कि "नवाव ने जगत्सेठको आज्ञा दी है कि हर्जाने की मद मे मुझे बीस हजार मोहरें† दे दें। जगत्सेठ खजाने से रुपये मिलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, मिलते ही मुझे दे देंगे। जो रुपया वाकी रहेगा वह कल मिल जायगा। नवाब ने मुत्सद्दियो को भी आज्ञा दी है कि कासिमबाजार फैक्टरी का जो माल जब्त है वह मुझे लौटा दे। सधि-पत्र के अनुसार जहा-तहा परवाने भेज देने की आज्ञा भी मुशियो को मिल चुकी है। नवाब ने यह भी कहा है कि फर्रुखसियर के फरमान के अनुसार हम लोगो को जो ३८ गाव मिलने वाले थे उन्हे

---

* अपने इसी पत्र में वाट्स लिखता है—

"रजोतराय ने गवर्नर, कर्नल क्लाइव और मुझसे कहा था कि वकील की हैसियत से उसने कपनी को जो तीन लाख रुपये दिलाये हैं उस पर उसे दस फी सदी कमीशन मिलना चाहिए, क्योकि यहा दस्तूर है कि, "ये लोग" नवाव को जो कुछ देते-दिलाते हैं उसपर इन्हें यही कमीशन मिलता है। अगर मै भूलता न तो रजोतराय को इतना देना आपने मजूर कर लिया था। मेरी भूल हो तो आप मुझे सूचित करें। हर हालत में उसे दस फी सदी कमीशन तो दे ही देना चाहिए। आदमी समझदार है। साथ ही प्रभावशाली है। नवाव की उस पर बडी कृपा रहती है। उससे हम लोगो का वहुत कुछ काम निकल सकता है। उसकी सहायता से वहुत सी विघ्न-बाधाए दूर हो जायगी— नवाव के मत्री हमारे मार्ग में रोडे न अटकायगे।"

† उस समय एक मोहर की कीमत १५ या १६ रुपये थी।

भी आप लोग जमीदारो से खरीद ले। अगर जमींदारो को डर हो कि इस मे नवाव को किसी प्रकार की आपत्ति होगी तो आप मुझे लिखे, मै यहा से परवाना भिजवा दूगा। नवाव ने यह भी कहा कि आप जव चाहें टकसाल खोल सकते और सिक्को की ढलाई करा सकते है।"

सिराजुद्दौला फरासीसियो को हटाने के लिए प्रतिज्ञावद्ध न था। उसके राज्य में जैसे अगरेज, डच या डेन रह सकते और व्यापार कर सकते थे वैसे ही फरासीसी भी। फिर भी उसने अग्रेजो से डर कर और जगत्सेठ जैसे मुसाहवों की वात मानकर फरासीसियो को सेवक तक रहने नही दिया था। जव मो० ला मुर्शिदावाद से चला गया तव उनकी ओर से कहा जाने लगा कि आखिर तो वह विहार में ही कही है और नवाव से तनखाह भी पा रहा है।

एक ओर यह सव हो रहा था, दूसरी ओर षड्यत्र की खिचडी पक रही थी। पकानेवालो में प्रमुख थे जगत्सेठ, मीर जाफर, राजा दुर्लभराम, अमीचन्द, वाट्स, और क्लाइव*। इनमे जगत्सेठ का नाम सवसे पहले लेने लायक था। मो० ला लिख गया है कि मै जोर देकर कह सकता हूँ कि "जो क्रांति हुई उसे कराने वाले जगत्-सेठ ही थे। अगर वह सहायक न होते तो अग्रेजों को जो सफलता प्राप्त हुई है वह न हो पाती।" ला के कथनानुसार जगत्सेठ दुरगी चाल चलने लगे थे। नवाव से कुछ कहते, अग्रेजो को कुछ और कहलाते। नवाव से अग्रेजो की वुराई करते और कहते कि उनकी वात हर्गिज नही माननी चाहिए। अगरेजो को कहलाते कि

---

* वाट्सन क्लाइव की तरह फरेवी या फितूरी न था। उसे षड्यत्र का फल मालूम भी हुआ तो कुछ समय वाद। स्क्राफ्टन को वाट्स पेट की वात तो न वताता था, पर सुन-गुन मे ही वह वहुत कुछ जान लेता था।

नवाब की नीयत खराब है, उसे मौका मिका कि उसने आप लोगो पर वार किया। ला ने लिखा है कि, "एक वार ऐसा हुआ कि जगत्सेठ ने कोई कागज दिखा कर नवाब से कहा कि अगरेजो की फला फला वात तो आप स्वीकार कर चुके है। नवाब बोला कि हर्गिज नही, आपने जो कुछ लिखा है गलत है। उस कागज पर जगत्सेठ की मोहर थी। जब उन्होने नवाब का रग-ढग खराब देखा तब मुकर कर यह कह दिया कि कागज पर मोहर रजीतराय ने लगा दी। नतीजा यह हुआ कि रजीतराय दरबार से ही नही, मुर्शिदावाद से भी निकाल दिया गया और रास्ते ही में मार डाला गया। उस समय लोग कहते थे कि अगरेजो से दो लाख रुपये लेकर उसने उस कागज पर जगत्सेठ की मोहर लगा दी थी। मुझे यह विश्वास नही होता। रजीतराय अगरेजो की सहायता करता था तो इसीलिए कि उसके मालिक अगरेजो के तरफदार थे।"

ला की कहानी में रजीतराय के मारे जाने की वात कपोल-कल्पित ही थी, कारण कि वह पलासी के युद्ध के बाद भी जीवित था। इतना अवश्य था कि महिमापुर में और दरबार मे महताबराय का रूप या नीति एक न होने के कारण उन्हे बराबर असलियत और बनावट के बीच की अवघट घाटी से गुजरना पडता था। अगर सिराजुद्दौला बारूद के ढेर पर बैठा न होना तो वैसे वैभवशाली व्यक्ति को कभी यह काम करने का साहस न होता।

मो० ला के कूच करने से पहले ही अगरेजो की सहायता से उस ढेर मे आग लगा देने की बात चली, पर वाट्स सहमत न हो सका। अपने ११ अप्रैल के पत्र में उसने क्लाइव को लिखा —

"एक विषय ऐसा है जिस पर अमीचन्द से मेरी कई वार वातें हो चुकी है, पर समझ मे ही नही आता था कि आपको कुछ लिखू तो कैसे। स्क्रापटन से सारी वात वताई तो उसने यही कहा कि अमीचन्द और तुम मिल कर कपनी के लिए जो कुछ कर रहे हो वह कर्नल को और मेजर को पसन्द ही पडेगा।

"मुझे इस वात का आभास मिला है कि कमिटी से यह प्रस्ताव किया जावेगा कि वह अपनी फौज इधर भेज दे। मुझे आशा है कि कंपनी ऐसा कोई प्रस्ताव स्वीकार न करेगी। फौज भेजने का अर्थ होगा सधि-भग करना। नवाव ने अभी तक कोई काम ऐसा नही किया है जो सधि के प्रतिकूल कहा जा सके। आलोचना हो सकती है तो यही कि उसकी रफ्तार उतनी तेज नही जितनी हम चाहते है। पर अगर हमारी ओर से वैसी कार्रवाई हुई तो मुल्क में वडी गड़वडी मच जायगी। और हम एक साल तक कुछ भी माल न खरीद सकेंगे, जिसका नतीजा कपनी के लिए वहुत ही वुरा होगा। जव तक नवाव निर्विवाद रूप से सधि-भग नही करता तव तक हमें इस प्रान्त में समराग्नि प्रज्ज्वलित नही करनी चाहिए। पर उसे प्रज्ज्वलित करने मे ही अपनी भलाई हो तो मेरी राय यह होगी कि पहले मुफस्सल से अपना माल-असवाव हटा लिया जाय।"

१६ अप्रैल तक वाट्स हाथ धोकर फरासीसियो के पीछे पडा रहा। जव उन्हें भगाने मे सफलता प्राप्त हो चुकी तव उसने और ही काम की ओर ध्यान देना आरम्भ किया। परिस्थिति के साथ उसका अपना विचार भी वदल चला और कपनी की ओर से वह भी षड्यत्र मे भाग लेने लगा। १८ अप्रैल को स्क्रापटन कासिमवाजार मे लिखता है कि :—

"दो-तीन दिन से अमीचन्द बहुत बीमार है। मैं कल रात मिजाज पूछने गया था । प्राय एक घटा उसके पास बैठा रहा। उसके कहने के अनुसार वर्तमान परिस्थिति यह है।

"नवाब का खयाल है कि उसने हमारी जो क्षति की है उसे हम कभी भूल नही सकते। वह हमे विश्वास के योग्य नही समभता। जब तक उसे डर है तब तक कहने के लिए हमारा दोस्त बना हुआ है। इस आशका से कि हमारे जहाज ढाका होकर उधर पहुँच जायेंगे, वह मूर्च्छी नदी का मुह बधवाने जा रहा है। फरासीसियो से उसका मेल है और उसकी फौज तैयार बैठी है। जगत्‌सेठ, रजीतराय और कई दूसरे व्यक्ति वाट्स से कह चुके है कि, 'जब जब वह दरबार से चलने लगा है, तब तब नवाब ने उसकी ओर नजर कर कहा है कि तेरा सिर तो मुझे कटवाना ही है।' ज्योंही फरासीसी अपनी सेना तैयार कर लेगे त्योही नवाब उनकी ओर हो चलेगा। इस समय अफगानो के आक्रमण की आशका है। बनारस से लोग भाग भाग कर पटने आ रहे है और पटने के लोग यहा भाग आने के लिए नावो का प्रबन्ध करा रहे है । जब तक अफगानो के आने का डर बना है तभी तक नवाब का यह रुख है। अगर अफगान आ गये तो वह हम पर और भी निर्भर करने लगेगा और अपना माल-खजाना भी हमें सौप देगा। पर अगर अफगान न आये तो वह रग बदले बिना न रहेगा।

"अमीचन्द की सलाह है कि उस हालत मे हमें इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि जहा नवाब किसी शर्त के जरा भी ख़िलाफ कुछ करे वहा हम उससे लड़ाई-भगडा कर और ही किसी को मसनद पर बैठा दें। इसके लिए यार लुत्फ खा विशेष उपयुक्त

होगा। एतवार करने लायक है और जगत्सेठ भी उसकी पीठ पर है। दो हजार अच्छे सवारो के साथ वह हमारी ओर हो जायगा। मानिकचन्द भी सहायक होगा। वास्तव मे यहा के सभी प्रभावशाली व्यक्ति सिराजुद्दौला के विरुद्ध हो रहे है और उसकी हस्ती मिटने की राह देख रहे है। अमीचन्द की एक योजना है जिससे मानिकचन्द और नन्दकुमार के जरिए, हमें उन ३८ गावों के बदले और बहुत-कुछ जमीन हाथ लग सकती है। एक पखवारे में ही यह मालूम हो जायगा कि अफगानो का रग-ढग क्या है। अमीचन्द के व्यवहार की जितनी प्रशसा की जाय थोड़ी है। काम में इतना चुस्त आदमी तो मैंने देखा ही नही। वाट्स भोला-भाला है। नन्दकुमार जहा है वहा बना रहेगा।"*

जान पडता है कि आरभ मे मीर जाफर ने किसी कारणवश स्वय नवाब बनने की अनिच्छा प्रकट की थी, इसलिए जगत्सेठ ने खुदायार (खुदा दाद ?) लुत्फ† खा नामक सरदार को मसनद पर बिठाना निश्चित किया था। वह और उसके सवार जगत्सेठ के रक्षक थे और उनसे वेतन पाया करते थे। कहने की आवश्यकता नही कि वह विद्रोह करने के लिए कमर कस चुका था।

२० अप्रैल को स्काफ्टन लिखता है :—

"अभी समय नही हुआ है, इसलिए सिराजुद्दौला को प्रसन्न रखना ही अच्छा है। अमीचन्द जगत्सेठ के पास गया हुआ है। मैं जानता हूँ कि जगत्सेठ ने उसे किस मतलब से बुलवाया है। वह उसे

---

* स्काफ्टन वाल्श को अपने पत्र सकेत-भाषा मे लिख कर भेजा करता था। वाल्श उसका अगरेजी में रूपान्तर कर क्लाइव को दे दिया करता था। स्काफ्टन के लिए सकेत था "२०"।

† अगरेज इसे "लती" कहते थे।

"लत्ती" को नवाब बनाने की बात बताना चाहते है। कपनी के हित के उद्देश से मै यह कहना चाहता हूँ कि अगर आप मुझे अधिकार दें तो मै दस दिन में ही यह निश्चित करा दूँ कि आपके कलकत्ते से रवाना होने के दो ही दिन बाद यहा से बहुत बडी फौज आपके पास पहुँच जायगी। आप अपनी शर्तें लिख भेजिए, मै जी-जान से कोशिश कर उन्हें मजूर करा लूगा। मै आज ही रात "लत्ती" से मिलने वाला था, पर उसने मनाही करा दी है।"

इससे पहले यह हो चुका था कि अगरेजो का वकील कोई अर्जदाश्त ले कर सिराजुद्दौला के पास गया तो उसने उसको दरबार से निकलवा दिया और कहा कि आये दिन अगरेज फरासीसियो के बारे में कुछ न कुछ लिखते ही रहते है, मै उनका कोई आवेदन-पत्र पढना नही चाहता। फिर भी उसने क्लाइव को लिखवा दिया कि अगर फरासीसी फौज ले कर चढ आये तो मै अगरेजो की मदद जरूर करूँगा। इसलिए स्क्राफ्टन क्लाइव को सलाह देता है कि 'नवाब को धन्यवाद भेज दीजिए और धीरज धरिये। कुछ ही दिनो में काम का अजाम हो जायगा।'

दूसरे ही दिन स्क्राफ्टन ने क्लाइव को लिखा कि सिराजुद्दौला अपनी फौज बढाता जा रहा था और दो रोज पहले मीर जाफर को अगरेजो पर धावा बोलने का हुक्म भी दे चुका था। फिर जब उसको इसमे खतरा नजर आया तो उस हुक्म को रद्द कर दिया और अगरेजो के वकील को बुलवा कर उसे पान-सुपारी भी दी। स्क्राफ्टन ने यह सूचना भी दी कि पलासी मे जो अमराई थी वह सिराजुद्दौला की आज्ञा से काटी जा रही थी और अगरेजो के जहाजो को भागीरथी में न आने देने के लिए उसके उद्गम के पास नदी वालू से भरी जा रही

थी। फिर भी स्क्राफ्टन का विश्वास था कि इन सब बातो का अन्त 'हमारे हक में अच्छा ही होने वाला है।'

२३ अप्रैल को वाट्स ने क्लाइव को लिखा कि अफगान बगाल की ओर बढते आ रहे थे और विहार में मई का राजा* बगावत का झंडा उठा चुका था। अमीचन्द को पक्की खबर मिल चुकी थी कि बागियो के और नवाव की फौज के बीच पटने के पास लडाई होने ही वाली थी।

"अमीचन्द मेरी सलाह से मीर खुदायार लुत्फ खा के पास गया था। "लत्ती" ने कहा कि अगर नवाव के और कंपनी के बीच लडाई हुई तो मै कपनी का साथ दूगा, बशर्ते कि वह मुझे नवाब बनने दे। उसने स्वीकार किया कि उस हालत में वह हमे कलकत्ते के पास बहुत कुछ जमीन दे देगा और सैनिक व्यय के लिए बहुत कुछ धन भी।"

अमीचन्द का प्रस्ताव था कि क्लाइव सिराजुद्दौला को ऐसा पत्र लिख दे जिससे वह निश्चिन्त हो जाय और लडाई पर विहार चला जाय। उनका और खुदायार खां का यह भी कहना था कि फरासीसी उससे वेतन पा ही रहे थे, और विहार छोड़ कर जाने वाले न थे। अपने पत्र के अत में वाट्स ने लिखा था कि, 'इस समय फरासीसियो के दल में मेरे पाच जासूस है। एक और विश्वासी आदमी को भेजने जा रहा हूँ जो पटने तक उनके साथ रहे और वे क्या करते-धरते है इसकी खबर, मुझे रोज देता रहे।'

२४ अप्रैल को स्क्राफ्टन ने सकेत-भाषा का प्रयोग न कर सीधे क्लाइव को अगरेजी में लिखा कि, "अमीचन्द के मस्तिष्क में कोई

* नरहत समाई का जमींदार कामगार खा मई।

बड़ी योजना है । कल उसने मुझसे कहा कि मै अभी भेद न खोलूगा, कारण कि मै शपथ-बद्ध हूँ । मेरा अनुमान है कि अमीचन्द की योजना जगत्सेठ के "लत्ती" को नवाब बनाने के विचार से सबध रखती है । सभवत योजना यह है कि कासिमबाजार में एक सौ सिपाही तैयार रहें और हुक्म होते ही "लत्ती" की ओर से नवाब पर टूट पडें । उधर आप उसी समय अपनी फौज के साथ कूच कर दे । ज्यो ही आप बागी फौज के पास पहुँचेंगे त्यो ही बहुत से जमीदार आपके साथ हो जायेंगे ।"

स्क्राफ्टन ने अपने अनुमान से क्लाइव को अवगत कर यह अनुरोध किया कि आप अमीचन्द को लिख दें कि वह मुझे सारी बात बता दे और ऐसा प्रबध करे कि आपका खत कासिदो की मार्फत यहा 'पाच पहर' में ही पहुँच जाय ।

अगर वाट्स स्क्राफ्टन की तरह उतावलापन न दिखा रहा था तो इसका यह अर्थ नही कि वह चुपचाप बैठा हुआ था । दरबार में कपनी का प्रतिनिधि* वह था न कि स्क्राफ्टन और उस हैसियत से उसकी जिम्मेवारी कही बडी थी । स्क्राफ्टन की दौड थी तो अमीचन्द तक, पर वाट्स का सीधा सम्पर्क जगत्सेठ और मीर जाफर जैसे और भी प्रभावशाली व्यक्तियो से था । उसके सामने सब से महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि बिना किसी कारण के ही कपनी सिराजुद्दौला पर प्रहार करे तो कैसे ? पर वह भी जानता था कि कपनी प्रहार करने के लिए कटिवद्ध थी, इसलिए नैतिक आधार का होना न होना बराबर था । सामने जो परिस्थिति थी उसके सम्बन्ध मे, जगत्सेठ,

* मि० लिट्ल ।

मीर जाफर आदि से विचार-विनिमय पर वह जिस नतीजे पर पहुँचा उसे क्लाइव को जताता हुआ वह २६ अप्रैल को लिखता है :—

"खबर है कि पठान उत्तर चले गये और अब नवाब मुर्शिदाबाद से कही जाने का विचार नही करता। मैंने जिस पत्र के विषय में आपको लिखा था वह अब अनावश्यक जान पडता है। दरबार की स्थिति को ध्यान मे रखते हुए आप आगे नवाब को जो खत भेजे वह मेरी ही मार्फत भेजें। और किसी के हाथ में खत पडने से बात बिगड सकती है।

"जैसा कि आपने लिखा है—नवाब का व्यवहार ऐसा है कि उसके प्रति हमें क्या करना चाहिए यह निश्चित करना कठिन हो रहा है। जगत्सेठ, रजीतराय, अमीचन्द और दूसरे व्यक्तियो का भी कहना है कि वह सधिपत्र पर कायम नही रह सकता। जहां उसे और कामो से फुरसत मिली—या आपके या अपने जहाजो के चले जाने के बाद हम लोग कमजोर पडे—या फरासीसी उसके फिर मददगार हो गये वहा उसने हम लोगो पर वार किया। पर साथ ही यह स्वीकार करना पडेगा कि उसने अभी तक सधि-भग नही किया है। सधि के अनुसार हमें जो कुछ मिलना है, उसे परवाने जारी कर देता जा रहा है। हम लोगो ने चन्दननगर पर जो आक्रमण किया उससे तो उस सधिपत्र का कोई सरोकार ही नही। फरासीसियों को हमारे हवाले कर देने के लिए नवाब बाध्य भी नही। उसने आपको यह जरूर लिखा था कि हम लोग एक दूसरे के दुश्मन को अपना ही दुश्मन समझेंगे। पर यह बात संधिपत्र मे नही, एक निजी पत्र मे थी। सधि के अनुसार तो जब तक वह प्रतिज्ञा-भग नही करता तब तक हम लोग भी शांति-भंग नही कर सकते।

"पर जब हम यह देखते है कि हम उस पर निर्भर नही कर सकते और वह भीतर-ही-भीतर हमारा शत्रु है—जब हमारे पास इस बात के प्रमाण है कि वह फरासीसियो से हिला-मिला है और हमारा विश्वास है कि मौका पाते ही वह उनकी सहायता से हमें नष्ट कर देगा तब अक्लमदी तो इसी मे है कि हम भी अपनी रक्षा का उपाय करे।

"दो दिन हुए मीर जाफर ने खोजा पिट्रस (अरमनी) को बुलवा कर कहा कि नवाव से सभी असतुष्ट है—वह सब के साथ दुर्व्यवहार और सब का अपमान करता रहता है—मै जब दरबार में जाता हूँ तब मुझे डर बना रहता है कि कही मेरी हत्या न करा दे और यही कारण है कि अपने लड़के और सैनिको को साथ लेकर ही वहा जाता हूँ। मीर जाफर ने यह भी कहा कि नवाब सधिपत्र से आवद्ध रहने वाला नही—मोहनलाल इस समय बीमार है, उसके चगा होते ही और जो सैनिक पटने गये है, उनके आठ-नौ दिन बाद यहा लौटते ही वह अगरेजो पर चढाई किये बिना न रहेगा।

"इसलिए, मीर जाफर ने मुझे कहलाया कि अगर आपको मजूर हो तो वह, रहीम खा, दुर्लभराम, बहादुर अली खा आदि मिल कर नवाव को कैद कर लें और आपस मे सलाह कर किसी दूसरे शख्स को गद्दी पर बिठा दें। मीर जाफर जानना चाहता है कि उस हालत में आपको कितना रुपया चाहिए—कितनी जमीन चाहिए। मेरा अपना विचार यह है कि जिस योजना की सूचना मै पहले भेज चुका हूँ उससे यह योजना अधिक व्यावहारिक है।"

यह नई योजना अधिक व्यावहारिक इसलिए थी कि मीर जाफर के पक्ष मे जितने आदमी हो सकते थे उतने खुदायार खा के

पक्ष मे नही। जगत्सेठ उसे नवाव बनाना चाहते थे तो इसीलिए वि मीर जाफर ने अभी तक अपना नाम प्रकट होने नही दिया था। जव उसने देख लिया कि दाल गलने मे सदेह वहुत कम रह गया है तव उसने हा कर दिया और जगत्सेठ से ले कर घसीटी वेगम तक सभी प्रधान षड्यन्त्रकारी उसके पक्षपाती हो गये। "लत्ती" ने भी जगत्सेठ के कहने पर मीर जाफर की श्रेष्ठता स्वीकार कर ली और खुद उम्मीदवार न रह कर उसका तरफदार हो गया।

परिस्थिति मे जो परिवर्तन हुआ वह यो तो अमीचन्द से गुप्त रखा गया, पर उन्हे इसकी भनक मिल ही गई। फिर स्क्राफ्टन को उसका आभास मिले विना कैसे रह सकता था? २८ अप्रैल को वह क्लाइव को लिखता है —

"मैने अमीचन्द को आपका पत्र दिखाया। उसने कहा कि हम दोनो पर कुछ अधिकारियो की सदेह-दृष्टि है, अत हमारा एकत्र न रहना ही अच्छा है। मैने कहा कि मुझे डर है कि वाट्स की कमजोरी—

अमीचन्द—डरने की कोई वात नही। तीन चार दिन मे ही मै हजारीमल के साथ अपने कुटुम्व को (कलकत्ते) भेज दूगा। वहा वे मेरी नेकनीयती के जामिन के तौर रहेगे। हजारीमल को मै सकेत-भाषा में सव कुछ लिखता रहूगा और वह तुम्हे सारी खवर देता रहेगा।

स्क्राफ्टन—कृपा कर यह तो वताइए कि वात है क्या?

अमी—नही, मै शपथ ले चुका हूँ, इसलिए अभी वता नही सकता। पर इतना कह सकता हू कि "लत्ती" होने वाला नही। और ही कोई होगा जिसके समर्थक जगत्सेठ भी है।

स्क्राफ्टन—आप भी समर्थन करेंगे ?

अमी—हा ।

स्क्राफ्टन—तो मै यहां से चला जाऊँ ?

अमी—यक-ब-यक नही, कुछ लोग चौक उठेंगे । ढाके तो जाओ ही मत । एक दिन और रहो ।

स्क्राफ्टन—जगत्सेठ तो दृढ रहेगे ?

अमी०—अवश्य । वह भी अपने घर की स्त्रियो को दूसरी जगह भेज रहे है । उनके अपने सैनिक भी तो तुम्हारी ही ओर से लड़ेगे । जो शर्ते हो, उन्हे हजारीमल को बता देना । नवाब के सैनिको की संख्या कम-से-कम पचास हजार है ।

"मै यह कह सकता हू कि अगर आपसे चौबीस घटे भी मेरी बातचीत होती तो मै इससे अधिक कुछ भी बता न सकता । मेरा यहा अब और रहना ठीक नही । वाट्स मुझसे जलता है और जैसे बिल्ली चूहे की घात में रहती है वैसे ही जासूस मेरी ताक में रहते है ।"

वाट्स या स्क्रापटन के पत्रो से तत्कालीन परिस्थिति पर जो प्रकाश पडता है वह "मुताखरीन" जैसे इतिहास-ग्रथ से भी पडना असभव है । कारण कि उसका लेखक गुलाम हुसैन उस समय मुर्शिदाबाद से दूर था और अगर वहा होता भी तो वह यह न जान सकता कि कुल्हिया मे गुड फोडने वाले रोज क्या कर रहे थे । पर उस समय की घटनाओ को एक समसामयिक इतिहासकार के दृष्टि-कोण से देखने वाले इस गवाह का बयान भी सुनने लायक है । वह लिखता है —

"मो० ला (लास) के मुर्शिदावाद से हटते ही सिराजुद्दौला के विरोधी पापड वेलने लगे। मीर जाफर और दुर्लभराम जगत्सेठ तथा अन्य विद्रोहियो से मिल गये और सब के सब सिराजुद्दौला को चित कर देने की तरकीव सोचने लगे। पर जहा वे ऐसी मत्रणा करते वहा सिराजुद्दौला के स्वभाव की अस्थिरता और क्रूरता से वेहद डरते भी थे।

"ठीक उसी समय वीवी घसीटी भी रगमच पर आ गई। सिराजुद्दौला उसे मोतीभील से निकाल कर और उसकी धन-सपत्ति छीन कर उसके कलेजे मे घाव कर चुका था। वह भी मीर जाफर की ओर हो गई और उसे मदद देने-दिलाने लगी। आखिर वह अलीवर्दी खा की वेटी और नवाजिश मुहम्मद खा की वेगम थी। मुर्शिदावाद मे ऐसे लोगो की कमी नही थी जो उनके कृपापात्र रह चुके थे—जो वीवी घसीटी के भी कृतज्ञ वने हुए थे और उसकी विपत्ति मे उससे सहानुभूति रखते थे। ऐसे सव लोगो को वह यह कहलाने लगी कि मीर जाफर और दुर्लभराम का पक्ष ग्रहण कर आप मेरे प्रति अपने कर्तव्य का पालन कीजिए। उसके पास कुछ धन भी था। मोतीभील से वहिष्कृत होने से पहले उसने कुछ सोना दास-दासियो के द्वारा और कही हटवा दिया था। अव वह उस धन का उपयोग मीर जाफर की सफलता के लिए करने लगी। इस सहायता से मीर जाफर षड्यन्त्र का जाल फैलाने और अपना सैनिक वल वढाने लगा। जो कोई भी आदमी सिराजुद्दौला की सेना से वरखास्त होकर नौकरी करने या अपनी तकदीर की आजमाइश करने की गरज से उसके पास पहुँचता था उसे वह भरती कर लेता था। धीरे-धीरे उसने गुप्त रूप से काफी सैनिक भरती कर लिये।

दूसरे सरदार भी उसके पक्ष मे हो गये और सब का यही ध्येय हो चला कि किसी प्रकार सिराजुद्दौला को गद्दी से हटाया जाय। पर यह काम अगरेजो की सहायता के बिना न हो सकता था। इसलिए विद्रोहियो की ओर से अगरेजो के पास सदेसे जाने लगे कि खुले मैदान आकर सिराजुद्दौला पर वार कीजिए। ऐसे लोगो मे प्रमुख जगत्सेठ थे। यह काम जिस खूबी से वह करा सकते थे उससे दूसरे नही। कलकत्ते के बडे व्यापारी और अपने सरोकारी अमीचन्द की मार्फत वह अगरेजो को बराबर उकसाते रहे। राजा दुर्लभराम और मीर जाफर ने भी अपने दूत कलकत्ते भेजे। मीर जाफर की ओर से जाने वाला उसका विश्वासी मित्र मिर्जा अमीर बेग था। जिस समय अगरेज 'फोर्ट विलियम' छोड कर भागे जा रहे थे उस समय उसने कुछ औरतो को नावो पर सही-सलामत पहुचा कर बडे साहस और उदारता का परिचय दिया था। इस कारण अगरेज उसकी बडी इज्जत करने लगे थे। उसकी मार्फत मीर जाफर ने उन्हे कहलाया कि सरदार और अमीर-उमरा सिराजुद्दौला से नाको आकर और एक होकर उससे छुटकारा पाने का निश्चय कर चुके थे।"

जब बिल्ली का भाग्योदय होता है तब छीका टूट कर गिर पडता है और उसे माल-मलाई अनायास ही मिल जाती है। अगरेज भी ऐसे ही भाग्यवान् निकले। मीर जाफर के सम्बन्ध मे वाट्स अपने २६ अप्रैल के पत्र में लिख ही चुका था। २८ अप्रैल को उसने फिर लिखा कि 'अगर मीर जाफर से सधि हो जाती है तो समझ लीजिए कि सब से शक्तिशाली सहायक हमे मिल गया। उसकी बराबरी करने वाला यहा कोई नही।' १ मई को कलकत्ते की सेलेक्ट कमिटी ने यह निर्णय किया कि 'हम सहायता दें या न दे,

मुर्शिदावाद में क्रांति सफल हुए विना नही रह सकती। हम तटस्थ हो कर तमाशा देखते रहे तो राजनीतिक दृष्टि से यह हमारी भयकर भूल होगी।' गरज यह कि कपनी ने मीर जाफर को सहायता दना स्वीकार कर लिया। दूसरे ही दिन क्लाइव ने वाट्स को लिखा कि 'कल सुवह हमारी सेना यहा से कूच करेगी। मीर जाफर से जो कुछ तै-तमाम करना है कर लो और कह दो कि मै ५,००० ऐसे जवानो के साथ चला आ रहा हूँ, जिन्होने आजतक पीठ नही दिखाई। उसी खत के साथ क्लाइव ने मीर जाफर के साथ होने वाली शर्तो का मसौदा भी भेजा। पर ४ मई के पत्र मे उसने सिराजुद्दौला को आश्वासन देते हुए लिखा कि, 'वहा लगाने-वुझाने वालो की कमी नही। अगर कोई घरानेदार आदमी यहा मेरे साथ होता तो मै आपको विश्वास दिला सकता कि अगरेज सत्य और न्याय के कैसे भक्त होते है।'

ज्यो ही मीर जाफर और अगरेजो के वीच सधि की वातचीत शुरू हुई, अमीचन्द दोनो के मार्ग मे वाधक वन गये और अपने सहयोग की कीमत मागने लगे। शुरू मे मीर जाफर और शायद जगत्सेठ के भी इच्छानुसार उनसे सारी वात छिपाने की कोशिश की गई, पर वैसे चुस्त-चालाक आदमी से कुछ भी छिपाया न जा सकता था। ६ मई को वाट्स लिखता है कि, 'मैने सारी वात अमीचन्द को वता दी है। मुझे डर है कि जव मीर जाफर यह सुनेगा तव वह झुझलाये विना न रहेगा, कारण कि वह हिन्दुओ को उतना विश्वसनीय नही समझता। जो हो, मै अव जो कुछ करूगा अमीचन्द की सलाह लेकर ही करूगा। जल्द ही मै मीर जाफर से मुलाकात कर सव कुछ तै कर लेने वाला हूं।'

पर अमीचन्द सलाह देकर ही सन्तुष्ट होने वाले न थे। उन्होंने कहा कि पहले यह तै हो जाय कि मुझे क्या मिलेगा। वाट्स से उनकी खटपट हो गई और इस झगडे के कारण प्राय एक महीने तक न तो सधिपत्र पर दस्तखत हो सके, न अगरेज कलकत्ते से "सत्य और न्याय" के पथ पर आगे बढ सके। अमीचन्द की माग थी कि क्राति हो जाने पर मीर जाफर को जो धन-सपत्ति हाथ लगे उसके एक हिस्से के वह भी हकदार समझे जाय। उनका अदाज था कि खजाने में दो करोड* नकद थे—उसके अलावा जवाहरात। स्क्राफ्टन ने कलकत्ते से वाट्स को लिखा कि क्लाइव ने अमीचन्द को मिलनेवाली रकम पर पाच प्रतिशत देना मजूर कर लिया है। वाट्स ने यह बात अमीचन्द से छिपा ली और १४ मई को उन पर कुछ अभियोग लगा कर एक पत्र क्लाइव के पास भेजा। उसमें खास बात यह कही गई थी, कि जब कंपनी से सधि हो जाने पर सिराजुद्दौला ने उसे प्राय. तीन लाख रुपये हर्जाने के रूप में देना स्वीकार किया था तब उसने रजीतराय और अमीचन्द के साथ यह भी तै किया था कि वह उतनी ही रकम कलकत्ते के व्यापारियो की क्षति-पूर्ति के लिए और दो लाख रुपये उन दोनो के लिए देगा। जब बाद को नवाब रजीतराय को एक लाख देने मे टालमटूल करने लगा तब उसने उस रकम की बात छेडी जो व्यापारियो को मिलने वाली थी। उधर अमीचन्द ने नवाब से कह दिया कि अगर आप इस फितूरी को यहा रहने देंगे तो आपको वह सारी रकम देनी पडेगी। इस पर नवाब ने रजीतराय को दरबार से निकलवा दिया और उसे काफी

---

* वाट्स का अपना अदाज ४० करोड का था।

नुकसान भी पहुचाया। जब वाट्स को सारी बात 'विश्वसनीय सूत्र' से मालूम हुई तब उसने नवाब से उस रकम के बारे मे पूछताछ करना चाहा, पर अमीचन्द ने कहा कि बात हम तीनो के ही बीच तै हुई थी, कुछ भी पूछना ठीक न होगा, पर मै नवाब से वह रकम दिलाने की चेष्टा करूगा। यह दास्तान सुना कर वाट्स ने लिखा कि, "आपने जो शर्तें लिख भेजी थी वह अमीचन्द को मजूर नही हुई। वह अपने लिए पाच प्रतिशत तो नवाब के खजाने की रकम पर चाहता है। यह रकम दो करोड रुपये होगी। इसके अलावा यह चाहता है बाकी सपत्ति का चौथाई भाग। राजा दुर्लभराम को अपना पक्षपाती बनाने के लिए वह उससे वादा करा चुका है कि मीर जाफर से हम लोग जो कुछ ऐठ लेगे उसका एक चौथाई भाग आपका होगा।"

क्लाइव की और अमीचन्द की ठठेरे ठठेरे बदलाई थी। जब क्लाइव ने देखा कि बिना अमीचन्द का मुह सीये बात नही बनती तब उसने उनकी माग तो स्वीकार कर ली, पर मन ही मन उन्हें धोखा देने का निश्चय कर दो सधि-पत्र लिखवाये जिनमे एक असली था, दूसरा नकली। असली का कागज सफेद था, नकली का लाल। कपनी की ओर से क्लाइव, वाट्स, ड्रेक आदि ने दोनो पर ही दस्तखत किये। एक वाट्सन ने जाली सधिपत्र पर दस्तखत नही किये, पर क्लाइव ने उसके दस्तखत दूसरे से बनवा दिये। अमीचन्द का मुह मनमोदक से भर कर क्लाइव ने कपनी की और अपनी पाचो उगलिया घी मे कर ली। कलकत्ते से जो शर्तें मुर्शिदाबाद भेजी गई उनमे कुछ ये थी—

१—कपनी की क्षति-पूर्त्ति के लिए उसे एक करोड रुपये* मिलेंगे।

---

* 'सिक्कों' मे मतलब था।

२—व्यापारियो की जो क्षति हुई थी उसकी पूर्त्ति के लिए अगरेज व्यापारियो को पचास लाख, हिदू व्यापारियों को बीस लाख और अरमनी व्यापारियो को सात लाख रुपये मिलेगे।

३—मराठा खाई मे और उसके इर्द-गिर्द ६०० गज के भीतर जमीदारो की जितनी जमीन है वह कपनी को दिला दी जायगी।

४—मुर्शिदाबाद सरकार को हुगली से दक्खिन किसी तरह की किलेवन्दी करने का अधिकार न होगा।

मीर जाफर ने सादे कागज पर ही दस्तखत करके वाट्स को दे दिया था कि क्लाइव को जो शर्ते ठीक जचे लिख लें। क्लाइव ने और सब बाते तो लिखा दी, सिर्फ कपनी को मिलने वाली रकम की तादाद मीर जाफर की मर्जी पर ही छोड दी। वह स्वय पचास लाख से ही सतुष्ट हो जाता, पर मीर जाफर ही क्या जो पचास लाख और न दे देता! कपनी को और व्यापारियो को सधिपत्र द्वारा जो कुछ मिलना निश्चित हुआ उसके अलावा मीर जाफर ने क्लाइव और वाट्सन की फौज के लिए चालीस लाख और कौसिल के सदस्यो के लिए बारह लाख रुपये देना स्वीकार किया। १९ मई को क्लाइव ने प्रस्तावित सधि के सम्बन्ध मे एक पत्र वाट्स को भेजा। उसमें जाली सधिपत्र का जिक्र करते हुए उसने एक ओर यह लिखा कि अमीचन्द जैसा 'दुष्ट दुनिया के परदे पर न होगा' और दूसरी ओर वाट्स को आदेश दिया कि 'उसकी खूब खुशामद करना, हमारे धन्यवाद उसके पास पहुँचा देना और कह देना कि आपका नाम हिन्दुस्तान से भी बढ कर इग्लिस्तान मे होने वाला है।'

सधि के मार्ग मे अमीचन्द की तरह कुछ हद तक दूसरा बाधक दुर्लभराम हुआ। इसका मीर जाफर से घनिष्ठ सम्बन्ध था और

सैनिक दृष्टि से मीर जाफर के वाद महत्व था तो उसी का। उसने यह कर आपत्ति की कि खजाने मे इतना रुपया ही नही तो मीर जाफर नवाव हो जाने के एक महीने के भीतर ही प्राय ढाई करोड रुपये कहा से ला कर दे सकेगा? उसका प्रस्ताव था कि जो कुछ खजाने मे मिले उसका आधा अगरेज ले ले। वाट्स इससे सहमत था, कारण कि वह राजकोप में चालीस करोड का अनुमान किये बैठा था। अन्त मे मीर जाफर और दुर्लभराम ने उसी वात को मंजूर कर लिया, जो पहले तै हो चुकी थी। ५ जून की रात को वाट्स ओहार वाली डोली मे वैठ, मीर जाफर के घर गया और वही मीर जाफर ने कुरान और अपने वेटे के सिर की कसम खा कर, सधिपत्र पर दस्तखत कर दिये और उसकी शर्तो से अपने आपको जकडवन्द कर लिया।

१३ जून को क्लाइव ने सिराजुद्दौला को एक पत्र भेजा। उसमें उस पर कुछ झूठे-मूठे दोपारोप किये गये थे, कुछ वे-सिर-पैर की वाते लिखी गई थी।

एक आरोप यह था—"आपकी मित्रता ऐसे लोगो से है जो हमारे शत्रु है। मुझे दक्खिन से पक्की खवर मिली है कि आप वहां मो० वुसी* से पत्र-व्यवहार करते रहे है।"

दूसरा यह—"आप मुझसे वार वार कह चुके है कि मो० ला और उसके साथियो को कर्म्मनाशा पार भाग जाने को कह दिया गया था पर वे तो आपके आज्ञानुसार भागलपुर मे ही वैठे हुए है और उन्हे आपसे १०,०००) माहवार भी मिल रहा है। इसका एक प्रमाण यह है कि जगत्सेठ की जो कोठी राजमहल में है उसने हाल मे ही उन्हें १०,०००) की एक हुडी का भुगतान दिया है।"

* दक्खिन हैदरावाद में फ्रेंच सेनापति।
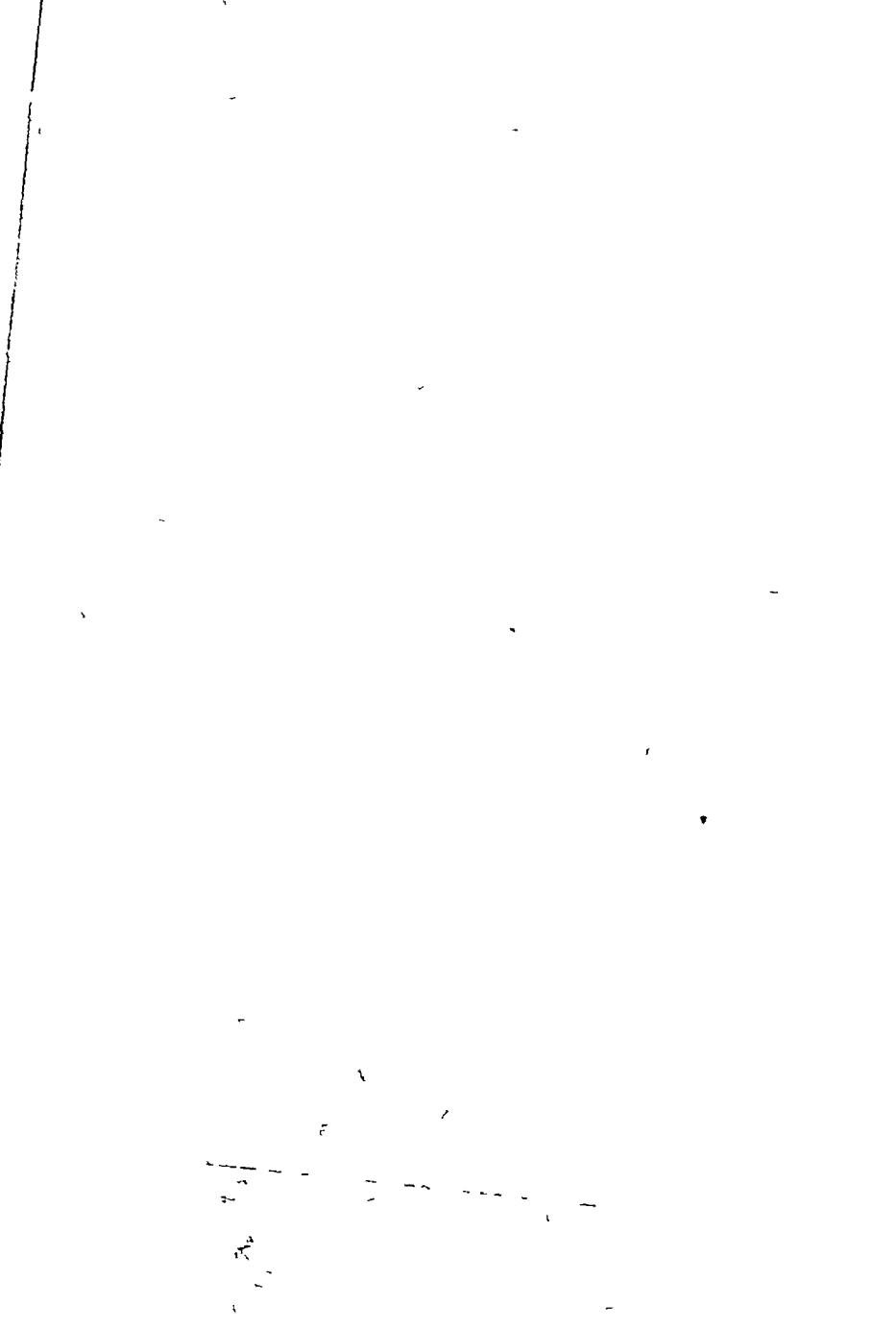
सधिपत्र पर हस्ताक्षर करके मीर जाफर उसे वाट्स को दे रहा है। मीरन बीच में खड़ा है—(प्राचीन चित्र में)

तीसरा आरोप यह था —

"आपके और हमारे बीच संधि हुए चार महीने बीत चले। आपने आज तक उसकी शर्तों का पूरा पालन नही किया। वादे होते और टलते आये है। कलकत्ते में हमारी जो रकम* आपको हाथ लगी थी उसका आप हमे पचमाश से अधिक लौटाना नही चाहते, फिर भी हमसे फारखती मागते है। उसके अलावा आपने हर्जाना देने को कहा था। पर जहा आपने सोने की मोहरो का वादा किया वहा जगत्सेठ से चादी के सिक्के दिलवाये। वह रकम भी हमें तब मिली जब हमारे जहाज यहा से रवाना हो चुके थे।"

अन्त मे यह धमकी थी—

"मै नुकसान कहा तक बरदाश्त कर सकता हू ? यहा सब की यही राय है कि मै कासिमबाजार जाऊ और वहा इस मामले की पचायत कराऊ। मै पच बदूगा जगत्सेठ, राजा मोहनलाल, मीर जाफर खा, राजा दुर्लभराम, मीर मदन को—और वहा के अन्य विशिष्ट व्यक्तियो को। बरसात का जोर बढता जा रहा है, आपका उतर मिलेगा भी तो देर से, यह सोच कर मै आपकी सेवा मे उपस्थित होने के लिए रवाना हो रहा हू।" उसी दिन क्लाइव रवाना हुआ, और उसी दिन वाट्स भी शिकार पर जाने का बहाना कर कासिम-बाजार से चपत हो गया। क्लाइव के रवाना होने से पहले ही मुर्शिदाबाद में यह अफवाह उडने लगी थी कि बादल उमडते-घुमडते

* ड्रेक अपनी सफाई में लिख चुका था कि "जहा तक मुझे याद है, उस समय कपनी के खजाने में सब मिलाकर ८०,०००) से अधिक न था।" हिल, भाग २, पृष्ठ १४१।

चले आ रहे है। अब सिराजुद्दौला को भी निश्चय हो गया कि रक्त-वृष्टि होने ही वाली थी।

उन दिनो कासिमबाजार मे डच कपनी का प्रधान वर्नेट था। उसने १५ जून को लिखा कि, "वाट्स, कालेट, साइक्स और उनका डाक्टर परसो यहा से भाग गये। दरबार मे इससे खलबली मच गई है। नवाब ने कल एक अतरग सभा की और यह आज्ञा दी कि पेशखेमा भेज दिया जाय। फौज भी इकट्ठी हो रही है। पर कुछ घुड़सवारो ने लडाई पर जाने से इन्कार कर दिया है। इससे जान पडता है कि कोई साजिश हो चुकी है और उसमे अगरेज शामिल है।"

१६ जून को उसने लिखा कि, "नवाब अपनी फौज के साथ रवाना हो चुका है। हमे पक्की खबर मिली है कि फतहचद के पोते, राजा दुर्लभराम, मीर जाफर, खुदा दाद खा "लत्ती" और अमीर बेग—अगरेजो से मिल कर नवाब के साथ विश्वासघात करना चाहते है।" वार्नेट को यह समाचार बडी देर से मिला था।

इससे पहले ही क्लाइव की सेना कटवा पहुच चुकी थी। वही वाट्स भी उसके साथ हो लिया। कटवा के किलेदार ने कहलाया कि मै आपका शत्रु नही, मित्र हू। और १९ जून को क्लाइव ने 'फोर्ट विलियम' की सेलेक्ट कमिटी को लिखा कि यहा के किले पर तो कब्जा हो गया, अब नदी पार कर पलासी पहुचना है। २३ जून को प्रातःकाल वह पलासी पहुचा और उसके पहुचते ही लडाई शुरू हो गई। तीन-चार बजते-बजते लडाई का फैसला भी हो गया। सच पूछा जाय तो वह फैसला सिराजुद्दौला के लडाई पर चलने से पहले ही हो चुका था।

हरावल के साथ राजा दुर्लभराम वहा पहुच चुका था, पर

पहुचकर उसने काम यही किया था कि क्लाइव के साथ कुछ और समझौता कर लिया था—जो मोरचा बाधा भी था वह अगरेजो की हार नही, जीत की ही दृष्टि से। दूसरा सेनापति हो कर स्वय मीर जाफर आया था। इधर क्लाइव से कई पत्र उसके पास पहुच चुके थे और वह साबुत जग बहादुर* को बता भी चुका था कि वह कहा रहेगा और क्या करेगा। लडाई से एक दिन पहले क्लाइव को उसका जो पत्र मिला था उसमें लिखा था कि, "आप मैदान के पास पहुँचे कि मै आपकी ओर आ गया। आप मुझे इतना सूचित कर देगे कि आपकी ओर से कब लडाई शुरू होगी।" पलासी पहुचने पर मीर जाफर ने अपने खेमे मैदान से कुछ दूर खडे कराये और लडाई शुरू होने पर उसमें कोई भाग नही लिया, "मानो वह तमाशा† देखने के लिए ही वहा गया हो।" फिर भी सिराजुद्दौला की ओर से मीर मदन और मोहनलाल ऐसी वीरता दिखाने लगे कि थोडे समय के लिए क्लाइव कुछ चिन्ता मे पड गया। मीर जाफर का कही पता न था। नवाब के लशकर में कुछ फरासीसी और पुर्तगीज भी मौजूद थे और मीर मदन पीठ दिखाने के बजाय आगे बढता आ रहा था। पर क्लाइव का सौभाग्य कहिए या सिराजुद्दौला का दुर्भाग्य, तीन बजे के करीब मीर मदन के पास तोप का ऐसा गोला जा गिरा जिससे उसकी एक जाघ ही जाती रही।

मीर मदन के मरते ही सिराजुद्दौला इतना घबरा गया कि बहुत बुलाने पर जब मीर जाफर उसके पास आया तब उसने अपनी

---

* यह क्लाइव का खिताब था जो दक्षिण में उसे मुहम्मद अली से मिल चुका था।

† "मुताखरीन।"

पगडी उतार कर उसके सामने रख दी और अपने दोपो के लिए पश्चात्ताप प्रकट कर उससे क्षमा-भिक्षा मागने लगा। मीर जाफर अत करण से क्षमा-प्रदान करने वाला न था। दुश्मन को दाव पर चढा देख उसने इतना ही कहा कि "आज और लडने से लाभ के वदले अपनी हानि होगी। कल की लडाई का भार मै अपने ऊपर लेता हू और यह भी वादा करता हू कि अगर अगरेजो ने रात को छापा मारा तो उसका जवाब मै दे दूगा।" मोहनलाल उस समय भी वीरतापूर्वक लड रहा था। उसने सिराजुद्दौला को कहलाया कि लड़ाई मुलतवी मत कराइये, अपने लिए इसका नतीजा वहुत ही वुरा होगा। सदेह और भय के वीच सिराजुद्दौला दुविधा मे पड गया, पर अन्त मे उसने मीर जाफर की ही सलाह मान ली और लडाई वद कर देने की आज्ञा दे दी। सैनिको ने इसका अर्थ यह लगाया कि अपनी हार हो चुकी और मैदान छोडकर भाग पडे। ऐसी भगदड मची कि कोई किसी के रोके न रुक सका और सिराजुद्दौला स्वयं साँडनी पर सवार हो मुर्शिदावाद भाग गया।

पल्ासी की लडाई को लडाई कहना उपहासात्मक अत्युक्ति है। मीर जाफर, दुर्लभराम और खुदादाद लुत्फ खा जैसे लोगो को सेनापतित्व प्रदान कर वहा भेजना या अपने साथ ले जाना सिराजुद्दौला का ही काम हो सकता था। उसकी सेना मे १५,००० घुडसवार और ३५,००० पैदल थे। इनमें कई हजार सैनिक ऐसे थे जो मोहनलाल, मीर मदन, ख्वाजा हादी अली खा आदि सरदारो के इशारे पर सिर से खेल जाने वाले थे। उसके साथ चालीस-पचास तोपें थी और पुर्तगीजो के अलावा पचास-साठ फरासीसी तोपची थे। अगर क्लाइव की वात मान भी ली जाय कि तीन वजे तक नवाव के

५०० जवान खेत आ चुके थे तो भी यह स्वीकार नही हो सकता कि उसकी स्थिति निराशाजनक हो चली थी। उस दिन लडाई जीतने की आशा किसी ने त्याग दी थी तो क्लाइव ने। वह रात को छापा मारने का विचार करने लगा था। फिर भी एक मीर मदन के मरते ही सिराजुद्दौला इतना वदहवास हुआ कि जो परिस्थिति अनुकूल थी उसे प्रतिकूल बना कर अपनी हार करा ली। यह काम भी उसी का हो सकता था।

दूसरे ही दिन सुबह आठ बजे मुर्शिदावाद पहुचकर सिराजुद्दौला ने मसूरगज महल में वचे-खुचे सरदारो को बुलवाया और कहा कि मेरी जान बचाने वाले अब आप ही लोग रह गये है। पर कोई तरफदार या मददगार न निकला। उसके ससुर तक ने उसके रोने-धोने पर ध्यान न दिया। इस आशा से कि जो काम उसके आंसू नही कर सके थे वह काम उसके रुपये कर सकें, सिराजुद्दौला ने अव अपना खजाना खुलवा दिया और धन लुटाने लगा। पर इससे उसको कुछ सहानुभूति मिली भी तो गाढे के सगी न मिले। सब से निराश हो कर उसने रात को भगवानगोला में नाव पर सवार हो, पटने की राह ली। साथ जाने वालो में उसकी वेगम लुत्फुन्निसा और कुछ नौकर-चाकर थे। थोडा धन भी पास था। "मुताखरीन" मे लिखा है कि यहा भी उसने बडी गलती की। पहले उसका विचार खुश्की की राह राजमहल भाग जाने का हुआ था। अगर उसके अनुसार कार्य किया होता और जो सरदार मीर जाफर से मिले हुए न थे उन सब को कहला दिया होता तो कुछ घटो के भीतर ही कई हजार आदमी उसके साथ हो जाते और कम से कम तनहाई में उसे गिरफ्तार होना न पडता।

सिराजुद्दौला ने पलासी जाने से पहले ही मो० ला को बुलावा भेज दिया था। भूल उसने यह की थी कि बुलावे के साथ ला को कोई हुडी न भेज कर पटने के दीवान पर एक परवाना भेज दिया था जिससे ला को राहखर्च के लिए रुपये कुछ देर से मिले सके थे। ला धावा मार कर राजमहल पहुचा भी तो सिराजुद्दौला के गिरफ्तार हो जाने के कुछ घटे बाद*।

सिराजुद्दौला को मालदह के पास पहुचने पर मालूम हुआ कि नाव नजीरपुर से आगे नही जा सकती थी, इसलिए वही उतर पडा। घाट से दानाशाह पीरजादे के घर गया। "रियाजुस्सलातीन" मे लिखा है कि सिराजुद्दौला किसी समय दानाशाह को कुछ नुकसान पहुचा चुका था और बदला लेने के विचार से उसने इसके पहुचने की खबर राजमहल के फौजदार के पास भेज दी। इसने अपने सिपाही भेजे और सिराजुद्दौला को सस्त्रीक गिरफ्तार करा लिया। लत्फुन्निसा का जर-जेवर मीर कासिम ने छीन लिया। दोनो हिरासत में मुर्शिदाबाद भेज दिये गये और वही २ जुलाई को, मीर जाफर के बेटे मीरन के हुक्म से सिराजुद्दौला मार डाला गया†। कहना चाहिए कि वह अपनी भयकर भूलो का शिकार हो गया।

---

* मेजर कूट ने ला का पीछा किया, पर उसे पकड न सका। ला चक्कर होता हुआ कर्म्मनाशा पार भाग गया।

† मीर जाफर उस समय नशा खाकर सो रहा था। "रियाजुस्सलातीन" में लिखा है कि सिराजुद्दौला को मार डालने की सलाह अँगरेजों ने तो दी ही थी, जगत्सेठ ने भी इस पर जोर दिया था।

(३)

मीर जाफर लडाई के दिन अगरेजो की ओर से खुले मैदान न लड सका था, इसलिए सिराजुद्दौला के भागते ही उसे क्लाइव से चार आखें करने का साहस न हो सका । दूसरे दिन जाकर उससे मिला। इससे पहले ही क्लाइव उसे लिख चुका था कि "जीत आपकी हुई है, मेरी नही। मेरी ओर से आपको वधाई है। जितना शीघ्र हो सके आप आ जाय तो अच्छा। कल ही हम लोग यहा से रवाना होगे । आशा करता हूँ कि आपको नवाब घोषित करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा।" फिर भी मीर जाफर डरते डरते उसके पास गया । क्लाइव के आलिंगन करने पर ही उसके दिल की धडकन बन्द हुई, सूखा हुआ चेहरा फिर हरा हुआ। उसी दिन पलासी से चलकर वह मुर्शिदाबाद पहुच गया। सिराजुद्दौला उस समय अपने महल में ही था, पर मीर जाफर से यह न बन पडा कि मसूरगज जाकर उसे गिरफ्तार करा ले। इसका कारण यह था कि उस समय क्लाइव साथ न था। कुछ इन्तजाम करने के लिए वह पीछे ही रह गया था।

पर क्लाइव से पहले ही वाट्स और वाल्श रुपया वसूल करने के लिए मुर्शिदाबाद पहुच गये थे और खजाने की तलाशी कराने लगे थे मीर जाफर, दुर्लभराम को कर्ता-धर्ता बना चुका था और दुर्लभराम को खजाने में कुल एक करोड चालीस लाख रुपये मिले थे । वाट्स और वाल्श को विश्वास न हुआ कि सिराजुद्दौला उतना ही छोड गया था और दुर्लभराम सच बोल रहा था । २६ जून को उन दोनो ने क्लाइव को लिखा कि —

"आज सुबह हमने नवाब से मुलाकात की। पूरे दो घटे तो

दरबार की रसम खतम होने मे लगे । उसके बाद नवाव और दुर्लभराम हमें अलग ले गये । वजाय इसके कि दुर्लभराम हमें जगत्सेठ से रुपये दिला देता, वह बाते वना कर हमे यह विश्वास दिलाने की चेष्टा करने लगा कि खजाची से पूछ-ताछ कर चुका था, खजाने मे वस एक करोड चालीस लाख रुपये मौजूद थे और जगत्सेठ ढाई-तीन करोड़ दे नही सकते थे । वस्तुस्थिति न जानने के कारण, हम उसकी वातो का खडन करने मे असमर्थ थे। हमने यह प्रस्ताव किया कि हम मोहनलाल से वातें कर लें और फिर उसे सावुतजग* के पास ले जाय। पहले तो दुर्लभराम ने कुछ आना-कानी की, पर अन्त मे हमारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। हमने उससे पूछा कि आप और मानिकचन्द कर्नल के पडाव पर जाने वाले है या नही ? उसने कहा कि जव तक यह मामला तै नही हो जाता, मै तो कही नही जा सकता ।

"थोडे से शव्दो मे हम कहे तो कह सकते है कि दुर्लभराम की नीनि इधर-उधर करने और धोखा देने की है। हमारा विश्वास है कि जव तक वह प्रधान मन्त्री रहेगा, एक हिन्दू की स्वभावज कुटिलता से हमारे मार्ग मे रोडे ही अटकाता रहेगा। अच्छा होगा कि आप अमीचन्द से पूछे कि नवाव के धन के सम्वन्ध मे उसका अपना अनुमान क्या है । उसने मि० वाट्स से कहा था कि, 'मुझे मालूम है कि नवाव का धन महल मे कहा कहा छिपा पडा है।' इसमे तो सदेह की गुजाइश ही नही कि धन छिपाया हुआ है और वह भी कई जगह। अगर अमीचन्द वैसा स्वार्थी न होता तो इस मौके पर यहां वहुत ही उपयोगी हो सकता था।

---

* वलद्दव।

"आज जोरो की वर्षा हो रही है, इसलिए मोहनलाल को साथ लेकर हम दोनो रवाना नही हो सकते । कल सुबह रवाना होगे। मानिकचन्द और जगत्सेठ के भाई आने वाले है। उनसे बहुत सी बातें मालूम हो सकेगी। महाराज स्वरूपचन्द आ ही तो गये। इसलिए हम इस पत्र को यही समाप्त करते है।"

उस समय तक क्लाइव कासिमबाजार पहुच चुका था। उसने २८ जून को मुर्शिदाबाद जाकर मीर जाफर और जगत्सेठ से मिलने और कई विषयो के सबध मे निर्णय करने का विचार किया। पर २७ जून को ही जगत्सेठ ने उसे रजीतराय के द्वारा यह कहलाया कि "दुर्लभराम और कासिम हुसैन खा ने रात यह मत्रणा की कि जब आप नवाब से मिलने आवे तब आपको मार डाला जाय। अगर आप रवाना हो चुके हो तो बीमारी का बहाना कर लौट जाय। मैं कल सुबह आकर मिलूगा। आप इस मत्रणा के सम्बन्ध में किसी से एक भी शब्द न कहें। नवाब ने रुपये-जवाहरात चुपचाप गोदागारी भिजवा दिये है। और कोई बात मालूम होगी तो मै आपको उसकी सूचना भेज दूगा।"

यह संदेश मिलने पर क्लाइव ने अपनी यात्रा स्थगित कर दी और २८ जून के बजाय २९ को मुर्शिदाबाद गया। ३० जून को उसने लिखा :—

"कल प्रातःकाल मैने नगर मे प्रवेश किया और नवाब के महल के पास ही मुरादबाग मे जाकर डेरा डाला। मेरे साथ २०० यूरोप के और ३०० इस देश के सिपाही थे। तीसरे पहर मीर जाफर का बेटा मुझे दरबार में ले गया। मैंने देखा कि मीर

जाफर संकोचवश अभी मसनद पर बैठे न थे । मैंने उन्हे बैठाया और नवाव नाजिम को सलाम किया। फिर दरबारी बधाइयां और नजर देने लगे । काम-काज की बाते करने का अवसर न था। मैंने उन लोगो से इतना ही कहा कि 'सरकार से लडना अगरेजो का उसूल न होते हुए भी हमें सिराजुद्दौला से इसलिए लडना पडा कि वह अपनी बात पर कायम न रह कर संधि-भग करने और फरासीसियो के द्वारा हमारी हस्ती मिटवाने की वदिश बाधने लगा था। ईश्वर की इच्छा से वह पराजित हो चुका । अब उसकी जगह जो नवाब हुए है उनके गुणो को देख कर यह आशा होती है कि उनकी छत्रच्छाया मे सर्वत्र शान्ति बनी रहेगी और प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न होगा । हम लोग राज-काज मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना नही चाहते। जो कुछ होगा नवाब के ही इच्छानुसार। जब तक उन्हें हमारी आवश्यकता है, हम आज्ञापालन के लिए यहा रहेगे, आवश्यकता पूरी होते ही हम कलकत्ते लौट जायेंगे और वाणिज्य-व्यपार करने लगेगे। आखिर हम व्यापारी है और एकमात्र व्यापार के उद्देश से यहा आये हुए है।''

इसके बाद क्लाइव लिखता है —

''कल ही मेरे मुरादबाग लौटने पर जगत्सेठ मिलने आये। देर तक उनसे बाते होती रही। बंगाल, बिहार और उडीसा में, धन और प्रभाव की दृष्टि से, उनका स्थान सब से ऊचा है। दिल्ली-दरबार मे भी उनकी बडी प्रतिष्ठा है। उनसे बाते कर मैं इस नतीजे पर पहुचा कि इस मामले को निबटाने वाला उनसे योग्य व्यक्ति कोई हो नही सकता था। लेहाजा जब आज सुबह नवाब

मुझसे मिलने आये तब मैंने उनसे कहा कि आप बराबर जगत्सेठ की सलाह से काम किया करे। उन्होने फौरन यह बात मान ली और कहा कि 'खजाने मे जो रुपया है वह मेरी आशा से इतना कम है कि आपका पावना अदा करना और सरकार के जरूरी खर्च के लिए भी कुछ रखना सभव नही, अगर जगत्सेठ हम दोनो के बीच के मामले का तस्फिया कर दें तो अच्छा हो।' मैंने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। नवाब के मन्त्री काफी रुपये पर हाथ मार चुके है, इसमे तो मुझे सदेह न था, पर मेरे लिए ऐसे मामले की तहकीकात करना बहुत मुश्किल था। मैंने कहा कि इससे अच्छा रास्ता और हो ही नही सकता।"

मीर जाफर और क्लाइव जगत्सेठ के घर गये। उनके साथ दुर्लभराम, मीरन, अमीचन्द, वाट्स और स्क्राफ्टन भी गये। जिस कमरे मे जगत्सेठ से बातें होने वाली थी उसमे अमीचन्द न जा सके। उन्हे कही बाहर ही बैठने को कहा गया। मीर जाफर और क्लाइव की बातें सुन कर जगत्सेठ ने जो फैसला किया उसके बारे में क्लाइव ने लिखा कि —

"जगत्सेठ के निर्णय के अनुसार अगरेजो का जो कुछ पावना है उसका आधा तो उन्हे इसी समय मिल जायगा और बाकी आधे को तीन साल मे चुकाने के लिए तीन ही किस्तें होगी। जो रकम हमें इस समय मिलेगी उसका दो-तिहाई तो नकद होगा और एक-तिहाई जवाहरात और माल-असबाब मे। खजाने की हालत देखते हुए और यह जानते हुए कि सैनिको का वेतन चुकाने के लिए नवाब के पास भी कुछ बचना आवश्यक ही है, मुझे तो लगता है कि जगत्सेठ ने जो फैसला किया वह मेरी अपनी आशा से भी परे था।

"पर दीवान दुर्लभराम को भी सन्तुष्ट करना था। आगे इससे वात वात मे काम पडने वाला है। मैंने उसे पांच फी सदी कमीशन* देना मजूर कर लिया और इसे गैर-मुनासिब न समझा। रह गई जगत्सेठ की अपनी वात। उन्होने कहा कि फरासीसियो को हमारी कोठी ने जो कर्ज दिया था उसमें से हमारे सात लाख रुपये वसूल न हो सके, अव हम उनके सर्वनाश मे सहयोग देने जा रहे है, इसलिए हमारी अपनी रकम डूव जाने का डर है। मैंने उनसे यह तै किया कि अगर कमिटी को कोई आपत्ति न हुई तो फरासीसियो का मुफस्सल में जो कुछ माल-असवाव होगा आपको दे दिया जावेगा और अगर उससे भी कर्ज न पट सका और फरासीसियो से वसूल न हो सका तो वाकी रकम चुकाने की जिम्मेवारी कपनी पर रहेगी। इस पर उन्होने अपनी ओर से यह आश्वासन दिया कि 'मुझसे जो मदद या सिफारिश हो सकेगी करने को वरावर तैयार रहूँगा। नवाव मीर जाफर के लिए दिल्ली से सनद मगवा दूगा; कपनी के पक्ष मे वहा जो कुछ भी कहना आवश्यक होगा कहला दूगा और अगर उसे कभी किसी फरमान की जरूरत पडी तो दिला दूगा। नवाव को जगत्सेठ ने यह सलाह दी कि अलीवर्दी खा के समय के अधिकारियो को आप फिर अपनी अपनी पुरानी जगह दे दें।"

जव जगत्सेठ अपना निर्णय सुना चुके और उसे सुन कर क्लाइव गद्गद् हो चुका—जव क्लाइव दुर्लभराम को कमीशन देने और जगत्सेठ का पावना चुकाने का वादा कर चुका—जव जगतसेठ

* जो रकम कपनी को और व्यापारियों को हर्जाने के रूप में मिलने वाली थी उस पर।

क्लाइव को आश्वासन और मीर जाफर को सदुपदेश दे चुके तब क्लाइव का ध्यान अमीचन्द की ओर गया और उसने स्क्राफ्टन से यह कहला कर उनकी मोहनिद्रा दूर करा दी कि 'लाल सधि-पत्र नकली था और आपको एक भी पैसा मिलने वाला नही'। यह सुनते ही अमीचन्द बेहोश हो गये। अगर किसी नौकर ने उस समय उन्हें न सभाला होता तो जहा कलेजा दो टूक हो चुका था, वहा सिर भी फूटे बिना न रहता। पालकी पर वह अपने घर तो पहुचा दिये गये, पर उस दिन के बाद जब तक जीवित रहे, विक्षिप्त-से बने रहे *। क्लाइव की प्रशसा के पुल बांधने वाले अगरेज इतिहास-कारो को भी स्वीकार करना पडा है कि उसने अमीचन्द के साथ जो कुछ किया उससे उसका नाम सदा के लिए कलकित हो गया।

२ जुलाई को क्लाइव ने मद्रास की सेलेक्ट कमिटी को एक पत्र लिखा जिसमें मीर जाफर से होने वाली सधि से ले कर सिरा-जुद्दौला के मारे जाने तक सारी घटनाओं का उल्लेख था और यह भी सूचना थी कि "अब तक नवाब के जासूस कटक होकर पत्र भेजने में विघ्न-बाधा पहुचाते रहे है, पर अब यह कठिनाई हल हो जायगी। इस पत्र को आप तक पहुँचवाने का भार जगत्सेठ अपने ऊपर ले चुके है।"

---

* फिर भी ७ अगस्त १७५७ को क्लाइव मुर्शिदाबाद से लदन की सेलेक्ट कमिटी को लिखता है—"अमीचद ने वाट्स से हिलमिल कर अच्छा काम किया था, पर बाद मुझे इस बात का पता चला कि वह बडा ही स्वार्थी और कुचक्री था। इसलिए मैंने उसे तीर्थयात्रा कर आने की सलाह दी। अगर नियत्रण में रखा जा सके तो वह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उसकी बिलकुल उपेक्षा करना ठीक नही"।

१ जुलाई को ही नावो पर रुपयो का लदाव शुरू हो गया। २ जुलाई को क्लाइव ने फोर्ट विलियम की सेलेक्ट कमिटी को लिखा कि 'दो दिन मे यहा से ७५ नावे रवाना होने वाली है। प्रत्येक नाव पर एक लाख रुपये एक बडे सदूक मे होगे।' इस ७५ लाख* का ब्यौरा उसने यह भेजा था —

कपनी को ३३$\frac{1}{3}$ लाख

फौजो को और कौसिल के सदस्यो को १६$\frac{1}{3}$ लाख

गोरे व्यापारियो को १६$\frac{1}{3}$ लाख

'काले' व्यापारियो को ९ लाख

जोड ७५ लाख

कलकत्ते जाने वाले रुपये ७५ सदूको की जगह ७०० पेटियो में भरे गये और इनके लिए ७५ की जगह १०० नावो का बेडा बनाया गया। ७ जुलाई तक ये रुपये कलकत्ते पहुच भी चुके थे। नदिया (नवद्वीप) तक पहुचाने के लिए इनके साथ मुर्शिदाबाद से सिपाही भेजे गये थे। आगे की मजिल कंपनी की नौ-सेना की देख-रेख मे तै हुई। "नावो पर झडे फहरा रहे थे, विजय-दुदुभी

---

* मीर जाफर के साथ जो सधि और समझौता हुआ था उसके अनुसार अगरेजो को सब मिला कर २ करोड २९ लाख मिलने वाले थे। इसका आधा हुआ प्राय १ करोड १४ लाख और जगत्सेठ के निर्णय के अनुसार इसका दो-तिहाई (नकद) हुआ प्राय. ७५ लाख।

† पलासी के युद्ध में क्लाइव के साथ प्राय. १००० गोरे और २००० 'काले' सैनिक थे जिनमें प्राय २२ मारे गये थे और ५० घायल हुए थे। पर मीर जाफर से मिलने वाली रकम का एक हिस्सा उन सैनिको को भी मिला जो कलकत्ते में ही रह गये थे।

बज रही थी।" क्लाइव के मित्र और समसामयिक इतिहासकार ओर्मी ने लिखा है कि इससे पहले इतनी बडी रकम अगरेजो को कही हाथ न लगी थी।

समाचारपत्र न होते हुए भी, पलासी की लडाई का नतीजा २५ जून को ही कलकत्ते के अगरेज नागरिको को मालूम हो चुका था, और यह भी मालूम हो चुका था कि सधिपत्र के अनुसार कपनी को, उसके अधिकारियो को, सैनिको को और व्यापारियो को नये नवाब से क्या मिलने वाला था। यह समाचार मिलते ही अगरेज जाति का कलेजा बल्लियो उछलने लगा था, आनन्द के अतिरेक से लोग खुले आम नाचने-गाने लगे थे, बूढो मे भी बचपन-सा और परहेजगारो में भी बदमस्ती-सी आ गई थी। जब लूट के धन के साथ नावें कलकत्ते पहुची और सुख-स्वप्न सत्य में परिणत हो गया तब तो वहा लोगो के हर्ष का पारावार न रहा और वे आपे से और भी बाहर हो गये। जो रकम सोना-चादी और जवाहरात के रूप मे मिलने वाली थी, ३० अगस्त तक वह भी प्राय मिल गई और अगरेजो का हिसाब चुकता होने मे कुल ५८४,९०५ रुपये बाकी रह गये। ओर्मी लिखता है कि दुर्लभराम का कमीशन भी उसे मिल गया।

पर मीर जाफर सधिपत्र के अनुसार कपनी को जो कुछ देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध था, उसके अलावा भी उसे क्लाइव को और दूसरो को बहुत कुछ देना पडा। इस सम्बन्ध मे मतभेद है कि किसको कितना मिला। पर क्लाइव के अपने बयान के आधार पर ही हम यह कह सकते है कि पुरस्कार के रूप में उसको १६ लाख, वाट्स को ८ लाख और मेजर किलपैट्रिक को ३ लाख

रुपये मिले। कौंसिल के सदस्य, सेनापति या सेना-नायक की हैसियत से उन्होंने जो जो कुछ पाया वह इसके अतिरिक्त था। कंपनी के प्रमुख अधिकारियो में सब मिला कर किसको कितना मिला इसकी तफसील यह थी —

नाम	रुपये
क्लाइव	२,०८०,०००
वाट्स	१,०४०,०००
किलपैट्रिक	५४०,०००
ड्रेक (क)	२८०,०००
मैनिंगहम (ख)	२४०,०००
बेचर	२४०,०००
वाल्श (ग)	५००,०००
स्क्राफ्टन	२००,०००
लुशिंग्टन (घ)	५०,०००
ग्रांट	१००,०००
रिचार्ड पर्क्स	१००,०००
विलियम फ्रैंकलैंड	१००,०००
विलियम मैकेट	१००,०००
पीटर ऐमियट	१००,०००
टाम्स बोडम	१००,०००
	५,७७०,०२० रुपये

(क) यह उस समय गवर्नर था।

(ख) अगरेजो के फोर्ट विलियम छोड़ कर भाग जाने पर, उनकी विपत्ति का समाचार इसी ने मद्रास पहुँचाया था। अब इसे ऊँचा पद भी मिला।

(ग) क्लाइव का सेक्रेटरी।

(घ) जाली संधिपत्र पर वाट्स के दस्तखत बनाने वाला।

वाट्सन नौ-सेनापति तो था ही, सेलेक्ट कमेटी के सदस्य की हैसियत से भी कुछ पाने का हकदार था, पर उसे अपने हिस्से के लिए और सदस्यो से लडना-झगडना पडा। मीर जाफर ने उसके लिए उपहार के रूप में एक हाथी, दो घोडे, खिलअत और विविध रत्नो से जटित कलगी आदि भेज कर उसे विशेष रूप से सम्मानित किया, जिस पर वाट्सन* ने उसे धन्यवाद देते हुए लिखा कि आपने अपनी उदारता से मेरी जाति का जो उपकार किया है उसके लिए वह चिर-कृतज्ञ रहेगी। वाट्सन ने नकली सधिपत्र पर स्वय तो दस्तखत नही किये थे, पर सब कुछ जानते हुए भी उसने क्लाइव की जालसाजी पर कोई आपत्ति नही की थी।

कुछ समय बाद जब क्लाइव को मीर जाफर से पुरस्कार लेने के लिए पार्लमेन्ट की एक कमिटी के सामने कैफियत देनी पडी तब उसने अपनी सफाई में यही कहा "कि उस समय मै चाहता तो नवाब से और दूसरो से कई लाख-करोड ले सकता था और कंपनी के सचालक मुझसे वह धन छीन भी न सकते थे। मै हैरान हूँ तो इस बात पर कि जहा मै इतना अधिक ले सकता था वहां मैने इतना कम क्यो लिया।"

दुर्लभराम ने जो धन बताया था उसके अलावा भी कुछ धन खजाने में नहीं, तो और कही जरूर था। कुछ तो मीर जाफर और मीरन दबा कर बैठ गये थे, कुछ राजकोष विभाग के अधिकारी हड़प चुके थे। इस सम्बन्ध में "मुताखरीन" के अनुवादक नें जो बातें लिखी हैं वे बिलकुल निराधार नहीं जान पडती। यह फरासीसी होते हुए भी मुसलमान बन चुका था और फारसी-

---

* १६ अगस्त को वाट्सन की मृत्यु हो गई।

अगरेजी का ज्ञाता होने के कारण एक ही साल बाद क्लाइव का दुभाषिया* हो गया था। सुनी सुनाई बातो के आधार पर वह लिखता है —

"जिस समय वाल्श खजाने मे गया उस समय उसके साथ वाट्स, लुशिग्टन, दीवान रामचन्द और मुशी लवकिशन भी थे। खजाने में १ करोड़ ७६ लाख रुपये चादी के सिक्को में और ३२ लाख रुपये अशर्फियो मे थे। इनके अलावा दो पेटियो मे सोने की सिल्लियां थी, चार मे रत्नजटित आभूषण थे और दो मे कुछ छुट्टे नगीने थे। पर यह खजाना बाहर वाला था। उसके अलावा एक खजाना अत पुर में भी था, जिसमें कहा जाता था कि आठ करोड रुपये थे। यह रकम मीर जाफर, अमीर बेग खां, रामचन्द और लवकिशन (नवकृष्ण) ने आपस मे बाट ली थी। रामचन्द और लवकिशन को जो कुछ दिया गया वह उनका मुह सी देने के लिए। जनश्रुति यह थी कि क्लाइव को जो हिस्सा मिलता उस पर इन दोनो ने हाथ मार लिया। १७५८ मे रामचन्द को कुल साठ रुपये माहवार मिलते थे। पर दस बरस बाद वही नकद और हुण्डियो को मिला कर ७२ लाख रुपये छोड़ कर मरा। इसके अलावा कुछ सपत्ति भी थी। सोने के ८० और चादी के ३२० बडे कलश थे। १८ लाख रुपये की जमीन थी और २० लाख रुपये के जवाहरात। सब मिला कर उसकी हैसियत सवा करोड रुपये की बताई गई थी। यह सच है कि रामचन्द बाद को वान्सीटार्ट का दीवान हुआ था, पर वान्सीटार्ट स्वय नौ-दस लाख रुपये से ज्यादा न कमा सका था। वारेन हेस्टिङ्गस वान्सीटार्ट का

* क्लाइव, हेस्टिग्स आदि का खुशामदी टट्टू भी।

सहकारी था, पर उसे भी इगलैण्ड मे गुजर-बसर करने के लिए दस हजार रुपये आगा वेद्रास (खोजा पिट्रस) से उधार लेने पडे थे। यह कर्ज उसने पदोन्नति होने और मद्रास लौटने पर दस बरस बाद चुकाया। जहा वान्सीटार्ट और हेस्टिग्स सर्व-अधिकार-सपन्न होते हुए भी इतना कम कमा सके थे वहा रामचन्द के पास सवा करोड की धन-सपत्ति कहा से आ गई थी? वास्तव मे यह क्लाइव का हिस्सा था जिसे उसने अपनी जेब मे डाल लिया था। लवकिशन भी क्लाइव के समय मे रामचन्द की ही तरह साठ रुपये माहवार पर नौकरी करता था, पर अपनी माता के श्राद्ध पर उसने नौ लाख रुपये खर्च किये थे। मीर जाफर की बीबी मुन्नी बेगम के पास तो आज भी करोडो रुपये है। यह रकम भी उसे उसी अवसर पर मिली होगी।"

मुर्शिदाबाद का खजाना खाली हो जाने के दो पहलू थे। जो धन मीर जाफर और मुन्नी बेगम या रामचन्द जैसे कारिन्दे दबा कर बैठ गये वह आखिर इसी देश मे रहने वाला था, पर जो धन क्लाइव, वाट्स या दूसरे अगरेज उठा कर कलकत्ते ले गये वह इस देश मे न रह कर सात समुद्र पार पहुचने वाला और बगाल को कगाल कर इगलैण्ड की सुख-समृद्धि बढाने वाला था। १७५७ से वह घटनाचक्र[६] चलने लगा जिसका नाम एक ओर तो "बगाल की लूट" है और दूसरी ओर इगलैण्ड की औद्योगिक क्रांति को सहायता। पर वह औद्योगिक क्राति कुछ साल बाद होने वाली थी। बगाल में जो क्राति अभी अभी हो चुकी थी उसका यह फल तो लोगो ने तत्काल ही देख लिया कि कम से कम डेढ करोड की धन-सपत्ति अगरेज मुर्शिदाबाद से दिन दहाड़े

उठा कर ले गये और जो दरवार मे नाक रगड़ते रहते थे वे ही नवाव को नाच नचाने वाले वन गये।

कहने को क्लाइव ने दरवार मे कह दिया था कि अंगरेज तो व्यापारी है और व्यापार ही उनका एकमात्र उद्देश है, पर यथार्थ वात और ही थी।

मुगल राजसत्ता जरा-जीर्ण हो कर कब्र मे पाव लटकाये वैठी थी, प्रान्तीय शासक प्राय स्वतत्र हो चुके थे। पर इस स्वतंत्रता के पीछे कोई ठोस एकता न थी। वैर-फूट वनी ही रहती—आपस में लडाई-झगड़े होते ही रहते। विदेशियो ने देखा कि अपना मतलव निकालने का यह अच्छा सयोग है और सहायक के रूप मे किसी न किसी की ओर होकर स्थिति से पूरा लाभ उठाने लगे।

इस नये अध्याय का आरभ दक्खिन मे हुआ जहा फरासीसी और अगरेज प्रतिद्वद्वी थे। वहा ड्यूप्ले के नेतृत्व मे विशेप सफलता फरासीसियो ने ही प्राप्त की, पर आड़कट मे और अन्यत्र अगरेजो ने दिखा दिया कि इस प्रतिद्वन्द्विता मे वे भी महत्वाकाक्षी थे और फरासीसियो के लिए मैदान साफ छोड देना उन्हे स्वीकार न हो सकता था।

वगाल जाने से पहले क्लाइव मद्रास प्रान्त के अखाडे में लड़ाई के साथ कूटनीति के भी दाँव-पेच सीख चुका था। ड्यूप्ले कितनी ही वातो का आविष्कारक कहा जा सकता था—जिनमें एक यह थी कि देशी सिपाहियो को विदेशी ढंग से शिक्षित और सुनज्जित कर उन्ही के उपयोग से इस देश को आसानी से गुलाम वनाया जा सकता था। उसकी नीति–रीति से चल कर उसके

देशवासियो ने दक्खिन मे कुछ समय के लिए अपना सिक्का जमा लिया। पर गुरु गुड और चेला चीनी—इस कहावत के अनुसार अगरेज उनसे भी बाजी मार ले गये और एक दिन देशमात्र के भाग्य-विधाता बन बैठे। पलासी के युद्ध के बाद अगरेजो के लिये व्यापार से ही सतुष्ट रहना असभव था। क्लाइव ने जो कुछ कहा था वह उसके मन की बात से सर्वथा भिन्न था।

जब १७५० मे निजामुल्मुल्क का दूसरा बेटा नासिर जग मैदान में मारा गया तब उसका माल-खजाना लूट कर फरासीसी पुद्दुचेरी ले गये। सोना-चादी और जवाहरात के अलावा उन्हे एक करोड नकद हाथ लगा। पुद्दुचेरी में "रुपये उछलने लगे"। ड्यूप्ले को नासिर जग के भतीजे मुजफ्फर जंग ने कृष्णा नदी के दक्षिण के इलाके में अपना नायब नियुक्त किया। फ्रेंच कपनी को उससे जो जागीर मिली उसकी आय प्राय साढे तीन लाख रुपये थी। पर मुजफ्फर जग को इतना भी विश्वास न था कि वह सही सलामत हैदराबाद पहुच सकेगा। इसलिए उसने फ्रेंच सेनापति बुशी को साथ चलने को कहा और इसके लिए उसे चार लाख रुपये इनाम के तौर पर दिये, हालाकि वह रास्ते में ही मार डाला गया। इसके बाद फरासीसियो ने नासिर जग के भाई सलाबत जग को गद्दी पर बिठाया और उससे प्राय ३१ लाख की आय के कई इलाके हासिल किये। सब मिला कर उनकी आय अब ४२ लाख के करीब हो चली। दक्षिण में फरासीसी जो कुछ कर चुके थे वह पथ-प्रदर्शन-मात्र था। अगरेज उस पथ पर चलते हुए और भी दूर पहुचने वाले थे।

जैसे सलाबत जग फरासीसियो के हाथ मे कठपुतली बन चुका

था, वैसे ही मीर जाफर को अंगरेजों के हाथ मे बनना पडा। सलावत जग डूप्ले को "चचा गवर्नर बहादुर" कहा करता था। मीर जाफर क्लाइव को "नूरचश्म" और "बेटा" कहने लगा। पर आलोचक उसे "क्लाइव का गधा" कहा करते थे। उस पर यह व्यंग्यबाण पहले पहल उसी के मुहफट मुसाहब मिर्जा शमशेरुद्दीन ने छोडा था। दौरे पर कही मीर जाफर और क्लाइव के पडाव आस ही पास थे। उस मुसाहब के नौकरो से क्लाइव के नौकरो की कहा सुनी हो गई, जिस पर क्लाइव ने मीर जाफर से उसकी शिकायत की। मीर जाफर ने उसे बुलवा कर कहा कि मिर्जा, तुम्हे मालूम भी है कि कर्नल क्लाइव कौन है और खुदा ने उन्हे कहा बैठा रखा है ? मिर्जा ने जवाब दिया कि "गरीब निवाज ! मै तो रोज सुबह उठ कर क्लाइव साहब के गधे को तीन बार सलाम करता हूँ, फिर मुझसे यह कब हो सकता है कि मै सवार की ही शान के खिलाफ कुछ कर बैठू ?"

गद्दी पा जाने पर भी मीर जाफर निश्चिन्त न हो सका। अंगरेज उसे सुख-शान्तिपूर्वक राज्य करने देने वाले न थे। उनके लोभ और उनकी भेदनीति के कारण नित नयी समस्याए खडी होने लगी और मीर जाफर की अयोग्यता उसकी विवशता को अधिकाधिक बढाने लगी। जिन लोगो ने षड्यंत्र मे एक होकर भाग लिया था उनकी एकता उसके सफल होते ही छू-मंतर हो गई और किसी का किसी के प्रति सद्भाव न रहा।

मीर जाफर के अपने स्वभाव में ही कुछ ऐसा परिवर्तन हुआ कि दरबार के दायरे के भीतर भी वह लोकप्रिय न रह सका। इसका विशेष कारण यह हुआ कि जो कभी उदार समझा जाता

था वह अब कृपण बन गया। जो सैनिक पुरस्कार पाने की आशा करते थे उन्हे वेतन मिलना भी कठिन हो गया । किसी मित्र के आक्षेप करने पर, मीर जाफर ने अपनी सफाई में यही कहा "कि जो नदी किसी और की थी वह अब मेरी अपनी हो चली है। पहले जहा मै खुले हाथो पानी उलीच दिया करता था वहां अब किसी दोस्त को भी कुछ देते मेरी छाती फटने लगती है।" पुराने अधिकारियो मे अब कोई भी मीर जाफर का विश्वासपात्र न रहा। पारस्परिक अविश्वास, आशका, सदेह—यही उत्तरोत्तर बढने लगे ।

मीर जाफर को क्लाइव का हर बात मे हस्तक्षेप करना अखरता था, पर उसमें इतना बल नही था कि वह दबी जबान से भी इसका प्रतिवाद कर सकता । मीरन अपने पिता को निरन्तर कोसता और उभाडने की चेष्टा करता रहता, पर "क्लाइव के गधे" से कभी दुलत्ती तो क्या, रेकना भी न बन पडा।

जगत्सेठ का स्वार्थ कपनी के स्वार्थ से टकराये बिना कब रह सकता था? फिर महताबराय ने उसके बलविस्तार में सहयोग क्यो दिया ? उत्तर में दो बातें कही जा सकती है। मनुष्य जो कुछ करता है सदा स्वार्थरक्षा की ही दृष्टि से नही करता। जगत्सेठ के लिए आत्म-सम्मान भी कोई चीज थी और वह सिराजुद्दौला के रहते सुरक्षित नही रह सकता था। सिराजुद्दौला को हटाने के लिए कपनी से सहयोग लेना और उस सहायता का मूल्य चुकाना आवश्यक था। पर यह सब होते हुए भी जगत्सेठ के लिए भविष्य की बातें जान लेना असम्भव था। षड्यत्र में भाग लेने वालो में कौन जान सकता था कि पलासी के मैदान मे ब्रिटिश

राज्य की नीव पडने जा रही थी और इसके फलस्वरूप एक दिन जगत्सेठ का अपना भी सर्वग्रास होने जा रहा था।

कपनी ने पहले सिराजुद्दौला और फिर मीर जाफर पर दबाव डाल कर कलकत्ते मे अपनी टकसाल खोल ली । पर इससे महतावराय को अभी कुछ बरसो तक विशेष हानि होने वाली न थी, इसलिए यह उनके स्वार्थ पर कोई प्रबल आघात नही कहा जा सकता था। कपनी को बगाल–बिहार की दीवानी मिलने में भी देर थी । पर महतावराय का माथा ठनकाने वाली कार्रवाइया कपनी की ओर से १७५७ मे ही शुरू हो गई । पहले जगत्सेठ सरकार को जो कुछ कर्ज देते उसे जमीदारो के नाम परवाने लिखा कर उनसे वसूल कर लेते। अब परवाने जारी होने लगे तो जगत्सेठ नही, ईस्ट इडिया कपनी के हक मे । क्लाइव ने इस बात पर जोर देना शुरू किया कि नवाब को जो कुछ देना है उसे कपनी को वर्दवान, नदिया और हुगली के जमीदारो से दिला दे । इसके लिए उसका प्रस्ताव था कि नवाब उनके नाम परवाने भेज दे और वे मुचलके लिख कर यह जिम्मेदारी अपने ऊपर लें। जगत्सेठ को इस पर आपत्ति हुई, विशेष कर इस कारण कि उन जमीदारो से उन्हें स्वय बहुत कुछ पाना था। इस पर क्लाइव ने धमकी दी कि अगर आपको हमारा प्रस्ताव स्वीकार न हुआ तो अगरेज आपके दोस्त न रह सकेंगे । जगत्सेठ ने फिर चू भी न की ।

राज्यक्रान्ति का एक फल यह भी हुआ कि अपने व्यापार के लिए कपनी को पहले की तरह रुपया उधार लेने की कोई आवश्यकता न रही। फोर्ट विलियम की सेलेक्ट कमिटी ने अपने सचालको को लिखा था —

"कपनी को यहा माल खरीदने मे जितना रुपया लगाना पडता है उससे जगत्सेठ के निर्णय के अनुसार ही रुपया मिले तो यह कही अधिक होगा। हम यह विज्ञप्ति निकालने जा रहे है कि कपनी के जिम्मे जिसका जो कुछ पावना हो वह १ अक्टूबर से पहले कागज लौटा कर ले ले , अगर न लेगा तो हम उस तारीख के बाद सूद के देनदार न रहेगे । इससे यह लाभ होगा कि कपनी पर इस समय जो बहुत ही भारी बोझ है वह हट जायगा। हमे आशा है कि आपको इस समाचार से प्रसन्नता होगी। हम यह बता देना चाहते है कि जगत्सेठ के निर्णय के अनुसार कपनी को तीन साल तक हर साल १६३ लाख रुपये मिलते रहेंगे। फिर जो माल आप वहा से भेजते जायगे उसकी बिक्री और हुडी-पुरजो से भी अतिरिक्त आय होती रहेगी । हमारा खयाल है कि तीन साल तक तो इस सूबे के माल का दाम चुकाने के लिए आपको चादी भेजने की ज़रूरत न पडेगी।"

जगत्सेठ ने अपने निर्णय-द्वारा कपनी को जो कुछ दिलाया। वह प्रकारान्तर से स्वय उन्हें हानि पहुचाने वाला था।

गद्दी पर बैठने के प्राय पाच ही महीने बाद मीर जाफर ने पूर्निया में विद्रोह का दमन करने के बहाने बिहार की यात्रा की: यह बहाना इसलिए था कि इस यात्रा का वास्तविक उद्देश पटने पहुच कर राजा रामनारायण को पदच्युत करना था।

पर दुर्लभराम की राजभक्ति के सबध मे भी उसे सदेह होने लगा था। उस पर एक अभियोग यह था कि वह सिराजुद्दौला के छोटे भाई मिर्जा मेहदी के पक्ष मे होकर उसे गद्दी दिलाने की फिक्र में था । वास्तव में यह नौजवान कैदखाने में सिर से कफन

वाधे हुए सड रहा था। मीर जाफर के प्रस्थान करते ही मीरन ने, वाप के हुक्म से, दो तख्तो के बीच दबवा कर, इसे ससार से विदा करा दिया।

पूर्निया में मोहनलाल को कैद कर हाजिर अली अपनी हुकूमत चलाने लगा था। इसका दीवान अचल या अच्छल सिंह था। पर मीर जाफर ने अपनी ओर से पूर्निया का शासक खादिम हुसैन खा को नियुक्त किया और इसे हाजिर अली खा को भगाते देर न लगी। यह मीर जाफर को 'मामू' कहा करता था, यद्यपि यह उसकी वहन का सौतेला बेटा था और 'मामा-भाजा' के घनिष्ठ सम्बन्ध का आधार वहुत ही घृणित वताया जाता था। इससे मीरन की शत्रुता होने ही वाली थी।

पूर्निया से निश्चिन्त होकर मीर जाफर राजमहल से पटने की ओर वढा। क्लाइव भी उसके साथ था। राजा रामनारायण को वडी घवराहट हुई। उसकी ओर से जगत्सेठ का "दोस्त और गुमाश्ता" गोविन्दमल क्लाइव के पास जाने-आने लगा। उससे कहा कि जब तक आप अभय-वचन नही दे देते तब तक रामनारायण यहां आने का साहस नही कर सकते। क्लाइव से आश्वासन मिल जाने पर, गोविन्दमल मीर जाफर से मिला और उससे भी वह वचन ले लिया। फिर उसने मीर जाफर के मुशी से वातचीत की और उसे रामनारायण के अनुकूल कर लिया। मुशी ने मीर जाफर से रामनारायण को पत्र-द्वारा अभय-दान दे देने की स्वीकृति ले ली। वास्तव मे उस समय मीर जाफर अपनी दिनचर्य्या के अनुसार भग की तरंग में था और मुशी ने उसे पूरे खत का मजमून पढ कर सुनाया भी नही। गोविन्दमल खत लिखा कर क्लाइव के पास गया।

घबराओ मत । मै नवाव और रामनारायण दोनो को पत्र लिख चुका हूँ और मै पूरी फौज ले कर रवाना होने ही वाला हूँ।" पटने पहुचने से पहले, क्लाइव मीर जाफर से पच्चीस लाख वसूल कर चुका था और उससे और दस लाख देने का वादा भी करा चुका था। १८ फरवरी १७५८ को क्लाइव ने लिखा कि "सारे उपद्रवो से नवाव को शान्ति मिल गई और वह सुरक्षित हो गया । हमारा यह वडा लाभ हुआ है कि राज्य में जो सव से अधिक प्रभावशाली है वे हमारे मित्र और सहायक वन चुके है। राजाराम, दुर्लभराम और रामनारायण का हमने जिस तरह बारी बारी से साथ दिया है उससे लोगो का हम पर भरोसा हो चला है और सव हमारी मैत्री— हमारे सद्भाव के इच्छुक तथा प्रार्थी हो रहे है।"

इन बातो से एक नतीजा यह निकाला गया है कि जहा सिराजुद्दौला हिन्दुओ से द्वेप रखने वाला न था, वहां मीर जाफर का दृष्टिकोण साम्प्रदायिक था और वह हिन्दुओ पर विश्वास करने वाला न था। पर यहा यह ध्यान मे रखने की वात है कि हिन्दुओ और मुसलमानो के वीच अगरेज आ गये थे और उनका हित इसी में था कि वगाल-विहार मे साम्प्रदायिक एकता न रहने पावे। यह भी ध्यान में रखने की वात है कि मीर जाफर के विरुद्ध लडने वाले कामगार खॉ, दिलेर खाँ, कादिर दाद खाँ, गुलाम हुसैन खाँ आदि मुसलमान थे और मीरन का अपना दीवान राजवल्लभ हिन्दू था।

जव मई सन् १७५८ मे क्लाइव मुर्शिदावाद गया तव दुर्लभराम को भी अपने साथ लेता गया । इस पर मीरन को घोर आपत्ति हुई और उसने नगर का परित्याग कर विद्रोह भी कर दिया।

बाजार मे हडताल मनाई जाने लगी और सेठो ने भी काम-काज बन्द कर दिया। पर यह गडबडी दो ही एक दिन रही और अन्त में मीरन को क्लाइव से माफी मागनी पडी। हा, यह तै हुआ कि दुर्लभराम को दीवान का पद फिर न दिया जाय।

महीनो (बरसो ?) से वेतन न चुकने के कारण सैनिक अधीर हो गये थे और अगर अगरेज न होते तो वे बगावत किये विना न रहते। इसके लिए दोषी दुर्लभराम ही वताया गया। इधर उसके और जगत्सेठ के भी बीच मनोमालिन्य हो चला। कारण यह कि नन्दकुमार अब हुगली से मुर्शिदाबाद पहुच गया था और स्वार्थपरता से दुर्लभराम के विरुद्ध प्रचार करने लगा था। नवाब से जाकर कहता कि अगर दुर्लभराम अपने कर्तव्य का पालन करता तो आपको अर्थाभाव के कारण सकटापन्न होना न पडता। जगत्सेठ से जा कर कहता कि दुर्लभराम अपनी जगह बना रहा तो यह विश्वास रखिए कि आप पर आच आये विना न रहेगी—नवाब चाहे जैसा होगा आपसे रुपया लेकर ही रहेगा। अगस्त में एक ओर मीर जाफर जगत्सेठ को साथ लेकर कलकत्ते के लिए रवाना हुआ, दूसरी ओर सरकार के कहने या इशारे पर कुछ लोगो ने दुर्लभराम का घर घेर कर उस पर वार करना चाहा। अगर स्क्राफटन उसे कलकत्ते न भिजवा देता तो उसकी जान न बचती।

जगत्सेठ मीर जाफर के लिए दिल्ली से फरमान मगा देने का वादा कर चुके थे। पर कुछ महीनो तक वह फरमान न आ सका। दिल्ली मे मोलचाल होती रही। जनवरी १७५८ में खबर मिली कि फरमान जारी हो चुका था और मीर जाफर, मीरन* आदि को

* मीरन का खिताब था नवाब नसीरुल्मुल्क सदीक अली खा शहामत जग।

खिताव भी मिल चुके थे। जगत्सेठ ने क्लाइव को इसकी सूचना भेजते हुए लिखा कि आपको भी उमरा का दर्जा मिला है और उसके साथ वडा खिताव भी। पर क्लाइव को इतने से ही सतोष न हो सकता था। एक साल वाद उसने जगत्सेठ को लिखा —

"जव आपकी सिफारिश पर मुझे जब्दितुल मुल्क नजीरुद्दौला के खिताव के साथ ६,००० का मनसव मिला था तव मुझे आशा हुई थी कि नवाव से मुझे अपने दर्जे के लायक कोई जागीर भी मिलेगी। पर अवतक मुझे उनकी ओर से इस सम्वन्ध मे कोई सूचना नही मिली है। आप उनके घनिष्ठ मित्र है, इस लिए मै आपको कष्ट दे रहा हूँ कि आप उन्हे सनद की याद दिला कर मुझे कोई अच्छी जागीर दिला दें।"

इसका क्लाइव को सेठो से फरवरी १७५९ मे यह उत्तर मिला—

"आपके कृपापत्र मिले। हमे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपका स्वास्थ्य अच्छा है और हम इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देते है। आपके आज्ञानुसार हमने नवाव से जागीर का प्रस्ताव किया। उन्होने कहा कि वगाल मे तो जागीर देना सरकार ने वन्द कर दिया है, उडीसा में इस लायक जमीन ही नही। पर आप चाहें तो आप को विहार मे जागीर मिल सकती है। आपका जैसा विचार हो सूचित करें।"

पर कुछ समय वाद जगत्सेठ की सिफारिश पर मीर जाफर ने वगाल मे ही जागीर देना मजूर कर लिया।

कंपनी को कलकत्ते के पास जिन गावो की जमीदारी मिल चुकी थी उनका खिराज सरकार को देना पड़ता था। जगत्सेठ ने यह व्यवस्था कराई कि उस रकम का अधिकारी क्लाइव समझा जाय।

४ जून १७५९ को सेठो की ओर से क्लाइव को लिखा गया कि "हमारे कहने पर नवाब ने आपको इसी प्रान्त के भीतर जागीर देना स्वीकार कर लिया है। आप जब फिर यहा आयेंगे तब आपको इसका पूरा ब्योरा मिलेगा। आप अपने स्वास्थ्य का समाचार भेज कर हमे कृतार्थ करेंगे।"

जब क्लाइव कुछ दिन बाद मुर्शिदाबाद लौटा तब उसकी अगवानी के लिए मीर जाफर, जगत्सेठ और कुछ दरबारी शहर से दो मील आगे गये और जगत्सेठ ने क्लाइव को जागीर-सम्बन्धी खरीता समर्पित किया।

अपने जिस पत्रद्वारा जगत्सेठ ने क्लाइव को जागीर मिल जाने की सूचना दी थी उसी में यह भी लिखा था कि हम सपरिवार तीर्थयात्रा करने बाहर जा रहे है और छ सप्ताह बाद मुर्शिदाबाद लौटेंगे। उनके प्रस्थान से पहले ही शाहजादा अली गौहर बिहार-बगाल पर आधिपत्य जमाने के उद्देश से कर्म्मनाशा नदी को पार कर चुका था। राजा रामनारायण पर यह आरोप पहले ही लग चुका था कि वह अवध के नवाब से मिल कर कोई षड्यन्त्र कर रहा था। अब यह कहा जाने लगा कि उस षड्यन्त्र मे जगत्सेठ भी शामिल थे और उन्होने शाहजादे की आर्थिक सहायता की थी। जब फरवरी १७५९ मे महताबराय और स्वरूपचन्द पारसनाथ तीर्थ[७] जाने लगे तब उन्हे छुट्टी के अलावा अपने साथ दो हजार सिपाही ले जाने की इजाजत मिल जाने पर भी, नवाब ने आज्ञा दी कि न तो वे खुद जायँ और न इन सिपाहियो को ही साथ ले जायँ। पर किसी ने इस आदेश पर ध्यान नही दिया। सिपाहियो को सेठो की ओर से यह आश्वासन मिल चुका था कि सरकार के

जिम्मे उनका जो कुछ वेतन बाकी था उसे वह दे देंगे और ऐसी हालत मे उन्होने आदेश सुना भी तो उसे अनसुना कर दिया ।
तीर्थ-यात्रा कर जून तक जगत्सेठ मुर्शिदावाद लौट आये और उनके लौटने पर ही नवाव से क्लाइव को वह जागीर मिली। इस वीच में शाहजादा विहार पर आक्रमण कर चुका था, जिसकी पृष्ठभूमि यह थी —

१७४८ मे मुहम्मद शाह रगीले के मरने पर उसका वेटा अहमद शाह दिल्ली के तख्त पर वैठा था। यह १७५५ मे तख्त से उतार दिया गया और अधा कर दिया गया। उसके वाद जहांदार शाह का दूसरा वेटा अजीजुद्दीन, आलमगीर सानी के नाम से तख्त पर वैठा। इसकी १७५९ के अन्त मे हत्या हुई और कामवख्श का पोता शाहजहा तृतीय* सम्राट् घोपित किया गया। पर एक वर्ष के भीतर ही यह गद्दी से हटा दिया गया। १७६१ में पानीपत की तीसरी लडाई हुई और मराठो को परास्त कर कावुल लौटने से पहले अहमद शाह अवदाली, आलमगीर सानी के लड़के अली गौहर को शाहआलम सानी† के नाम से सम्राट् मनोनीत कर गया।

प्रभुता के लिहाज से, दिल्ली अपने अतीत की छाया-मात्र रह गई थी। नर्मदा के दक्खिन मे ही नही, उत्तर मे भी प्रान्तीय शासक प्राय· स्वतत्र हो चले थे । दिल्ली की जो कुछ चलती थी

---

* शाहजहा सानी (या द्वितीय) रफीउद्दौला की उपाधि थी।

† १७८८ में एक अफगान ने इसे अधा कर दिया । इसका वेटा अकवर सानी था जो १८०९ से १८३७ तक सम्राट् रहा, और पोता वहादुर शाह सानी जिसे सन् १८५७ के विद्रोह के वाद निर्वासित होना पडा।

वह उसी के इर्द-गिर्द के इलाके मे—जिसमे पूरा दोआबा भी शामिल नही था । राजपूत तो तटस्थ रहने लगे थे, पर पडोसी जाट दिल्ली की गलियो मे भी पहुच जाते और दरबार की दलबन्दी से जो लाभ उठा सकते उठा लेते । रुहेलखड में रुहेले और दोआबा के दक्षिण भागमे बगश अफगान प्रभावशाली हो चले थे। रुहेलो की राजधानी मुरादाबाद थी और बगश अफगानो की फर्रुखाबाद । अवध का सूबेदार पहले सआदत खा था। १७३९ मे उसका भाजा और दामाद अबुल मसूर खा, सफदर जग के नाम से, उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह शीआ था, इसलिए भी इसकी सुन्नी अफगान पडोसियो से नही बनती थी। मराठो की सहायता से फर्रुखाबाद को तहस-नहस कर सफदर जग ने बगश अफगानो का आधा राज्य उन्हे दे दिया। यमुना से उत्तर मराठो ने इससे पहले कोई इलाका हासिल नही किया था। सफदरजग ने इलाहाबाद-प्रान्त को भी अवध मे मिला लिया। १७५४ मे उसकी मृत्यु होने पर उसका बेटा शुजाउद्दौला अवध का नवाब हुआ। शाहजादा अली गौहर (भावी शाहआलम सानी) और शुजाउद्दौला के नाम हमें आगे भी मिलने वाले है ।

इस देश पर, पश्चिमोत्तर दिशा से कई आक्रमण इधर अहमद शाह अबदाली या दुर्रानी नामक अफगान-द्वारा हुए। पहला १७४८ मे, दूसरा १७४९ मे, तीसरा १७५१ के अन्त मे। तीसरे आक्रमण के फलस्वरूप दुर्रानी को पजाब और मुलतान मिल गये। चौथा आक्रमण १७५६ में हुआ और १७५७ की जनवरी में दुर्रानी ने दिल्ली पहुच कर शहर को लूटपाट से और भी खोखला कर दिया। इस यात्रा में उसने मथुरा जाकर वहा बहुसख्यक "निरस्त्र हिन्दू

यात्रियो का कत्ल कराके इस्लाम के प्रति अपनी अनुरक्ति-भक्ति प्रदर्शित की *।" इसके वाद उसकी चढाई १७५९ मे मराठो को दड देने के उद्देश से हुई और उसी के अन्त मे १४ जनवरी १७६१ को पानीपत के पास वह महासग्राम हुआ जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है ।

इन लडाइयों के अलावा दिल्ली-दरवार में भी विभिन्न दलो के वीच दगल होते ही रहते थे । वल्कि दलवन्दी पहले से भी जोरो पर थी । कभी ईरानी दल जीतता तो कभी तूरानी—पर जो जीतता वह सम्राट् की मुश्के कुछ और कस देता । १७४८ मे निजामुल्मुल्क के चचेरे भाई कमरुद्दीन खा के मारे जाने पर, सफदर जग वजीर हुआ। निजामुल्मुल्क का वडा वेटा गाजीउद्दीन खा (प्रथम) दिल्ली मे ही उच्च पद पर था । दूसरा वेटा नासिर जंग के नाम से हैदरावाद की गद्दी का मालिक वन गया । गाजी-उद्दीन १७५२ मे सलावत जग † से गद्दी छीन लेने के विचार से चला भी तो उसकी सौतेली मा ने उसे रास्ते मे ही जहर दे कर मार डाला । दिल्ली मे उसकी जगह उसके अठारह साल के वेटे को मिली। यह भी वाप की ही तरह गाजीउद्दीन कहाने लगा और सफदर जग की सिफारिश पर इसे अमीरुल उमरा, इमादुल्मुल्क आदि खिताव भी मिले। पर यह आफत का परकाला निकला। पहले तो इसने वादशाह की ओर से सफदर जग की ही जड खोदना शुरू किया और वात यहा तक वढी कि सफदर जग ने १७५३ मे वगावत कर दी। छ महीने वाद शान्ति स्थापित हुई

---

* केम्ब्रिज हिस्टरी आव् इडिया । भाग ४, पृष्ठ ४३९ ।

† नासिर जग १७५० में मारा जा चुका था।

भी तो वह दिल्ली में न रह सका। अवध चला गया। अब कमरुद्दीन का बेटा अर्थात् गाजीउद्दीन का चचा इतिजामुद्दौला वजीर हुआ। इन दोनो की भी आपस मे न बन सकी। गाजीउद्दीन ने सफदर को भगा कर चचा को बरखास्त कराया और आप वजीर बन बैठा। फिर उसने अहमद शाह को तख्त से हटाया और उसकी ही नही, उसकी मा की भी आखे निकलवा ली। जब १७५७ में अहमद शाह दुर्रानी दिल्ली आया तब नये सम्राट् आलमगीर सानी ने भी उससे रो रो कर कहा कि मेरी जान हर घडी खतरे में है, लौटने से पहले मेरे बचाव का कोई इतजाम जरूर कर जाइए। मुहम्मद शाह की दो विधवा स्त्रियो ने भी गाजीउद्दीन के बर्ताव की शिकायत की और उनमें से एक ने तो यह प्रस्ताव भी किया कि मुझसे निकाह कर लीजिए और हम दोनो को साथ लेते चलिए। उसकी उम्र को देखते हुए दुर्रानी को यह प्रस्ताव आर्कषक न जचा, पर दयाद्रवित हो उसने उसे स्वीकार कर लिया। १७५९ मे दुर्रानी फिर आया। उससे पहले ही गाजीउद्दीन की आस्तीन पर अपने बादशाह और अपने चचा के खून के दाग पड चुके थे। नतीजा यह हुआ कि उसे दिल्ली से भाग कर सूरजमल जाट के किसी किले मे शरण लेनी पडी।

सफदर जग और गाजीउद्दीन के मन्त्रित्वकाल मे मराठों का दिल्ली में भी दबदबा बढा और वे वहां की राजनीतिक स्थिति से लाभ उठा कर अपने साम्राज्य को विस्तृत करते ही गये। उनसे भूल हुई तो यह कि जहा विस्तार को बढाया वहा नीव की मजबूती की ओर ध्यान नही दिया। सफदर जग के सहायक हो कर मराठे १७५१ मे दोआबा पर ही नही, रुहेलखड पर भी

अधिकार कर चुके थे। गाजीउद्दीन सानी भी उनके दरवार में सहायतार्थी वना ही रहा। इन्दौर-राज्य के संस्थापक मल्हार राव होलकर की मदद से ही उसने अहमद शाह को तख्त से उतारा था। जव जरूरत पडती तव होलकर या शिंदे या दोनो से मदद ली जाती और उन्हे इस मदद की पूरी कीमत दी जाती। १७५१ मे प्राय सवा करोड रुपये लेकर कावुल लौटने से पहले, दुर्रानी लाहौर मे अपने वेटे तैमूर शाह को प्रतिनिधि-स्वरूप छोड़ गया। पर एक ओर वह पजाव से हटा, दूसरी ओर गाजी-उद्दीन ने मराठो को निमत्रित कर उस प्रान्त को छीन लेने के लिए भेजा। मराठो का सेनापति था पेशवा वालाजी वाजीराव का भाई रघुनाथ राव (राघोवा)। इसने तैमूर शाह को मार भगाया और लाहौर पर अधिकार कर लिया। मराठो की शक्ति अपनी पराकाष्ठा को पहुच चुकी थी। यल्फिन्स्टन नामक इतिहासकार के शव्दो में, उनके राज्य का विस्तार उत्तर मे तो सिंधु नदी और हिमालय तक और दक्षिण मे प्राय कन्याकुमारी तक हो चुका था। जो प्रान्त या प्रदेश दूसरो के अधीन थे वे भी उन्हे कर देने लगे थे। और इस सारे साम्राज्य का शासन पूना से होता था, जहा सारी शक्ति एक व्यक्ति पेशवा के हाथ मे केन्द्रीभूत थी। पजाव मे होने वाली सफलता पर पूना दरवार मे आनन्द का वारपार न रहा और लोगो ने यह मान लिया कि 'अटक की दीवारो पर भी भगवा झडा फहराने लगा था'। वास्तव मे रघुनाथ राव ने जो कुछ किया वह शायद ही नीतिमान् का काम कहा जा सकता था। उससे पेशवा के कोष में तो एक आना पैसा भी न आया। फिर जहा मराठो को न तो सिखो की सहानुभूति प्राप्त थी, न मुसल-

मानो की, उस प्रान्त को वे कितने दिन अपने अधिकार मे रख सकते थे ? उधर विना पूरे सगठन या आयोजन के ही अहमद शाह अबदाली को चुनौती दे कर उसने हिन्दुस्तान मे मराठा शक्ति के विनाश को अनिवार्य कर दिया*। पानीपत की इस तीसरी लड़ाई का नतीजा यह न होता और मराठो की सघशक्ति नष्ट न हो जाती तो अगरेजो को बगाल मे अपना राज्य स्थापित करने और उत्तरोत्तर उसकी सीमा बढाते जाने मे जो आश्चर्य-जनक सफलता हुई वह हर्गिज न हो पाती ।

गाज़ीउद्दीन ने १७५७ मे मराठो को आमन्त्रित कर और रघुनाथ राव तथा मल्हार राव होलकर को पृष्ठपोपक बना कर, आलमगीर सानी को किले मे नजरबन्द कर दिया । सम्राट् अपने पुत्र अली गौहर को दिल्ली से बाहर फौज ले आने के लिए भेज चुका था। पर अली गौहर से कुछ न बन पडा। रघुनाथ राव और मल्हार राव के पजाब चले जाने पर वह मराठा सरदार बिट्ठल राव की सलाह से, दिल्ली लौटा भी तो उसे किले मे रहने का साहस न हो सका। पर जिस मकान मे डेरा डाला उसको भी गाजीउद्दीन ने एक दिन घेर लिया । विट्ठल राव की मदद से अली गौहर फर्रुखाबाद भाग गया और वहा से सहारन-पुर पहुच कर नजीबुद्दौला† की शरण ली। उसने शरणार्थी को सलाह दी कि बगाल की हालत खराब है, अगरेज़ उसे निगल जाने की फिक्र मे है, बेहतर हो कि आप उधर जा कर एक पथ दो

---

* केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ४, पृष्ठ ४१६।

† इसका असली नाम नजीब खा था । यह अहमद शाह दुर्रानी का बडा खैरख्वाह और गाजीउद्दीन का दुश्मन था ।

काज कर लें। शाहजादा सहारनपुर से चल कर अवध पहुँचा तो शुजाउद्दौला ने भी यही सलाह दी। नजीबुद्दौला की तरह यह भी इसी नतीजे पर पहुच चुका था कि दिल्ली मे गाजीउद्दीन के रहते अली गौहर को पनाह देना अपने हक मे अच्छा नही हो सकता। फिर उसकी अपनी दृष्टि भी विहार-वगाल पर थी। उस समय इलाहावाद में मुहम्मद कुली खा उसका नायव था। यह भी अपने ही स्वार्थ की दृष्टि से इस विजय-यात्रा का समर्थन करने लगा। शुजाउद्दौला उसका असली अभिप्राय जानता था, पर उसे इस नायव को शाहजादे के साथ जाने देने मे कोई आपत्ति नही हुई। अली गौहर और मुहम्मद कुली १७५९ में कर्म्मनाशा पार कर, पटने के पास पहुंच गये।

विहार और वगाल के कुछ सरदार मुहम्मद कुली खा को सहायता का वचन दे चुके थे। रामनारायण ने अगरेजो की फैक्टरी के प्रधान मि० ऐमियट से सहायता मागी तो कोई निश्चयात्मक उत्तर न मिला। असमजस मे पड कर वह पहले तो दोनो आक्रमण-कारियो के पडाव पर गया और दरवारदारी की। फिर उसे ज्योही मालूम हुआ कि क्लाइव और मीरन चले आ रहे थे, उसने रुख बदल दिया। इस पर लडाई शुरू हो गई और किले पर गोलावारी होने लगी। इसी वीच मुहम्मद कुली खा को खवर मिली कि शुजाउद्दौला खां ने इलाहावाद के किले पर अधिकार कर लिया था। वह अपनी निवेडने के लिए उस ओर चल पडा। फरासीसी सरदार मो० ला ने इस अवसर पर पहुच कर शाहजादे से कहा कि पटने के किले पर फिर घेरा डाला जाय, पर अर्थाभाव के कारण यह करने का उसे साहस न हो सका। मुहम्मद कुली खा

बनारस पहुंचा तो शुजाउद्दौला के हुक्म से गिरफ्तार कर लिया गया। शाहजादा अली गौहर मो० ला के साथ, मिर्जापुर होता हुआ रीवा चला गया। क्लाइव और मीरन पटने पहुचे तो उन्हें किसी का सामना न करना पडा, पर औरो को नही तो मीर जाफर को यही विश्वास हुआ कि क्लाइव ने ही आक्रमणकारियो को भगा दिया था। अपनी कृतज्ञता दिखाने के लिए उसने उसे वह जागीर दे दी जिसका जगत्सेठ प्रस्ताव कर चुके थे। कहने की आवश्यकता नही कि इससे पहले ही जगत्सेठ-सम्बन्धी संदेह निराधार प्रमाणित हो चुका था।

क्लाइव के कलकत्ते लौट जाने पर, मीर जाफर सितम्बर १७५९ में, दूसरी बार वहा गया। साथ जगत्सेठ भी थे। इन लोगो की वहा चार दिन मेहमानदारी हुई। सब मिला कर कंपनी को ९६,९१६ रुपये खर्च पडे—७९,५४२ रुपये नवाब के लिए और १७,३७४ रुपये जगत्सेठ के लिए। दूसरी रकम की कुछ तफसील यह थी:—

				रु०	आ०	पा०
१—मकान की सजावट				५२८*	१२	६
(क) चार थान खासा	१५५	०	०			
(ख) ४५ थान कटनी †	१५७	०	०			
(ग) परदो के लिए रेशम,फीता,सूत	९६	१२	०			
(घ) गद्दो के लिए टाट	१६	१०	०			
(ङ) ४० चटाइया	३७	०	०			

* मि० लिट्ल। आरकटी रुपये।

† कटनी एक प्रकार के सूती कपडे का नाम था।

				रु०	आ०	पा०
(च) दर्जियो की मजदूरी	६६	६	६			
२—भोजन चार दिन				१६००	०	०
३—उपहार				प्राय ९५००	०	०
(क) ९ थान फूलदार मखमल	१५७०	८	०			
(ख) १ हीरा जडा हुआ अतर-दान	३२,२२	३	९			
(ग) ४ थान वनात	२८०	०	०			
४—नौकरो को वखशीश				५००	०	०
५—जगत्सेठ के साथ जाने वाले डालचन्द के लिए खर्च				९२२	३	०
(क) भोजन	१५०	०	०			
(ख) उपहार	७७२	३	०			
६—रतनचन्द के लिए खर्च				९३२	७	०
(क) भोजन	१५०	०	०			
(ख) उपहारादि	७८२	७	०			
७—ब्रजमोहन साह के लिए खर्च				३८४	१४	०
(क) भोजन	१००	०	०			
(ख) उपहार	२८४	१४	०			
८—हाथी के लिए वनात				३५	०	०
९—फल लाने वालो को वखशीश				२०	१०	०

अगरेज-जाति के लिए कौड़ियो के मोल वगाल-विहार खरीद कर, उसके राज्यविस्तार का वीज वो और स्वय करोडपति वन कर, २५ फरवरी १७६० को क्लाइव इगलैण्ड के लिए रवाना हुआ। इससे पहले शाह आलम फिर पटने पर चढाई कर चुका

था और अगरेजों की ओर से वहा मीरन के साथ कैलो सेनापति बना कर भेजा जा चुका था । क्लाइव की जगह वासीटार्ट गवर्नर नियुक्त हो चुका था, पर इसके आने मे कुछ महीनो की देर थी इसलिए हालवेल स्थानापन्न गवर्नर हुआ ।

इसी समय मराठो ने दक्षिण से हमला किया और कपनी को जमीदारो से रुपया वसूल करने मे कठिनाई होने लगी ।

उधर ढाके से कुछ रुपये की माग आई । इस पर हालवेल ने वहा वालो को लिखा कि मेरे पास रुपया नही, तुम जगत्सेठ से कर्ज लेकर काम चलाओ । मई मे उसने खुद जगत्सेठ से कर्ज मागा, पर उसे जवाब मिला कि मीर जाफर को हमें इधर इतना उधार देना पडा है कि हम कपनी की माग पूरी नही कर सकते । बिगड कर हालवेल ने वारन हेस्टिंग्स को लिखा कि, "मैंने जगत्सेठ से दस-पद्रह लाख रुपये मागे थे, पर उन्होने बहाना कर कुछ भी देने से इन्कार कर दिया है । मेरा खयाल था कि अपने आपको सुरक्षित रखने और कपनी से दोस्ती बनाये रखने के लिए वह खुशी खुशी यह कर्ज दे देगे । पर मेरा खयाल गलत निकला । मुझे इसमें सन्देह नही कि कपनी को इसका बदला लेने का मौका शीघ्र ही मिलेगा ।"

वारन हेस्टिंग्स ने जगत्सेठ की ओर से खेद प्रकट किया तो हालवेल ने उसे लिखा कि, "अगर जगत्सेठ कपनी के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखना चाहते तो सब न सही, कुछ रुपये तो दे ही सकते थे । उनका कहना है कि नवाब की माग पूरी करने के कारण वह कपनी को कुछ उधार नही दे सकते । पर मुझे इसमें जरा भी सचाई नजर नही आती । अगर कपनी की मांग पूरी

कर देते तो नवाव को इसी आधार पर कुछ भी देने से इन्कार कर सकते थे । उस हालत मे अगर नवाब की ओर से उनके साथ दुर्व्यवहार भी होता तो हम उन्हे वचा लेते । खैर, वह समय आ सकता है जब उन्हे कपनी से सहायता मागनी पड़ेगी। उन्हे जान लेना चाहिए कि उस हालत मे हम उनकी रक्षा न कर, उन्हें शैतान के ही हाथ में छोड देगे ।"

शाहजादे की दूसरी चढाई पहली की अपेक्षा वडे पैमाने पर थी और विहार के कामगार खा, दिलेर खा आदि सरदार भी इस बार उसका पक्ष अपना चुके थे । इसी समय अली गौहर को अपने वाप आलमगीर सानी के मारे जाने की खबर मिली। उधर वजीर गाजीउद्दीन ने तो शाहजहा (तृतीय) को सम्राट् घोषित किया, इधर अली गौहर ने, "मुताखरीन" के लेखक के पिता हिदायत अली खा की सलाह से, अपने आपको*। अब यह शाह आलम सानी कहाने लगा । शुजाउद्दौला को इसने अपना वजीर और नजीबुद्दौला को अपना सेनापति नियुक्त किया । पर ये कोई काम न आ सके । फिर भी फतुए मे होने वाली लडाई में शाह आलम की जीत हुई और रामनारायण घायल हुआ । अगरेजों की ओर से कप्तान काकरेन और वारवल लडे भी तो उन्हें हार ही खानी पड़ी और पटने पर शाह आलम का कब्जा हो गया। कैलो और मीरन के पहुच जाने पर लड़ाई और भी जोर शोर से होने लगी। शाह आलम की ओर से कादिर दाद खा ने मीरन के मामा मुहम्मद

*उसके नाम का खुतवा पढा भी गया तो लोग उसे प्राय. "शाहजादा" ही कहते रहे। "शाह आलम" वह १७६१ से कहाने लगा जव अहमद शाह अवदाली उसे सम्राट् घोषित कर गया ।

अमीन खां को मार डाला । खुद मीरन को घायल होकर मैदान से भाग जाना पडा। इसके बाद गोला लगने से कादिरदाद मारा गया और परिस्थिति शाह आलम के प्रतिकूल हो गई। कामगार खा उसे साथ लेकर बिहार शरीफ चला गया । वहा से धावा मार कर वह बर्दवान जा पहुचा । मुर्शिदाबाद से मीर जाफर अगरेजो को साथ ले कर आगे बढा और बर्दवान के पास ही दोनों दलो का मुकाबला हुआ । इस मौके पर शाह आलम को दुर्लभराम से ही नही, पूर्निया वाले खादिम हुसैन खा से भी पैसे की मदद मिली। पर लडाई में तोपो की बदौलत मीर जाफर की ही जीत हुई और कामगार खा को पटने की ओर लौट जाना पडा।

अलीवर्दी की बेगम, अपनी दोनो* बेटियो तथा अन्य स्त्रियों के साथ, मुर्शिदाबाद से ढाके भेज दी गई थी। अब मीर जाफर और मीरन ने उनका बचा-खुचा धन भी छीन लेने और उनमे से दो को मरवा डालने के उद्देश से बाकिर खा को एक सौ सवारो के साथ ढाके भेजा । वहा के फौजदार जसारत खा को लिखा गया कि चाहे जैसे हो घसीटी बेगम और अमीना बेगम को गिरफ्तार कर फौरन बाकिर खा के साथ यहा भेज दो। जसारत को ऐसा कुकृत्य करने मे हिचकिचाहट हुई तो मीर जाफर ने कहलाया कि मीरन तो बिहार चला गया, अब उनके लिए मुर्शिदाबाद मे खतरा ही क्या रहा ? छल से दोनो बहने नाव में बिठाई और पद्मा नदी के बीच में लाकर डुबा दी गई । "रियाजुस्सलातीन" में लिखा है कि, जब उन्हें मालूम हो गया कि उन्हे

---

* तीसरी बेटी शौकतजग की मा थी जो शायद पूर्निया में ही मर चुकी थी ।

ढाके से ले आने का वास्तविक उद्देश क्या था, तब उन्होंने पहले तो नमाज पढी, फिर बगल मे कुरान दबाकर पारस्परिक आलिगन किया और पानी मे कूद पडी। "मुताखरीन" मे लिखा है कि अमीना बेगम ने कूदने से पहले ईश्वर से प्रार्थना की कि जिस मीरन के आदेश से हम दोनो बहनो की इस प्रकार हत्या की जा रही है उस पर गाज पडे।

अलीवर्दी खा की बेगम कुछ समय बाद मुर्शिदाबाद पहुचाई गई और मरने पर अपने पति के मकबरे मे ही दफनाई गई। सिराजुद्दौला की बेगम लुत्फुन्निसा भी अपनी बेटी उम्मत्त जोहरा के साथ वही लाई गई और उसे अलीवर्दी खा और अपने पति के समाधिभवन की देख-रेख का काम सौंपा गया, जिसके लिए उसे तीन-चार सौ रुपये की मासिक वृत्ति मिलने लगी।

शाह आलम के साथ पटने पहुच कर कामगार खा ने फिर किले पर घेरा डाला। मो० ला भी वहा पहुच चुका था। रामनारायण आत्म-समर्पण करने जा ही रहा था कि कप्तान नाक्स कुमक ले कर आ गया और कामगार खा की फौज के पैर उखाड़ दिये। शाह आलम मनेर की ओर चला गया।

मीरन को खादिम हुसैन खा फूटी आखो न भाता था और इधर उसने इसको पूर्निया से भगा देने का दृढ सकल्प कर लिया था। इसका जवाब देने के लिए खादिम हुसैन अपनी सेना के साथ गगा के दूसरी ओर हाजीपुर आ गया था। शाह आलम के पटने से हटते ही, मीरन ने कैलो की सेना के साथ नदी पार कर उसका पीछा किया। खादिम हुसैन बेतिया की ओर भाग चला। उसके सौभाग्य से रास्ते मे, रात को मीरन के खेमे पर बिजली

गिरी और वह मारा गया*। "मुताखरीन" का कहना है कि जिस दिन अमीना बेगम और घसीटी बेगम डुबाई गईं उसी रात को मीरन पर यह विद्युत्पात हुआ। खादिम हुसैन अवध की ओर भाग गया और मीरन के दल वाले पटने लौट गये। इनमे राजवल्लभ भी था जो पलासी के युद्ध के बाद मीरन का दीवान बन चुका था। इन लोगो ने शाह आलम को घेर लेना चाहा, पर कामगार खा के साथ वह गया-मानपुर की ओर भाग गया।

अपने ज्येष्ठ पुत्र मीरन के मरने का समाचार पाते ही मीर जाफर की कमर टूट गई। उधर सैनिको ने बाकी वेतन मागना शुरू किया और न मिलने पर उन्होंने बदअमली कर दी। कितने ही सरकारी अफसर पालकियो से उतार लिये गये और मारे-पीटे गये। १६ जुलाई को सैनिको ने नवाब के महल को घेर लिया और दीवारो पर चढ कर नवाब को गालिया देने और धमकाने लगे। जो सामने आया उसी पर ईट-पत्थर फेके गये। अगर

* पर बरसो बाद बर्क ने पार्लमेन्ट के सामने व्यग्यपूर्ण भाषा में कुछ और ही कहा था —

"वह कैसी विचित्र बिजली रही होगी कि ऊपर का खीमा ज्यो का त्यो खडा रहा, बिजली के गिरने की आवाज पास सोये हजारो सैनिको में से किसी को सुनाई न पडी और मीरन उसके प्रहार से मर गया।"

—श्री अक्षयकुमार मैत्रेय के बगला ग्रथ "मीर कासिम" के हिन्दी अनुवाद "जब अगरेज आये" (अनु० श्री रामनाथ लाल सुमन) से।

आधुनिक इतिहासकार भी इस प्रसग में "सभवत." शब्द का व्यवहार करने लगे है। केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ५, पृष्ठ १६६। मीरन जरूर मारा गया, चाहे जैसे मारा गया हो।

इम्तियाज खा 'खलीस' का बेटा* और मीर जाफर का दामाद मीर कासिम अली खा अपने पास से सैनिको को ३ लाख रुपये न देता और वाकी वेतन चुका देने की जिम्मेवारी अपने ऊपर न ले लेता तो उनका विद्रोह और भी भयकर रूप धारण कर लेता।

हालवेल मीरन के मरने के पहले से ही यह प्रस्ताव करने लगा था कि कपनी मीर जाफर का मुख्तार न हो कर खुद मालिक बन जाय। उसका विश्वास था कि शाह आलम कंपनी को खुशी खुशी बगाल-विहार की सूवेदारी दे देगा। पर औरो को, विशेषत: सेनापति कैलो को यह प्रस्ताव युक्तिसगत न जचा। वारन हेस्टिग्स ने भी इसका विरोध किया। वे मीर जाफर के पक्षपाती तो न थे, पर उनका दृष्टिकोण यह था कि अगर कपनी बिना आड के ही सर्वेसर्वा वन बैठी तो सभव था कि इसका परिणाम बुरा हो। एक क्रान्ति को अभी तीन ही बरस हुए थे। इतने समय मे ही दूसरी क्रान्ति का अर्थ होगा उस मीर जाफर के साथ भी विश्वासघात, जिसकी अगरेज वाह पकड़ चुके थे और जिसे सुरक्षित रखने की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा कर चुके थे।

हालवेल ने देखा कि नकाब उलट देने की वात किसी के भी गले उतरने वाली नही, इसलिए अपने मूल प्रस्ताव में इतना सशोधन कर दिया कि मसनद पर किसी और को ही विठाया और उसकी आड में दूध विलोया जाय। इससे पहले वह मीर कासिम अली खां का जी टटोल चुका था और उसमें महत्त्वाकाक्षा के साथ यथेष्ट अनुकूलता भी पा चुका था।

---

* 'मुताखरीन" के अनुसार, सैयद मुर्तजा का वेटा अर्थात् इम्तियाज खा का पोता।

सेनापति कैलो उस समय बिहार मे था। हालवेल ने उसे कलकत्ते आ जाने को लिखा । कैलो को पूरी बातो की जानकारी न थी, इसलिए वह तर्क-वितर्क ही करता रहा। जब मीरन ससार में न रहा और कैलो कलकत्ते पहुचा तब हालवेल ने उससे दिल खोल कर बाते की और उसे समझा दिया कि इस क्राति से क्या क्या लाभ होने वाला था ।

नया गवर्नर वासीटार्ट २७ जुलाई को कलकत्ते पहुचा। यह मद्रास में चौदह साल बिता चुका था और कूटनीति के साथ फारसी का भी अच्छा ज्ञाता समझा जाता था। इसमे कुछ भलमनसाहत भी थी । पर यह न तो दबग था, न निर्लोभ, इसलिए न तो इसकी नीति स्वतत्र रह सकी न यह अपने वातावरण में किसी प्रकार का सुधार कर सका और न बदनामी से बच सका।

कलकत्ते आने के कुछ समय के भीतर ही इसके और जगत्सेठ के बीच अच्छा सम्बन्ध हो गया । महताबराय इसे एक पत्र मे लिखते हैं —

"२० मुहर्रम शनिवार को मै ६ बजे शाम को भोजन कर पैदल लौट रहा था कि पैर फिसलने से गिर पिडा। कधे पर चोट आई और उसकी हड्डी छटक गई। दो घटे बाद मै बेहोश हो गया। एक चिकित्सक ने आकर दवा दी । ईश्वर की दया से २ सफर को हड्डी बैठ गई। मेरी हालत पहले से अच्छी है, लेकिन दाहने हाथ से अभी काम नही हो सकता।

"आपका पत्र प्राप्त हुआ । आपने जो तेल, सीग का सत्त और दूसरी दवा भेजने की कृपा की वे भी प्राप्त हो गये । पर

आपने उनके व्यवहार की विधि नही बताई, इसलिए उनका प्रयोग नही कर सका हूँ। दवाये ज्यो की त्यो पडी हुई है। कृपया अपने कर्मचारियो के द्वारा यह सूचित करा दें कि इस औषधि का किस प्रकार सेवन करना चाहिए, और उसके साथ क्या पथ्य होना चाहिए। मेरा हाथ तो बेकाम हो गया था, आपके आशीर्वाद से वह ठीक हो चला है। दर्द की भी कोई दवा हो तो दर्याफ्त कर भिजवा देने की कृपा करें और यह भी लिखें कि उसका उपचार किस तरह किया जाय। अगर आप किसी सुयोग्य डाक्टर को भेज सकें तो आपकी और भी मेहरबानी होगी। चगा हो गया तो मै आपका जन्म भर आभारी रहूँगा।

पुनश्च —

"जान पडता है कि आपने इस सम्बन्ध मे डाक्टर हैनकाक को लिखा था। वह कल २ सफर को दवा दे गये है जिससे मुझे बड़ा फायदा पहुचा है। ईश्वर आपको दीर्घायु और सम्पन्न करें*।"

मालूम नही, हालवेल ने जगत्सेठ के सम्बन्ध में वासीटार्ट से क्या कहा, पर मीर जाफर की निन्दा करने मे उसने अपनी ओर से कोई कोताही नही होने दी।

दोषारोपण के रूप मे उसके अत्याचारो का एक लम्बा चिट्ठा पेश किया। ढाके के हत्याकाड पर प्रकाश डालते हुए हालवेल ने अपनी कल्पनाशक्ति से तिल का ताड तो कर ही दिया था, कितने ही ऐसे अभियोग लगाये थे जिनमें तिल भर भी सचाई न थी। बंगाल मे शासन-सबधी जितनी बुराइया थी सब की जड़ में

* मि० लिट्ल द्वारा उद्धृत।

हालवेल ने मीर जाफर को ही बताया । इस पर एक अभियोग यह था कि यह पिछले साल डच लोगो की सहायता कर अगरेजों के साथ विश्वासघात कर चुका था—हालाकि कर्नल कैलो का कहना था कि बात कभी साबित न हो सकी थी और साबित हुई भी थी तो क्लाइव इसके लिए मीर जाफर को क्षमा-प्रदान कर चुका था । दूसरा अभियोग यह था कि मीर जाफर शाह आलम से पत्र-व्यवहार करने लगा था, यद्यपि वारन हेस्टिंग्स ने यह कह कर इसे झूठ साबित कर दिया कि जिस पत्र का हवाला दिया गया था वह जाली था । मीर जाफर पर ऐसे व्यक्तियो को मार डालने* का भी अभियोग था जो उसके अपने मरने के बाद भी जीवित थे ।

कौंसिल के सब तो नही, पर थोडे से सदस्य उसकी बातो मे आकर, विशेषत. लोभ के वशीभूत हो कर, उसके प्रस्ताव का समर्थन करने को तैयार हो गये थे। ये थे कर्नल कैलो, विलियम समनंर, विलियम मैक्ग्वार आदि । वासीटार्ट पर भी हालवेल का जादू चल गया और वह भी उसके प्रस्ताव से सहमत हो गया । उसके विरोधियो मे थे ऐमियट, एल्लिस, मेजर कारनक, वेरेल्स्ट आदि। पर गवर्नर और सेनापति के सहमत हो जाने के कारण उनके विरोध की उपेक्षा की गई और उनसे यह भी न बताया गया कि खिचड़ी कहा तक पक चुकी थी ।

२७ सितम्बर को कौंसिल की एक मीटिंग हुई जिसमे विरोधियों को उपस्थित होने का अवसर ही नही दिया गया।

* मि० लिट्ल।

मीर कासिम को कलकत्ते बुलाना आवश्यक था, पर मीर जाफर के लिए यह संदेहजनक न हो इसलिए उसे कहलाया गया कि सामरिक परिस्थिति* के सबध में कुछ परामर्श करना है, अतएव आप उन्हे जाने की अनुमति प्रदान कर दे। उसने कोई आपत्ति नही की। खोजा पिट्रस (अरमनी) और दुर्लभराम के जरिये हालवेल ने मीर कासिम से लेनदेन की बात पक्की करा ली। फिर उसे गवर्नर से मिलाया। जब मीर कासिम को अतिम निर्णय का निश्चय हो गया तब वह भी सब को यथायोग्य पुरस्कार देने को तैयार हो गया। "सदस्यो ने पहले तो पुरस्कार स्वीकार करने में नाही-नूही की, किन्तु पीछे उत्तर के समय मीर कासिम की सम्मान-रक्षा के वहाने उसे ग्रहण करने को प्रस्तुत हो गये।"

इस पुरस्कार का ब्योरा यह था—

	रुपये
वासीटार्ट	५१७,७०५
समनर	२४८,५००
हालवेल	२७४,५६३
स्मिथ	१३६,२६६
मेजर यार्क	१३६,२६६

* "रियाजुस्सलातीन" में लिखा है कि मीर कासिम ने जगत्सेठ के सहयोग से अँगरेजो से मेल कर मीर जाफर को लिखवाया कि सैनिको का विद्रोह चिन्ताजनक हुआ है, आप सारा कार्य्यभार मीर कासिम अली खा को सौपकर कलकत्ते चले आवें। पर बात गलत है। मीर जाफर को और ही आशय का पत्र लिखा गया।

	रुपये
जनरल कैलो	२०३,३७९
मैक्ग्वार	१८३,०४७
मैक्ग्वार को ५००० मोहरें भी	७७,६५६
	१,७७७,३८२ रुपये

इसके अलवा कपनी को भी क्षतिपूर्ति-स्वरूप ६२,५०० पौंड* अर्थात् ५३५,९७३ रुपये मिले।

२७ सितम्बर को सधिपत्र पर हस्ताक्षर हो गये। इसके द्वारा अगरेजो ने मीर कासिम को नायब नाजिम और मीर जाफर के मरने पर नाजिम, बनाना स्वीकार किया। मीर कासिम ने उन्हे बर्दवान, मेदिनीपुर और चटगांव के जिले दे दिये । मीर जाफर ने अपने आपको अगरेजो से सैनिक सहायता लेने और उस सहायता का मूल्य चुकाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध कर लिया था। उसके लिए इस सहायता के बिना सुरक्षित रहना असभव हो गया था। इसका नतीजा यह हो रहा था कि अगरेजो की माग दिन दिन बढती ही जाती, मीर जाफर से वह माग पूरी न हो पाती और ऐसी परिस्थिति मे अगरेज उसे हर तरह दबाते ही जाते । मीर कासिम ने यह सोच कर उन्हें ये तीन जिले दे दिये कि जो ऋण सरकार पर लद चुका था उसे अदा करने के लिए उसे सास लेने का अवसर चाहिए था और अगर वह इतना त्याग न करता तो उसे वह अवसर प्राप्त होना भी सभव न था।

इसके बाद वह मुर्शिदाबाद लौट गया। गवर्नर और सेनापति वहा १४ अक्टूबर को पहुचे । जब मीर जाफर को मालूम हुआ

* उस समय एक पौंड के प्राय. ९ रुपये ("सिक्के नहो") होते थे ।

कि कलकत्ते मे अगरेजो ने मीर कासिम को और ही वहाने वुला कर,यह प्रपच रच डाला था तव"क्लाइव का गधा" भी इसका प्रतिवाद किये विना न रह सका। जव उसे समझाते-वुझाते पाच दिन वीत गये और वह किसी प्रकार मीर कासिम को अधिकार सौंप देने की व्यवस्था से सम्मत न हो सका तव गवर्नर ने अपने सेनापति को मोतीझील पर अधिकार कर उसे गिरफ्तार कर लेने का हुक्म दिया ।

"तीन वर्ष पूर्व पलासी समराभिनय के विचित्र रगमच पर अपने जीवन के पहले अक में, वालक सिराजुद्दौला के सिंहासन की रक्षा के लिए, हम वृद्ध मीर जाफर को कुरान हाथ मे लिये तैयार देखते है, किन्तु पीछे दूसरे अक में वही मीर जाफर अगरेजो की सहायता से वालक सिराजुद्दौला का नाश करने को शत्रु सेना की कल्याण-कामना मे ध्यानमग्न दिखाई देता है । आज ठीक उसी प्रकार उसी मूल्य मे अपने को विकते देख कर मीर जाफर की मानसिक अवस्था क्या हुई होगी, इसकी कल्पना अनेक इतिहासकारो ने की है, परन्तु उस समय भाग्य से इस आकस्मिक परिवर्तन को देख कर मीर जाफर के मुह से कोई वात न निकल सकी। वह मुकुट उतार कर धीरे धीरे सिंहद्वार पर विनीत भाव से आ खडे हुए। इसी स्थान पर मीर जाफर के लिए कलकत्ता में रह कर अगरेजो के आश्रय मे जीवन विताने की व्यवस्था भी स्थिर हुई* ।"

वहा मीर जाफर को १५,००० रुपया मासिक वृत्ति मिलने लगी। उधर अगरेजो के ही साये में मीर कासिम तख्तनशीन हुआ।

---

* "मीर कासिम" का हिन्दी अनुवाद।

(४)

मसनद पर बैठते ही मीर कासिम ने ऐसे गुणो का परिचय देना आरभ किया जिनकी उससे किसी ने आशा नही की थी। थोडे ही दिनो मे सब को अनुभव हो चला कि वह मीर जाफर की तरह तमोगुणी या भीरु नही था। उसकी अपनी ही नीति और कार्य-सपादन की अपनी ही रीति थी। अपने मार्ग पर चलते हुए वह विघ्न-बाधाओ से डरने वाला न था।

सैनिको के बाकी वेतन से सम्बन्ध रखने वाली समस्या जटिल हो चली थी। उसने अली इब्राहीम खा से जाच कराई तो मालूम हुआ कि बख्शी का महकमा लाखो रुपये हडप चुका था। उधर खजाना खाली था और सैनिको का कागारोल शान्त करने के लिए रुपया चाहिए था। अनिच्छुक* होते हुए भी मीर कासिम को इस अवसर पर महताबराय से कुछ कर्ज लेना पडा। उसने व्यवस्था यह की कि बकाये का एक तिहाई तो सैनिको को नकद दे दिया जाय, एक तिहाई उन्हें परवानो के जरिये मफस्सल से दिला दिया जाय और एक तिहाई आगे चुका देने का करार कर दिया जाय। इससे सैनिक सतुष्ट हो गये, विशेषकर इसलिए कि मीर कासिम की तत्परता से अब उन्हे अपना वेतन नियत समय पर ही मिलने लगा था।

खड्ग-हस्त होकर मीर कासिम अपव्यय के भी पीछे पडा और जो कटौती की जा सकती थी करने लगा। परपरागत कुरीतियो या कुसस्कारो के कारण होने वाला सारा फिजूलखर्च बद कर दिया गया और ऐयाशी पर जो लाखो रुपये पानी की तरह बहाये जा रहे थे उनका और कामो मे उपयोग होने लगा।

* "मुताखरीन"।

गुलाम हुसैन का कहना है कि मीर कासिम ने पालतू जानवरो और चिडियो के लिए भी अपने यहा स्थान नही रहने दिया। अधिकाश को जमीदारो के हाथ वेच कर दाम खड़ा कर लिया। इससे एक लाभ यह हुआ कि वुलवुलो और वटेरो के साथ चिडियाखाने के रखवालो के भी पर कट गये और सव मिला कर एक खासी रकम की वचत होने लगी।

चुन्नीलाल और मुन्नीलाल उन अहलकारो में थे जो न जाने कितना रुपया गवन कर चुके थे और जो मागने पर डकार तक न लेते थे। ये सव के सव गिरफ्तार कर शिकजे में कसे गये और सरकार ने उनकी सारी धन-सम्पत्ति खालसा करा ली।

शाह आलम अभी पटने के ही आस-पास मडरा रहा था। कामगार खा और मो० ला भी उसके साथ थे। इधर वगाल मे भी जहां-तहा विद्रोह होने लगा था। मेदिनीपुर में तो अगरेजो ने आसानी से उसे दवा दिया पर वीरभूम में असद्दुजमा खा की वगावत ने मीर कासिम और वासीटार्ट दोनो के लिए सिरदर्द पैदा कर दिया। पर वहा भी अन्त में मेजर यार्क के पराक्रम से विद्रोही पराजित हुए और मीर कासिम को शाह आलम के आक्रमण को रोकने का अवकाश मिल गया।

इससे पहले "मुताखरीन" का लेखक गुलाम हुसैन अगरेजो का संदेश लेकर पटने से वुधगाव (वीरभूम) पहुच चुका था और मीर कासिम को वहा की परिस्थिति वता चुका था।

वह परिस्थिति सक्षेप मे यह थी :—

राजा रामनारायण और गुलाम हुसैन की आपस मे नही वनती थी और गुलाम हुसैन अगरेजो से दोस्ती वना कर उसे गिराने के

लिए लगाने-बुझाने लगा था । जब कैलो के मद्रास चले जाने पर मेजर कारनक उसकी जगह आया तब उसके और दूसरे अंगरेजो को रामनारायण और राजवल्लभ की नीयत के बारे में शुबहा होने लगा । उन्होने गुलाम हुसैन से कहा कि मीर कासिम की ओर से कर्ताधर्ता "यही दोनो हिन्दू" बने रहे तो बेडा पार लगने न देगे । मीर कासिम को पटने बुला लाने के लिए गुलाम हुसैन मुर्शिदाबाद भेजा गया था, पर वहा नवाब से मुलाकात न होने पर उसे बुधगाव जाना पडा था ।

जब रामनारायण को सारी बात मालूम हुई तब उसने जगत्सेठ की कोठी की मार्फत मीर कासिम के पास एक खत भेजा। इसमे लिखा था कि गुलाम हुसैन अगरेजो का और शाह आलम का भेदिया हो कर ही आपके पास जा रहा है, आप इससे सावधान रहगे। गुलाम हुसैन ने "मुताखरीन" मे लिखा है कि जगत्सेठ ने भी मीर कासिम को यही कहलाया, जिसका नतीजा यह हुआ कि वह नवाव से शाबाशी पाने के बजाय उसकी आखो मे गिर गया और वडी कठिनता से ही पटने लौट सका । "रामनारायण मीर कासिम का भक्त न था और उसकी बुराई कर अगरेजो के कान भरता रहता था। दूसरी ओर वह अपने या जगतसेठ के आदमियो के जरिये मीर कासिम को ऐसी बाते कहलाता रहता था जिनका परिणाम मेरे लिए भी बुरा ही हो।" स्वार्थों के घात-प्रतिघात से पैदा होने वाली पेचीदगियो पर उसने स्वयं प्रकाश डाला है —"मेरा सगा भाई शाह आलम के दरबार में ऊचे पद पर था, मुरलीधर और रामनारायण कहने को तो मेरे मित्र बने हुए थे पर वास्तव मे मेरे शत्रु थे; मैं स्वय दोनो का

आभारी था और उनकी चालो का जवाब देने मे असमर्थ था, शाह आलम जहा था वहा सुख की नीद न सो सकता था; अगरेजो मे भी एकता नही थी, मैक्ग्वार, वासीटार्ट और मीर कासिम का पक्षपाती था, मेजर कारनक और मि० हे वासीटार्ट के विरोधी ऐमियट से मिले हुए थे और मीर कासिम के शत्रु रामनारायण के पक्षपाती हो रहे थे, रामनारायण ऐसी दुरगी चाल चलने को कोशिश करता था कि मेजर कारनक और मि० हे तो खुश बने रहे और मि० मैक्ग्वार भी नाराज न हो—ऐसी परिस्थिति किसे चक्कर मे डाले बिना रह सकती थी ? पर न तो मीर कासिम से ही उसका भाव छिपा रह सका, न मैक्ग्वार से ही । और इन दोनो की अवज्ञा करने के कारण ही उसे एक दिन अपने प्राण गवाने पडे ।"

दक्षिण विहार के प्रमुख जमीदार शाह आलम की विशेप रूप से आर्थिक तथा सैनिक सहायता कर चुके थे पर दरबार मे कामगार खा की प्रधानता के कारण कुछ समय से हिंदू उदासीन हो चले थे। टेकारी के सुन्दर सिंह अपने ही एक मुसलमान सेवक के हाथो, कुछ समय पहले, धोखे से मारे जा चुके थे । और जमीदार प्राय तटस्थ बने रहे। मीर कासिम के पटने पहुचने से पहले ही सोन नदी की एक शाखा के तट पर, १५ जनवरी १७६१ को शाह आलम की हार हुई और मेजर कारनक द्वारा मो० ला तथा अन्य फरासीसी गिरफ्तार कर लिये गये । ६ फरवरी को गया मे शाह आलम और अगरेज सेनापति का सम्मेलन हुआ। इससे पहले अगरेजो के दूत बन कर शिताबराय शाह आलम से मिल आये थे । गया-सम्मेलन के बाद शाह

आलम अगरेजो के ही शिविर मे आ गया और अपनी अभ्यर्थना से इतना प्रसन्न हुआ कि पटने जाने का भी उनका निमत्रण स्वीकार कर लिया । २२ फरवरी को उसने पटना-नगर मे प्रवेश किया । वहा आतिथ्य-सत्कार तो नवाब की ओर से रामनारायण करने लगा और उसका सौहार्द अगरेजो के साथ बढने लगा।

शाह आलम साधन-हीन था, निर्बल था, धूल फाकता फिर रहा था, फिर भी उसे सम्राट् कहाने का गौरव प्राप्त था। और अगरेज जानते थे कि ऐसे सम्राट् को भी मुट्ठी मे कर बडे बडे काम निकाले जा सकते थे । जब जनवरी मे पानीपत की लडाई हो चुकी और मराठो की पराजय से पहले ही गाजीउद्दीन कही भाग कर उसका मार्ग निष्कटक कर चुका, तब शाह आलम की मित्रता का मूल्य और भी बढ गया। सम्राट् की अपनी दृष्टि से अगरेजो की मित्रता भी कम मूल्यवान् न थी। पारस्परिक संबध घनिष्ठ कर दोनो अपना अपना हित-साधन करने की फिक्र में ही थे कि अगरेजो के रग मे भग डालने के लिए मीर कासिम मार्च में पटने जा पहुचा।

इधर गया-सम्मेलन के बाद अगरेज जो चाल चलते आ रहे थे उसका मीर कासिम की दृष्टि मे एक ही अर्थ हो सकता था—यह कि उनकी आन्तरिक इच्छा सम्राट् से बगाल-बिहार-उडीसा की सूबेदारी नही तो कम से कम दीवानी प्राप्त कर लेने की थी । मेजर कारनक के साथ उसका वाद-विवाद आरभ हुआ। राजनीतिक शतरज के खेल मे अगरेजो को मात करने के लिए मीर कासिम ने भी अपनी राजभक्ति प्रदर्शित की और शाह आलम से दरबार में अपनी सूबेदारी को बरकरार करा लिया ।

अप्रेल मे कारनक की जगह कूट अगरेज सेनापति हो कर आया तो मीर कासिम की उससे भी न वन सकी । जून में जव शाह आलम दिल्ली के तख्त पर वैठने चला तव मीर कासिम को लगा कि वह खेल मे अगरेजो से हार खाने से, वाल वाल वच गया था ।

शाह आलम से पिंड छूटते ही, मीर कासिम ने शासन के क्षेत्र मे झाड-वुहार शुरू कर दी । पहले तो उसने राजा रामनारायण से हिसाव तलव किया और उसके जिम्मे मोटी रकम निकलने पर उसे अपनी जगह से हटा दिया । रामनारायण की रक्षा का कूट को विशेष आदेश मिल चुका था, पर उससे वह रक्षा न हो सकी। १८ जून को कलकत्ते की कौंसिल ने मीर कासिम को लिख दिया कि आप रामनारायण को मुअत्तल कर और जिसको चाहे अपना नायव नियुक्त कर सकते है । रामनारायण का सहायक शितावराय भी पदच्युत किया गया और अगस्त में राजवल्लभ नायव नियुक्त हुआ । सितम्वर मे वासीटार्ट ने रामनारायण को मीर कासिम के हवाले भी करा दिया । नवाव के हुक्म से उसकी सारी सपत्ति जव्त कर ली गई और वह कैदखाने मे भेज दिया गया* । पर थोड़े ही दिन वाद राजवल्लभ को भी उस पद से हटना और कैद होना पडा । उसकी जगह राजा नौवतराय को मिली। मीर मेहदी खां तिरहुत का और मुहम्मद तकी खा वीरभूम का फौजदार नियुक्त हुआ। फिर नौवतराय की जगह मीर मेहदी खां को दे दी गई।

*"वासीटार्ट ने जो कुछ किया वह क्लाइव की नीति के विपरीत था। जहा क्लाइव का सिद्धात था कपनी को सशक्त करना वहा वासीटार्ट के कार्य-कलाप से नवाव सशक्त होता गया । क्लाइव का इस ओर विशेष ध्यान रहता था कि कपनी प्रमुख हिन्दू अधिकारियों की रक्षा करती रहे। पर वासीटार्ट ने जान-बूझ कर इस कर्त्तव्य की उपेक्षा की।" —केम्ब्रिज हिस्टरी।

इसके बाद ही मीर कासिम ने अगरेजो के देशान्तर्गत व्यापार का प्रश्न उठा कर उनसे झगडा मोल ले लिया। विदेशी कपनियो को आयात-निर्यात की ही वस्तुएँ खरीदने-बेचने का अधिकार प्राप्त था और उन्हे जो फरमान मिल चुके थे वे इसी आधार पर कि यह अधिकार उन सस्थाओ को प्राप्त था—उनके कर्मचारियो को नही। पर जैसा कि हम देख चुके है, अगरेज कर्मचारी कपनी के दस्तको की आड मे अपना अपना व्यापार भी किया करते थे और दस्तको के इस दुरुपयोग के कारण कपनी और सरकार के बीच कभी कभी झगडे भी हो जाते थे । पर कर्मचारियो का यह निजी व्यापार भी एक समय आयात-निर्यात की वस्तुओ तक ही सीमित था । जब कभी कोई कर्मचारी नमक जैसी चीज की खरीद-बिक्री कर बैठता तब सरकार इसको रोकने के लिए कार्रवाई किये बिना न रहती । पलासी के युद्ध के बाद परिस्थिति बदल गई। सरकार मे रोक-थाम करने की शक्ति ही नही रही और अगरेज मनमाने ढग से व्यापार करने लगे । क्लाइव के समय मे कुछ नियंत्रण था भी तो उसके विदा होते ही वह भी जाता रहा और बगाल में अगरेजो की धन-लोलुपता नग्न रूप से नाचने लगी।

नवाब की अपनी प्रजा को वैसा अधिकार न होने के कारण, हिन्दू या मुसलमान व्यापारी या तो किसी क्षेत्र मे प्रवेश ही नही कर सकते और जहा कर सकते वहां उन्हे पूरी चुङ्गी भरनी पडती। उधर नमक, सुपारी, तबाकू जैसी चीजो को भी अगरेजो ने हथिया लिया । ऐसे व्यापार से ही जिनकी जीविका चलती थी वे तो भूखो मरने लगे और सरकार की आय दिन दिन घटने लगी। मीर

जाफर से तो इसका प्रतिवाद असभव था, पर मीर कासिम चुपचाप न रह सका। १७६१ के अन्त मे ही कौसिल को खबर मिली कि नवाव की ओर से छेडछाड शुरू हो गई थी। इस छेडछाड का कारण अगरेजो का अपना ही मदोन्माद था। इसकी शिकायत जगत्सेठ भी कर चुके थे। १० मार्च १७६२ को वासीटार्ट ने उन्हे लिखा —

"आपका पत्र मिला। आपने लिखा है कि वाली गोकुलपुर गाव उस ताल्लुके मे है जिसे आपने हाल मे ही खरीदा है और उस गाव के लोग नाव-द्वारा पहुँचने वाले अगरेज व्यापारियो या उनके गुमाश्तो की जोर-जवरदस्ती से तग आकर वाहर भाग गये है। आपने इस ओर मेरा ध्यान आकर्पित कर अनुरोध किया है कि मै सख्त हिदायत कर दू कि अगरेजो का कोई गुमाश्ता किसी भी हालत में रिआया को किसी तरह न सताये। मै अपने हित की तरह आपके भी हित की रक्षा करना चाहता हूँ। मै यह हर्गिज नही चाहता कि प्रजा के साथ ऐसा दुर्व्यवहार हो। मेरी इच्छा है कि अगर कोई दोपी हो तो आप उसका नाम-धाम मुझे लिख भेजे कि मै ऐसे अत्याचार को आगे न होने दू।"

मई १७६२ मे खुद नवाव ने कौंसिल को लिखा कि अगरेज व्यापारियो के गुमाश्तो की धाधली वरदाश्त करना सरकार के लिए असम्भव हो गया था।

अपनी नीति की सफलता की दृष्टि से मुर्शिदावाद रहना अनुपयुक्त समझ कर मीर कासिम इधर राजधानी हटा कर मुगेर ले गया था। १७६२ के अन्त में वासीटार्ट उससे समझौता करने के लिए वही गया। मीर कासिम के साथ यह तै हुआ कि जहा पटने

तक जाने वाले नमक पर इस देश के व्यापारियो को ३० प्रतिशत कर या चुगी देनी पडती थी वहा अगरेजो को ९ प्रतिशत ही देनी पडेगी और अगर कोई झगडा खडा हुआ तो वारा-न्यारा करने का अधिकार नवाव के ही अफसरो को होगा । पर यह समझौता वासीटार्ट के देशवासियो को, विशेपकर उसके विरोधी दल को, स्वीकार न हुआ। उनकी ओर से उसकी नेकनीयती पर तरह तरह के हमले होने लगे । उस पर जो अभियोग लगाये गये उनमे एक यह भी था कि उसने अपने निजी व्यापार के लिए रिआयत ही नही करा ली थी बल्कि मीर कासिम से सात लाख रुपये रिश्वत भी खा ली थी । इन वातो मे कुछ सचाई जरूर थी, पर विरोध का प्रधान कारण यह था कि अगरेज ९ प्रतिशत भी चुगी भरने को तैयार न थे । स्वार्थ साधने के साथ वासीटार्ट को वदनाम करने का उसके दुश्मनो को यह अच्छा मौका हाथ लगा । ऐसा आन्दोलन किया गया कि कौंसिल ने उस समझौते को ठुकरा दिया । अव यह निश्चित हुआ कि अगरेज, सिर्फ नमक पर २॥ प्रतिशत देने के अलावा, और किसी प्रकार का कर या चुगी न देगे और अगर उनके किसी गुमाश्ते पर कोई अभियोग लगाया गया तो उसका विचार करने का अधिकार उन्ही को होगा, नवाव के अधिकारियो को नही। चोरी और सीनाजोरी इसको कहते है ।

अगरेजों का यह रग-ढग देखकर मीर कासिम ने मार्च १७६३ मे दो साल के लिए व्यापारी-मात्र के हित मे चुगी ही उठा दी। इस पर एतराज करने की जरा भी गुजाइश न होते हुए भी कौंसिल को यह मजूर न हुआ। अव उसकी ओर से कहा जाने लगा कि इस मामले में भी अगरेज और हिन्दुस्तानी वरावर नही समझे जा

सकते अर्थात् नि:शुल्क व्यापार अगरेज ही कर सकते है, हिन्दुस्तानी नही। उसकी ओर से दो सदस्य, ऐमियट और हे—उसकी नयी माग पेश करने के लिए नवाब के पास भेजे गये ।

"मुताखरीन" के अगरेजी अनुवादक ने इस झगडे के वारे में लिखा है —

"मीर कासिम और कपनी के सम्वन्ध-विच्छेद के मूल कारण की ओर गुलाम हुसैन ने सकेतमात्र किया है। यह आश्चर्य की वात है । यथार्थ वात यह थी —

"फरमान के द्वारा अगरेजों को जो अधिकार मिल चुके थे उनकी रक्षा करने के लिए मीर कासिम वरावर तैयार रहता आया था । पर जहा पलासी की लडाई से पहले अगरेज व्यापारियो की एक भी नाव नजर नही आती थी वहा अव वगाल की प्राय प्रत्येक नदी उनकी नावो से ढक-सी गई थी। अगरेज अव तम्वाकू, नमक, सुपारी, अन्न आदि का भी व्यापार करने लगे थे । इससे हजारो हिन्दुस्तानियो की रोटी-दाल चलती थी । एक ओर उनकी जीविका जाती रही, दूसरी ओर सरकार की अपनी आय पर कुठाराघात हुआ। वासीटार्ट, हेस्टिंग्स जैसे जो अगरेज नरम दल वाले कहे जा सकते थे वे भी इस वात को स्वीकार करते थे कि अगरेजो के ऐसे व्यापार के नियत्रण का नवाव को पूरा अधिकार था। यह इन व्यापारियो का अपना काम था कि वे या तो सरकार से इसके लिए विशेष अधिकार प्राप्त कर लेते या चुंगी देते जाते। कौसिल का यह काम हर्गिज न था कि वह नवाव से उनके अपने लाभ के लिए लडाई कर वैठती ।

"यह वात याद रखने की है कि जहा अगरेज एक वार १० प्रतिशत दे देने पर सारे झंझटो से छुटकारा पा जाते थे वहा इस

ों के व्यापारियो को २५ प्रतिशत चुगी दे देने पर भी कदम कदम
ं रुकावट का सामना करना पडता था । उनकी नावे रोक ली
ती थी, फिर उन नावो की तलाशी होती थी, और उन्हे चुगी
 अलावा जगह जगह राहदारी भी देनी पडती थी। अगरेज
ापारियो का माल एक ही जगह १० प्रतिशत दे देने पर इन
सारी विघ्न-बाधाओ से मुक्त हो जाता था ।

"मीर कासिम की बुद्धि की प्रशसा करनी होगी कि उसने बगाल भर मे चुगी, राहदारी आदि को बद कर सभी व्यापारियो के लिए एक-सी सुविधा कर दी । अगरेजो के लिए इससे अधिक न्यायपूर्ण वात और क्या हो सकती थी ? मीर कासिम ने कहा कि, "तुम लोग हुगली, ढाका, पटना ऐसी जगहो मे चुगी कम कराना चाहते हो । मै तुम्हारी बात मान लेता हूँ और तुम्हारी माग से भी अधिक रिआयत यह किये देता हूँ कि तुमसे कुछ भी न लूगा । बगालमात्र से मैने चुगी उठा दी है, अब तुम्हारे और मेरे वीच लडाई-झगडे का कोई कारण ही नही रह गया ।" नवाव के इस नये विधान का यही अर्थ था, पर उससे यह बात छिपी न थी कि चुगी-सम्बन्धी कोई भी भेद न रह जाने पर अगरेजो के लिए प्रतिद्वन्द्विता मे ठहरना कठिन हो जायगा। उनकी रहन-सहन का खर्च इतना ऊचा था कि वरावरी में आ जाने पर वे कभी इस देश के व्यापारियो से सस्ता माल न वेच सकते थे । इसीलिए अगरेज अव यह कहने लगे कि नवाव को हमारा व्यापार तो नि शुल्क कर देना चाहिए और अपनी रिआया से बदस्तूर शुल्क या कर लेना ही चाहिए । अर्थात् किसी राजा को इतना भी अधिकार न रहे कि वह जो रिआयत विदेशियो के साथ कर दे वह अपनी

रिआया के साथ न कर सके । वासीटार्ट और हेस्टिंग्स ने वार वार कहा कि अगरेजो का यह प्रस्ताव करना अत्यन्त अनुचित था उनकी कलकत्ते मे कोई सुनने वाला न था। उन पर कटूक्तियो की वौछाड पडने लगी। विपक्षियो की ओर से कहा जाने लगा कि ऐसी वात नवाव के वकील के ही मुह से निकलनी चाहिए थी, कौंसिल के किसी सदस्य के मुह से नही। इससे उनका यह भाव सूचित होता था कि सत्य और न्याय को तिलाजलि दे कर मनमानी करने की उन्हे पूरी स्वतत्रता प्राप्त हो चुकी थी ।

"लोभ से विवेक-रहित होकर ही उन्होने वासीटार्ट और हेस्टिंग्स पर गालियो की वैसी वर्षा की, उन्हे तरह तरह से वदनाम किया । यह प्रचार किया गया कि २२ लाख रुपये लेकर दोनों ने अपने आपको वेच दिया था। तव से आज तक न जाने कितने अगरेज व्यापारी इससे चौगुना धन कमा चुके है। हेस्टिंग्स, वासीटार्ट स्वय भी वडे व्यापारी थे, पर वे कभी करोडपति न वन सके। हेस्टिंग्स गरीव ही रहा और वासीटार्ट भी धनी न हो सका। वह एक लाख रुपये की पूजी लेकर वगाल में आया था और चार वर्ष में उसे अढाई लाख वेतन के ही रूप मे मिले। फिर भी वह नौ या दस लाख से अधिक उपार्जन न कर सका।

"इन सव वातों का ज्ञान लोगो को तव हुआ जव वांसीटार्ट लौट कर इगलैण्ड गया और वहा कपनी के सचालको को यह समझाया कि ऐमियट का दल जिसे अगरेजो का व्यापार कहता आया था वह वास्तव मे इन लोगो का अपना खास व्यापार था जिसका इतिहास चार या पाच साल से पुराना न था।

"अगरेज व्यापारी या उनके गुमाश्ते उन दिनो यह करते कि

किसी शहर, गाव, या इलाके मे पहुच कर वहा निजी कारवार करने लगते और कोठी या दूकान पर अगरेजी झडा फहरा देते । फिर जो कुछ चाहते नवाब को देते, बाकी अपने पास रख लेते । उनके लिए न कोई सरकार थी न सरकार की हुकूमत। उच्छृङ्खल, निरकुश होकर वे प्रजा पर अत्याचार करते और उसका खून चूसते।

"ध्यान में रखने की बात है कि जब अगरेज खुद इस देश के मालिक बन गये तब उन्होने अपने नौकरो के लिए वह स्वतत्रता न रहने दी जिसकी रक्षा के लिए वे मीर कासिम से लड चुके थे । पाप के पेड की जड पर उस समय कुठाराघात हुआ और सभी कर्मचारियो के लिए यह आदेश हो गया कि वे प्रत्यक्ष या परोक्ष तौर पर न तो कही अपना व्यापार कर सकेंगे न किसी गाव या इलाके का ठेका ही ले सकेंगे । यह तो नही कहा जा सकता कि बुराई बिलकुल मिट गई है पर इससे बहुत कुछ सुधार हुआ है, इसमें सदेह नही।"

कहने की आवश्यकता नही कि मीर कासिम आरभ से ही जानता था कि अगरेजो से उसकी लड़ाई अनिवार्य थी और उस लडाई के लिए वह जितनी तैयारी कर सकता था मुगेर जा कर करने लगा था। मुर्शिदाबाद मे कोई किला न था, पर मुगेर की बात और थी । गगा के दक्षिण तट पर स्थित इस प्राचीन नगर का दुर्ग मुसलमानो के आने से पहले भी मुद्गगिरि के नाम से प्रसिद्ध रह चुका था। समय समय पर उसकी मरम्मत होती रही। १५८० में राजा टोडरमल का ध्यान भी उस ओर गया और सतरहवी सदी में शाह शुजा का। मीर कासिम के लिए मुगेर में

नये किले की कोई आवश्यकता न थी। पुराना किला ही, मरम्मत हो जाने पर, उसकी इच्छा की पूर्ति करने लगा।

पर दुर्ग तो शरीरमात्र था; उसमें प्राण-प्रतिष्ठा के लिए ऐसी सेना चाहिए थी जो सु-सगठित हो, सु-सज्जित हो और अगरेजो से लोहा वजने पर पीठ दिखाने वाली न हो। अपनी आर्थिक व्यवस्था से उसने इतना सुधार तो कर ही दिया था कि उपयुक्त समय पर वेतन मिलने से उसके सैनिक दिन रात खीजने-झीखने वाले न रह गये थे । पर उनका ऐसा सतोप ही काफी न था । और भी सुधार आवश्यक थे। 'लडते हो और हाथ मे हथियार भी नही' तो सैनिको का सतोप ही क्या कर सके ? और हथियार होते हुए भी उन्हें चलाना और लड़ना न आवे तो वे किस काम के ? मीर कासिम जानता था कि भेडियाधसान और भगदड से इस देश का सामरिक इतिहास कितना कलकित हो चुका था और उनके परिणाम इसके लिए कैसे घातक सिद्ध हो चुके थे। इतिहास की वैसी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए, अनुशासन आवश्यक था और अनुशासन के लिए सैनिको को लडाई के नये ही तौर-तरीके सिखाने की आवश्यकता थी । ऐसी शिक्षा देने वाले विदेशी ही हो सकते थे। मीर कासिम को मालूम था कि उस समय ऐसे शिक्षको का नितान्त अभाव न था। पुर्तगीज, फरासीसी, अरमनी* इनमे सब सावारण व्यापारी ही नही थे । कुछ तो विदेशो से अस्त्र-शस्त्र लाकर अ-सावारण व्यापार करते, कुछ वैतनिक रूप से, पर छोटे पैमाने पर ही, जहा तहा सेनानायक भी वन जाते। मीर कासिम ने अरमनी सेनानायको के तत्वावधान मे ही अपना उद्देश सिद्ध

---

* कलकत्ते की अरमनी या अरमीनियन स्ट्रीट इन्ही के नाम पर है।

करने का निश्चय कर, ग्रेगरी उपनाम गुरगिन खा को प्रधान बनाया और मार्कर को उसका सहायक । इनकी देख-रेख मे, प्राय. एक साल में ही जो सगठन हो गया उसका कुछ परिचय इन अवतरणों से मिलता है —

"सकल्प-साधन में मीर कासिम की एकाग्रता थी । वह अनन्यकर्मा हो कर सकल्प-साधन का आयोजन करने लगे । अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिए कारखाना खुल गया । यूरोपीय शिक्षको के निरीक्षण मे इस देश के लोगो ने शीघ्र ही तोप एव बन्दूक बनाने में दक्षता प्राप्त की। उस समय तोपो में पलीता लगाना पडता था, बदूको की नलियो को आग की गरमी सहने योग्य बनाने के लिए उत्कृष्ट लोहे की आवश्यकता हुआ करती थी। मीर कासिम के उत्साह ने ये सारी कठिनाइया दूर कर दी। राजमहल का चकमक और छोटा नागपुर का लोहा शीघ्र विख्यात हो उठा । वहुत दिनो वाद इन सब बन्दूको की परीक्षा करके अगरेजो ने कहा था कि कम्पनी की बन्दूको की अपेक्षा ये बन्दूकें सब तरह से अच्छी है*। उस समय तोपो का पीतल गला कर ढलाई करने की प्रथा चला कर मीर कासिम ने एक नई कीर्ति कमाई थी। अगरेजो को कितने ही स्वाधीन यूरोपियन व्यापारी उस समय वाहर से बन्दूके, तोप एव गोले गोलिया मगा कर बेचा करते थे। मीर कासिम के अस्त्रागार मे खरीद खरीद कर ये सब चीजे भी भरी जाने लगी।"

"गुरगिन खां ने नवाव की सेना को तीन श्रेणियो में विभक्त किया। एक मे अश्वारोही रक्खे गये, दूसरी में गोलदाज एव तीसरी में पैदल। फिर पैदल सेना के भी नजीव एव तिलगा नामक दो

---

* अगरेज लेखक ब्रूम द्वारा लिखित "वगाल आर्मी"।

भाग किये गये। तिलगी सेना ठीक कम्पनी की सेना की नाई सजाई गई। अश्वारोही सेना, मुगल सेनानायको के अधीन रक्खी गई, पैदल तथा गोलन्दाज श्रेणी का भार अर्मीनियन, जर्मन, पोर्च्युगीज एव फरासीसी अफसरो ने ग्रहण किया ।

"गुरगिन खा के अधीन मार्कर नामक एक अर्मीनियन सेनानायक ने उस समय विशेप ख्याति पाई थी । मार्कर के अधीन तीनो श्रेणी की सेना थोडे ही समय मे सुशिक्षित हो गई। प्रत्येक श्रेणी की पल्टन से कुछ चुने हुए सैनिकों को एकत्र करके उन्होने एक विशेप दल सगठित किया । मार्कर ने यूरोप मे युद्ध विद्या की शिक्षा पाई थी एव हालैण्ड के युद्ध मे रह कर विशेप अभिज्ञता एव अनुभव प्राप्त किया था ।

"मीर कासिम के सेनानायको मे से सेनापति समरू का नाम इतिहास में भली भाति विख्यात है । वह यूरोप मे कसाईखाने के एक कर्मचारी थे, वहा से स्विस सेनादल के साथ भारत में प्रवेश करके फरासीसियो के अधीन, सेना का भार ग्रहण किया था। भारत के इतिहास मे वह अगरेजो के चिरशत्रु के रूप में ही आते है। वह राक्षस के समान क्रूर थे । प्रभु की आज्ञा प्राप्त होने पर हित-अहित का विचार नही करते थे। उनका असल नाम था वाल्टर रेण्ड*।"

ऐसी तैयारी के अलावा, मीर कासिम ने एक काम यह किया था कि जिन लोगो के सम्बन्ध मे उसे सदेह या विश्वास था कि ऐसे अवसर पर वे दिल से उसका साथ न देगे, उन्हे उसने गिरफ्तार करा लिया था। "रियाजुम्सलातीन" के अनुसार, ऐसे लोगो मे थे

* "मीर कासिम" का हिन्दी अनुवाद।

राय राया उम्मेद राय, उसका बेटा कालीप्रसाद, रामकिशोर, राजवल्लभ, जगत्सेठ महताबराय, महाराज स्वरूपचद, राजा रामनारायण, टेकारी के राजा सुन्दर सिह का बेटा फतह सिह,* जगत्राय, भोजपुर का दीवान दुलाल राय, दिनाजपुर, नदिया, खडगपुर, वीरभूम और राजशाही के जमीदार इत्यादि।

जगत्सेठ की गिरफ्तारी के बारे मे "मुताखरीन" मे लिखा है कि

"मीर कासिम को मालूम हो चला था कि कलकत्ते में हवा का रुख उसके खिलाफ था। उसे यह भी मालूम था कि जगत्सेठ महताबराय और महाराज स्वरूपचद का रुख किस ओर था। ऐसी हालत मे उसे यह निरापद न जचा कि ये दोनो भाई मुर्शिदाबाद मे ही बने रहे। उसे याद था कि सिराजुद्दौला की जगह मीर जाफर के और मीर जाफर की जगह खुद उसके नाजिम बनने में इन्होने अपने धन और प्रभाव से कैसी सहायता पहुचाई थी। आदमियो की उसे अच्छी पहचान थी, इसलिए कलकत्ते के पास मुर्शिदाबाद मे इन दोनो व्यक्तियो का रहना उसे खतरनाक लगा। अगरेजो से उसका रगडा-झगडा दिन दिन बढता जा रहा था। सभव न था कि ऐसी स्थिति में ये दोनो अगरेजो का पक्ष त्याग कर उसका पक्ष अपना ले।

---

* सभवत. इसलिए कि दक्षिण विहार के जमीदार शाह आलम के पक्षपाती समझे जाते थे।

राजा उदयनारायण का पतन होने पर, राजशाही की जमीदारी नाटौर के राजवश के हाथ में आ गई थी। वही के रामकान्त की स्त्री इतिहास-प्रख्यात रानी भवानी थी। श्री पूर्णचद्र मजुमदार ने लिखा है कि मीर कासिम ने पहले तो रामकान्त की जमीदारी छीन ली, पर जगत्सेठ के सिफारिश करने पर लौटा दी। बगाल के राजा सीताराम को तो उसने फासी की सजा दे दी।

"उसने अपना कर्तव्य यही समझा कि उन्हें कम से कम नजरबन्द कर अपने ही पास रखा जाय । पर बुलाने पर वें मुगेर जाने के लिए कदम उठाने वाले न थे । मीर कासिम जानता था कि सदेश या आदेश मिलते ही वे कलकत्ते भाग जायगे । और वहा अगरेजो को पैसे से, कूटनीति से और अपने प्रभाव से अमूल्य सहायता पहुचाने लगेंगे । इसलिए उसने बीरभूम के फौजदार मुहम्मद तकी खा को लिखा कि खत मिलते ही मुर्शिदाबाद जाकर सेठो का घर घेर लेना और किसी को बाहर निकलने मत देना; उन्हे गिरफ्तार कर कही रखना और जब अरमनी सरदार मार्कर पहुच जाय और तुम्हें एक खत दे दे तब उसे पढ़ कर और उसके बाद उससे रसीद लिखा कर सेठो को उसके हवाले कर देना । तकी खा नवाब का विश्वासी था और बडा साहसी था। मार्कर गुरगिन खा का चेला था । तिलगा पलटन इसके साथ कर दी गई और यह नाव से मुर्शिदाबाद भेजा गया । इसे आदेश मिला कि जब मुहम्मद तकी खा सेठो को तुम्हारे हवाले कर दे तब उन्हें यहा सही सलामत ले आना, पर इस बात का पूरा ध्यान रखना कि उनके साथ अनुचित या अपमानजनक व्यवहार न होने पावे ।

"नवाब की आज्ञा मिलते ही तकी खा बगटुट मुर्शिदाबाद चल पडा और पहुचते ही सेठो के घर को घिरवा लिया । पर उसने उन्हे कहला भेजा कि 'मै आपको शारीरिक, आर्थिक या और तरह की हानि पहुचाने नही आया हूँ । सम्मानपूर्वक आपको मुगेर भेज देने की मुझे आज्ञा हुई है। वहा नवाब आप दोनो को अपने ही साथ रखना चाहते है । आप निश्चिन्त हो कर मेरे साथ हो

लें।' लाचार दोनो को घर से विदा होना पडा । तीन दिन बाद मार्कर भी अपने तिलगो के साथ पहुच गया । ये लोग दोनों भाइयों को मुगेर ले गये ।

"वहा नवाब ने पहले तो मिजाजपुरसी की, फिर उनके साथ हमदर्दी दिखा कर उन्हे तसल्ली दी और अपनी मजबूरी बता कर कहा कि आप लोग बेफिक्र हो कर यहा अपने लिए मकान बनवा ले, मुर्शिदाबाद की तरह अपनी कोठी खोल ले, दरबार मे आया-जाया करें और माली मामलो मे जैसे पहले सरकार को मदद पहुचाते थे वैसे ही आगे भी पहुचाते रहे । कहने के लिए उसने उनको आजाद कर दिया, पर वे बराबर नजरबन्द ही रहे। जब कही जाते तो जासूस यह देखते रहते कि कही दूर न निकल जायँ। उन्होने अपनी कोठी भी खोल ली और देशकाल को देखते हुए जिस प्रकार रह सकते थे रहने लगे"।

मुगेर जाते समय ऐमियट को कासिमबाजार में ही समाचार मिला कि जगत्सेठ महताबराय और उनके भाई महाराज स्वरूपचंद गिरफ्तार कर लिये गये थे । समाचार मिलते ही उसने वासीटार्ट को इसकी सूचना भेज दी । २४ अप्रैल को वासीटार्ट ने मीर कासिम को लिखा —

"मुझे अभी मि० ऐमियट का एक खत मिला है जिसमें लिखा है कि २१ तारीख को मुहम्मद तकी खा अपने सैनिको के साथ वीरभूम से मुर्शिदावाद जा धमका और उसी रात को जगत्सेठ के घर जा कर उनको और उनके भाई को गिरफ्तार कर लिया। फिर उन्हें हीरा-झील ले गया । इस समय दोनो वही हिरासत मे है।

"मुझे इस पर बडा आश्चर्य हुआ है । आपके मसनद पर बैठने के वाद ही मैने सेठो की उपस्थिति मे आपसे मिल कर कहा था कि आप उन दोनो प्रभावशाली व्यक्तियो से राज-काज मे सहायता लेते रहेंगे और उन्हे किसी प्रकार की हानि पहुचने न देगे । आपने भी यह स्वीकार कर लिया था । पिछली वार जब मुगेर मे आपसे मिला था तब मैने फिर उनके सम्बन्ध मे आपसे बात की थी और आपने मुझे यह आश्वासन दिया था कि मै उन्हे किसी प्रकार की हानि न पहुचाऊगा । ऐसे व्यक्तियो को घर से घसीट कर ले जाना अत्यन्त अनुचित काम था । उनके लिए तो यह अपमान-जनक था ही, आपकी अपनी प्रतिज्ञा के भी प्रतिकूल था। दूसरे किसी भी नाजिम के समय मे उनकी ऐसी अप्रतिष्ठा नही हुई। जो कुछ हुआ है वह आपको ही नही, मुझको भी कलकित करने वाला है ।"

वासीटार्ट ने सेठो की रिहाई पर जोर दे कर लिखा था कि उनकी कारा-मुक्ति से ही हम दोनो अपयश से बच सकेगे। मीर कासिम पर उसकी बातो का कोई असर न पडा। २ मई को उसने यह पत्रोत्तर दिया —

"आज तक सेठो के सम्बन्ध मे न तो किसी ने मुझे कुछ लिखा था न कहा था।

"अब आपने उनके पक्ष मे ये बातें कही है तो मुझे अपनी स्थिति स्पष्ट कर देनी पडती है ।

"यह बात जग-जाहिर है कि अभी हाल तक, प्रत्येक नाजिम के समय मे, ऐसे व्यापारी जहा अपना कारबार चलाते रहे है वहा सरकार का भी हाथ बटाते रहे है । उदाहरण के लिए, मै अमीचद

का नाम ले सकता हूँ। अगरेजो पर निर्भर करने वाले व्यापारियो का और इन सेठो का भी अपना हाल यह था कि वे नाजिम से मिलते-जुलते और सरकार को सहायता देते रहते थे।

"ईश्वर को धन्यवाद है कि आपको मेरे शब्द अभी तक याद है। यह ठीक है कि मैंने स्वय कहा था कि 'ये दोनो भाई विशेष स्थान रखने वाले है । मेरे लिए इनके सहयोग से काम करना ही उचित होगा।' पर इन तीन बरसो मे वह सहयोग मुझे कभी प्राप्त न हो सका । मैंने इन्हे बार बार लिखा कि अपना व्यवसाय चलाते रहो और निजामत को भी मदद पहुचाते रहो। पर इन्होने मेरी बातो पर कभी ध्यान नही दिया । अपना कारबार तो बन्द कर ही दिया, निजामत को भी जितनी उलझन मे डाल सकते थे डालते गये । मेरे साथ इनका ऐसा बर्ताव होने लगा मानो मैं इनका दुश्मन था—इनके लिए अछूत के बराबर था। मदद देने की कौन कहे, इन्होने दरबार मे आना-जाना भी छोड दिया।

"मैंने इन्हे यहा आने को मजबूर किया तो इसलिए नही कि ये अगरेजो से मिल कर चालें चल रहे थे, बल्कि इसलिए कि मुझे इनसे कितनी ही बाते दर्याफ्त करने की जरूरत थी—कई सरकारी काम इनके बिना रुके पडे थे । यह तो शुरू से ही दोनो ओर मानी हुई बात थी कि अपना व्यवसाय चलाते हुए, इन्हे नाजिम और निजामत से भी सरोकार रखना पडेगा।

"आपने भौहे तान कर मुझे अपनी प्रतिज्ञाओ की याद दिलाई है । क्या प्रतिज्ञा या सधि-पत्र मेरे ही लिए है, आपके लिए नही ? क्या आपकी दृष्टि मे वह बस बच्चो का खेल है जिसके घेरे से आप जब चाहे और जैसे चाहे बाहर निकल जा

सकते है? आपकी अपनी ओर से जो कुछ हो रहा है उसे मैं और क्या कह सकता हूँ? आपके कर्मचारी मेरे आमिलो को वलपूर्वक ले जाकर कैद कर दें तो मै तो यही कहूगा कि आपने सधि-पत्र को ठुकरा दिया। हा, आप सभवत यही कहेंगे कि आपकी ओर से कुछ भी अनुचित नही हुआ। जव आपके कर्मचारी मदोन्मत्त हो कर अत्याचार करते फिरते है तव सधि-पत्र पर हरताल नही लगती, तव मुझे इसका प्रतिवाद करने का कोई अधिकार नही होता, तव किसी पर कलक नही लगता। पर जव मै अपनी ही प्रजा और अपने ही आश्रित व्यक्ति को अपने पास वुलवाता हूँ तव आपके कहने के अनुसार मै सधि-भग कर वैठता हूँ, मेरा शासन शासन कहाने योग्य नही रह जाता, मैं सव की, विशेपत आपकी, दृष्टि मे वहुत ही नीचे गिर जाता हूँ। ईश्वर ही जानता है कि यह मेरे लिए कितनी अगम्य और आश्चर्यजनक वात है।

"इन दोनो ने मेरे नाजिम होने के दिन शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की थी कि, 'आपकी जान के साथ हमारी जान रहेगी, आपकी भलाई में ही हम अपनी भलाई समझेंगे।' यह वात सारी दुनिया जानती है। मैंने इन्हे यहा वुलवा लिया है तो इसीलिए कि ये वरावर मेरे साथ रहें और परपरा के अनुसार अपना ही नही, सरकार का भी काम-काज करे। आपने इनकी ओर से जो कुछ लिखा है वह सिफारिश है या और कुछ, मुझे मालूम नही। आपने मुझ पर सधि-भग का दोपारोपण किया है। यह तो आप ही जानते होगे कि जो सधि-पत्र आपके पास है, उसमे इनका उल्लेख है या नही। आपने लिखा है कि मै अपने आपको कमजोर साबित और वदनाम

कर दूगा । पर परमात्मा जानता है कि मैंने इन्हे किसी बुरे उद्देश
से नही बुलवाया है । मैंने न्याय के विपरीत न तो कभी किसी को
गिरफ्तार कराया, न किसी की जान ली। खोजा वजीद के
साथ भी मैंने अन्याय नही किया । मै इतना ही चाहता हूँ कि सेठ-
बन्धु यही रह कर काम-काज करे । अगर आप सच को झूठ या सफेद
को स्याह बता कर, मेरा नाम उछालना चाहते है तो इसका मेरे
पास कोई इलाज नही। हा, अगर इसाफ भी कोई चीज है तो मै
कहूँगा कि इस विषय मे वाद-विवाद की गुजाइश ही नही।"

वकलम नवाब—

"हम दोनो के बीच जो सधि हुई थी उसका एक सिद्धात
था कि न तो कपनी के कर्मचारियो की ओर से मै कोई सिफारिश
करू न मेरे कर्मचारियो की ओर से आप । पर आप लोग उस बात
को बिलकुल भूल गये है और शर्त के खिलाफ काम कर रहे है ।
अपना नाम जगाना और मनमानी करना, यही आपका उद्देश
हो रहा है । मै लाचार हूँ।"

कलकत्ते मे ऐमियट गरम दल का नेता और मीर कासिम का
परम द्रोही था । उसने जगत् सेठ की रिहाई की बात की तो
नवाब पर इसका कोई अच्छा प्रभाव न पडा। दोनो के बीच और
भी कोई समझौता न हो सका । इधर पटने के अगरेज प्रधान एलिस
ने नवाब के कुछ आमिलो को गिरफ्तार कर कलकत्ते भिजवा दिया
था तो इसके जवाब मे नवाब ने अगरेजो के कुछ गुमाश्तो को
कैद करा लिया था । ऐमियट की मुगेर-यात्रा निष्फल रही और
उसे अपने साथी हे को जामिन के तौर पर वही छोड कर लौटना
पडा । लौटने से पहले वह एलिस को लिख गया कि लडाई के लिए

तैयार रहो और एलिस ने लडाई की घोषणा होने से पहले ही २४ जून को नवाव की सेना पर आक्रमण कर दिया ।

अगरेजो ने पहले से ही अपना कार्यक्रम निश्चित कर रखा था। विचार यह हुआ था कि २३ जून को ऐमियट के प्रस्थान करते ही, पटने पर अधिकार कर लिया जाय । सेनानायक किस स्थान पर एकत्र होगे और किस मार्ग से किसको कहा जाना होगा यह सव १८ जून तक निश्चित हो चुका था । कुछ सैनिक तो उससे भी पहले पटने भेजे जा चुके थे । पटने के किले में अगरेजों की ओर से किसी को आक्रमण की आशका न थी। सामरिक दृष्टि से किला भी मजवूत नही कहा जा सकता था । एलिस ने २३ जून की रात को ही उस पर आक्रमण की तैयारी कर ली और २४ को अगरेज, तारो की छाह, फाटक तोड कर किले में जा घुसे और वहा लूट-मार करने लगे । मीर मेहदी खा तो मुगेर भाग चला, पर लाल सिह और मुहम्मद अमीन के पराक्रम से किला फिर नवाव के अधिकार मे आ गया ।

इतने मे मुगेर से कुमक ले कर मार्कर पटने आ गया और उसने अगरेजो की कोठी घेर ली। एलिस, फुलर्टन आदि अगरेज छपरे भाग गये । उनका विचार और भी दूर भाग जाने का था, पर वही वे रामनिधि नामक फौजदार और समरू द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये ।

७ वी जुलाई को गवर्नर को मीर कासिम का एक पत्र मिला जिसमे नवाव ने लिखा था—"मै एलिस साहव को हृदय से अपना परम शत्रु ही समझता आया हूँ। इस समय देखता हूँ कि वह वन्धु कह कर सम्वोधन किये जाने के सर्वथा योग्य है। यह वात उनके

विविध आचरणो से व्यक्त हो पडी है। उन्होने चोर की तरह रात के समय पटना के किले पर आक्रमण कर के बाजार को लूटा, प्रात काल से तीन पहर तक केवल लूट और नर-हत्या से प्रतिष्ठित महाजनो एव नागरिको को त्रस्त किया। मैने एक समय आपसे दो-तीन सौ बन्दूके मागी थी, किन्तु आप मेरे उस अनुरोध को पूरा नही कर सके थे, परन्तु हमारे साथ आन्तरिक मित्रता होने के कारण ही एलिस साहब ने इस हत्याकाड मे अपनी सेना की सारी तोप-बन्दूक एव युद्ध-सामग्री मुझे सौप दी और स्वय सेना के भार-वहन की उत्कट चिन्ता से छुट्टी ले ली। आपने अन्याय से निर्दयतापूर्वक निर्दोष नगरवासियो को नर-हत्या से त्रस्त करके कई लाख रुपयो की द्रव्य सामग्री लूट ली है। इस बात पर भली-भाति विचार करके दरिद्रो की क्षतिपूर्ति करना कम्पनी का कर्तव्य है। सिराजुद्दौला के समय कलकत्ता की लूट के बाद यही बात हुई थी। ईसा के नाम पर धर्म-शपथ कर के आप लोगो ने सामरिक व्यय का निर्वाह करने के लिए हमसे जमीदारी ली थी। आपकी सेना हमारे पास रह कर सदैव हमारी उन्नति की चेष्टा करेगी, इस बात की शर्त हुई थी। किन्तु, काम पडने पर, देखते है कि आप हमें नष्ट करने के लिए ही इतनी बडी सेना रक्खे हुए है। जब आपकी सेना हमारे साथ इस प्रकार का—सधि-विरुद्ध—व्यवहार कर रही है, तब मेरे लिखने का यही अभिप्राय है कि, आप मेरी जो जमीदारी भोग कर रहे है उसका तीन वर्ष का राज-कर आपको मेरे पास जमा करना चाहिए। गत कई वर्षों से कम्पनी के गुमाश्तो ने निजामत के अधिकार से जितने अत्याचार किये है, बलपूर्वक जितना धन लूटा है, देश के लोगो की जितनी क्षति की है, इस समय उसका प्रतीकार करना कम्पनी का कर्तव्य है। आप लोगो

को अव इतनी हानि उठानी पडेगी कि जैसे आप लोगो ने वर्दवान एव अन्य स्थानो का अधिकार प्राप्त किया था, वैसे ही उन्हें लौटा देना पडेगा"*।

ऐमियट और उसके साथी मुर्शिदावाद मे ही गिरफ्तार हो गये । इस पर उसने अपने सैनिको को गोली चलाने का हुक्म दे डाला । नवाव की ओर से खून का वदला खून से ही लिया गया और ऐमियट को प्राय सात अगरेजो के साथ मौत का शिकार होना पडा ।

नवाव ने अपने सभी फौजदारो को लडाई शुरु हो जाने की सूचना दे दी ।

ऐमियट और हे को मुगेर रवाना कर अगरेज तलवार खीचने के साथ, मीर कासिम के वजाय और किसी को मुर्शिदावाद की गद्दी पर विठाने के लिए उधेड-वुन भी करने लगे थे। उनकी दृष्टि में मीर जाफर से उपयुक्त व्यक्ति मिलना कठिन था—वही मीर जाफर जिसे तीन ही साल पहले नालायक वता कर वे उसी गद्दी से उतार चुके थे । १० जुलाई को उन्होने उसके साथ दूसरी सधि कर नीवू को कुछ और निचोड लिया और वदले मे उसे निजामत दे दी । मीर जाफर ने स्वीकार कर लिया कि—

१—अगरेजो को कही कोई शुल्क न देना पडेगा । सिर्फ नमक पर उन्हे ढाई प्रतिशत चुगी देनी पड़ेगी।

२—इस देश के व्यापारी यथारीति पूरा शुल्क दिया करेगे।

३—इस सवध मे मीर कासिम के आदेश रद्द समझे जायगे।

---

* "मीर कासिम" का हिन्दी अनुवाद।

४—कपनी को इस लडाई से होने वाली हानि की पूर्ति के लिये तीस लाख रुपये दिये जायगे । दूसरे अगरेज व्यापारियो की भी क्षतिपूर्ति की जायगी । अगर इतना रुपया नकद न दिया जा सका तो उन्हे बदले मे जमीन दे दी जायगी।

५—नवाब को १२ हजार सवार और १२ हजार पैदल से अधिक सैनिक रखने का अधिकार न होगा। आवश्यकता पडने पर कपनी उन्हें सामरिक सहायता देगी और इसके लिए बर्दवान, मेदिनीपुर और चटगाव उसके अधीन बने रहेगे ।

६—सरकारी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए आधा माल छोड कर, पूर्निया मे शोरा और सिलहट मे चूना खरीदने का एकाधिकार कपनी को होगा ।

७—कलकत्ते की टकसाल के रुपये मुर्शिदाबाद की टकसाल के रुपयो के बराबर ही माने जायगे और उन पर बट्टा काटना जुर्म समझा जायगा ।

इस सधि-पत्र पर कपनी की ओर से हस्ताक्षर करने वाले सात सदस्यो मे से तीन थे वासीटार्ट, कारनक और वारेन हेस्टिग्स ।

लडाई शुरू होते ही मीर कासिम ने मीर तकी खा को वीरभूम से मुर्शिदाबाद की ओर बढने के लिए लिखा । जाफर खा, आलम खा और हैबतुल्ला उसके सहायतार्थ भेजे गये । मुर्शिदाबाद के फौजदार सैयद मुहम्मद खा के सहयोग प्रदान न करने पर भी अतिम तीनो ने कासिमबाजार को घेर लिया और वहा के अगरेजो को कैद कर मुगेर भेज दिया । मुहम्मद तकी खा के बढ आने पर अगरेज सेनापति ऐडम्स से उसकी भागीरथी के तट पर कटवा के पास १९ जुलाई को भिडत हुई।

इस लडाई मे तकी खा ने वडी वीरता दिखाई, पर अपने सैनिको का पूरा सहयोग न प्राप्त होने के कारण उसे मैदान हारना और स्वय वुरी तरह से घायल होकर मरना पडा। मैलीसन ने "भारत के निर्णायक युद्ध" नामक (अगरेजी) ग्रथ में लिखा है—"उसके जो घुडसवार पिछले दिन लेफ्टिनन्ट लेन के विरुद्ध लड चुके थे आज तटस्थ-से वने रहे। अगर उन्होने फिर लडाई मे भाग लिया होता तो जीत मीर कासिम की होती, अगरेजो की नही। पर भारतवर्ष के इतिहास मे ऐसे देशद्रोह के उदाहरण भरे पडे है। अंगरेजो को जो सफलता हुई है उसका प्रधान कारण यहा के राजाओ, नवावो और सरदारो का पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष ही रहा है, यह निस्सकोच कहा जा सकता है।"

अव अगरेज मुर्शिदावाद की ओर वढे। मीर कासिम की सेना से नगर की रक्षा न हो सकी और शत्रुपक्ष ने फिर कासिमवाजार पर अधिकार कर लिया। दोनो ओर से मोरचावदी उसी गिरिया के पास हुई जहा प्राय तेईस साल पहले अलीवर्दी खा सरफराज खा को पराजित कर चुका था। मीर जाफर की ओर से सेनानायक मीर नसीर, मीर वदरुद्दीन, शेरअली खा आदि थे। ऐडम्स के आक्रमण के समय मार्कर और समरू के पैर उखड गये या वे जानवूझ कर पीछे हट गये। अगर वदरुद्दीन, मीर नसीर आदि की तरह वे भी पराक्रम दिखाते तो मीर कासिम की जीत हुए विना न रहती। मैलीसन ने लिखा है कि "नवाव के पक्ष को आवश्यकता थी तो मुहम्मद तकी खा जैसे रण-कला-कुशल सेनापति की। अगर वह कटवा मे न मारा जाता और गिरिया मे उपस्थित होता तो उस पक्ष का विजयी होना निश्चित था। पर वहा न तो वैसा सेनापति

था न स्वयं मीर कासिम जो अपने लिए लडने वाली सेना का हौसला बढा कर, उससे अपनी विजय की आशा को फलीभूत कर सकता।" परिणाम यह हुआ कि विश्वासघात के कारण उसकी सेना को यहा भी १ अगस्त को पराजित होना पडा।

तीसरी लडाई इतिहास मे 'उधवानाला' के नाम से प्रसिद्ध है। यह राजमहल के पास ऐसे स्थान पर हुई जिसके एक ओर तो भागीरथी थी और दूसरी ओर उधवा या उदयनाला। नवाब ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर वहा मोरचाबदी कराई थी। उसके सैनिको की सख्या प्राय ४०,००० थी। मुर्शिदाबाद से पटने जाने वाली सडक के किनारे एक पुराना किला था जिस पर उन्होने अधिकार भी कर लिया था। नयी चहारदीवारी वना कर, तोपें भी उपयुक्त स्थानो पर चढा दी गई थी।

पर प्रकृति ने भी उस दुर्ग को सुरक्षित वनाने मे वडी सहायता पहुचाई थी। एक ओर तो वहुत लम्बी चौडी झील थी और दूसरी ओर दुर्गम पर्वतमाला। अगरेजो की छावनी और किले के वीच वह झील या खाई वरसाती नदी की-सी रुकावट का काम कर रही थी।

यहा भी विश्वासघात ने मीर कासिम के कवच को अभेद्य नहीं रहने दिया। एक अगरेज सैनिक कपनी की नौकरी छोडकर, कुछ समय पहले मीर कासिम की सेना मे भरती हो चुका था। वह पथो और पगडडियो से पूरा अभिज्ञ भी था। जव उसे अपने देशद्रोह पर पश्चात्ताप होने लगा तव एक रात को चुपके चुपके अपनी छावनी से निकल कर सेनापति ऐडम्स के पास पहुचा और उसे वताया कि झील की गहराई सव जगह एक-सी न थी ; कही कही उसे पार करना भी सभव था। मत्र मालूम होते ही ऐडम्स ने छापा मारा

और रात को ही दीवार लाघ कर किले के पास पहुच गया। सुवह होते ही ५ सितम्वर को उस पर कव्जा भी कर लिया । उस मौके पर भी अरमनी सेनानायको ने पीठ दिखा कर और अपने आदेशो से अपनी सेना को ही आपद्ग्रस्त कर, नमक का हक अदा किया।

इसके वाद हुई इन पराजयो की वह प्रतिक्रिया जिसमे मीर कासिम की क्रोधाग्नि से कितने ही अपराधी-निरपराधी भस्मीभूत हो गये ।

इस प्रकार नष्ट होने वालो मे अगरेज ही नही, भारतवासी भी थे।

युद्ध-सम्वन्धी समाचारो ने मीर कासिम को विक्षिप्त-सा कर दिया और उसे वातावरण विश्वासघात से भरा हुआ प्रतीत होने लगा । स्वय मरने से पहले उसने उन सभी कैदियो को मार डालने का निश्चय किया जिनके दोप प्रमाणित हो चुके थे या जिन्हे वह सन्देह की दृप्टि से देखता आ रहा था ।

मीर कासिम की विफलता के कारणो के विश्लेपण के लिए, इतिहासकार और मनोवैज्ञानिक का पूरा सहयोग चाहिए । उसने कभी मध्यममार्ग का अवलम्वन नही किया। किसी पर विश्वास किया तो यह भूल कर कि 'विश्वस्त नाति विश्वसेत्'। किसी पर अविश्वास किया तो इसे भी चरम सीमा को पहुचा दिया । वेतिया पर चढाई की तो गुरगिन खा की सलाह मान कर, नेपाल पर भी चढ़ाई किये विना न रह सका। इस लडाई मे जीत होने पर भी वह हार के ही वरावर सावित हुई। एक जमीदार से शत्रुता हुई तो जमींदार-मात्र को शत्रु मान लिया और ऐसी तीक्ष्ण दडनीति से काम लिया कि उस समाज में वगाल से विहार तक कोई उसका

मित्र या शुभचिन्तक न रह गया। फिर जहा यथेष्ट विवेक न था और अपनी ही भुजाओ के भरोसे सब कुछ करना था, वहां साल दो साल के ही शस्त्र-सग्रह और नयी कवायद से पहाड कैसे टूट सकता था ? जो हो, जब आशा निराशा मे परिणत हुई तव मीर कासिम को अपने चारो ओर शत्रु ही शत्रु नजर आने लगे और वह सब के खून का प्यासा वन गया ।

इन लोगो के रक्त से, गगा का जल ही नही, उसके पास की भूमि भी रजित हो गई। इनमें मुख्य थे राजा रामनारायण, राजवल्लभ, राय राया उम्मेदराय, राजा फतह सिंह, राजा बुनियाद सिंह, शेख अब्दुल्ला, जगत्सेठ महताबराय, महाराज स्वरूपचद और पटने के एलिस आदि अगरेज कैदी ।

इनमें कुछ की हत्या मुगेर में ही हुई और बाकी की पटने में या उसके आसपास ।

रामनारायण को उसके गले से बालू भरा घडा बाध कर, गगा में डुबा दिया गया। कितने ही औरो की भी यही दशा हुई। जगत्सेठ की हत्या* के समय और स्थान के सम्बन्ध मे मतभेद है। "मुताखरीन" मे लिखा है कि मीर कासिम के मुगेर से प्रस्थान करने पर पटने के पास बाढ मे उनकी हत्या हुई। पर उसके अनुवादक ने ही इसे स्वीकार नही किया था। वह लिख गया है —

"जगत्सेठ महताबराय भी मुगेर के किले के बुर्ज से गगा मे ही डाल दिये गये थे । उस समय उनके नौकर चुन्नी ने वहुत अर्ज-मिन्नत की कि मुझे भी अपने मालिक के साथ बाध कर या कम

---

*पारिवारिक श्रुतिपरम्परा के अनुसार, इसकी तिथि थी आसिन सुदी १०, सवत् १८२०।

से कम उनसे पहले नदी मे डाल दिया जाय। पर उसकी एक न सुनी गई और महताबराय के बहुत समझाने-बुझाने का भी कोई असर न हुआ। तब उसने खुद नदी मे कूद कर अपने प्राण त्याग दिये। यह बात मुझे उस समय की जनश्रुति से ही नही, चुन्नी के बाबूराम नामक एक सगे-सबधी से भी मालूम हुई थी। यह पहले जगत्सेठ के यहा काम करता था, अब दस साल से मेरा नौकर है।

"हो सकता है कि गुलाम हुसैन ने दोनो भाइयो की हत्या के बारे मे जो कुछ लिखा है वह ठीक हो, पर इतना तो मै अवश्य कहूँगा कि उस समय सर्वसाधारण मे जो बात प्रचलित थी उसके यह विपरीत है। मुगेर के किले मे एक बुर्ज कायम है जिसके पास से प्राय दस हजार नावे हर साल गुजरती है। उनके सवारो मे एक भी शख्स ऐसा न होगा जो उस बुर्ज की ओर इशारा कर यह न कहे कि इसी के पास दोनो सेठ-बन्धु नदी मे डाल दिये गये थे। मुगेर मे एक भी ऐसी बूढी औरत न होगी जो चुन्नी की स्वामि-भक्ति और त्याग की कथा न जानती हो और जो उन शब्दो को न दोहरा सके, जो उस ऐतिहासिक अवसर पर उसके मुख से अपने मालिको के कातिलो के सामने निकले थे। यह भी याद रखना चाहिए कि जिस समय गुलाम हुसैन ने अपनी पुस्तक लिखी थी उस समय वह सेना के साथ था। वैसी परिस्थिति मे न तो वह इस घटना की बात चला सकता था और न इसके विषय में बहुत पूछताछ ही कर सकता था। और उसने जो कुछ लिखा उस पर फिर नजर नही डाली—उसमे कोई सशोधन नही किया।"

गुरगिन खा भी जिन्दा न बच सका। इसके अरमनी साथियो के

सम्बन्ध मे भी मीर कासिम के मन मे सदेह हो चला था। गुरगिन खा अगरेजो के शुभचिन्तक* खोजा पिट्रस का भाई था और अगरेजो ने इससे भी मित्रता कर ली थी । इसका हत्यारा तो कोई मुसलमान सैनिक था, पर कहा गया है कि वह हत्या भी मीर कासिम के ही आदेश से हुई थी ।

जो पटने का हत्याकाड कहा जाता है उसका सबध अगरेज कैदियो से था। मीर कासिम मुँगेर के किले की रक्षा का भार अरबअली खा नामक सरदार पर छोड आया था, पर जब अगरेज सेना वहा उधवानाला की विजय के बाद १ अक्टूबर को पहुँची तब अरबअली ने भी विरोध के बजाय विश्वासघात ही किया। यह सुनते ही मीर कासिम क्रोधान्ध हो गया और उन सभी कैदियो के कत्ल का हुक्म दे दिया।

इस हत्याकाड की जिम्मेदारी समरू को सौपी गई और उसने ऐसी क्रूरता दिखाई कि लोगो को कहना पडा कि वह सेनानायक होकर भी कसाईखाने का काम न भूला था । ५ अक्टूबर को एक एक करके उसने एलिस, हे, लुशिगटन आदि का कत्ल करा डाला। जब नवाब की फौज के सिपाहियो ने 'हलालखोर' का काम बता कर इसे करने से इनकार कर दिया तब उसने उन्हे कठोर दड देकर बाकी काम पूरा करा लिया । एक डाक्टर फुलर्टन को छोड और कोई जीवित न रह सका । एलिस के नन्हे बच्चे को भी समरू ने दया का पात्र न समझा । २८ अक्टूबर को अगरेज मुगेर से पटने

* "रियाजुस्सलातीन" के लेखक ने, १७८६ में डाक मुशी का काम करते हुए भी लिखा था कि "गुरगिन खा उन सेनानायको तथा अन्य पदाधिकारियो मे था जो (अगरेजो के) षड्यन्त्र में सहयोगी थे।"

के पास पहुचे और आक्रमण की तैयारी करने लगे । ६ नवम्बर को किले पर उनका अधिकार हो गया, पर मीर कासिम इससे पहले ही अपने परिवार को रोहतासगढ भेज, पटने से प्रस्थान कर चुका था ।

वास्तव में उसका उद्देश था अवध के नवाव वजीर शुजाउद्दौला की शरण लेना । जव मेजर ऐडम्स ने उसका पीछा किया तव रोहतासगढ़ से भी धन-जन को अन्यत्र भेज कर मीर कासिम कर्म्मनाशा पार चला गया और ऐडम्स को ससराम लौट जाना पडा ।

मीर कासिम वनारस पहुचा तो राजा वलवन्त सिंह ने उसकी आवभगत की । शुजाउद्दौला का आश्वासन उसे पहले ही मिल चुका था । यह कुरान पर अपने हाथ से लिखे हुए, सहायता के वचन के रूप मे था । मीर कासिम को कुछ लोगो ने कहा भी कि शुजाउद्दौला वात का धनी नही तो उसे विश्वास न हुआ और वह वनारस से इलाहावाद चला गया । वहा शाहआलम और शुजाउद्दौला के लखनऊ से आने पर उसने दोनो से मुलाकात कर उनसे सहायता मागी । दरवार मे अव कूटनीतिक घात-प्रतिघात होने लगे । मीर कासिम विपन्न हो कर भी अभी धनवान् वना हुआ था । उसने दरवारियों को चटाना शुरू कर दिया । अगरेजो को और मीर जाफर को इसकी खवर मिली तो वे भी चुपचाप न वैठ सके । मुर्शिदावाद से शाहआलम के पास दूत जाने-आने लगे । शाह आलम और शुजाउद्दौला एक पैर इस नाव पर तो एक पैर उस नाव पर रखना ही कुछ समय के लिए सवसे

अच्छी नीति समझते थे । शुजाउद्दौला का प्रधान मत्री बेनी बहादुर मीरजाफर के पक्ष मे था। मीर कासिम को आश्वासन मिल जाने पर भी वह अगर-मगर करने लगा । उसने ऐसा उपाय किया कि मीर कासिम को शाह आलम की ओर से कुछ समय के लिए और ही लडाई पर बुदेलखड की ओर जाना पडा। वहा से जीत कर लौटने पर ही शुजाउद्दौला के साथ उसकी सधि हुई जिसके द्वारा उसने सहायता के मूल्य के रूप में, उसे ग्यारह लाख रुपये प्रतिमास देना स्वीकार कर लिया ।

उधर पटने में मीर मेहदी खा मीर जाफर का पल्ला पकड चुका था और उसे घुडसवारो के सेनानायक का पद भी मिल चुका था। मेजर ऐडम्स के मर जाने पर कारनक फिर अगरेज सेनापति वन चुका था । जब अगरेजो ने देखा कि शुजाउद्दौला बिहार पर चढाई किये बिना न रहेगा, तब वे भी बक्सर के पास मोरचा-बदी कर रसद इकट्ठी करने लगे । पर इसमें सफलता न होने के कारण उन्हें अप्रैल १७६४ में पटने की ओर हटना पडा।

अन्त में शुजाउद्दौला की सेना ने विहार पर चढाई कर पश्चिम के प्रदेश पर अधिकार कर लिया और कुछ समय के लिए अगरेजों की छावनी को भी घेर लिया। पर बरसात आ जाने पर उसे अपना मुकाम बक्सर में ही करना पड़ा। अंगरेज भी फिर वही जा पहुँचे । मेजर कारनक कमजोर समझा जाता था और उसकी ईमानदारी पर भी शुवहा होने लगा था । इसलिए उसकी जगह मेजर मुनरो सेनापति वना कर वहा भेजा गया । अगरेजो की सेना में इधर असतोष वढ चला था और वह विद्रोह का रूप भी धारण कर चुका था । वरसात का समय मुनरो ने इस विद्रोह

का दमन करने मे और सैनिको के अभाव-अभियोग दूर करने में ही विताया । पर जहा उसके दल मे व्यवस्था सुधरी वहा शुजाउद्दौला के अपने दल मे वैर-फूट की वेल वढ़ने लगी । समरू मीर कासिम से लड-झगड़ कर उससे अलग हो गया और उसने शुजाउद्दौला से यहा तक कह डाला कि मीर कासिम उसकी जान का गाहक हो रहा था । इसका फल यह हुआ कि शुजाउद्दौला मीर कासिम का शत्रु हो गया और उसका धन छीन कर तथा उसे अपमानित कर अपने खेमे से वाहर निकलवा दिया। उसके ऐसे व्यवहार से भग्नहृदय होकर मीर कासिम ने फकीरी लिवास में वही धरना दे डाला । कुछ समय वाद समझाने-वुझाने पर अपने खेमे मे गया भी तो वहा काल के रूप मे समरू आ उपस्थित हुआ । उसने मीर कासिम का खेमा घेर कर लूट-मार शुरू कर दी, जिससे वेगमो को भी वेइज्जत होना और लुटना पड़ा। लगड़े हाथी पर सवार होकर, एक स्वामिभक्त मुसलमान सेवक और वाल वच्चो के साथ, मीर कासिम ने विहार से अतिम प्रस्थान किया ।

अगर अंगरेजो के वक्सर पहुचते ही उन पर शुजाउद्दौला की ओर से आक्रमण होता तो उन्हें हारना ही पडता । पर शुजा-उद्दौला की छावनी मे डके के वजाय सारगी-तवले वजने लगे थे। मीर कासिम को धता वता कर शुजाउद्दौला अन्त में लडने चला भी तो २२ अक्टूवर के युद्ध में उसे वुरी तरह हारना और रुहेलखड की ओर भाग जाना पडा। वेपेंदी के लोटे की तरह लुढ़कते रहने वाले शाह आलम ने फिर अगरेजो से दोस्ती कर ली । इस लडाई की ऐतिहासिक विशेपता इस वात में है कि

इससे बगाल-बिहार मे अगरेजो का मार्ग निष्कटक हो गया और वे अब अजेय माने जाने लगे ।

मीर कासिम[८] जान बचा कर कही अज्ञात-वास करने चला गया। पर उससे फिर कुछ बन न पडा । जून १७७७ में दिल्ली के पास एक कस्बे मे किसी शख्स की लाश पडी हुई मिली थी । पास ही एक पुराना दुशाला भी मिला था। कहा गया है कि वह लाश मीर कासिम की ही थी और वह दुशाला ही उसका सर्वस्व रह गया था।

टिप्पणी

(१) पृष्ठ १९३—१७२९ में मुर्शिदाबाद के बाजार-भाव इस प्रकार थे—

वासफूल चावल	फी रुपया	१	मन	१०	सेर
मोटा (पूरबी) चावल	,,	४	,,	२५	,,
मोटा (अन्य जाति का) चावल	,,	७	,,	२०	,,
गेहूँ (बढ़िया)	,,	३	,,	०	,,
जौ	,,	८	,,	०	,,
तेल (बढ़िया)	,,	०	,,	२१	,,
घी	,,	०	,,	१०॥	,,

१७४० के बाद हर जगह दाम तेज हो चले थे। उड़ीसा में तो कहीं कहीं चावल का भाव आठ आना सेर तक हो गया था। कलकत्ता और स्थानों की अपेक्षा सुरक्षित होते हुए भी, वहा १७४६ में चावल एक रुपये को ३० सेर ही बिकने लगा था। कपनी ने दामो को बाधने के लिए कुछ समय तक कट्रोल चलाया। मुनादी करा दी गई कि जो व्यापारी बढ़िया चावल फी रुपया ३४ सेर और घटिया चावल ५० सेर से कम देगा उसके साथ सख्त कार्रवाई की जायगी। पर दाम बाधे न जा सके। १७५२ में चावल का बाजार-भाव २२ सेर ही हो चला था। और बाजार-भाव इस प्रकार थे—

गेहूँ	रु० ४–१०–०	को १ मन ६ सेर
आटा	,, ८– ०–०	को १ मन
तेल	,, ११– ०–०	को १ मन

पश्चिम बगाल की स्थिति का वर्णन करता हुआ, "महाराष्ट्र पुराण"-रचयिता गंगाराम कहता है कि "बर्गी या मराठे जहा तक लूट-मार कर सकते थे करने से बाज नहीं आते थे। इसका फल यह हुआ कि खाद्य पदार्थों का घोर

अभाव हो गया । चावल, दाल, तेल, घी, आटा, चीनी, नमक, हर चीज का दाम रुपया सेर हो चला । लोगो को इतना कष्ट था कि हजारो भूखो मर गये ।

कारीगरों के जहा-तहा भाग जाने, मजदूरी वढ जाने और कपास के दाम में तेजी आने के कारण कपडा भी वहुत महगा हो चला था । पूरव बगाल में मराठो के उपद्रव न होते हुए भी ढाके में १७३८ और १७५२ के वीच दाम प्राय ३० प्रतिशत ऊँचे हो गये थे और कई तरह के माल का तो मिलना भी अत्यन्त कठिन या असभव हो गया था—श्री कालीकिंकर दत्त लिखित "अलीवर्दी ऐंड हिज टाइम्स" (अगरेजी) के आधार पर।

(२) पृष्ठ २०८—ईस्ट इडिया कपनी को वगाल, विहार और उडीसा की दीवानी मिल जाने पर जानोजी ने उससे चौथ की रकम तलव की और कपनी की ओर से कटक की वापसी का प्रश्न उठाया गया । इस वात पर समझौता भी हो गया कि मराठे कटक छोड देंगे और अगरेज उन्हें हर साल वारह की जगह सोलह लाख दिया करेंगे । पर यह कार्य में परिणत न हो सका। उस समय कपनी के कर्मचारियो ने इस वात की वडी छानवीन कराई थी कि कभी न कभी उडीसा या कम से कम कटक लौटा देने के लिए रघुजी या जानोजी सधि-वद्ध था या नही । उनका कहना था कि जव तीनो प्रान्तो की चौथ के रूप में मराठे वारह लाख रुपये पाते आ रहे थे तव उन्हें उडीसा प्रान्त को भी दवा कर वैठ जाने का क्या अधिकार था ? मराठो का कहना था कि अलीवर्दी खा उन्हें उडीसा प्रान्त तो दे ही चुका था, उसके अलावा उन्हें हर साल वारह लाख रुपये देना स्वीकार कर चुका था।

सन्धिपत्र में इस रकम के वारे में अलीवर्दी खा की ओर से कहा गया था—

"अपनी तथा शहामतजग, सौलतजग और सिराजुद्दौला की ओर से मैं इकरार करता हूँ कि सम्राट् अहमदशाह के राज्यकाल के चौथे वर्ष के जिल्काद महीने के ९ वें दिन अर्थात् १८ आसिन ११५७ वगला वर्ष से आरम्भ कर, मैं वगाल, विहार और उडीसा की चौथ की मद में रघुजी भोसले महाराज (छत्रपति रामराजा) को हर साल वारह लाख रुपये दिया करूँगा। इस रकम का

भुगतान रघुजी के इच्छानुसार या तो जगत्सेठ की या महाराज स्वरूपचन्द की मार्फत दो छमाही किस्तो मे वनारस में हुआ करेगा। शर्त यह होगी कि रघुजी या उनके वशज या अन्य मराठे या रघुजी के मित्र नरेश, न तो इन प्रान्तो में आसन मार कर वैठेंगे, न प्रवेश करेंगे, न यहा के जमीदारो को किसी तरह सतायेंगे। अगर किसी से मेरी लडाई हो गई तो वह खुद आकर या अपने किसी आत्मीय को भेज कर मेरी सहायता करेंगे। जितने सैनिक मैं साथ लाने को कहूँगा उतने ही लावेंगे। प्रत्येक सैनिक को दाल-रोटी के लिए मैं १) प्रति दिन के हिसाव से दूगा। उनकी सेना को इसी से सन्तुष्ट होना पडेगा और मुझसे अपने घर जाने की आज्ञा मिलते ही वह विना मेरी प्रजा को कोई कष्ट पहुचाये यहा से चल देगी।"

(३) पृष्ठ २११—अलीवर्दी खा (उपनाम महावत जग) की मृत्यु, ८० वर्ष की अवस्था में, शोथ-रोग से हुई।

वह वडा सयमी था। न शराव पीता था न तमाकू। नाच-रग में भी उसकी कोई दिलचस्पी न थी। हा, शिकार खेलने का शौक उसे जरूर था।

"मुताखरीन" में दी हुई उसकी दिनचर्या के अनुसार —

वह प्राय. ४ वजे उठ जाता। शौचादि से निवृत्त होने, नमाज पढ़ने और कुछ मित्रो के साथ कहवा पीने में तीन घटे लग जाते।

७ वजे वह दरवार करने वैठता। वहा पूरे दो घटे विताता।

९ से १० वजे तक वह दूसरे कमरे में जाकर काव्य, उपाख्यानादि सुनता।

१० से १२ वजे तक का समय नहाने-धोने और खाने-पीने के लिए नियत था।

१२ वजे वह आराम करने चला जाता और १ वजे उठ कर वजू करता, नमाज पढता और कुरान का पाठ कर एक प्याला वर्फ या शोरे से ठढा किया हुआ पानी पीता। चौवीस घटो में उसके लिए यही काफी होता।

इसके वाद मौल्वी-मुल्ला आते और इस विद्वत्परिषद् का ३ वजे विसर्जन होता।

३ से ५ तक एक अन्तरग सभा होती, जिसमें जगत्सेठ तथा अन्य विशिष्ट पदाधिकारी ही सम्मिलित हो सकते ।

५ से ७ तक का समय हसी-मजाक के लिए था । कुछ लोग ऐसे थे जिनकी जबान कमाल पैदा कर देती । उनकी पारस्परिक नोक-झोक देखने-सुनने और याद रखने की चीज होती ।

अब बत्ती जलाने का समय हुआ—नौकर-चाकर बाहर चले गये—बेगमें आ पहुँची और उनसे वार्तालाप होने लगा ।

नियमानुसार अलीवर्दी खा कुछ ताजा या सूखा फल खाकर ही ब्यालू करता । खाते-खिलाते, हँसते-हँसाते उसके सोने का समय हो आता । स्त्रिया अन्त पुर चली जाती । शेखचिल्ली की-सी कोई कहानी सुनता हुआ वह नीद लेने लगता । रात को हर दो-तीन घटे बाद नीद टूट जाती, पर वह नियत समय पर उठे बिना न रहता ।

(४) पृष्ठ २१३—कम्पनी को दीवानी मिल जाने पर बगाल और बिहार की ही आय प्राय २ करोड ६८ लाख बताई गई थी । और वह भी रुपयो में नही, "सिक्को" में । इसका ब्योरा यह था —

(१) बगाल

१—बर्दवान, मिदिनीपुर आदि जिलो को छोडकर बाकी हिस्से का माल
प्राय १ करोड ४६ लाख

२—कम्पनी को मिले हुए बर्दवान, मेदिनीपुर, चटगाव, कलकत्ते और चौबीस परगने का माल प्राय ५५ लाख

माल का जोड प्राय २ करोड १ लाख

३—चुगी, जुर्माना इत्यादि से होने वाली आय
प्रायः ६ लाख

कुल जोड प्राय २ करोड ७ लाख

(२) विहार

१७६६ में माल	प्राय ७५ लाख
पटने में डच कपनी से मिलने वाला नजराना	प्राय. १५ हजार
जोड	प्राय· ७५ लाख १५ हजार
मिनहा	प्राय १४ लाख
अर्थात्	
जागीरदारो को छूट	प्राय ९ लाख
नवाव को नजराना	प्राय· १ लाख
शितावराय का वेतन	प्राय. १ लाख
उसे जरूरी खर्च के लिए मिलने वाला भत्ता	प्राय ३ लाख

इस प्रकार वगाल-विहार से होने वाली आय प्राय २ करोड ६८ लाख थी।

(५) पृष्ठ २४५—हालवेल ने लिखा है कि मरने से पहले अलीवर्दी खा ने एक दिन सिराजुद्दौला को वुलवाया और उसे यह अन्तिम उपदेश दिया —

"मैंने तुझे यथासभव सुरक्षित कर दिया। समय मिलता तो तेरी एक और समस्या हल कर जाता। पर मेरी वाजी खतम होने पर है, तुझे वह समस्या अव खुद हल करनी होगी। तिलगाना में अगरेज और फरासीसी जो कुछ कर चुके है, उसका ध्यान रखना। उधर के नवावो के आपस के झगडो मे लाभ उठाकर उन्होने सारे प्रान्त की वदरवाट कर ली है। उनसे सावधान रहना। यहा सव से वलिष्ठ अगरेज है। तूने उनका माथा कुचल दिया तो और विदेशी तेरा कुछ भी विगाड न सकेंगे। उन्हें किलेवन्दी करने या सैनिक रखने तो हर्गिज मत देना। अगर तूने मेरी सलाह न मानी तो तेरा राज्य रहने का नहीं।"

हालवेल किस्सा-कहानी लिखने में सिद्धहस्त था। उस समय भी (१७५६) दूसरे अगरेजो ने उसकी वात को मनगढत वताया था। पर वुद्धि गवाही नहीं देती कि वात विल्कुल निराधार रही होगी। अगरेज इतिहासकार डाडवेल के

कथनानुसार "यह सभव न था कि दक्षिण में दो मुसलमान नवाब मार दिये जाय, तीसरा विधर्मियो के हाथ की कठपुतली बनकर रहे और एक मुसलमान नाजिम के दरबार में इन बातो की चर्चा या इन पर टीका-टिप्पणी भी न हो। अलीवर्दी खा ने यह जरूर कहा होगा, चाहे जब कहा हो, चाहे जिन शब्दो में कहा हो। इस बात का तो ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है कि जब निजामुल्मुल्क के बेटे नासिर जग के मारे जाने का समाचार मुर्शिदाबाद पहुँचा था तब उसके द्वारा दडित होने से फरासीसी बाल बाल बचे थे।"

(६) पृष्ठ ३०१—पडित जवाहरलाल नेहरू अपनी "हिन्दुस्तान की कहानी" (श्री रामचद्र टडन-कृत हिन्दी अनुवाद) में लिखते है—

"एक खास ध्यान देने की बात यह है कि हिन्दुस्तान के वे हिस्से जो अँगरेजो के कब्जे में सब से ज्यादा अर्से से रहे है आज सब से ज्यादा गरीब है। अस्ल में एक ऐसा नक्शा तैयार किया जा सकता है जिससे ब्रिटिश राज्य-काल के माप और क्रमश निर्धनता की वृद्धि का घनिष्ठ सबध प्रकट हो। कुछ बडे शहरो से या कुछ नए औद्योगिक प्रदेशो से इस जाच में कोई बुनियादी फर्क नही आता। जो बात ध्यान देने की है वह यह है कि कुल मिलाकर आम जनता की हालत क्या है, और इस बात में कोई शक नही है कि हिन्दुस्तान के सब से ज्यादा गरीब हिस्से बगाल, विहार, उडीसा और मद्रास प्रेसीडेंसी के हिस्से हैं। रहन-सहन का सब से अच्छा मापदड पजाब में है। अँगरेजो के आने से पहले बगाल निश्चित रूप से एक धनी और समृद्धिशाली प्रात था। इन विषमताओ के कई कारण हो सकते है। लेकिन यह बात समझ पाना मुश्किल है कि बगाल, जो इतना धनी और समृद्धिशाली था, ब्रिटिश शासन के १८७ वर्षों में, अँगरेजो द्वारा उसकी दशा सुधारने और वहा की जनता को खुदमुख्तारी की कला सिखाने की जबर्दस्त कोशिशो के बावजूद, आज गरीब, भूखे और मरते हुए लोगो का भयानक समूह है।

"हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन का पहला पूरा तजुर्बा बंगाल को हुआ। उस राज्य की शुरुआत खुल्लमखुल्ला लूट-मार से हुई, और उसमें ज्यादा से ज्यादा जमीन का लगान सिर्फ जिंदा किसान से ही नहीं, बल्कि उसके मरने पर

भी वसूल किया जाता था। हिन्दुस्तान के अँगरेज इतिहासकार एडवर्ड टामसन और जी० टी० गैरट* हमको बताते हैं कि, अँगरेजो के दिमाग में दौलत के लिये इतना जबर्दस्त लालच भरा हुआ था कि कोर्टेज और पिजारो के युग के स्पेनवासियो के समय से लेकर आज तक उसकी मिसाल नही मिल सकती। खास तौर से बगाल में तो उस वक्त तक शाति नही हो सकती थी जब तक कि वह चूसते चूसते खोखला न रह जाय। इसके बाद कितने ही वर्षों तक अँगरेजी व्यवहार की भयकर आर्थिक अनैतिकता के लिए क्लाइव खास तौर से जिम्मेदार था—वही क्लाइव, वही साम्राज्य-निर्माता, जिसकी मूर्ति लदन में इडिया आफिस के सामने खड़ी है। यह तो खुली हुई लूट थी। पैगोडा वृक्ष को बार बार हिलाया गया। यहा तक कि वह वक्त आया कि बगाल को अत्यन्त भयकर अकालो ने बरबाद कर दिया। बाद में इस ढर्रे को तिजारत बताया गया, लेकिन उससे क्या असर होता है। इस तिजारत को सरकार का नाम दिया गया, और तिजारत क्या थी खुली लूट थी। इस ढग की मिसाल इतिहास में नही है। और यहा यह बात ध्यान में रखने की है कि यह चीज अलग अलग नामो में और अलग अलग शक्लो में कुछ वर्षों तक ही नही बल्कि कई पीढियो तक चलती रही। खुली और सीधी लूटमार की जगह कानूनी हुलिया में, शोषण ने ले ली, और हालाकि उसकी वजह से खुलापन कम हो गया लेकिन हालत बदतर हो गई। हिन्दुस्तान में शुरू की पीढियो में ब्रिटिश राज्य में जो हिंसा, धन-लोलुपता, पक्षपात और अनैतिकता थी, उसका अदाज भी लगाना मुश्किल है। एक बात ध्यान देने की है कि एक हिन्दुस्तानी लफ्ज, जो अँगरेजी भाषा में शामिल हो गया है 'लूट' है। एडवर्ड टामसन ने कहा है और यह बात सिर्फ बगाल के हवाले में ही नही कही गई है, "ब्रिटिश हिन्दुस्तान के शुरू के इतिहास का ध्यान आता है, जो कि शायद दुनिया भर में, राजनीतिक छल की सबसे बडी मिसाल है।"

---

* एडवर्ड टामसन और जी टी गैरेट "राइज एड फुलफिल्मेंट आव ब्रिटिश रूल इन इडिया" (लदन, १९३५)

"इस बात का नतीजा, यहा तक कि शुरू के बरसो में ही इसका नतीजा यह हुआ कि १७७० का अकाल पडा जिसने बगाल और बिहार की करीब एक तिहाई आबादी को खत्म कर दिया । लेकिन यह सब प्रगति के हक में हुआ था और बगाल इस बात पर घमंड कर सकता है कि इगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति को जन्म देने में उसने बहुत मदद की। अमेरिकन लेखक ब्रुक ऐडम्स हमको बताता है कि यह किस तरह हुआ । 'हिन्दुस्तानी-दौलत के इगलैण्ड आने से और राष्ट्र की पूजी में बहुत बडी बढवार हो जाने से, सिर्फ उसकी ताकत का भडार ही नही बढा, बल्कि उससे उसकी गति में लचीलेपन के साथ बहुत तेजी भी आई। प्लासी के बाद बहुत जल्दी ही बगाल की लूट लन्दन में पहुँचने लगी और तुरन्त ही उसका असर हुआ मालूम देता है, क्योंकि सब प्रामाणिक लेखक इस बात से सहमत है कि औद्योगिक क्राति सन् १७७० से शुरू हुई। प्लासी की लडाई १७५७ में हुई और उसके बाद जिस तेजी से तब्दीली हुई, उसकी बराबरी की शायद कही भी मिसाल नही है । सन् १७६० में फलाइग शटिल का आविष्कार हुआ। सन १७६४ में हार्ग्रीव्स ने स्पिनिंग जैनी का आविष्कार किया, सन् १७७६ में क्राम्पटन ने कातने को अपनी मशीन निकाली, सन १७८५ में कार्टराइट ने शक्ति सचालित करघा पेटेन्ट कराया और १७६८ में वाट ने अपना भाप एञ्जिन बना कर पूरा किया ।—हालाकि इन मशीनो से उस समय के गतिशील आन्दोलनो को निकासी का रास्ता मिला, लेकिन वह गति और तीव्रता उनकी वजह से नही थी । आविष्कार खुद तो गतिहीन होते है वे पर्याप्त शक्ति के उस भडार के इकटठे होने की प्रतीक्षा करते है जो उन्हें चालू करे । उस भडार की शक्ति हमेशा ही रुपये के रूप में होगी—तिजोरी में इकट्ठा रुपया नहीं, बल्कि फेर में पडा हुआ रुपया। हिन्दुस्तान के खजाने के आने और उसके बाद जो रुपये की लेन-देन फैली उसके पहले इस काम के लिए काफी शक्ति नहीं थी ।

"शायद जब से दुनिया शुरू हुई है किसी भी पूंजी से कभी भी इतना मुनाफा नही हुआ जितना कि हिन्दुस्तान की लूट से, क्योंकि, करीब करीब पचास बरस तक ग्रेट ब्रिटेन का कोई भी मुकाबला करने वाला नही था ।"

(७) पृष्ठ ३१३—श्री पूर्णचन्द नाहर ने १९२३ में "जगत्सेठो की वशावली" शीर्षक लेख के साथ एक पुराने फरमान का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया था। उससे जान पडता है कि बादशाह अहमद शाह ने १७५२ में जगत्सेठ महतावराय के आवेदन पर, उन्हें पारसनाथ की पहाडी दे दी थी। फरमान में इसका कारण बताया गया था कि यह श्वेताम्बरी जैनियो का तीर्थस्थान था, महतावराय स्वय श्वेताम्बरी थे और सम्राट् से ऐसे दयादान के पूरे अधिकारी थे। इस पहाडी के अलावा उन्हे मधुवन नामक स्थान में एक कोठी भी दे दी गई थी जिसका वर्णन इस प्रकार किया गया था—

जमीन लाखिराज—रकवा ३०१ बीघे।

चौहद्दी—

पश्चिम—जयपुरिया उपनाम जयनगर का नाला।

पूर्व—पुराना नाला।

उत्तर—श्वेताम्बरी जैनियो का बनवाया हुआ जलभरी-कुड।

दक्षिण—पारसनाथ की पहाडी।

फरमान की पीठ पर अहमद शाह के वजीर खा करीमुद्दीन (कमरुद्दीन) खा बहादुर के दस्तखत थे।

जान पड़ता है कि मूल फरमान कलकत्ता हाई कोर्ट के किसी मुकदमे में सबूत के तौर पर पेश हुआ था और इसका अगरेजी अनुवाद १९ मार्च १८६८ को हुआ था।

इडिया हिस्टोरिकल रेकार्ड्स कमीशन के पाचवें अधिवेशन में नाहरजी ने यह अनुवाद प्रदर्शित किया था।

(८) पृष्ठ ३७१—अपने जीवन के अन्तिम दिनो में मीर कासिम कहा रहता था, क्या करता था ऐसी बातों पर कुछ प्रकाश पोलियर नामक एक स्विस-फ्रेंच इजीनियर के विवरण से पडता है। इसका अगरेजी अनुवाद डाक्टर प्रतुलचन्द्र गुप्त "शाह आलम ऐंड हिज कोर्ट" के नाम से सपादित तथा प्रकाशित कर चुके है।

पोलियर ईस्ट इडिया कपनी का कर्मचारी था। उसकी स्वीकृति से वह कुछ बरसो तक शुजाउद्दौला का नौकर रहा। कुछ समय उसने शाह आलम सानी की सेवा में भी विताया।

वह लिख गया है कि

"मीर कासिम वक्सर छोडने के वाद मारा मारा फिरा, अन्त में दिल्ली के पास पलवल में जा वसा। वहा टूटी-फूटी दो दीवारो के बीच एक पुराने खेमे में रहता था। शायद नजफ खा उसे सहायता के रूप में कुछ नियमित रूप से दिया करता था। उसके पास कुछ धन जरूर था, पर अपनी रहन-सहन से वह इसे जाहिर नहीं होने देता था

"वह अपना खाना आप ही तैयार कर लेता था। नजूम में विश्वास रखने के कारण, उसे जो समय पत्र-व्यवहार से बचता था उसका उपयोग यह देखने में करता था कि उसके ग्रह कब अच्छे होने वाले थे।"

पोलियर ने सुना था कि वह ६ जून १७७७ को मरा था और उसका दुशाला बेच कर ही उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया की गई थी।

मीर कासिम के मरने पर उसके बाल-बच्चे और भी पतले पड गये। जो कुछ उनके पास बच गया था उसे पडोसियो ने लूट लिया। औरतो का तो पता न चला कि उन्हें कौन उडा ले गया, पर उसके दोनो छोटे बच्चो को नजफ खा ने पनाह दी। अपनी छावनी में उसने उनके लिए एक छौल्दारी और एक पाल्की का इन्तजाम करा दिया था। पोलियर ने उन्हें वहा एक दिन अपनी आखो देखा भी था।

खुशालचंद

सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखैः !

वही चन्द्र, अब थोडी ही बची हुई किरणो के साथ, आकाश से गिरता आ रहा है ।

... ...

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ;
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्याम्
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ।

... ...

उधर वनस्पतियो का स्वामी
अस्त-शिखर पर जाता है,
इधर अरुण के संग सूर्य लो
उदय-शिखर पर आता है ।

एक साथ ही दो तेजस्वी
चढ़ते—गिरते जाते है,
समयचक्र की गतिविधि मानो
जग को स्पष्ट बताते हैं ।

—शाकुन्तल (पद्यानुवादक श्री अनिरुद्ध)

(१)

महताबराय और स्वरूपचन्द के मारे जाने पर, पहले के ज्येष्ठ पुत्र खुशालचन्द को जगत्सेठ की और दूसरे के ज्येष्ठ पुत्र उद्वतचद को महाराज की पदवी प्राप्त हुई। खुशालचन्द के सगे भाई थे गुलावचन्द, सुमेरचन्द और सुखालचन्द; उद्वतचन्द के अभयचन्द और मेहरचन्द। परपरानुसार, ये सव के सब सेठ कहाने लगे।

और भाई तो कैद होकर मुगेर जाने से बच गये थे, पर गुलावचन्द और मेहरचन्द को जाना पडा था। मीर कासिम ने इनकी जान तो नही ली पर दोनो भाई शाह आलम के पजे मे फस गये और इनके वाप-चचा इनकी रिहाई के लिए मीर जाफर से सिफारिश कराने लगे। शुजाउद्दौला ने वहैसियत वजीर उसे लिखा कि "सेठो के लडको की रिहाई के सम्वन्ध मे आपने जो अनुरोध किया है उसे मैंने वादशाह सलामत तक पहुँचा दिया है। राजा वेनी बहादुर शीघ्र ही दरबार में उपस्थित होकर उन्हे इसकी याद दिलायेंगे और सारी वातें तै-तमाम होते ही आपको इसकी सूचना भेज देंगे।" वास्तव मे शाह आलम को सोने की चिडिया हाथ लग गई थी और वैसे सम्राट् से यह आशा करना व्यर्थ था कि वह उदारतापूर्वक ही पिजरा खोल देने की इजाजत देगा। दोनो की रिहाई हुई तो खुशालचन्द के कीमत चुका देने अर्थात् वादशाह का मुह मोतियो से भर देने पर। तव तक गुलावचन्द और मेहरचन्द जहा-तहां शाह आलम की छावनी मे दस-वारह महीने नजरवन्द रह चुके थे।

१६ अक्टूबर १७६४ को जगत्सेठ खुशालचन्द और सेठ

उद्वतचन्द का एक खत कलकत्ते पहुचा जिसमे उन्होने गवर्नर को लिखा था —

"कुछ दिन पहले हम आपको दो और पत्र भेज चुके है। दूसरा पत्र हमने अपनी भेंट के साथ भेजा था और आपको यह सूचित किया था कि हमारे भाई सेठ गुलावचन्द और वावू मेहरचन्द यहा पहुच गये है । आपको दोनो पत्र मिल गये होगे । हमारा दुर्भाग्य है कि आपका कोई उत्तर नही मिला है। वहुत कष्ट झेलने के वाद हमारे भाइयो की रिहाई हो गई और दोनो सकुशल घर पहुच गये । हम सव ने आपको धन्यवाद दिया और यह मनाया कि आप फूलें-फलें और दीर्घायु हो। जो कुछ हम भेज चुके है उसे स्वीकार कर आप हमें कृतार्थ करेंगे।"

मीर जाफर को सूवेदारी मिलते ही क्लाइव उसे इगलैण्ड से वधाइया भेज चुका था । उसने लिखा था.—

"मेरी हार्दिक इच्छा थी कि आप ही सिहासन को सुशोभित करें और जव वह पूरी हो गई तव मैने पहला काम यह किया कि ईश्वर को धन्यवाद दिया और वाढ दाग कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। वगाल फिर आपकी छत्रच्छाया मे आ गया है, प्रजा को मीर कासिम जैसे अत्याचारी से छुटकारा मिल गया है और सर्वत्र शान्ति हो चली है ।"

वह शान्ति प्रजा के नीरव क्रन्दन का ही दूसरा नाम थी। मीर जाफर के फिर नवाव होते ही कपनी का पाया और भी मजवूत हो गया था और अगरेज मनमानी रीति से नि शुल्क व्यापार तथा अत्याचार करने लगे थे ।

सितम्बर १७६४ में ही मीर जाफर को "बार बार निमत्रण आने पर" कलकत्ते जाना पडा। वहा कौंसिल ने आतिथ्य-सत्कार[1] पर ३४९८ रुपये ही खर्च कर उससे लाखो रुपये देने का वादा करा लिया।

मीर जाफर कपनी को क्षतिपूर्ति के रूप में ३० लाख रुपये देना स्वीकार कर चुका था। उसने अगरेज व्यापारियो की भी क्षतिपूर्ति करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी।

सैनिक व्यय के लिए कपनी को बर्दवान, मेदिनीपुर और चटगाव मीर कासिम से मिल चुके थे। इन चकलो या जिलो से होने वाली आय प्राय ५० लाख रुपये थी। पर कपनी की ओर से कहा गया कि वह शुजाउद्दौला के आक्रमण जैसी असाधारण परिस्थिति मे पर्याप्त नही हो सकती थी—इस अतिरिक्त व्यय के लिए मीर जाफर को स्वीकार करना पडा कि "जब तक वजीर (शुजाउद्दौला) से लडाई बनी रहेगी तब तक मै ३१ जुलाई १७६४ से आरभ कर कपनी को ५ लाख रुपये प्रति मास देता रहूँगा।" मीर जाफर के मर जाने पर उसके उत्तराधिकारी को भी यही प्रतिज्ञा करनी पडी।

इस अतिरिक्त आय के अलावा कपनी को, कपनी के अधिकारियो को और अगरेज व्यापारियो* को क्षतिपूर्ति या पुरस्कार के रूप मे मीर जाफर से मिलने वाली सारी रकम प्राय १ करोड़ २७ लाख रुपये थी।

---

* जहा एक ही अगरेज अधिकारी और व्यापारी दोनो होता था, वहा अधिकारी की हैसियत से वह इनाम-इकराम या नजराना तो पाता ही, व्यापारी की हैसियत से वह अपना नुकसान भी पूरा करा लेता था।

मीर जाफर ने नन्दकुमार को अपना दीवान वनाया—उसी नन्दकुमार को जो चन्दननगर पर चढ़ाई के समय अगरेजो के काम आ चुका था। पलासी के युद्ध के वाद वह क्लाइव का मुशी और दीवान[२] हुआ था और क्लाइव की कृपा से उसकी पदोन्नति भी हुई थी। जिस समय वारेन हेस्टिग्स मुर्शिदावाद में कपनी का प्रधान नियुक्त हुआ था, उस समय नन्दकुमार उन जिलों का तहसीलदार था जहा के जमीदारो से माल वसूल करने का अधिकार मीर जाफर द्वारा कम्पनी को मिल चुका था। तभी से हेस्टिग्स और नन्दकुमार के वीच वह अनवन शुरू हुई थी जिसके कारण नन्दकुमार को एक दिन फासी चढना पड़ा। हेस्टिग्स और वान्सीटार्ट एक ही दल के थे, इस लिए गवर्नर के सद्भाव का भी नन्दकुमार को सहारा न रह सका। उधर मीर कासिम के नाजिम हो जाने पर तो वह न घर का रहा, न घाट का । पर दुर्दिन मे भी वह मीर जाफर का शुभचिन्तक वना रहा। १७६३ की क्रान्ति के वाद उसके अपने दिन भी फिरे विना न रह सके । मीर जाफर के जोर लगाने पर कौसिल ने उसकी वात मान ली और नन्दकुमार उसका दीवान हो गया । शाह आलम से उसे महाराज का खिताव भी मिल गया।

मीर जाफर २४ जुलाई १७६३ को दूसरी वार मसनद पर वैठा था। ५ फरवरी १७६५ को उसकी मृत्यु हुई। वान्सीटार्ट तव तक विदा हो चुका था और कौसिल के प्रेसिडेण्ट का काम स्पेसर नामक एक अधिकारी वम्बई से कलकत्ते जा कर करने लगा था ।

(२)

मीरन के एक ६ साल का वेटा था और वहुतो की दृष्टि में

नाबालिग होते हुए भी वही मीर जाफर का उत्तराधिकारी हो सकता था। पर मरते समय शायद मीर जाफर यह इच्छा प्रकट कर गया था कि मीरन का सौतेला भाई नज्मुद्दौला ही उसका उत्तराधिकारी हो, और उसके मरते ही यह मसनद पर जा बैठा। पर मसनद पर जा बैठना एक बात थी और कौसिल की स्वीकृति प्राप्त कर लेना और बात। वह स्वीकृति भी उसे मिल गई। उससे सधि करने के लिए एक प्रतिनिधि-मडल मुर्शिदाबाद भेजा गया और नज्मुद्दौला के सामने उसने जो मसौदा रख दिया उस पर अनिच्छुक होते हुए भी उसे दस्तखत कर देने पडे।

इस प्रतिनिधि-मंडल के सदस्य थे मि० जान्स्टन, मि० सीनियर, मि० मिड्ल्टन और मि० लेस्टर। इन लोगो ने २५ फरवरी को ही कौसिल को लिखा कि, "नवाब ने मसौदे को चार बार पढा—पुराने सधि-पत्र से इसका मिलान किया—फिर सोच-समझकर उन्होने अपनी स्वीकृति दे दी।" पर नवाब ने सेलेक्ट कमिटी को इस सम्बन्ध मे और ही कुछ लिखकर यथार्थ बात उसे बता दी।

उसके पत्र का साराश यह था—"मेरा विश्वास था कि मि० जान्स्टन, मि० सीनियर आदि मुझसे सहानुभूति दिखायेंगे, मुझे सान्त्वना देंगे। लेकिन वे तो मिलते ही और ही बातें करने लगे—मातमपुर्सी के बजाय और ही प्रसग छेड बैठे। कहा कि ढाके से मुहम्मद रजा खा को बुलवाइए और जब तक वह आ न जायं दीवानखाने में न बैठिए। मैंने उन्हे यह आपत्ति-जनक बताया और पिता जी का लिखित आदेश भी दिखाया। पर उन्होने यही कहा कि उसका अब कोई मूल्य न रहा, अब तो आपको हमारी बात माननी होगी। फिर उन्होने मेरे सामने एक कागज निकाल कर

रख दिया और वोले कि इस पर दस्तखत कीजिए। मजमून पढने के लिए मैंने नन्दकुमार को वुलवाया तो मि० जान्स्टन और मि० लेस्टर के तलवो से आग लग गई। मेरे मुशी ने पिछले सधि-पत्र से मिला लेने की सलाह दी तो मि० जान्स्टन ने उसे दरवार से ही निकलवा दिया। मैंने फौरन कागज पर दस्तखत कर दिये और वे उसे ले कर चले गये।

"इसके वाद मुहम्मद रजा खा आ गये और नायव* वन वैठे। आते ही उन्होने यह काम किया कि मुझसे पूछे विना ही नकद और सामान मिलाकर २० लाख से ऊपर की मालियत लुटा दी—जिसे जो मन मे आया दे डाला। अव मि० जान्स्टन उनके सरक्षक वन गये है, मि० लेस्टर उनके वकील और राजा दुर्लभराम उनके साझे-दार। हर मुशी से उन्होने मुचलका ले लिया है और मेरी मोहर को अपने ही पास रखने लगे है। अपनी मरजी से लोगो को नौकरी, खिताव, खिलअत या हाथी-घोड़े दे डालते है—जवाहरात लुटा देने के लिए भी मेरी इजाजत लेना जरूरी नही समझते।"

जनवरी मे ही कपनी के सचालको का यह आदेश आ गया था कि कोई भी अधिकारी किसी भी नवाव या राजा से, विना उनकी इजाजत के चार हजार रुपये से अधिक पुरस्कार या नजराना हर्गिज न ले। पर कौंसिल ने उनके पत्र को रद्दी की टोकरी मे डालकर

---

* मुहम्मद रजा खा की नियुक्ति की वात समवत पहले से ही चल रही थी और मीर जाफर ने इसका इस कारण विरोव किया था कि रजा खा ईमानदार न था—ढाके में वह प्राय वीस लाख रुपये हजम कर चुका था और मागने पर कुछ भी देने को तैयार न था। हा, अँगरेजो से उसकी गहरी छनने लगी थी।

नज्मुद्दौला से—या नायव सूवा मुहम्मद रजा खा से—लाखों रुपये ले लिये थे। मीरन के बेटे को गद्दी न देने का प्रधान कारण यह हुआ था कि उस हालत मे नावालिग नाजिम की ओर से सारा प्रवन्ध कपनी को स्वय करना पडता, जिसका अर्थ यह होता कि कौंसिल किसी से इस प्रकार अपनी मुट्ठी गरम न करा सकती।

मई में क्लाइव कलकत्ते पहुचा। कपनी के हित की दृष्टि से वह मीर जाफर के नाबालिग पोते का ही पक्षपाती था, पर नज्मुद्दौला गद्दी पर बैठ चुका था, कौसिल ने उसे नाजिम स्वीकार कर लिया था, उस स्वीकृति की कीमत मेंबरो ने चुकवा ली थी—इन सब बातो को देखते हुए उसे तखता उलट देना युक्तिसगत न जचा। फिर नज्मुद्दौला से नुकसान ही क्या था? कंपनी के लिए वालिग वेटा भी नावालिग पोते के ही समान था और आखिर जिन अगरेजों ने वहती गगा मे हाथ धो लिये थे उन्होंने उसके पदानुसरण को छोड और क्या किया था?

हा, क्लाइव ने इतना जरूर किया कि कलकत्ते पहुंचते ही उसने सचालको के नये आदेश के पालन की सब से स्वीकृति करा ली और किसको कितना मिला था—कैसे मिला था—इन बातों की जाच भी शुरू कर दी।

भडाफोड होने पर मालूम हुआ कि जवाहरात के अलावा कौंसिल के मेम्बरो को इतना नकद मिल चुका था—

	रुपया
मि० स्पेसर	२१०,०००
मि० प्लेडेल	१०५,०००

मि० सीनिअर	१८०,०००
मि० मिड्ल्टन	१२८,६००
मि० लेस्टर	१२८,६००
मि० वर्डेट	१०५,०००
मि० ग्रे	१०५,०००
मि० जे० जान्स्टन	२५०,०००
मि० जी ,,	५२,५००
	१,२६४,७०० रुपये

क्लाइव के पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि मि० जे० जान्स्टन के दवाव डालने पर ही यह रकम रिश्वत के तौर पर विभिन्न सदस्यों को दी गई थी। यह भी मालूम हुआ कि नकद रुपये का एक अश जगत्सेठ से जवरन वसूल किया गया था।

५ जून को क्लाइव ने खुशालचन्द को कमिटी के सदस्यों के सामने वुलवा कर उनका वयान लिया । उन्होंने कहा कि —

"जव मि० जान्स्टन और कौंसिल के दूसरे सदस्य मुर्शिदावाद पहुंचे, तव उन्होंने हुगली के आमिल मोतीराम से कहलाया कि 'हम लोग नवाव की ओर से नयी व्यवस्था करने आये है, अगर आपने हम लोगो का मुह मीठा कर दिया तो हम आपके लाभ का भी ध्यान रखेगें, वर्ना आपको हानि ही हानि उठानी पड़ेगी। आप पहले लार्ड क्लाइव और दूसरे सदस्यो की ऐसी भेंट कर चुके है। अगर आपने हमें भी सतुष्ट कर दिया तो हम आपके हितचिन्तक वने रहेंगे और आपकी अभीप्टसिद्धि होती रहेगी। पर हमें निराश होना पड़ा तो आपको हमसे किसी प्रकार की सहायता न मिल

सकेगी।' इस पर मैने कहा कि लार्ड क्लाइव ने तो हमसे न कभी कुछ मागा न हमने उन्हे कुछ भी दिया। उन्होने कहलाया कि 'आपको बात मालूम न होगी पर आपके वाप और चचा ने दिया था। अगर आप कारवार करना चाहते है तो हमे खुशी खुशी पांच लाख रुपये दे दीजिए।' लाचार मैने सवा लाख रुपया देना स्वीकार कर लिया—पचास हजार तो नकद और वाकी मुफस्सल में अपना पावना वसूल हो जाने पर। उन्हें यह वात मजूर हुई और मैने मोतीराम और अपने मुत्सद्दियो की मार्फत ५० हजार रुपया भेज दिया। मि० जान्स्टन और उनके साथियो के कलकत्ते लौटने से पहले मेरा पावना वसूल न हो सका। इसी बीच लार्ड क्लाइव यहा आ गये और मै यहा उनसे मिलने आया तो मुझसे पूछताछ की गई। मुझे जो कुछ मालूम था, मैने वता दिया। अपने इस वयान मे एक भी लफ्ज झूठ नही कहा है।"

जब लार्ड क्लाइव ने खुशालचन्द से कहा कि 'मै आशा करता हू कि आपने कोई भी वात घटा-बढा कर नही कही होगी' तो उन्होने वेधडक यह जवाव दिया कि 'इस कागज की कीमत एक करोड़ रुपये से कम नही हो सकती।'

७ और ८ जून को मोतीराम का इजहार हुआ। वह इस प्रकार था —

प्रश्न—तुमने जगत्सेठ के पास जाकर उनसे रुपया मागा?

उत्तर—हा, मैने मागा।

प्रश्न—तुम्हे उनके पास किसने भेजा?

उत्तर—मुहम्मद रजा खा ने मुझे इस्माइल अली खां के साथ जगत्सेठ के पास भेजा।

प्रश्न—तुम्हें मुहम्मद रजा खा के पास किसने भेजा?

उत्तर—मि० जान्स्टन ने।

प्रश्न—मि० जान्स्टन ने तुमसे मुहम्मद रजा खा को क्या कहलाया?

उत्तर—उन्होंने कहा कि रजा खां से जाकर कहो कि हम सेठो से इतना रुपया चाहते है।

प्रश्न—यह सदेसा मि० जान्स्टन ने ही भेजा या और किसी सदस्य ने भी ?

उत्तर—मुझे तो जो कुछ कहा मि० जान्स्टन ने ही।

प्रश्न—मि० जान्स्टन ने यह सदेसा अपनी ही ओर से भेजा या औरों की ओर से भी ?

उत्तर—उन्होंने अपनी ओर से और मि० सीनियर, मि० लेस्टर, मि० मिड्ल्टन की ओर से भेजा।

प्रश्न—हा, तो मुहम्मद रजा खा से क्या वातें हुईं ?

उत्तर—मैंने उन्हे तीन लाख माग कर देने को कहा।

प्रश्न—तुम मुहम्मद रजा खा के पास कव गये थे ?

उत्तर—मुझे पहला दिन याद नहीं, हाँ, वात तै होने में वीस दिन लगे थे।

प्रश्न—एक दिन इधर या उधर तो वता ही सकते हो?

उत्तर—मैं कह नही सकता, पर बात २१ रमजान के करीब की है।

प्रश्न—मुहम्मद रजा खा ने क्या जवाव दिया ?

उत्तर—उन्होंने कहा कि मै जो कुछ कर सकता हूँ करूंगा, पर सेठो से रुपया लेना मुनासिव न होगा। इससे मेरी वदनामी हुए विना न रहेगी।

प्रश्न—जगत्सेठ का बयान सही है या नही ?

उत्तर—है।

प्रश्न—सेठो से रुपया न मिलने पर उनका कारवार वन्द हो जाने के वारे मे तुमने कुछ कहा था ?

उत्तर—हा, मैने यह जरूर कहा था कि अगर सेठो ने कौसिल के मेम्वरो की माग पूरी कर दी तो वे उनके मददगार वने रहेंगे। अगर उन्होने रुपया न दिया तो कौसिल का रुख वदले विना न रहेगा।

प्रश्न—तुम्हारा कहना है कि इस्माइल अली खा तुम्हारे साथ सेठो के पास भेजा गया था। वहा क्या वाते हुई ?

उत्तर—जव इस्माइल अली खा ने ३ लाख रुपया मागा तो जगत्सेठ ने कहा कि अगर १० से १५ हजार तक की अगूठी या और कोई ऐसी ही चीज माँगते तो मै उनकी माग पूरी कर देता। इस्माइल अली ने कहा कि यह तो हर्गिज मजूर नही हो सकता। इस पर जगत्सेठ ५० हजार देने को राजी हो गये, पर इस्माइल अली खा को वह भी मजूर न हुआ। अन्त मे जगत्सेठ ने कहा कि मै खुद मुहम्मद रजा खा से मिल कर वाते कर लूगा।

प्रश्न—दोनो की वातचीत के समय वहा और कौन था?

उत्तर—मै था, पर मैने उसमे कोई भाग नही लिया।

प्रश्न—तुम्हे मालूम है कि उनके वीच क्या तै हुआ?

उत्तर—हा, मैने सुना कि जगत्सेठ पहले ७५,००० रुपये देने को तैयार हुए। फिर वह लाख पर पहुचे और अन्त मे सवा लाख पर। मुझे यह वात मुहम्मद रजा खा से मालूम हुई।

जगत्सेठ वही उपस्थित थे । उनसे पूछा गया कि आपके और मोतीराम के वीच जो वाते हुई उनकी सूचना आपने किसी को दी? उन्होने उत्तर दिया कि हा, मैने सव कुछ अपने भाई को, अपने मुंशी भृगुलाल को और अपने वकील चिस्कीमल को जा सुनाया।

प्रश्न—(मोतीराम से) तुमने सेठों से जो कुछ मागा वह अपनी ओर से या कौसिल के मेम्वरो की ओर से?

उत्तर—मैने जो कुछ मागा मेम्वरो की ही ओर से, खास कर उनकी ओर से जो मुझे भेज चुके थे।

प्रश्न—क्या यह सच है कि जगत्सेठ के यहा से रुपया आते ही मुहम्मद रजा खा ने उसे मि० जान्स्टन के पास मोतीझील भेज दिया और जव मि० जान्स्टन ने सारी वात सुनी तव उन्होने अपनी नाराजगी जाहिर की?

उत्तर—यह सच है कि मुहम्मद रजा खा ने रुपया मोतीझील भेज दिया और मि० जान्स्टन ने यह कह कर नाराजगी जाहिर की कि 'यह रकम इस प्रकार क्यो भेजी गई? यह या तो मोतीराम की मार्फत भेज दी जाती या चुपचाप मुझे दे दी जाती।'

प्रश्न—जगत्सेठ का वयान है कि तुम उनके पास तीन वार

गये—पहली बार जब वह अकेले थे, दूसरी बार जब इस्माइल अली खा मौजूद था और तीसरी बार जब वह अपने भाई के साथ थे। यह सच है ?

उत्तर—हां, मै उनके पास तीन बार गया ।

प्रश्न—कभी उस रुपये के बारे मे भी बात हुई ?

उत्तर—हुई। जब मै पहली बार गया था, तब उन्होने ७५ हजार देना स्वीकार किया था, पर मुझसे कहा था कि कौसिल के मेम्बरो को समझा देना कि हमारी आर्थिक अवस्था ऐसी है कि इससे अधिक हम दे ही नही सकते । मैंने वादा किया कि मेम्बरों को बात समझा दूगा ।

प्रश्न—मुहम्मद रजा खा से तुमने कहा कि अगर सेठ माग पूरी कर देगे तो उनका व्यवसाय सुरक्षित रहेगा, नही तो उनकी ओर कौंसिल का रुख अच्छा न रहेगा। यह बात तुमने अपने मन से कही या किसी के कहने पर ?

उत्तर—मि० जान्स्टन के कहने पर।

प्रश्न—तुमने यहा जो बयान किया है वह सच्चा तो है ?

उत्तर—बिलकुल सच्चा । शुरू मे मै घबराया हुआ था, इसलिए मुमकिन है कि कही कोई गलती हो गई हो ।

१८ जून को मोतीराम को पूरी कौंसिल के सामने उपस्थित होना पडा। सेलेक्ट कमिटी के सामने वह जो इजहार कर चुका था वह उसे पढ कर सुना दिया गया। उसने निम्नलिखित सशोधनो के साथ उसे स्वीकार कर लिया.—

पहले प्रश्न के उत्तर में उसने कहा कि वह मुहम्मद रजा खा

के हुक्म से इस्माइल अली खां के साथ जगत्सेठ के यहा गया था, पर रुपया मागने के लिए नही।

प्रश्न किया गया—रुपया न मिलने पर, सेठो का कारवार न चल सकेगा—यह तुमने मुहम्मद रजा खा से कहा या नही ?

इसका उसने वही उत्तर दिया जो सेलेक्ट कमिटी के सामने दे चुका था। इतना उसने जरूर कहा कि सेलेक्ट कमिटी ने उसके अपने शब्दो को न लिख कर उनका भावार्थ-मात्र लिख लिया था।

एक दूसरे प्रश्न के उत्तर मे उसने मुकर कर कहा—

"जव हम दोनो जगत्सेठ के पास गये थे तव उन्होने अगूठी या वैसी और कोई चीज देने की वात नही कही थी—सिर्फ इतना कहा था कि अगर वीस-पच्चीस हजार रुपये की वात होती तो मै उसे पूरा कर देता। जव इस्माइल अली खा ने इसे अस्वीकार कर दिया तव उन्होने कहा कि मै मुहम्मद रजा खा से खुद मिल कर वाते कर लूगा। जव वह रजा खा से मिले तव उन्होने पचास हजार देना स्वीकार किया।"

"मुहम्मद रजा खा से तुमने जो कहा कि अगर सेठों ने मांग पूरी कर दी तो उनके कारवार को कभी नुकसान न पहुंचेगा, नही तो कौंसिल का रुख फिरे विना न रहेगा—यह वात तुमने अपनी ओर से कही या किसी के कहने पर" ?

इसका उत्तर उसने वही दिया जो कमिटी के सामने दे चुका था।

यही उसकी जिरह समाप्त हुई।

इसके वाद लेस्टर ने कहा कि गवाह से यह पूछा जाय कि "जव मि० जान्स्टन ने तुमसे कहा कि सेठो से हमें नजर मिलनी चाहिए

तब क्या उन्होने यह भी कहा कि तुम जाकर मुहम्मद रजा खा से कहो कि वह इस बात को सेठो तक पहुचा दे ?"

इस सवाल के जवाब मे मोतीराम ने कहा कि हा, मि० जान्स्टन ने मुझसे जो कुछ कहा वह मुहम्मद रजा खा के सामने दोहराने के लिए ही।

इस पर लेस्टर ने अपनी सफाई मे शपथ ग्रहण कर यह बयान किया कि "मोतीराम सेठो के पास जो सदेसा ले गया उसके विषय में मै कुछ भी नही जानता।"

इस मामले की पूरी जाच कर लेने पर सेलेक्ट कमिटी इस निर्णय पर पहुची कि —

१—सेठो को डरा-धमका कर उनसे सवा लाख रुपया ले लिया गया था।

२—नवाब और मुहम्मद रजा खा से सरकार की कमजोरी और नायब के डरपोकपन से फायदा उठा कर उनसे नकद और जिस मिला कर, १,७००,००० रुपये से भी अधिक ऐंठ लिया गया था।

कई साल बाद पार्लमेंट-द्वारा इस सम्बन्ध मे फिर जाच होने पर कुछ लोगो ने यह बयान किया कि नायब और मुहम्मद रजा खा ने जो कुछ दिया था वह अपनी इच्छा से और बिना किसी तरह के बाहरी दबाव के ही। पर जगत्सेठ से मिलने वाली रकम के बारे मे किसी से यह कहते न बन पडा। जेनरल कारनक ने वहा अपने बयान मे कहा कि "सेठों की आदत किसी को भेंट या नजर देने की न थी। उसे एक भी ऐसा अवसर याद न था जब कि उन्होने इस रूप मे किसी को कुछ दिया हो। जिस समय लेस्टर आदि को उन्हें

यह नजराना देना पडा था उस समय वह मुर्शिदाबाद मे ही था। जगत्सेठ ने उससे पूछा था कि लेस्टर ने रकम लौटा दी है, मुझे इस हालत मे क्या करना चाहिए? कारनक ने उन्हे सलाह दी थी कि अगर आपने वह रकम अपनी खुशी से ही दी हो तो अब उसे वापिस नही लेना चाहिए, पर अगर बात और हो तो ले लेना चाहिए। जगत्सेठ ने लौटाई हुई रकम को रख लिया। फिर उन्होने कारनक से कहा कि मालूम नही और मेम्बर क्या करने वाले है। इसमे तनिक भी सदेह नही कि जगत्सेठ से जो कुछ लिया गया था, आखें तरेर कर ही*।"

पर दोषी अगरेज थे—सो भी पदाधिकारी—इसलिए सेलेक्ट कमिटी ने यह कह कर सारी बातो पर चौका लगा दिया कि मोतीराम ने जो धमकी दी थी उससे मि० सीनियर, मि० मिड्ल्टन और मि० लेस्टर का तो कोई सरोकार ही नही था और मि० जान्स्टन ने नजराना लिया और उसका बटवारा किया भी तो वह यह मान लेने को तैयार थी कि मोतीराम ने मुहम्मद रजा खा या सेठो तक जिस भ्रूभग के साथ सदेसा पहुचाया उसकी जान्स्टन को जानकारी न थी।

यो न्यायालय मे विचार का अभिनय समाप्त हुआ और अन्याय प्रमाणित हो जाने पर भी किसी अंगरेज का बाल बाका न हुआ।

क्लाइव का मत था कि बगाल मे कपनी को सेना और धन-संबधी सारा अधिकार अपने हाथ मे कर लेना चाहिए, नही तो

---

* मि० लिट्ल।

कासिम जैसा साप उसे कभी न कभी फिर डसे बिना न रहेगा। नाजिम के दोनो जहरीले दातो को तोड देने के विचार से वह २५ जून को ही मुर्शिदाबाद गया और अनायास ही अभीष्टसिद्धि कर नज्मुद्दौला को और भी निर्जीव कर दिया। उसकी स्वीकृति से अब यह तै हुआ कि :—

(१) शत्रुओ से बगाल-विहार को सुरक्षित रखना कपनी का काम होगा और इसके लिए आवश्यक सेना भी वही रख सकेगी*।

(२) माल उगाहने और उसके सम्बन्ध मे सारी व्यवस्था करने का अधिकार कपनी को ही होगा।

(३) नवाब को कपनी हर साल प्राय ५३ लाख† दिया करेगी। बाकी आय या व्यय से उसे कोई सरोकार न होगा।

(४) इस ५३ लाख रुपये से नवाब को अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी जिसमे दरबार और निजामत (न्याय विभाग) का सारा खर्च शामिल समझा जायगा।

(५) नवाब के जिम्मे कपनी का जो कुछ पावना था उसकी या कर के रूप मे उसे बादशाह को जो कुछ देना होगा उसकी अदायगी की उस पर कोई जिम्मेदारी न रहेगी।

---

* जो सधि कौंसिल कर चुकी थी उसकी भी एक शर्त यह थी कि मैं (नज्मुद्दौला) कपनी की सेना को अपनी ही सेना समझता हूँ और स्वीकार करता हूँ कि माल की वसूली और सरकार के या अपने ठाटबाट की दृष्टि से जितने सैनिक आवश्यक होगे मैं उतने ही रखूंगा।

† ५,३८६,१३१॥-) जिसमें १,७७८,८५४-) तो नवाब के अपने खर्च के लिए था बाकी ३,६०७,२७७॥) निजामत और दरबार के खर्च के लिए। इस सरकारी खर्च पर भी नवाब का कोई अधिकार न रहा।

सारा प्रवन्ध खुद करने के लिए कम्पनी अभी तैयार न थी, इसलिए क्लाइव ने व्यवस्था यह की कि —

(१) सैयद मुहम्मद रजा खा बहादुर नायव, महाराज दुर्लभराम दीवान और जगत्सेठ प्रवधकारिणी समिति के सदस्य होगे।

(२) फौजदार, आमिल तथा अन्य अधिकारी इसी समिति के अनुशासन मे रहेंगे और इसके अलावा भी सारा राजकाज इसी के कहे अनुसार होगा। जो कुछ यह कर देगी वह नवाव को मजूर होगा।

(३) अगर कही प्रजा के साथ अन्याय या अत्याचार होगा और समिति इसे न रोक सकेगी तो गवर्नर को इसकी सूचना शीघ्रातिशीघ्र भेज दी जायगी।

(४) आवश्यक व्यय करने के वाद जो कुछ बचत रहेगी उसे खजाने मे जमा कर देना होगा। उसके दरवाजे मे तीन तरह के तीन ताले लगेंगे और प्रत्येक सदस्य अपने पास एक चावी रखेगा।

(५) अगर तीनो मे कोई भी वाकी दो की राय के खिलाफ कुछ भी करेगा तो उन दोनो को गवर्नर के पास इसकी सूचना भेज देनी होगी।

(६) वसूली के लिए जितने पैदल या घुडसवार समिति की दृष्टि मे आवश्यक होगे उतने ही रखे जा सकेंगे और समिति का इस ओर वरावर ध्यान रहेगा कि कही भी फजूलखर्ची न हो।

(७) कोई भी सदस्य विना दूसरो को जताये दरवार मे अकेला न जा सकेगा। सव का कर्तव्य होगा कि मिल जुल कर काम करे और एक दूसरे को हानि न पहुचावें।

(८) समिति इस बात का भी ध्यान रखेगी कि दरबार में ऐसे लोग न रहने पावे जो लगाने-बुझाने वाले या धोखेबाज हो या जिनसे किसी प्रकार के भी अनिष्ट की आशका हो।

(९) कम्पनी और नवाब के बीच मैत्री बराबर बनी रहे—राजकाज के बारे मे कोई शिकायत न हो—कम्पनी को रुपये-पैसे की कोई जोखिम न उठानी पड़े—इन बातो की देखरेख के लिए राजधानी में उसकी ओर से एक रेजिडेंट रहेगा। वह हर महीने यह हिसाब समझ लेगा कि कितनी आय हुई और कितना व्यय हुआ। पद-प्रतिष्ठा के अनुसार उसका जो वेतन नियत होगा वह उसे निजामत से मिला करेगा।

इस समिति के सदस्यो मे कोई महत्वाकाक्षी था तो दुर्लभराम। मुहम्मद रजा खा की भीरुता और जगत्सेठ की उदासीनता ने कपनी को उनसे तो निश्शक कर दिया था, पर उसने अपने रेजिडेट मि० साइक्स को शुरू मे ही दुर्लभराम से सावधान रहने और उसे अपनी निर्दिष्ट सीमा के बाहर पाव न पसारने देने का विशेप आदेश दे दिया था।

इन तीनो के बीच अधिकारो का विभाजन न होने पर भी, नियम या परिपाटी यह पड़ गई कि रजा खा तो माल की वसूली का काम देखने लगा और दुर्लभराम हिसाब-किताब रखने का। खुशालचद खजाची बन गये और तीनो ताले प्रायं उन्ही के हाथो खुलने या बन्द होने लगे। फिर भी राजकाज उनके लिए एक तरह का जजाल था जिससे उनकी आन्तरिक इच्छा दूर ही रहने की प्रकट होने लगी। बात यह थी कि न तो वह स्वयं

फतहचद थे, न अब शुजाउद्दौला खां या अलीवर्दी खां का जमाना ही रह गया था।

नज्मुद्दौला से क्लाइव ने जो जो अधिकार चाहा ले लिया और उसे नाम को ही नवाब नाजिम रहने दिया। अब उसका ध्यान इस ओर गया कि इस व्यवस्था को सम्राट् से भी स्वीकृत करा लिया जाय और उसकी सनद हासिल कर ली जाय।

बक्सर मे मैदान मार लेने पर अगरेजो ने शुजाउद्दौला का दूर तक पीछा किया और उसे अवध छोड कर भी भाग जाने को विवश कर दिया था। शाह आलम अब इलाहाबाद मे उन्ही के आश्रयी के रूप मे रहने लगा था और उनके मागने पर उन्हे काशी-नरेश बलवन्त सिंह से कर वसूल करने का अधिकार दे चुका था। शर्त यह हुई थी कि बनारस-गाजीपुर का इलाका छोडकर शुजाउद्दौला का बाकी राज्य अगरेज उसे दिला देंगे और उसके रक्षक बने रहेंगे। क्लाइव को यह समझौता कुछ आपत्तिजनक जचा—कारण कि अवध में ऐसी उथल-पुथल कराने की दृष्टि से कपनी की शक्ति पर्य्याप्त नही कही जा सकती थी और इस बात का निश्चय नही था कि आगे होने वाली सभी लड़ाइयां पलासी की ही लडाई के समान होगी। इसलिए उसने शाह आलम और शुजाउद्दौला से ऐसी सधि कर ली जिसमे कंपनी का लाभ तो अधिक से अधिक था और जोखिम नही के बराबर थी।

१२ अगस्त १७६५ को शाह आलम ने फरमान द्वारा यह स्वीकार कर लिया कि—

(१) नज्मुद्दौला नवाब नाजिम तो रहेगा पर बगाल, बिहार और उड़ीसा का दीवान न समझा जायगा।

(२) दीवानी का स्वत्व कपनी को प्राप्त होगा।

(३) कपनी उन प्रान्तो की ओर से शाह आलम को प्रतिवर्ष २६ लाख* रुपये देने या भेजने के लिए वाध्य रहेगी—पर इतना राजस्व और निजामत-सवधी व्यय काट कर जो कुछ वचत होगी उसकी हकदार वही समझी जायगी।

दूसरी सधि शुजाउद्दौला के साथ १६ अगस्त को हुई। इसके अनुसार—

(१) कोडा के अलावा इलाहावाद के कुछ हिस्से पर शाह आलम का खास कब्जा बना रहा।

(२) वलवन्त सिंह की स्थिति मे किसी प्रकार का अन्तर न पड़ा और वह शुजाउद्दौला के ही अधीन वने रहे।

कपनी को वगाल-विहार-उड़ीसा की दीवानी मिल जाने पर क्लाइव ने अपने मालिको को लिखा—

"इससे आपकी प्रभुता और प्रभाव में स्थायित्व आगया है—भविष्य मे कोई नवाव नाजिम चाहे भी तो, सैनिक और आर्थिक शक्ति के अभाव के कारण, वल या छल से आपका राज्य नही छीन सकता। प्रभुत्व के विभाजन से यहा काम चलना असभव है—सर्वेसर्वा हो कर या तो कपनी रहे या नवाव। आप स्वय विचार लें कि आप के हित की दृष्टि से दोनो मे कौन सी वात वांछनीय है।

* "सम्राट् के पास पहुचा देने के लिए कपनी अपनी पटने की कोठी से राजा शितावराय या सम्राट्-द्वारा मनोनीत अन्य व्यक्ति को प्रतिमास २१६,६६६॥~)॥। दिला दिया करेगी और इसमे से किसी प्रकार का वट्टा या हुडावन न काटा जायगा।"

"आप एक सम्पन्न राज्य के अधीश्वर बन गये है। बस यह समझ लेना चाहिए कि इसके दीवान ही नही, मालिक भी अब आप ही है।

"मीर जाफर, मीर कासिम, आरकट का नवाब मुहम्मद अली भी—मन ही मन या प्रकट रूप से अगरेजो के द्वेषी रह चुके है। वर्तमान नवाब (नज्मुद्दौला) की चल सके तो सभव है कि वह भी उन्ही का पदानुसरण करने लगे।

"हिन्दुस्तान के नवाब या राजा हमारे प्रति अनुरक्ति-भक्ति दिखा सकते है तो भयभीत रहने के कारण ही। आपका कर्त्तव्य है कि सेना और कोप—इन दो साधनो को अपने हाथ से कभी निकलने न दे।"

दीवानी मिल जाने पर क्लाइव ने जगत्सेठ को कंपनी का सराफ तो नियुक्त कर दिया, पर वह सराफी पद-प्रतिष्ठा की दृष्टि से मूल्यवान् होते हुए भी, लाभ की दृष्टि से उनके लिए विशेप उपयोगी या महत्वपूर्ण वस्तु न थी।

इस नियुक्ति से पहले ही उनका घराना अघटित घटनाओ के षट्चक्र का अहेर बन कर क्षत-विक्षत हो चुका था और आरोही से अवरोही बन चुका था।

जून मे ही खुशालचन्द और उनके भाई क्लाइव को लिख चुके थे—

"हम अपनी विपन्नता का वर्णन किन शब्दो मे करे! क्रूरात्मा मीर कासिम ने हमारे पिता और पितृव्य के साथ जो दुर्व्यवहार किया—जिस नृशसता से उन्हे मार डाला वह कल्पनातीत है।

जो धन-सपत्ति उनके साथ थी वह सब की सब उसने लूट ली। फिर हमारे भाई सेठ गुलावचन्द और वावू मेहरचन्द को उसने शाह आलम के मुत्सद्दियो के हवाले कर दिया। अरसे तक दोनो कैदी वने रहे और उन्हे तरह तरह की यत्रणाये भोगनी पडी। अन्त मे अपनी रिहाई की ऊची से ऊची कीमत चुका देने पर वे घर आ सके; पर इसके लिये उन्हे कर्ज लेना पडा और अपने जवाहरात को वधक रखना पडा। वह कर्ज हम अभी तक नही चुका पाये है। कुछ रुपया तो हमने जेवर-जवाहरात वेचकर या चादी के वर्तनों के सिक्के ढाल कर अदा कर दिया है, पर वाकी कर्ज चुकाने में हमें वडी ही कठिनाई हो रही है।"

मौखिक सहानुभूति दिखाने या अधिक से अधिक उपकार उपर्युक्त नियुक्ति के रूप मे करने के सिवाय क्लाइव उन्हे सकट से उवारने के लिए कुछ न कर सका। हा, कुछ समय वाद उसने उन्हें "लोभी" वता कर भला-वुरा अवश्य कहा और उन्हे इस वात की सूचना दे दी कि समय के परिवर्तन के कारण जहा अगरेज बीती हुई वहुत सी वातो को विसार चुके थे वहा उन्हे भी अतीत के आकाश से वर्तमान के धरातल पर उतर आना और अगरेजो से प्रत्युपकार की आशा त्याग देना ही उचित था। २४ नवम्वर १७६५ को वह खुशालचन्द को लिखता है—

"आप तो इस वात से अनभिज्ञ नही कि मै आप के पिता का और आप के परिवार-मात्र का कैसा शुभचिन्तक और सहायक रह चुका हूँ। और आप जानते ही है कि आरभ से आज तक आप के प्रति मेरा कैसा सद्भाव रहा है। ऐसी अवस्था मे मेरे लिए यह चिन्ताजनक हो रहा है कि अपनी साख वनाये रखने और समाज

के प्रति कर्तव्य का पालन करने के लिए आपको जिस मार्ग पर चलना चाहिए उसकी ओर आपका विशेष ध्यान नही है।

"यह निश्चित हुआ था कि सरकारी रुपया खजाने में ही रहा करेगा जिसके लिए तीन विभिन्न ताले होगे। पर मै देखता हूँ कि सारा रुपया आप के अपने घर पर ही रहने लगा है। फिर मुझे मालूम हुआ है कि जमीदारों से जो जमा मिल सकती है उससे कम पर ही आप गावो के ठीके दे देने के पक्ष में अपनी सम्मति देने लगे है। मैंने यह भी सुना है कि जिन जमीदारो के जिम्मे आपकी कोठी का पुराना पावना है उन पर आप अदायगी के लिए दवाव डालने लगे है—हालाकि पाच महीनो से उन्होने सरकारी माल अदा नही किया है। मुझे आपका यह काम कतई पसन्द नही और मैं आपको यह करने न दूगा।

"आपका घराना इस समय भी काफी धनी है। पर आपका लोभ वढता जा रहा है। मुझे डर है कि अपनी इस प्रवृत्ति को आपने न रोका तो आपको हानि उठानी पडेगी और आपकी निस्पृहता तथा लोक-हितैषिता के सम्वन्ध मे मेरी जो धारणा थी वह समूल नष्ट हो जायगी।"

अप्रैल १७६६ में क्लाइव के मुर्शिदावाद जाने पर खुशालचन्द ने उससे मुलाकात कर कहा कि सरकार के जिम्मे हमारी काफी वडी रकम गिरती है, कृपया हमारा हिसाव चुकता करा दें। क्लाइव ने कारनक, साइक्स आदि से सलाह कर कहा कि "आपकी कोठी ने जो कर्ज दिया था उसमे से ३० लाख तो मीर जाफर ने अपने कुछ सरदारो को देने के लिये लिया था जिसकी देनदारी सरकार को मजूर नही हो सकती। पर २१ लाख उसने

अपने और कंपनी के सैनिको का वेतन चुकाने के लिए लिया था। उसके हम देनदार हैं। आपको उसका आधा तो दस साल में नवाव से और आधा कपनी से मिल जायगा।"

क्लाइव ने जो व्यवस्था की उसे स्वीकार करते हुए कंपनी के संचालको ने कुछ समय बाद यह लिखा कि "जगत्सेठ-परिवार हमारे ही कारण बहुत विपन्न हो चुका है। इसलिए हमसे सहायता पाने और अपनी हित-रक्षा कराने का वह विशेष अधिकारी है।"

८ मई १७६६ को नज्मुद्दौला की "अचानक" अकाल-मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका छोटा भाई सैफुद्दौला नवाब बनाया गया।

(३)

यह मशहूर है कि "कमजोर की हाडी जो जबंदस्त ने देखी, दिल ने कहा—वे पूछे हुए खोल के खा ले।" वगाल मे पके हुए भात को, कपनी के बडे अधिकारियो ने भी लपक कर हप करना शुरू कर दिया। काई छुडाने का वीडा उठा कर जो क्लाइव इस वार कलकत्ते आया था और जिसने अनुशासन की वागडोर कडी कर वातावरण में 'सुधार' आरभ कर दिया था—उसके अपने मुह से भी लार टपके विना न रह सकी और जहा मीर जाफर ने उसे कलकत्ते और चौवीस परगने का जागीरदार पहले ही वना दिया था वहा नज्मुद्दौला को और भी पगु वना देने पर, वह अव अन्य अगरेज कर्म्मचारियो के साझे मे, नमक, सुपारी और तवाकू की खरीद-विक्री का इजारेदार भी वन वैठा।

इन तीनों वस्तुओ मे प्रधानता नमक की थी और उसने कपनी के सचालको को यह समझाने की चेष्टा की थी कि नमक के व्यापार का अधिकार सरकार ने वरावर अपने लिए सुरक्षित रखा था—अव कपनी ही सरकार वन गई थी, इसलिए वह यह अधिकार या इजारा जिसको चाहती दे सकती थी—उसके हित की दृष्टि से सव से अच्छी नीति यही हो सकती थी कि वह शुल्क ले कर यह व्यापार अपने ही कर्म्मचारियो को करने दे जो राजा और प्रजा दोनो के ही शुभचिन्तक कहे जा सकते थे और जो कभी अपने एकाधिकार का दुरुपयोग करने वाले न थे। यो क्लाइव् और उसके साझेदारो की व्यापार-समिति ने इस धधे को हथिया लिया और सुधार के नाम पर सस्ते से सस्ते दाम मे माल खरीदने और ऊचे से ऊचे दाम मे उसे वेचने लगी।

इसके हिस्सेदार तीन श्रेणियो मे विभक्त थे जिनकी सख्या प्राय ६० थी और जिनमे गवर्नर, सेनापति, कौसिल के सदस्य, फौजी अफसर, सर्जन, पादरी, क्लर्क—सभी शामिल थे। सव से वडा हिस्सेदार स्वय क्लाइव था जो निजी व्यापार से तोवा कर चुकने पर भी प्राय दो लाख रुपये की पूजी लगा कर औरो का पृष्ठपोषक और नेता वन चुका था।

सरकार को अर्थात् कपनी को नमक पर ३५, सुपारी पर १० और तवाकू पर २५ प्रतिशत शुल्क मिलने का नियम हुआ, पर कुछ ही समय वाद इसमे वृद्धि कर दी गई और कपनी को नमक पर ३५ के वजाय ५० प्रतिशत मिलने लगा। पर जो रक्षक कहे जा सकते थे उन्ही के भक्षक वन जाने के कारण कर-वृद्धि होते हुए भी उनके लाभ मे विशेष कमी नही हुई। प्राय २४ लाख रुपये की

पूंजी से कारवार शुरू किया गया था। उस पर पहले साल ही प्राय. २२ लाख का मुनाफा हुआ। दूसरे साल प्राय १८ लाख का। वास्तव मे यह व्यापार नही, वैध रूप से होने वाला अत्याचार था। उत्पादन करने वालो को यह अधिकार न होता कि ऊचा दाम मिलने पर भी वे अपना माल दूसरो के हाथ बेच सके। अगर किसी गाव से पूरी तादाद मे माल न मिल सकता तो इसके लिए उसका जमीदार दोषी ठहराया जाता और उससे इजारेदार जुर्माना वसूल कर लेता। नमक के लिए यह जुर्माना ५) मन था जबकि नमक का अपना दाम २) मन था। और विभिन्न स्थानो मे इस माल की विक्री करने के लिए भी अगरेज एजेट या गुमाश्ते मुकर्रर हो गये और इन लोगो ने इजारेदार के लाभ की दृष्टि से जो कुछ जरूरी समझा करना शुरू कर दिया।

पर कपनी के प्रधान अधिकारियो को इतने से ही सतोष न हो सका और वे अपने एकाधिकार के क्षेत्र को और भी विस्तृत करने लगे। कौसिल के मेंबरो ने २५ लाख की पूजी लगा कर सूरत और बबई से आने वाली रुई के व्यापार को भी हथिया लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि बगाल मे जिस रुई का बाजार-भाव पहले १६) से १८) मन था वह अब २८) से ३०) मन हो चला। आधुनिक सयुक्त प्रान्त की ओर से आने वाली रुई सस्ती पडती थी। उस पर बिहार मे आते ही ३० प्रतिशत के हिसाब से चुगी वसूल की जाने लगी। समसामयिक अगरेज व्यापारी बोल्ट्ज ने ऐसे ही एकाधिकार के और भी उदाहरण दिये है। राजनीतिक क्षेत्र मे सर्वेसर्वा बन जाने पर कपनी और उसके कर्म्मचारियों के लिए आर्थिक क्षेत्र मे चाम के दाम चला देना

कठिन काम न था। जब बाजार में रुई की माग नही होती तब बवई और सूरत का माल मुहम्मद रजा खा के पास भेज दिया जाता—इस आदेश के साथ कि जैसे हो इसको जमीदारो के गले मढ दो और कीमत वसूल कर भेज दो। यह जोर-जुल्म यहा तक बढा कि कारीगर कपनी के कारखानो मे काम करने की अपेक्षा भूखो मरना ही अच्छा समझने लगे। बोल्ट्ज ने लिखा है—"ऐसी मिसालें मौजूद है कि रेशम के कारीगर अपने अगूठे काट कर घर बैठ गये है और कपनी की गुलामी से अपने आपको बचा लिया है।"

नमक, सुपारी और तबाकू का व्यापार हथिया लेने वालो ने अपने आपको यह लिख कर प्रतिज्ञाबद्ध कर लिया था कि अगर कपनी के सचालक कभी ऐसा आदेश दें भी तो हम लोग एक हो कर उसका विरोध करेंगे और इस व्यापार से विरत न होंगे। जहा क्लाइव को अपनी जेब भरने की आशा होती थी वहा उसे सारा आदर्शवाद भूल जाता था और जो एक ओर अनुशासन की हिमायत करता वही दूसरी ओर स्वार्थ की वेदी पर उसका बलिदान कर बैठता था।

कपनी के कर्मचारी अगर नमक के इजारेदार बन बैठे थे तो सचालको की स्वीकृति से नही—बल्कि कहना चाहिए कि उनकी अनिच्छा या अस्वीकृति के बावजूद भी। फिर भी यह इजारा तीन साल से अधिक न चल सका। अन्त में सरकार स्वयं इजारेदार बन गई। पर अपने कर्म्मचारियो को सतुष्ट करने के लिए उसने उन्हे दीवानी से होने वाली अपनी आय पर २॥ प्रतिशत कमीशन के रूप मे देना स्वीकार कर लिया।

क्लाइव इससे पहले ही अपने लिए यह व्यवस्था करा चुका

था कि कम से कम गवर्नर को व्यापार करने का कोई अधिकार न होगा, पर दीवानी की आय पर उसे कपनी से १=) प्रतिशत कमीशन मिला करेगा। इसके फलस्वरूप जहा उसे नमक, सुपारी और तवाकू के इजारे से पहले साल प्राय' १९०,०००) मुनाफे के रूप में मिला था वहा अव २७०,०००) से भी अधिक कमीशन के रूप में मिलने लगा।

सभव न था कि कपनी क्लाइव को सदा के लिए कलकत्ते या चौवीस परगने का जागीरदार रहने देती, इसलिए मालिक और नौकर के वीच उस जागीर का विपय यहा तक विवादास्पद[3] वन गया कि क्लाइव को अदालत की शरण लेनी पडी। अन्त में दोनो के वीच यह समझौता हुआ कि १७६४ से दस * साल तक तो क्लाइव या उसके वारिस माल पाने के हकदार समझे जायगे, पर उसके वाद वह सारी जमीन लाखिराज हो कर ही कपनी के कब्जे में रहेगी। क्लाइव को इस जागीर से हर साल प्राय. पौने तीन लाख की आय होने लगी।

'फोर्ट विलियम' के गवर्नर का वेतन किसी समय कुल ३०० पौंड सालाना था। पर इधर उस वेतन में इतनी वृद्धि हुई थी कि क्लाइव को उस रूप में ६००० पौंड मिलने लगे थे। इसके अलावा कमीशन था और दूसरी सहूलियतें थी। धीरे धीरे कर्मचारियो से निजी व्यापार करने का अधिकार छीन लिया गया, उन्हें आय पर कमीशन मिलना भी वद हो गया—पर उनकी क्षतिपूर्ति के लिए उनके वेतन वढा दिये गये।

---

* क्लाइव के इंगलैंड लौटने पर उसके और कपनी के वीच दूसरा समझौता हुआ जिसने उसकी जागीर की मीआद और दस साल वढ़ा दी गई।

क्लाइव ने इस बार बंगाल आकर जो "सुधार" किये इनमें एक यह था कि सेना-विभाग में अगरेजो को जो "भत्ता" मिलता आया था उसे घटा देने का निश्चय कर अफसरो की बगावत का सामना किया और बडी ही कठोरता से उनके साथ पेश आ कर कपनी का बोझ बराबर के लिए हलका कर दिया। इस प्रथा का जन्म दक्षिण मे उस समय हुआ था, जब उधर के नवाब फरासीसियों और अगरेजो से सहायता लेने और पुरस्कार के रूप में उनके अफसरो को मुहमागा भत्ता देने लगे थे। वही से यह प्रथा बगाल मे आ गई थी। क्लाइव ने कहा कि "पहले बात और थी, अब और है। आज जो कुछ देना पडता है कपनी को, किसी मीर जाफर या नज्मुद्दौला को नही*। अब आगे के लिए मैं यह नियम किये देता हूँ कि जब तक पलटन छावनी मे रहेगी तब तक अफसरों को आधा ही भत्ता मिलेगा। अगर बगाल या बिहार मे उसे कहीं लडाई पर जाना होगा तो उन्हे पूरा भत्ता मिलेगा और अवध में जाने पर ही दूना भत्ता।" पर इससे असतुष्ट हो कर जहा तहा अफसरो ने विद्रोह कर दिया और यह क्लाइव का ही काम हो सकता था कि उसने जान को जोखिम मे डाल कर उसका ऐसे साहस और तत्परता से दमन किया कि आग तो फैल न सकी और सेना-विभाग ने समझ लिया कि पटने या मुगेर में इस बार विद्रोहियो को जहा पद-प्रतिष्ठा ही गवानी पड़ी थी वहा भविष्य में वे प्राण गवाये बिना न रह सकते थे।

प्राय. बीस महीनो मे ही बगाल मे अगरेजी राज्य की नीव

---

* "यह घर घोडो ! आपणा, वह यी बीकानेर,
घास घनेरो घालस्यू, दाणो दू ना सेर"!

को काफी मजबूत कर, फरवरी १७६७ में क्लाइव इंगलैण्ड के लिए रवाना हुआ । जाने से पहले उसे पांच लाख रुपये की एक रकम मुर्शिदाबाद मे मिल चुकी थी, जिसके विषय में यह कहा गया था कि इसे मीर जाफर मरते समय उसके लिए छोड गया था। इसे क्लाइव अपनी जाति के अधिकारियो के सहायतार्थ दान दे गया।

क्लाइव की जगह वेरेल्स्ट गवर्नर हुआ और १७६९ में इसकी जगह कार्टियर। इनके समय मे कोई खास बात तो नही हुई पर गो-दोहन का काम पूर्ववत् जारी रहा।

मीर जाफर के दूसरी बार मसनद पर बैठने के बाद कुछ ही बरसो मे बगाल और बिहार का खून इस खूबी से चूसा गया कि उसका रग लाल से सफेद हो चला और शरीर कायम रहते हुए भी उसकी सजीवता प्राय जाती रही। १७६९ मे कपनी के अपने रेजिडेट को ही मुर्शिदाबाद से लिखना पडा कि—

"किसी अगरेज को यह जान कर दुख हुए बिना नही रह सकता कि कपनी को दीवानी मिलने से पहले लोगो की जो हालत थी उससे आज कही खराब है । बात बुरी तो है, पर मैं यह कहे बिना नही रह सकता कि सच्ची है। ... नवाबो की तानाशाही के जमाने में भी यह प्रदेश सुखी और समृद्धिशाली था । पर आज शासन की बागडोर अगरेज जाति के हाथ मे होते हुए भी, इसकी बरबादी दिन-दिन बढती ही जा रही है।"

कपनी के सचालको को यह स्वीकार नही हो सकता था। वे यही कहते रहे कि माल की वसूली से कपनी को जितनी आमदनी होनी चाहिए थी उतनी नही हो रही थी और जो

रुपया उसके खजाने में आना चाहिए था वह सभवत. नायव दीवानो* की तिजोरियो मे जा रहा था।

असलियत यह थी कि वसूली वडी ही सख्ती से होने लगी थी और कपनी की आय उत्तरोत्तर वढती जा रही थी। राजस्व-संवंधी विषयो के ज्ञान और अनुभव के अभाव के कारण, अगरेज अधिकारियो को वहुत कुछ उन नायव दीवानों और उनके अहलकारो पर जरूर निर्भर करना पडता था, पर उन्हें और उनकी मार्फत जमीदारों को डरा-धमका कर जमा और वसूली को वढ़ा देना उनके लिए कुछ कठिन काम नही हो सकता था ।

पर जमीदार जो कुछ देते उसका वोझ किसानों पर ही जा पडता और माल के साथ मालगुजारी वढे विना नही रहती। इस अध्याय की समाप्ति तव हुई जव वरसो वाद कार्नवालिस ने दवामी वन्दोवस्त कर अमर्यादित को मर्यादित और अव्यवस्थित को व्यवस्थित कर दिया । प्रासंगिक समय में तो यह हाल था कि माल-विभाग में कंपनी को अधिक से अधिक लाभ पहुचा देना ही सुयोग्य अधिकारी का काम समझा जाता, चाहे वह यह खैरखाही किसी का गला घोट कर करता, चाहे किसी अन्य ऐसे ही प्रकार से।

व्यापार-संवधी जो स्वतंत्रता या स्वच्छंदता पहले थी उसका भी तिरोभाव हो गया था । कपनी और उसके कर्म्मचारियो के एकाधिकार ने उस क्षेत्र में औरों के लिए कम गुंजाइश रहने दी थी और वह सदानीरा नदी, अपने उद्गम से विच्छिन्न या वियुक्त

* वगाल में मुहम्मद रजा खा और विहार में शितावराय। कुछ समय तक विहार मे शितावराय के साथ रामनारायण का भाई धीरजनारायण भी इसी पद पर था।

हो कर दिन प्रति दिन सूखने लगी थी । वोल्ट्ज ने १७७३ में लिखा था कि "जहा पहले काश्मीरी, मुलतानी, पाठान, शेख, सन्यासी*, पगिये, भूटिये और दूसरे व्यापारी दूर दूर से, वड़े वडे काफिलो मे, वगाल पहुचते थे वहा अव कोई आने का नाम नही लेता ! माल खरीदने के लिए ये अपने साथ इतना सोना या चादी लाते थे जितना यहा यूरोप, ईरान और अरव से भी न आता था । उन व्यापारियो को अव यहा आने का साहस या उत्साह नही होता और उस वड़े व्यापार-द्वारा होने वाले लाभ से वगाल सदा के लिए वचित हो गया है ।"

वगाल के व्यापार का स्रोत अव विदेश की ही दिशा में जोरो से वहने लगा था । कलकत्ते से होने वाले निर्यात का मूल्य जहा १७६१-६२ में प्राय ३२ लाख रुपया था वहा १७६७-६८ मे प्राय. ६० लाख था और १७७०-७१ में ८० लाख से ऊपर पहुच गया था । और यह व्यापार एक-तरफा था, अर्थात् जहा पहले निर्यात का दाम चुकाने के लिए चादी का आयात हुआ करता वहा अव वाहर से चादी का आना प्राय वद हो गया। परिस्थिति यह थी कि राजस्व से जो आय होती उसी से माल खरीद कर कपनी इगलैण्ड ले जाती और अव उसे भुगतान के लिए वहा से चादी ला-कर जगत्सेठ की कोठी मे दरवारदारी नही करनी पडती। कपनी का कारवार चीन में भी था और वहा भी पहले माल की खरी-दारी के लिए इगलैण्ड से चादी भेजी जाती थी। पर अव वंगाल-

* "सन्यासी" व्यापारी कहे जा सकते थे या नही यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता । उस समय जत्थो मे चलने वाले नागा—"सन्यासी" प्राय. मराठो के ही समान उपद्रवी समझे जाते थे । "पगियो' से मतलव पगड़ी वाले व्यापारियो मे था—कलकत्ते की "पगियापट्टी" ।

विहार की चादी के निर्य्यात से चीन मे भी दाम चुकाने की समस्या हल की जाने लगी। इसका नतीजा यह हुआ कि दोनों प्रान्तो में मुद्रा-सबधी सकट उपस्थित हो गया और प्रजा को उस दारुण दुर्भिक्ष के कारण होने वाला दु.ख भी भोगना पडा।

(४)

१० मार्च १७७० को सैफुद्दौला भी ससार से "अचानक" चल वसा। अव उसके छोटे भाई मुवारकुद्दौला को पगडी वधी।

नजमुद्दौला और सैफुद्दौला की मृत्यु के कारण प्राकृतिक थे या नही, इस सम्वन्ध मे कुछ लोगो ने उस समय भी सदेह प्रकट किया था। पर कारण चाहे जो भी रहे हो, यह तो जानी हुई वात थी कि किशोरावस्था मे ही दोनो विषयासक्त हो गये थे और इससे उनके स्वास्थ्य में घुन लग गया था। गद्दी पर वैठते समय एक की उम्र अठारह साल की थी और दूसरे की पद्रह साल की। क्लाइव ने नजमुद्दौला को "वेश्या-पुत्र, अशिक्षित, अयोग्य, दुर्वल और नीच" वताया था, यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि कपनी की दृष्टि से यह अवाछनीय था या इन नवावो के चरित-सुधार की ओर उसके अधिकारियो ने कभी कुछ भी ध्यान दिया। ५३ लाख की आय के लोभ से अपना राज्य कपनी के हाथ वेच कर नज्मुद्दौला ने तनिक भी दुख या खेद प्रकट नही किया था। वल्कि आनन्द-विभोर हो कर क्लाइव से यही कहा था कि खुदा का शुक्र है कि मैं अव जितनी कसविया चाहूगा रख सकूगा। मुवारकुद्दौला मसनद पर वैठते समय तेरह साल का था। कुछ ही समय वाद कपनी के आलोचक वोल्ट्ज ने लिखा—

"इस बच्चे के लिए भी हरम की व्यवस्था करा दी गई है। संभव है कि इसकी भी अकाल-मृत्यु* हो जाय। चाहे जब और जैसे इसकी मृत्यु हो, फीलखाने से एक हाथी को लाकर मसनद पर बिठा देना ही विशेष उपयुक्त होगा। हाथी भारी भरकम जानवर होकर भी हुक्मबरदार होता है, बहुत दिनों तक जीता है और तडक-भडक की दृष्टि से उसकी उपयोगिता को देखते हुए उस पर खर्च भी कम ही बैठता है।"

इन नबाबो को मिलने वाली वृत्ति उत्तरोत्तर कम होती गई। नज्मुद्दौला को ५३ लाख की जगह कुछ ही महीने बाद ४१ लाख मिलने लगा था। सैफुद्दौला को ३२ लाख ही मिलने लगा और जब उसकी जगह मुबारकुद्दौला बैठाया गया तब पहले तो इसे ३२ लाख देना स्वीकार किया गया, पर एक वर्ष के ही भीतर यह रकम घटाकर १६ लाख कर दी गई।

इसी प्रकार जहां मुहम्मद रजा खा का वार्षिक वेतन ९ लाख नियत हुआ था वहा १७७१ से उसे ५ लाख ही मिलने लगा। दुर्लभराम से सतर्क रहते हुए भी, उसके वेतन मे कटौती नही की गई और १७६९ या १७७० मे उसके मरने तक उसे दो लाख वार्षिक ही मिलता रहा। जगत्सेठ के वेतन या वृत्ति पर कोई प्रकाश नही पडता, पर जिस समय कपनी के संचालको ने रजा खा का वेतन घटा देने का आदेश भेजा था उस समय यह भी लिखा था कि

"जगत्सेठ को जो कुछ देना पडता है वह खजाने पर बोझ के बराबर हो रहा है। आजतक उन्होने न तो हमारी कोई ऐसी सेवा

* वास्तव में इसकी मृत्यु १७९३ में हुई।

या सहायता की है और न हमे कोई ऐसा लाभ ही पहुचाया है।" १७७० में "खालसा" या खजाना मुर्शिदावाद से उठकर कलकत्ते चला गया और उसके वाद उन्हे पारिश्रमिक देने का प्रश्न ही नही रहा। विहार मे नायव शितावराय को १ लाख वार्षिक मिलता था, और उसके अलावा ३ लाख भत्ते के रूप मे भी।

खुशालचद और क्लाइव के वीच जो समझौता हुआ था उसके अनुसार कपनी और नवाव मिलकर उन्हें २१ लाख रुपये पुराने हिसाव में देने वाले थे। कपनी के लेखे से जान पडता है कि दस किस्तो में उन्हें नवाव से हर साल १०५,०००) और कपनी से भी उतना ही मिलना निश्चित हुआ था। १९ पूस, वगला फसली साल ११८७ (सन् १७७०) तक उन्हें कपनी से ५४६,३७५।।।) मिल चुका था और उसके जिम्मे ५०३,६२४।) वाकी रह गया था। नवाव से उन्हे मिल चुका था ५१५,०००) और उसके जिम्मे वाकी रह गया था ५३५,०००)। पर कपनी के ही कागजात में खुशालचद के एक आवेदन-पत्र का साराश मिलता है जो ७ जून, १७७३ को कलकत्ते भेजा गया था और जिसमें उन्होने लिखा था कि जहा उन्हे पिछले साल २१०,०००) मिलना चाहिए था वहा १५०,०००) ही मिला था और मागने पर कपनी के कर्म्मचारी उन्हे सतोपजनक उत्तर न दे सके थे। इस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए उन्होंने कपनी को क्लाइव के कौल-करार की याद दिलाई थी और इस कर्ज का भी कुछ इतिहास वताया था।

इसका सवध पलासी के युद्ध के वाद की घटनाओ से था। क्रान्ति की पूर्ण सफलता के लिए क्लाइव ने महतावराय से कहा था कि आप मीर जाफर को नवाव नाजिम स्वीकार कराके वादशाह
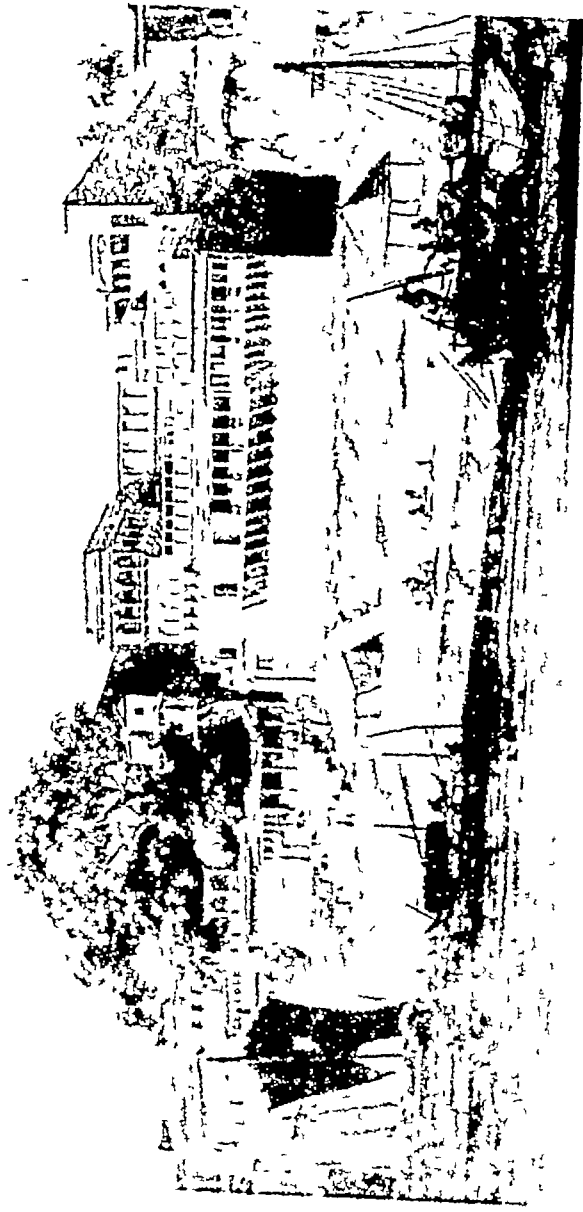
पटने मे हीरानन्द साह की कोठी और घाट—(प्राचीन चित्र से)

से सनद मगा दीजिए । इस पर खर्च का सवाल उठा था और क्लाइव ने उन्हें यह वचन दे दिया था कि अगर आपको नवाव से रुपया न मिल सका तो उसका देनदार मैं हूँगा । जगत्सेठ ने दिल्ली से सनद मगा दी थी और उस सिलसिले मे उन्हें जो कुछ खर्च करना पडा था उसका हिसाव चुकता करने से पहले ही मीर जाफर गद्दी से हटाया जा चुका था । सनद मगा देने के हिसाव में उनकी कोठी का १५ लाख और दूसरी मदो मे ६ लाख अर्थात् कुल २१ लाख मीर जाफर या कपनी के जिम्मे वाकी रह गया था । मीर कासिम के समय मे तो उन्हे निराश हो जाना पडा था, पर वाद मीर जाफर या नज्मुद्दौला को गद्दी मिली भी थी तो वे पुराना कर्ज अदा न कर सके थे । अन्त में जव क्लाइव दूसरी वार गवर्नर होकर आया तव उन्होने अपना हिसाव पेश किया । उसी समय यह निर्णय हुआ कि २१ लाख का आधा तो कंपनी दे देगी और आधा नवाव । सभवत. खुशालचद का आवेदन यह था कि नवाव के हिस्से की रकम भी अव उन्हे कपनी से ही मिलनी चाहिए थी ।

कार्टियर के वाद वारेन हेस्टिंग्स १७७२ मे वगाल का गवर्नर हुआ । इसका जन्म १७३२ मे हुआ था और १७५० में यह कपनी का नौकर होकर कलकत्ते आया था । यह सन्मार्ग पर चलने वाला कर्म्मचारी समझा जाता था, पर उसी मार्ग पर चलते हुए १७६४ तक ही ३०,००० पौंड थोक कर चुका था । वर्क ने तो पार्लमेंट मे इस पर इतिहास-प्रख्यात दोषारोपण करते हुए वरसो वाद यह कहा कि उस समय के सभी कर्म्मचारी एक ही थैली के चट्टे-वट्टे थे और हेस्टिंग्स दूसरो से किसी भी प्रकार भिन्न न था ।

शाह आलम १७६४ से इलाहावाद में ही रहने लगा था। वहा यमुना उसे दिल्ली की याद दिलाती रहती—"हुक्म खुदावन्दे आलम, अज़ दिल्ली ता पालम" यह तान तोडकर उसका जी कुढाती रहती—पर उसमे न इतना वल था, न इतना साहस कि अपनी मा या नजीवुद्दौला के सदेसे पर सदेसा भेजने पर भी वह पश्चिम की ओर प्रस्थान कर सकता। अगरेज आखिरी मजिल तक उसका साथ देने के लिए सधिवद्ध थे पर उनकी आन्तरिक इच्छा यही थी कि वह मजिल दिल्ली जितनी दूर न हो। उनसे मिलने वाली रकम को मिलाकर शाह आलम को प्राय: ७५ लाख रुपये की आय थी, पर एक तो यह उसके लिए यो ही काफी न था, फिर जव ढिलाई या लापरवाही के कारण मुर्शिदावाद से समय पर रुपया न पहुचता तव उसकी कठिनाई* और भी व्रढ जाती और वह चीखने-चिल्लाने लगता।

गवर्नर वेरेल्स्ट के कहने पर शाह आलम के सुभीते के लिए, जगत्सेठ ने १७६७ में अपनी कोठी की एक शाखा इलाहावाद में खोल दी थी।

उसी साल शाह आलम इस वात की भी शिकायत कर चुका था कि एक और मामले में कपनी या उसके कर्म्मचारियो ने अपना हक अदा नही किया था। मुर्शिदावाद से हर साल कुछ हाथी

---

* ऐसे अवसर पर उसे कुछ महाजनो से कर्ज लेकर अपनी समस्या हल करनी पडती थी। ऐसे महाजनो में लाला कश्मीरीमल और लाला वैजनाथ थे। संभवत दोनो ही वनारस के कोठीवाल थे। कुछ वरस वाद लाला कश्मीरी मल और वनारस के ही गोपालदास की कोठियो के वीच लेन-देन के सिलसिले में एक अप्रिय प्रसग उपस्थित होने वाला था।

वादशाह के पास भेजे जाते थे। मुहम्मद रजा खा ने उस साल २६ हाथी भेजे भी तो उनका मूल्य ६८,०००) शाह आलम को मिलने वाली रकम मे से काट लिया। इस पर शाह आलम वहुत विगडा। यह परपरा के विपरीत वात थी। हाथी नजराने के तौर पर ही भेजे जाते थे और खजाने मे ऐसी कटौती कभी नही की गई थी। फिर जो २६ हाथी भेजे गये थे उनमे ६ तो इलाहावाद पहुचने के दस दिन के भीतर ही काल-कवलित हो चुके थे और वाकी अधे, लगडे, वीमार या पैदार निकले थे—अर्थात उनमें एक भी "भारत-सम्राट् का वाहन वनने योग्य न था।" सम्राट् ने लिखवाया कि उन्हे उन हाथियो को लौटा देना मजूर था, पर अपने राजस्व मे उनके कारण एक भी रुपया कम होने देना* नही। अन्त मे कपनी की ओर से रजा खा को यह आदेश दिया गया कि हाथी और परिधान उपहार के ही रूप मे भेजे जाय और आगे कभी ऐसी कटौती कर सम्राट् का अपमान न किया जाय।

उधर पानीपत में परास्त हो जाने के वाद भी मराठे शक्तिशाली वने हुए थे। वालाजी वाजीराव के १७६१ में ही परलोक सिधारने पर उसका अल्पवयस्क पुत्र माधवराव पेशवा [illegible] था। यह वडा होनहार था और पारिवारिक कलह होते हु[illegible] मराठों का दवदवा फिर वढाने की पूरी चेष्टा करने लगा था। [illegible]कर और शिंदे के साथ फौज भेजकर उसने १७६९ में राजपूतो, जाटो और रुहेलो से चौथ वसूल कराई और इससे मराठो का हौसला यहा तक वढा कि वे इलाहावाद भी जा पहुचे और १७७१ मे शाह आलम को वहा से उडाकर दिल्ली ले गये।

* श्री नन्दलाल चटर्जी लिखित "वेरेल्स्ट्स रूल इन इंडिया"।

शाह आलम से दीवानी मिल जाने पर कपनी को हर साल २६ लाख रुपये देते जाना अखरने लगा था । हेस्टिग्स के मतानुसार क्लाइव ने ऐसी उदारता दिखाकर भूल की थी । इसलिए जब शाह आलम अपनी मर्जी से मराठो का पल्ला पकडकर दिल्ली चला गया तब उसे वह रकम बचा लेने का अच्छा मौका हाथ लगा और उसने यह कहकर उसे भेजना बद कर दिया कि १७६९-७० के अकाल ने बगाल का हाल इतना बुरा कर दिया था कि कपनी के लिए कुछ भी भेजना असभव हो गया था । शाह आलम की ओर से तकाजे पर तकाजा होने लगा, जिसके जवाब मे हेस्टिग्स ने उसे यह स्पष्ट करा दिया कि बगाल अब दिल्ली से पूर्णत. स्वतत्र हो चुका था और कर के रूप में अब वहा एक भी रुपया भेजने वाला न था।

इधर कपनी की करतूतो की ओर ब्रिटिश राजनीतिज्ञो का ध्यान विशेष रूप से जाने लगा था । बगाल मे जो राज्य स्थापित हो चुका था और जिसका विस्तार असभव न था उसके कारण कई प्रश्न उठ खडे हुए थे । इनमें सब से महत्वपूर्ण यह था कि वह राज्य इगलैण्ड का था या उसकी प्रजा कहाने वाले मुट्ठी भर लोगो का ? पार्लमेंट ने इसका उत्तर यह दिया कि वह राज्य इगलैण्ड का था—कपनी को वहा की पार्लमेंट या सरकार से स्वतत्र होकर सात समुद्र पार भी हुकूमत करने का कोई अधिकार नही हो सकता था ।

कपनी या उसके कर्म्मचारियो ने इधर जो कुछ किया था उससे वह इगलैण्ड मे बहुत बदनाम हो चुकी थी । एक बडे नेता की टिप्पणी यह थी कि "हिन्दुस्तान मे अन्याय के और अनैतिकता के

कारण होने वाली दुर्गन्ध पृथ्वी से आकाश तक फैलने पर है।" पर पार्लमेंट के लिए वह अन्याय या अनैतिकता उतनी चिन्ताजनक नही थी जितनी कपनी की निरकुशता और राजनीतिक क्षेत्र में भी उसकी वल-वृद्धि। हिन्दुस्तान से लौटने वाले अगरेज पैसे के जोर से पार्लमेंट मे भी घुसने लगे थे और जो उस क्षेत्र को अपनी वपौती समझते आये थे उन्हें "वगाल की लूट" का यह सव से खतरनाक पहलू दीखने लगा था ।

कहा जा सकता है कि कपनी को यथासभव नियत्रित करने के आन्दोलन की जड मे आदर्शवाद ही नही था, वहुत कुछ ईर्ष्या-द्वेप भी था—दलवदी के रूप मे होने वाली स्पर्द्धा या सघर्प भी था।

जो हो, इस आन्दोलन का फल यह हुआ कि १७६७ मे पार्लमेट-द्वारा हस्तक्षेप आरभ हो गया और नये विधान के अनुसार कपनी के अपने नियमो मे कुछ हेर-फेर किये गये । साथ ही, एक निश्चित अवधि के लिए, सरकार को प्रतिवर्प ४ लाख पौंड देना उसका कर्त्तव्य कर दिया गया । गरज यह कि उस "लूट" में अव सरकार भी हिस्सेदार वन वैठी और प्रवल विरोध होने पर भी पार्लमेंट ने यह सिद्धात स्वीकार कर लिया कि वगाल मे या अन्यत्र कपनी अनियन्त्रित शासन नही कर सकती थी।

पार्लमेंट को हस्तक्षेप का दूसरा मौका १७७२ मे मिला। मार्च मे शेयरहोल्डरो को १२॥ प्रतिशत मुनाफा मिल जाने के कुछ ही महीने वाद कपनी ने सरकार से दस लाख पौंड कर्ज मागा। इसका विरोध तो हुआ ही, कपनी और उसके कर्म्मचारियो ने इधर प्रायः पद्रह्‌ सालो मे जो कुछ किया था उसकी भी जाच की गई। इसका नतीजा मालूम होने पर सर्वसाधारण की यह धारणा पुष्ट

हो गई कि "वगाल में जो अत्याचार या लूट हो चुकी थी उसकी कहानी सुनकर किसी का भी दिल दहले विना नही रह सकता था।" मार्च १७७३ में कपनी की ओर से फिर कर्ज के लिए दर्खास्त की गई—इस वार १५ लाख पौड मागा गया। पार्लमेंट ने उसे १४ लाख पौड देना तो स्वीकार कर लिया, पर ऐसी शर्तो पर जिनसे कपनी और भी जकडवद और व्रिटिश पार्लमेंट या सरकार के लिए नियंत्रण का मार्ग और भी सुगम हो गया।

यह नया विधान "रेग्यूलेटिङ्ग ऐक्ट" था। कंपनी के अपने सघटन के साथ इसने इस देश मे भी शासन के ढाचे को वहुत कुछ वदल दिया। अव गवर्नर की जगह गवर्नर-जनरल और उसके सहायको के रूप में चार कौंसिल-सदस्यो की नियुक्ति की व्यवस्था हुई और जहा तक सधि या विग्रह का सम्वन्ध था, ववई और मद्रास भी वंगाल के ही अधीन कर दिये गये। गवर्नर-जनरल की कौंसिल के वहुमत का निर्णय ही सरकारी निर्णय समझा जा सकता था। किसी प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में वोट वरावर होने पर गवर्नर-जनरल सभाध्यक्ष की हैसियत से एक वोट और दे सकता और जो निर्णय चाहता करा सकता था। उसका अपना वेतन २४,००० पौंड नियत हुआ और उसकी कौंसिल के प्रत्येक सदस्य का १०,००० पौंड। विधान-द्वारा व्रिटिश सरकार को वगाल में एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित करने का भी अविकार दिया गया और प्रधान न्यायाधीश का वेतन ८,००० पौड नियत हुआ।

गवर्नर-जनरल के पद पर वारेन हेस्टिंग्स की ही नियुक्ति हुई और उस न्यायाधीश के पद पर उसके मित्र सर एलिजा इम्पे की।

दीवानी मिल जाने पर भी कपनी ने प्रवन्व का भार नायव

दीवानो के ही कधो पर छोड दिया था और कानूनगो-आमिल आदि ही प्रधान अधिकारी रहते आये थे । इनके काम पर निगरानी रखने के लिए कुछ अगरेज वेरेल्स्ट के समय में ही "सुपरवाइजर" नियुक्त हो चुके थे, पर कानूनगो किसी को पूरी बातें बताने के लिए तैयार न था और बिना उसके सहयोग के किसी को यह मालूम न हो सकता था कि जमीदार ने किसानो से कितना वसूल किया और सैकडे कितना सरकार को दिया । कानूनगो के असहयोग का प्रधान कारण यह था कि अगर वह इन बातो की जानकारी औरो को हो जाने देता तो माल-महकमे की किल्ली पुश्त दर पुश्त उसके घराने के हाथ मे न रह सकती । पर यह उसकी खामखयाली थी कि जो काम टोडरमल कर चुका था उसे अठारहवी सदी में अगरेज और भी खूबी से न कर सकेगे या यह कि मीर कासिम पर भी विजय प्राप्त कर लेने वाले उससे पार न पा सकेंगे ।

११ मई १७७२ को यह ऐलान किया गया कि अब नवाब मुहम्मद रजा खा नायब दीवान न रहेगे और स्वय कपनी दीवान के रूप मे सर्वसाधारण के सामने उपस्थित होगी ।

तभी से हर जिले मे एक कलक्टर की नियुक्ति की व्यवस्था हुई और माल की तहसील के अलावा वह और कामो के लिए भी जिम्मेदार बना दिया गया । हर जिले में, दीवानी अदालत और फौजदारी अदालत कायम हुई और दीवानी अदालत का प्रधान भी कलक्टर ही कर दिया गया ।

माल-विभाग में ऊपर से देख-भाल का काम एक खास कमिटी को सौंपा गया । हिसाब-किताब की जाच "रायराया" नामक पदाधिकारी द्वारा होने लगी । सर्वप्रथम, इस पद पर (महा) राजा

दुर्लभराम के पुत्र राजा राजवल्लभ*की नियुक्ति हुई। उसका मासिक वेतन ५,०००) था ।

वंगाल और विहार मे नायव दीवान का पद उठ जाने पर मुहम्मद रजा खा और शितावराय पर अमानत मे खयानत का आरोप किया गया और गिरफ्तार कर दोनो कलकत्ते पहुचाये गये। वहा महीनो मामला विचाराधीन रहा । अन्त में दोनो निर्दोप प्रमाणित हुए—विशेपत शितावराय। हेस्टिग्स ने स्वीकार किया कि उन पर जो अभियोग लगाया गया था वह निराधार था । विहार लौटने पर वह "रायराया" कर दिये गये, पर मर्माहत होने के कारण उसके कुछ ही दिन वाद उनकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्र महाराज कल्याण सिंह उनके उत्तराधिकारी† हुए और उन्हे ऊंचा पद भी प्राप्त हुआ । मुहम्मद रजा खा प्रमाणाभाव के कारण दोपी तो न ठहराया जा सका, पर ढाके की तरह मुर्शिदावाद में भी वह कई लाख पेट में डाल चुका था—उसके सवध मे अविकारियो का यह सदेह वना ही रहा। कपनी की खैरखाही वह इतनी कर चुका था कि यह सदेह होते हुए भी सचालक उसकी पुनर्नियुक्ति कराये विना न रह सके । वालिग होने पर मुवारकुद्दौला ने उसे वरखास्त कर भी दिया तो वह ‡फिर उसका दीवान वन वैठा ।

हेस्टिग्स के समय मे माल-विभाग और न्याय-विभाग का सघटन ही नये ढग से नहीं हुआ, कुछ और "सुधार" भी किये गये —

---

* १७५७ की क्रान्ति के समय का राजवल्लभ १७६३ में ही मीर कासिम के हाथो मारा जा चुका था ।

† शितावराय की जागीर दक्षिण विहार और चपारन में थी।

‡ रजा खा की मृत्यु १७६१ में हुई।

(१) अगरेज कर्म्मचारी निजी व्यापार करने के लिए स्वतन्त्र न रहे ।

(२) नमक, तवाकू और सुपारी को छोडकर, और सभी चीजो पर २॥ प्रतिशत चुगी भरने का नियम हो गया, और किसी अंगरेज व्यापारी का माल भी अव इससे वरी न रहा।

(३) दस्तको के दुरुपयोग की गुजाइश मिटा दी गई।

(४) कलकत्ता, हुगली, मुर्शिदावाद, ढाका और पटना—इन पाच स्थानो में ही चुगी लेने-देने की व्यवस्था रही, वाकी चौकिया उठा दी गई ।

फिर भी यह नही कहा जा सकता कि अगरेजो की द्वैध-शासन-प्रणाली*की समाप्ति या और "सुधारो" से भ्रष्टाचार वद हो गया और शासन-क्षेत्र की कलक-कालिमा धुल गई। जिसकी औरो को मनाही थी वही काम खुद हेस्टिंग्स कर रहा था । हर कलक्टर के लिए यह लाजिमी कर दिया गया था कि वह अपने एजट या "वनियन" को गावो का ठीका या वदोवस्त लेने न दे। उन दिनो प्राय हर अगरेज का एक "वनियन" होता जो उसके लिए "पीर वावर्ची, भिश्ती, खर" का काम करता और जिसपर उसे अपनी छोटी से छोटी और वड़ी से वडी आर्थिक समस्या के हल के लिए निर्भर करना पड़ता । हेस्टिंग्स के अपने "वनियन" कासिम-वाजार के कृष्णकान्त नदी ("कतू वावू") थे जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। उसकी जानकारी और रजामंदी से "कंतू वावू"

---

* जिसमें दीवान होते हुए भी कपनी दीवानी प्रधानत हिन्दू-मुसलमान अधिकारियो से ही कराती थी ।

तेरह लाख से भी अधिक की आय के गावो के ठीकेदार वन चुके थे और इसके अलावा अपने बारह-तेरह साल के वेटे लोकनाथ नदी के नाम से भी वहुत से गावो के ठीके ले चुके थे । हेस्टिग्स ने अपनी सफाई में जो कुछ कहा था वह उसके पक्षपातियो को भी सतोपप्रद नही जान पडता*। उसकी कौसिल के सदस्य और उसके हिमायती रिचार्ड वारवेल ने इतना धन कमाया कि एक १७७५ मे ही वह ४० हजार पौंड इगलेंड भेज सका। इससे पहले वह १७६९ मे अपनी वहन को लिख चुका था कि "ढाके मे 'सुपरवाइजर' का पद प्राप्त करने के लिए मै ५००० पौड खर्च करने को तैयार हूँ"। वारवेल के एक दूसरे खत से जान पडता है कि कपनी के कर्म्मचारियों के लिए व्यापार का निपेध हो जाने पर भी वह हिंदुस्तानी व्यापारियो के नाम से नमक का कारवार करने लगा था।

वगाल मे जहा १७७६ में कर्म्मचारियो के वेतन मे २५१,५३३ पौंड खर्च पड़ा था वहा १७८४ में ९२७,९४५ पडने लगा था । इसका कारण प्रधानतः यह था कि कई कर्म्मचारी—विशेपत. हेस्टिग्स के पक्षपाती—ऊची से ऊची तनखाह पाने लगे थे। नमक के लिए जो वोर्ड वना था उसके प्रधान को १८,४८० पौंड प्रतिवर्ष मिलता आ रहा था और वाकी पाच मेंवरो में प्रत्येक को ६२५७ पौड से १३,१८३ पौंड तक । माल-विभाग में पाच पदाधिकारियो को ४७,३०० पौंड मिलता था, और शुल्क विभाग में

---

* केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ५ । अगर हेस्टिंग्स की कौंसिल में वहुमत उसके विरुद्ध न होता तो उसके काले कारनामो पर संभवत. कुछ भी प्रकाश न पड़ सकता ।

तीन पदाधिकारियो को २३,००० पौंड। हेस्टिंग्स ने अपनी सफाई मे कहा था कि नमक से सबध रखने वाले बोर्ड के मेंबरो को मुनाफे पर १० प्रतिशत दे देने पर भी कपनी को ५४०,००० पौंड की बचत होने लगी थी। पर जैसा कि एक आधुनिक लेखक ने कहा है—"प्रश्न तो यह है कि जीवन के लिए नमक जैसी आवश्यक वस्तु से जो इतनी बड़ी आय हो रही थी उसका रिआया पर क्या बोझ पड रहा* था?"

यह कर्म्म का फल माना जाय या और कुछ, ऐतिहासिक तथ्य है कि सिराजुद्दौला का विध्वंस करने-कराने वालो का अपना जीवन भी प्राय दुखान्त ही रहा। उनमे मीरन तो प्राय सब से पहले मारा जा चुका था, जगत्सेठ महतावराय, महाराज स्वरूपचद, राजा राजवल्लभ आदि मीर कासिम के क्रोधानल मे पड कर छार हो चुके थे; स्वयं मीर कासिम सिराजुद्दौला की बेगम को लूटने के पाप का प्रायश्चित्त करते हुए मर चुका था। मीर जाफर और दुर्लभराम भी सुख-शान्ति न पा सके थे। स्क्राफ्टन† दूसरी बार बंगाल आते समय कही समुद्र में डूब चुका था और सूत्रधार क्लाइव के जीवन-नाटक की समाप्ति भी अश्रुपात और आत्म-घात से हो चुकी थी।

पर क्लाइव के हाथो "गुलाब के फूल" सूघने वाला गुरुघटाल नन्दकुमार बचा हुआ था और एक ओर भंवर तो दूसरी ओर चट्टान के बीच अपनी नाव को पार लगाने की चेष्टा करता ही जा रहा था। मुहम्मद रजा खा सूबा नायब न रहते हुए भी नवाब

* केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ५, पृष्ठ २१३।

† इसके साथ डूबने वाले यात्रियो में हेनरी वान्सीटार्ट भी था।

तेरह लाख से भी अधिक की आय के गावों के ठीकेदार बन चुके थे और इसके अलावा अपने बारह-तेरह साल के बेटे लोकनाथ नदी के नाम से भी बहुत से गावो के ठीके ले चुके थे । हेस्टिंग्स ने अपनी सफाई में जो कुछ कहा था वह उसके पक्षपातियो को भी सतोषप्रद नही जान पडता*। उसकी कौसिल के सदस्य और उसके हिमायती रिचार्ड बारवेल ने इतना धन कमाया कि एक १७७५ में ही वह ४० हजार पौंड इगलैंड भेज सका। इससे पहले वह १७६९ में अपनी बहन को लिख चुका था कि "ढाके मे 'सुपरवाइजर' का पद प्राप्त करने के लिए मैं ५००० पौंड खर्च करने को तैयार हूँ"। बारवेल के एक दूसरे खत से जान पडता है कि कपनी के कर्म्मचारियो के लिए व्यापार का निषेध हो जाने पर भी वह हिंदुस्तानी व्यापारियो के नाम से नमक का कारबार करने लगा था।

बगाल में जहा १७७६ मे कर्म्मचारियो के वेतन में २५१,५३३ पौंड खर्च पडा था वहा १७८४ में ९२७,९४५ पडने लगा था । इसका कारण प्रधानत. यह था कि कई कर्म्मचारी—विशेषत. हेस्टिंग्स के पक्षपाती—ऊची से ऊची तनखाह पाने लगे थे। नमक के लिए जो बोर्ड बना था उसके प्रधान को १८,४८० पौंड प्रतिवर्ष मिलता आ रहा था और बाकी पाच मेंबरो में प्रत्येक को ६२५७ पौंड से १३,१८३ पौंड तक । माल-विभाग में पाच पदाधिकारियो को ४७,३०० पौंड मिलता था, और शुल्क विभाग में

* केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ५ । अगर हेस्टिंग्स की कौंसिल में बहुमत उसके विरुद्ध न होता तो उसके काले कारनामो पर संभवत. कुछ भी प्रकाश न पड़ सकता ।

तीन पदाधिकारियो को २३,००० पौंड। हेस्टिंग्स ने अपनी सफाई में कहा था कि नमक से सबध रखने वाले बोर्ड के मेबरो को मुनाफे पर १० प्रतिशत दे देने पर भी कपनी को ५४०,००० पौंड की बचत होने लगी थी। पर जैसा कि एक आधुनिक लेखक ने कहा है—"प्रश्न तो यह है कि जीवन के लिए नमक जैसी आवश्यक वस्तु से जो इतनी बडी आय हो रही थी उसका रिआया पर क्या बोझ पड़ रहा* था ?"

यह कर्म्म का फल माना जाय या और कुछ, ऐतिहासिक तथ्य है कि सिराजुद्दौला का विध्वस करने-कराने वालो का अपना जीवन भी प्राय दु खान्त ही रहा। उनमे मीरन तो प्राय सब से पहले मारा जा चुका था, जगत्सेठ महताबराय, महाराज स्वरूपचद, राजा राजबल्लभ आदि मीर कासिम के क्रोधानल मे पड कर छार हो चुके थे, स्वय मीर कासिम सिराजुद्दौला की बेगम को लूटने के पाप का प्रायश्चित्त करते हुए मर चुका था। मीर जाफर और दुर्लभराम भी सुख-शान्ति न पा सके थे। स्क्राफ्टन† दूसरी बार बगाल आते समय कही समुद्र में डूब चुका था और सूत्रधार क्लाइव के जीवन-नाटक की समाप्ति भी अश्रुपात और आत्म-घात से हो चुकी थी।

पर क्लाइव के हाथो "गुलाब के फूल" सूघने वाला गुरूघटाल नन्दकुमार बचा हुआ था और एक ओर भवर तो दूसरी ओर चट्टान के बीच अपनी नाव को पार लगाने की चेष्टा करता ही जा रहा था। मुहम्मद रजा खा सूबा नायब न रहते हुए भी नवाब

---

* केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ५, पृष्ठ २१३।

† इसके साथ डूबने वाले यात्रियो में हेनरी वान्सीटार्ट भी था।

नाजिम का सबसे प्रधान अधिकारी बना हुआ था। वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर और फिर गवर्नर-जनरल बन चुका था। फिर भी नन्दकुमार का यह दृढ आत्मविश्वास था कि वह अन्त में ऐसे शत्रुओ पर भी विजय प्राप्त करके ही रहेगा। इसी विश्वास के बल पर वह नये दौर दौरे मे भी अपनी पुरानी चाल से ही चलता आ रहा था।

दूर बैठे हुए भी कम्पनी के सचालक यह अच्छी तरह जानते थे कि यहा किस काम के लिए किसका उपयोग करना चाहिए। जब मुहम्मद रजा खा पर दोषारोपण की बात उठी थी तब उन्हे लगा था कि उसके विरुद्ध प्रमाण जुटाने के काम में नन्दकुमार विशेष सहायक हो सकता था और उससे उस अवसर पर वैसी सहायता ली भी गई थी। हेस्टिंग्स को बात अच्छी लगने वाली न थी, पर वह इसका विरोध न कर सका था। उसके गवर्नर-जनरल हो जाने पर जब कौंसिल में उसका अपना विरोध शुरू हुआ और विरोधियो से नन्दकुमार को प्रोत्साहन मिला तब निर्भय होकर इसने खुले आम हेस्टिंग्स को भी ललकार दिया और उसकी पगड़ी उछाल दी।

कौंसिल में ११ मार्च, १७७५ को उपस्थित होकर इसने गवर्नर-जनरल पर कई इल्जाम लगाये जिनमे एक यह था कि नाबालिग मुबारकुद्दौला की सौतेली मा मुन्नी बेगम* से प्राय. साढे तीन लाख रिश्वत खाकर ही उसने उसे नवाब की अभिभाविका का

* यह नजमुद्दौला और सफुद्दौला की मा थी। मुबारकुद्दौला की अपनी मा का नाम बब्बू बेगम था। मुन्नी बेगम को १७७५ में ही पद-त्याग करने पर १२,०००) मासिक वृत्ति मिलने लगी। वह १८१३ में ९० साल की होकर मरी।

पद दे दिया था। उस सवन्ध मे कौसिल के किसी निर्णय पर पहुचने से पहले ही हेस्टिग्स आपे से बाहर होकर उठ पडा और यह कहकर चला गया कि उसकी अनुपस्थिति मे कौंसिल की कोई मीटिंग ही नही हो सकती थी। उसके पक्षपाती बारवेल ने तो उसका पदानुसरण किया, पर सभा स्थगित नही हुई। बाकी तीनो मेंबरो ने प्रस्ताव-द्वारा गवर्नर-जनरल को भ्रष्टाचारी बताया और मुन्नी बेगम से मिली हुई रकम को खजाने मे जमा करा देने का उसे आदेश दिया। पर इसके बाद ही ऐसा घटनाचक्र चला कि नन्दकुमार का अभियोग अभियोग ही रह गया और उसे स्वय अभियुक्त बनकर वास्तविक न्याय के लिए तीनो लोक के न्यायाधीश के पास जाना पडा।

बात यह हुई कि २३ अप्रैल को हेस्टिग्स, बारवेल और हेनरी वान्सीटार्ट के भाई जार्ज वान्सीटार्ट ने मिलकर नन्दकुमार और अन्य दो व्यक्तियो* पर यह इल्जाम लगाया कि उन्होने साजिश कर कमालुद्दीन को यह कहने के लिये मजबूर करना चाहा था कि हेस्टिग्स और बारवेल दूसरो से भी घूस ले चुके थे। जहा तक हेस्टिग्स का सम्बन्ध था, तीनो ही अभियुक्त निर्दोष प्रमाणित हुए। पर नन्दकुमार और फाक इस बात के दोषी ठहराये गये कि वे दोनो बारवेल पर दोषारोपण कराने की साजिश कर चुके थे। फाक पर जुर्माना हुआ, पर नन्दकुमार को ऐसा दण्ड नही दिया गया, कारण कि एक दूसरे मामले में उसे पहले ही प्राण-दण्ड मिल चुका था।

उस पर मुर्शिदाबाद के एक व्यापारी की ओर से मोहन प्रसाद

* इनमें एक अँगरेज था जो कम्पनी का कर्म्मचारी न था।

नामक व्यक्ति जालसाजी का कोई मुकदमा दायर कर चुका था। ६ मई को मजिस्ट्रेटो ने उसको सुप्रीम कोर्ट के पास भेज दिया। वहा ८ से १६ जून तक नन्दकुमार का विचार हुआ और उसे दोषी ठहराकर कोर्ट ने उसे फासी की सजा दे दी। ५ अगस्त को वह फासी चढा भी दिया गया।

वास्तव में यह एक प्रकार का हत्याकाण्ड था जिसमें प्रेरक वारेन हेस्टिंग्स था, कार्य्य-सम्पादक सुप्रीम कोर्ट और हत्या कानून की आड मे की गई। चीफ जस्टिस सर एलिजा इम्पे हेस्टिंग्स का सहपाठी रह चुका था और उसका घनिष्ठ मित्र था। कलकत्ते में वह गवर्नर-जनरल से जिसे जो पद या काम चाहता दिला सकता था। अपने एक रिश्तेदार को साथ लाया था और उसे पुलो और सड़कों के ठीके दिला दिये थे। इस लिए अगरेजो की मण्डली मे भी उसका नाम "पुलबन्दी" पड़ गया था।

याद रखने की खास बात यह है कि जुर्म साबित हो जाने पर भी इस देश में जालसाजी के लिए प्राणदड देने का कोई नियम या विधान नही था। सुप्रीम कोर्ट के जजो ने अभियुक्त नदकुमार का विचार ईंग्लिश पद्धति से किया और इगलैंड के कानून के अनुसार उसे दंड दिया। पर इंगलैंड में* १७२९ से ऐसा कानून था भी और कलकत्ते में वह अगरेजो के लिए लागू भी बताया जा सकता था तो इस मामले का उससे क्या सरोकार हो सकता था? नन्दकुमार न तो कलकत्ते का निवासी था न उसने सुप्रीम कोर्ट की स्थापना के बाद वह जुर्म किया था। उसके फासी चढ जाने

* जालसाजी के लिए स्काटलैंड या उत्तरी अमेरिका में भी प्राण-दंड देने का विधान नहीं था।

के बाद, यहा जाब्ता फौजदारी चला भी तो इंगलैंड के १७२६ के कानून के आधार पर।

इससे भी यही साबित होता है कि वहा का १७२९ का कानून यहा लागू नही समझा जा सकता था। इस विषय पर बडे बडे लेखक बहुत कुछ लिख चुके है । स्थानाभाव के कारण यहा उनकी आलोचना–प्रत्यालोचना का साराश भी नही दिया जा सकता । मोटी बात यह है कि नन्दकुमार के साथ न्याय नही किया गया; उससे हेस्टिंग्स से दुश्मनी की कीमत वसूल की गई।

मोहन प्रसाद को उकसाने वाला स्वय गवर्नर-जनरल था। जजो ने यहा तक पक्षपात किया कि फर्य्यादी के वकील बनकर नदकुमार के गवाहो को झकझोर डाला । बात जमीन पर की थी तो कानून आसमान का उठा लाये। सर जेम्स स्टिफेन ने भी अपनी पुस्तक* में यह मत प्रकट किया है कि "अगर इस मामले मे मुद्दई की ओर के ही सबूत पर मुझे निर्भर करना पडता तो मै नन्द-कुमार को दोषी न ठहरा सकता।" पर इन बातो की उन्हे क्या परवा हो सकती थी जिनका एकमात्र उद्देश था नन्दकुमार को कच्चा खा जाना? सकल्पसिद्धि के लिए उन्हे दस दिन से अधिक इस मामले का विचार भी नही करना पडा। अभियुक्त को फासी से हलकी सजा देना उन्होने कानून और सुप्रीम कोर्ट की शान के खिलाफ समझा। वास्तव मे वह हेस्टिंग्स या अन्य गवर्नर-जनरल की भी शान के खिलाफ होता । अगरेज जाति या कपनी का आतक जमाने के लिए नन्दकुमार जैसे बाधक या विरोधी को सदा के लिए नष्ट कर देना ही उन्होने अपना कर्तव्य समझा ।

---

* "नन्दकुमार ऐंड इम्पे"।

नन्दकुमार के वैरिस्टर ने उसे क्षमा-प्रदान कराने की बड़ी चेष्टाये की भी तो सफल न हो सका । मुवारकुद्दौला ने एक आवेदन-पत्र भेजकर वताया कि किसी भी दृष्टि से नन्दकुमार ऐसे दंड के योग्य न था, पर चीफ जस्टिस से उसे डाट-फटकारकर औरो को भी भयभीत कर दिया । सवसे आश्चर्यजनक वात यह हुई कि कौंसिल में हेस्टिंग्स के विरोधियो ने भी नन्दकुमार की ओर से सुप्रीम कोर्ट को आवेदनपत्र भेजने या भिजवाने में कोई दिलचस्पी नहीं ली। उनमे फ्रान्सिस हेस्टिंग्स का कट्टर दुश्मन था और अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए नन्दकुमार का उपयोग भी कर चुका था। पर वह भी गाढे दिन उसके काम न आया । एक लेखक का अनुमान है कि उसका दृष्टिकोण यह था कि हेस्टिंग्स को कलकित करने और उसे नीचा गिराने में, नन्दकुमार जीवित रहकर मेरी जितनी सहायता कर सकता है उससे कही अधिक फासी चढ जाने पर कर सकेगा।

नन्दकुमार वडा प्रपची था, इसमे सदेह नही। पर अगरेजो की सहायता का उसे एक दिन उनसे यह पुरस्कार मिलेगा, यह ससार के लिए कल्पनातीत था । उसके शुभचिन्तको मे हिंदू और मुसलमान दोनो ही थे, पर हिंदुओ को विशेप दु ख पहुचाने वाली वात यह थी कि वह कुलीन व्राह्मग था और दीवान भी रह चुका था।

वरसों वाद भी जव वर्क के प्रयत्न से गड़े मुर्दे उखाडे गये तव हेस्टिंग्स ने अपनी सफाई मे नन्दकुमार को भला-वुरा तो वहुत कहा, पर स्पष्ट शब्दों मे उसके अभियोग को निरावार न वता सका । मुन्नी वेगम उसे डेढ़ लाख रुपया देना स्वीकार कर चुकी थी । उसके सवंध मे हेस्टिंग्स का यही कहना था कि यह रकम

उसे मुर्शिदाबाद में खिलाने-पिलाने पर खर्च करने के लिए दी गई थी। कई अगरेज इतिहासकारो ने भी इसके लिए उसकी निन्दा की है। अगर यह मान भी लिया जाय कि उसने डेढ लाख से एक रुपया अधिक नही लिया तो भी अपने अधिकार का यह भयकर दुरुपयोग ही कहा जा सकता है कि "गवर्नर की हैसियत से जिसे सब मिलाकर २०००० और ३०००० पौड के बीच मिल रहा था उसने मुर्शिदाबाद जाने पर आतिथ्य का खर्च भी नवाब से ले लिया और वह भी २२५ पौड प्रति दिन के हिसाब से*।"

जहा हीरालाल साह से लेकर महताबराय तक उन्नति ही उन्नति होती गई थी वहा खुशालचद के समय से अवनति आरंभ हुई और अठारहवी शताब्दी का अन्त होते होते इस वश की आभा का अवसान हो गया ।

इसके कारण बताये गये है महताबराय और स्वरूपचद के मारे जाने से सेठ-वश को लगने वाला धक्का और खुशालचद की अपनी फजूलखर्ची।

इसमें संदेह नही कि वह धक्का जबर्दस्त था और उसने इमारत के कुछ हिस्से को गिरा दिया तो बाकी को डावाडोल कर दिया ।

खुशालचद अपव्ययी थे, यह भी निराधार नही जान पडता। उनके परिवार का माहवारी खर्च प्राय. एक लाख रुपया था। "मुताखरीन" का अनुवादक लिख गया है कि १७८० मे भी सेठ-परिवार मे सब मिलाकर प्राय चार हजार व्यक्तियो का

* केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ५ ।

भरण-पोषण होता था जिसमे १२०० स्त्रियां थी। कहा गया है कि जब क्लाइव चलने लगा था तब उसने खुशालचद को तीन लाख रुपये की वार्षिक वृत्ति दे जाने की इच्छा प्रकट की थी, पर इन्होने उसे स्वीकार नही किया था ।

पर उस अवनति और अवसान का प्रधान कारण कुछ और था। अंगरेजो की अमलदारी हो जाने पर जब सारी व्यवस्था ही बदल चुकी थी और राजनीति के साथ अर्थनीति का भी सूत्र-सचालन लदन या कलकत्ते से होने लगा था तब यह आशा तो दुराशामात्र ही हो सकती थी कि जगत्सेठ-परिवार पहले की ही तरह समृद्धि-शाली और प्रभावशाली बना रहेगा ।

जब दीवानी मिल जाने पर कपनी खुद इतजामकार हो गई थी और मुर्शिदाबाद से खालसा-दफ्तर भी कलकत्ते चला गया था तब सरकार से उनका पुराना सबध तो विच्छिन्न हो गया था और जो जल पहले मुर्शिदाबाद जाकर एकत्र हुआ करता था वह अब शासन-प्रणाली के बदल जाने से और ही जगह जाने और वहा के पेड-पौधों को सिक्त करने लगा था ।

शासन के साथ वाणिज्य-व्यापार की भी प्रणाली बदलने लगी थी और जहा कलकत्ते की उन्नति हो रही थी वहा प्रान्त के अन्तर्गत पुराने नगर दिन दिन अवनत होते जा रहे थे ।

१७७० के दुर्भिक्ष और महामारी के कारण बगाल की आधी या एक तिहाई* आबादी नष्ट हो गई, फिर भी अंगरेजो

---

* हेस्टिग्स का अनुमान एक तिहाई का था पर और अगरेज प्रत्यक्षदर्शियो ने ही आधे की हानि बताई थी । टामसन और गैरेट का अनुमान है कि उन समय

ने अपना रास्ता नही छोडा। उनकी राजनीति लुटेरो की ही बनी रही और वे अपनी लूट के क्षेत्र का विस्तार करते ही गये । जल के अभाव से इस देश के पेड-पौधे तो सूखने लगे और इगलैंड मे हरियाली बढने लगी । मराठे अगर एक बार लाख-करोड लूटकर ले भी गये थे तो वह एक आकस्मिक घटना थी जो अनिष्टकर होते हुए भी जगत्सेठ के लिए विशेष चिन्ताजनक नही कही जा सकती थी । पर अगरेजो के आधिपत्य और उनके द्वारा निरन्तर होती रहने वाली लूट की बात और थी। १७५७ के बाद घटने वाली शृङ्खलाबद्ध घटनाओ ने सारी स्थिति मे आमूल परिवर्तन कर दिया और प्रान्त मे खुशहाली न रहने पर खुशालचद के घराने के लिए भी खुशहाल बने रहना असभव हो गया ।

मुर्शिदाबाद की पुरानी टकसाल १७७७ तक बद नही हुई थी। पर कपनी की ओर से वहा के सिक्को के बारे मे शिकायत होने लगी थी और उसे बद करा देने के लिए कपनी मुबारकुद्दौला पर दबाव डालने लगी थी । कुछ ही समय बाद वह टकसाल बद कर दी गई और मुद्राप्रसार पर भी कपनी का एकाधिपत्य हो गया।

उसी साल खुशालचद को गवर्नर-जनरल से इस बात की शिकायत करनी पड़ी कि उसके आदेशानुसार उनकी कोठी ने कर्नल गोडार्ड को तीन लाख रुपये की हुडी दे दी थी। उसकी रकम

जन-सख्या प्राय डेढ करोड थी, और मरने वालो की सख्या कम से कम तीस लाख । उनका यह भी कहना है कि जब इतने लोग "बेवफादारी से मरकर" सरकार के लिए एक विकट समस्या खडी कर गये तब मुहम्मद रजा खा ने राजस्व मे दस प्रतिशत वृद्धि कर, सारी कमी को जिन्दा रह जाने वालो से पूरा करा लिया—"राइज ऐंड फुलफिलमेंट आव ब्रिटिश रूल इन इडिया"।

कलकत्ते में मिलने वाली थी, पर वहा वालो ने यह कहकर भुगतान करने से इन्कार कर दिया था कि उस समय उनके पास कुल एक लाख रुपया मौजूद था और उन्हे तीन लाख कर्म्मचारियों का वेतन चुकाने के लिए ही चाहिए था ।

१७८० मे खुशालचंद ने राजा चेतसिह को इस वात से आगाह किया कि वनारस के अनूपदास और व्रजनिर्वाणदास के जिम्मे उनका कुछ रुपया पावना था और उसकी वसूली में उन्हें कठिनाई हो रही थी । इस पर चेतसिह ने उन दोनो कर्जदारो को कहलाया कि सेठों का पावना शीघ्र से शीघ्र चुका दो ।

खुशालचद अन्त समय तक कोठवाली का काम करते रहे, पर किसी वडे पैमाने पर नहीं। वनारस के गोपालदास* की कोठी उनके जीवनकाल मे ही आगे वढने लगी थी और शीघ्र ही उत्तर से दक्षिण और पूरव से पश्चिम तक प्रसिद्धि पाने वाली थी । मुर्शिदावाद से राजश्री विदा हो चुकी थी और उसके साथ ही जगत्सेठ को अपने घर से लक्ष्मी के प्रस्थान की सूचना मिल चुकी थी ।

पर चचला लक्ष्मी के रूठ जाने पर भी खुशालचद अन्त तक मुक्तहस्त वने रहे । पारसनाथ तीर्थ में जैन-मदिरो के जीर्णोद्धार और निर्माण के लिए उन्होंने जो कुछ दान दिया वह उनकी धर्म्म-निष्ठा के साथ उनकी उदारता का परिचायक था ।

---

* विशेष प्रसिद्ध मनोहरदास के पिता और आसाम के वर्तमान गवर्नर श्री श्रीप्रकाश जी के पूर्वज। इनकी कोठिया कलकत्ता, मुर्शिदावाद, पटना, गया, गाजीपुर, मिर्जापुर, इलाहावाद, लखनऊ, वरेली, जयपुर, नागपुर, सूरत, ववई, मछलीवदर, मद्रास, टाडा, फूलपुर, आगरा, दिल्ली, पूना, अहमदावाद और वडौदा में वताई गई है—"कैलेंडर आव पर्शियन कारेसपान्डेन्स", भाग ७ ।

१७८३ में उन्होने हेस्टिग्स के पास एक आवेदन-पत्र भेजकर कंपनी के कोषाध्यक्ष के पद की याचना की। उस समय हेस्टिग्स दौरे पर था, पर उसने उन्हे सहानुभूति-पूर्ण उत्तर देकर अपने परिवार का पुराना पद प्राप्त हो जाने की आशा दिलाई। कलकत्ते लौटने पर उसे मालूम हुआ कि खुशालचद बीच मे ही कलेवर बदल चुके थे। उस समय उनकी अवस्था प्राय चालीस वर्ष की थी।

इससे प्राय चार वर्ष पूर्व उनके एकमात्र पुत्र गोकुलचद का देहान्त हो चुका था और वह अपने भतीजे हरखचद को गोद ले चुके थे। यही उनके उत्तराधिकारी हुए।

इस अवसर पर वारेन हेस्टिग्स ने नवाव मुबारकुद्दौला को लिखा कि हरखचन्द के लिए कपनी की ओर से खिलअत के साथ झालरदार पालकी, रत्न-जटित पगडी, सरपेच, मोतियो के हार और कुडल वहा भेज दिये गये है, आप अपनी ओर से उन्हे जगत्सेठ-उपाधि से अकित एक मोहर प्रदान कर सम्मानित कर देगे और उनके या उनके परिवार के साथ परपरागत व्यवहार में कभी किसी तरह की त्रुटि न होने देंगे।

टिप्पणी

(१) पृष्ठ ३८५—अलीवर्दी खा के समय से दामों में इधर कितनी तेजी आ गई थी इसका पता १७६४ में मीर जाफर की जियाफत पर खर्च होने वाली रकम से चलता है। कौंसिल की ओर से इस अवसर पर जो सीधा उसके पास भेजा गया था उसका कुछ ब्योरा यह था—

		रु०	आ०
४०	मन चावल	७५	०
८	मन दाल	२०	०
५	मन घी	७७	०
६	मन तेल	५१	०
३॥	मन नमक	४	६
५	मन चीनी	३६	०
६	मन मिठाई	९०	०
१	मन मुरब्बा	१६	०
१	मन बादाम और किशमिश	३१	४
८	मन तक्र	३१	०
५०	खस्सी	५०	०

(२) पृष्ठ ३८६—बंगाल में पहले दो प्रकार के प्रधान दीवान हुआ करते थे—दीवाने कुल या दीवान सूबा और दीवान खालसा। मुर्शिदकुली के समय से दीवानी और निजामत दोनों पर एक ही व्यक्ति का अधिकार हो चला, इसलिए दीवाने सूबा का कोई अर्थ नहीं रह गया। फिर भी वह पद बना रहा। उसपर जिसकी नियुक्ति होती वह प्रधान मन्त्री समझा जाता। यह पद नवाब या नाजिम के किसी आत्मीय को ही मिल सकता था। मन्त्रित्व तो वह नाममात्र को ही करता, पर वेतन में उसे बड़ी जागीर अवश्य मिल जाती। जो नायब दीवान होता उसी पर कार्यभार

रहता। सरफराज खा, नवाजिश मुहम्मदखा, मीरन—दीवान सूवा रह चुके थे और हाजी अहमद, राजा जानकीराम, राजा दुर्लभराम, महाराज नन्द-कुमार—नायब दीवान।

राजस्व-विभाग का प्रधान अधिकारी दीवान खालसा कहा जाता था। इस पद पर प्राय किसी हिन्दू की ही नियुक्ति होती थी जिसे रायराया का खिताव भी मिलता था । आलमचद (नायव दीवान होने मे पहले), चैनराय, कीर्ति (कीरत) चन्द, उम्मेदराय आदि दीवान खालसा हुए थे ।

शाह आलम से ईस्ट इडिया कपनी को दीवानी मिल जाने पर जो कुछ प्रधानता रही नायव दीवान की । नवाव की निजी धन-सम्पत्ति की देखरेख का काम करनेवाला दीवानेतन कहा जाता था । निजामत से नवाव का सरोकार न रह जाने पर भी वह तो नाजिम कहाता रहा और उसका खास दीवान दीवाने निजामत। इसे मदारुलमिहाम भी कहते थे। मुहम्मद रजा खा, राजा गुरुदास (नन्दकुमार का वेटा), राजा महानन्द (गुरुदास का वेटा) आदि १७६५ के बाद दीवान निजामत हुए थे। नज्मुद्दौला के समय में और उसके वाद भी मुहम्मद रजा खा नायव दीवान के पद पर था।

(३) पृष्ठ ४११—जगत्सेठ महताबराय क्लाइव को मीर जाफर से जो जागीर दिला चुके थे वह कपनी के सचालको और उसके वीच खास झगडे का कारण वन चुकी थी। १७६० में विलायत लौटने पर क्लाइव को अपने स्वत्व की रक्षा के लिए जमीन आसमान एक करना पडा था। उसने सचालको को डराया-धमकाया, उन्हें अपने अनुकूल वना लेने के लिए कुछ भी उठा न रखा—फिर भी सफल न हो सका । उनका कहना था कि कपनी के कर्मचारी को ऐसा पुरस्कार ग्रहण करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता था । क्लाइव का कहना था कि न तो आपकी ओर से कोई निषेध था, न मेरी ओर से कोई प्रतिज्ञा थी—फिर नवाव ने अपनी मर्जी से जो कुछ दिया उसे मैं क्यो ग्रहण न करता ? जागीर कपनी से कुछ गावो की मालगुजारी पाने के अधिकार के रूप में थी। जहा पहले कपनी खुद नवाव या सरकार

को मालगुजारी दिया करती वहा अब क्लाइव को देने के लिए वाध्य हो गई थी । एक प्रकार स्वामी तो सेवक और सेवक स्वामी वन गया था । अगर पुराना सिलसिला न वदलता तो कपनी का जो पावना नवाव के जिम्मे निकलता उसमें यह मालगुजारी मिनहा हो जाती और उसको कुछ देना न पडता । पर क्लाइव के जागीरदार या हकदार हो जाने पर कपनी के लिए माल न अदा करने का कोई कारण नही हो सकता था ।

क्लाइव ने यह कहना और कहलाना शुरू किया कि "कृतघ्नता और नीचता की हद हो गई । जिसने पलासी के मैदान मे कपनी के सिर पर ताज रख दिया उसी के साथ ऐसा वर्ताव ! जिसकी वदौलत कपनी अपना दामन मोतियो से भरने लगी है उस उपकारी को चौवीस परगने का माल देने से भी उसके सचालक इनकार कर रहे है ! !" पर सचालक-समिति के कठोर-हृदय पदाधिकारियो पर इस प्रचार का कुछ भी प्रभाव न पड सका और वे विरोधी वने ही रहे।

क्लाइव इगलैण्ड पहुचते ही पार्लमेंट का मेम्वर वन चुका था। लार्ड की उपाधि भी पा चुका था। उस समय का राजनीतिक वातावरण और ही था जिसमें वोटो की खरीद-विक्री हुआ करती और एक 'सीट' की कीमत प्रायः २००० पौंड समझी जाती । जो अगरेज हिन्दुस्तान में मालामाल हो कर इगलैण्ड लौटते वे वहा "नवाव" कहे जाते । इनके सम्बन्ध में किसी ने यह व्यंग्योक्ति की थी कि अगर किसी "नवाव" से कोई भीख भी मागता है तो उसे उत्तर मिलता है कि "दोस्त, लाचारी है। इस समय तो देने लायक लाल-जवाहर मेरे पास मौजूद नही।" क्लाइव के लिए "नवाव" वन जाना और भी आसान था । पर पार्लमेंट और शाही दरवार में उसके मददगार होते हुए भी वह कपनी की सचालक-समिति पर विजय न पा सका। वहा समिति का उपाध्यक्ष सुलीवान उसका शत्रु वना ही रहा और उसके कारण वहुमत उसके अनुकूल न हो सका।

उस समय कपनी की सारी पूंजी ३,२००,००० पौंड थी । हिस्सेदारो का अपना "कोर्ट" था और सचालको या डाइरेक्टरो का अपना। इन सचालको

की संख्या २४ थी । सच लक होने के लिए कम से कम २००० पौंड का हिस्सेदार होना आवश्यक था । यह चुनाव हर साल होता और इसमें वही भाग ले सकते जो कम से कम ५०० पौंड के हिस्सदार होते । नियम था कि हिस्से चाहे जितने भी हो, प्रत्येक हिस्सेदार एक ही वोट दे सकेगा । क्लाइव ने सुलीवान को पछाडने के लिए सचालको के चुनाव में भाग लेने का निश्चय कर उसी मार्ग का अवलम्बन किया जिस पर चलकर प्रभावशाली व्यक्ति इस नियम की उपेक्षा करते आये थे । उसने बाजार में विभिन्न नामो स १ लाख पौंड के शेयर खरीद कर अपने पक्ष में २०० वोट निश्चित कर लिये । फिर भी १७६३ के निर्वाचन में उसे मुह की खानी पडी और न तो वह स्वयं सचालक-समिति का सदस्य बन सका न वह अपने प्रधान शत्रु सुलीवान को ही हटा सका । सचालको ने कलकत्ते यह आदेश भेजा कि जागीर की माल-गुजारी क्लाइव के प्रतिनिधि को न दी जाय । क्लाइव ने अदालत में कपनी पर दावा दायर कर दिया । कानूनी लडाई शुरू हो गई । कपनी की ओर से उत्तर दिया गया कि जागीर देने का बगाल के नवाब को कोई अधिकार न था—यह अधिकार तो दिल्लीश्वर को ही हो सकता था और सभव था कि एक दिन कपनी को सारे रुपये के लिए जिम्मेवार होना पडे । क्लाइव का प्रत्युत्तर था कि अगर मीर जाफर को कुछ भी देने का अधिकार न था तो कंपनी की अपनी हकीअत के बारे में क्या कहा जा सकता था—उसे मीर जाफर से जो कुछ मिल चुका था उस पर उसका अपना क्या अधिकार हो सकता था ?

मामला विचाराधीन ही था कि इस देश में मीर कासिम से कपनी की लडाई छिड गई और फरवरी १७६४ म यह खबर इगलैण्ड पहुची कि कई अगरेज मारे जा चुके थे—बगाल में स्वय कपनी विपन्न हो रही थी । इसका शेयर-बाजार पर असर पडना और उससे शेयरहोल्डरो में घबराहट फैलना स्वाभाविक था । चारो ओर से यह माग आने लगी कि परिस्थिति को काबू में ले आने और कपनी को खतरे से बचाने के लिए पलासी-विजेता क्लाइव फिर बगाल भेजा जाय । वास्तव में क्लाइव भाग्यशाली था । जो यह कहने लगे थे कि अव्वल तो उसने बगाल या बिहार में कोई

ऐसी बहादुरी दिखाई ही नही थी और अगर बहादुर कहा भी जा सकता था तो उसके साथ भ्रष्टाचारी, नीच और कृतघ्न भी था, उन आलोचकों को मौन हो जाना पडा और उसके विरोधियो की ही निन्दा होने लगी । क्लाइव ने इस अवसर से सब ही लाभ उठाया और जब उसे फिर कलकत्ते जाने को कहा गया तब अपनी शर्तों को मजूर कराके ही वह जहाज पर सवार हुआ। मार्च-अप्रैल में होने वाले सचालक-निर्वाचन में उसने अपने शत्रु सुलीवान को पछाड दिया , नये गवर्नर की हैसियत से अपने लिए विशेष अधिकार प्राप्त कर लिये , और उसकी दृष्टि से सब से बडी बात यह हुई कि सचालको ने दस साल के लिए उसकी जागीर पर उसका या उसके प्रतिनिधि का अधिकार रहने दिया—यद्यपि आगे के लिए यह नियम कर दिया गया कि बिना उनकी इजाजत के कपनी का कोई भी कर्म्मचारी ४,०००) से अधिक किसी भी पुरस्कार के रूप में न ले सकेगा।

बगाल पहुँचकर जब क्लाइव ने शाह आलम से कपनी के लिए दीवानी हासिल कर ली तब उसे अपने देश में सुयश के साथ धन कमाने का भी अच्छा अवसर मिल गया। कारण कि यह समाचार वहा पहुँचने से पहले ही उसने अपने एजट की मार्फत कपनी के शेयर 'पोते' करा लिये थे ।

१७६७ में बगाल से घर लौटने पर क्लाइव ने ऐसा प्रपच रचा कि उसकी जागीर की मीआद और दस साल बढा दी गई।

पर कुछ ही समय बाद उसके विरोधियों का जोर फिर बढा और पार्लमेंट ने उसके कारनामो की खास तौर से जाच कराई। वहा तो बहुमत ने उसे अपराधी नही ठहराया पर लोकमत उसके पक्ष में न हो सका। बल्कि उसे लगा कि जिन लोगो से उसे शाबाशी मिलनी चाहिए थी वे भी मन ही मन उसे धिक्कारने लगे थे । इगलैण्ड के बादशाह (जार्ज तृतीय) ने भी अपने एक खत में यहा तक लिख दिया था कि क्लाइव की "लूट" का समर्थन करना देश के हित की उपेक्षा ही कही जा सकती थी । इन बातो का नतीजा यह हुआ कि क्लाइव के अन्तिम दिन सुख-शान्ति से न बीत सके। व्यावहारिक माप-

दंड से जीवन में पूर्णत सफल होते हुए भी उसने २२ नवम्बर १७७४ को अपने गले पर आप ही छुरा चला कर आतमघात कर लिया।

(४) पृष्ठ ४२३—पार्लमेंट-द्वारा जाच होन पर यह साबित हुआ था कि १७५७ और १७६६ के बीच, कपनी और उसके कर्म्मचारी, विभिन्न अवसरो पर मीर जाफर, मीर कासिम, नज्मुद्दौला, शुजाउद्दौला आदि म अपन कहे अनुमार प्राय ६७ लाख पौंड पा चुके थे। यह रकम दो भागो में विभक्त थी—पुरस्कार और क्षतिपूर्ति। 'पुरस्कार'-सम्बन्धी विवरण पाने वालो के अपने बयान के ही आधार पर यह था—

		पौंड
(क) पुरस्कार		
(१) मीर जाफर को पहली बार गद्दी दिलाते समय		२,०१९,७०५
	पौड	
क्लाइव (नकद)	२३४,०००	
" (जागीर से होने वाली आय*)	७९२,५००	
	१,०२६,५००	
गवर्नर ड्रेक	३१,५००	
मेजर किलपैट्रिक, वाट्स, स्क्रापटन, लशिंगटन आदि अधिकारी	३८४,२०५	
स्थल-सेना और जल-सेना	५७७,५००†	
	२,०१९,७०५	

*यह आय ३०,००० पौंड वार्षिक थी। यहा २६ साल ५ महीने की अर्थात् दिसम्बर १७५७ से मई १७८४ तक की आय शामिल कर ली गई है।

†इसमें से क्लाइव का हिस्सा २२,५०० पौंड हुआ था। वह उसके नाम पड़ने वाले २३४,००० पौंड में शामिल है।

ऐसी बहादुरी दिखाई ही नही थी और अगर बहादुर कहा भी जा सकता था तो उसके साथ भ्रष्टाचारी, नीच और कृतघ्न भी था, उन आलोचको को मौन हो जाना पडा और उसके विरोधियो की ही निन्दा होने लगी । क्लाइव ने इस अवसर से खब ही लाभ उठाया और जब उसे फिर कलकत्ते जाने को कहा गया तब अपनी शर्तों को मजूर कराके ही वह जहाज पर सवार हुआ। मार्च-अप्रैल में होने वाले सचालक-निर्वाचन में उसने अपने शत्रु सुलीवान को पछाड दिया , नये गवर्नर की हैसियत से अपने लिए विशेष अधिकार प्राप्त कर लिये , और उसकी दृष्टि से सब से बडी बात यह हुई कि सचालको ने दस साल के लिए उसकी जागीर पर उसका या उसके प्रतिनिधि का अधिकार रहने दिया---यद्यपि आगे के लिए यह नियम कर दिया गया कि बिना उनकी इजाजत के कपनी का कोई भी कर्म्मचारी ४,०००) से अधिक किसी भी पुरस्कार के रूप में न ले सकेगा।

बगाल पहुँचकर जब क्लाइव ने शाह आलम से कपनी के लिए दीवानी हासिल कर ली तब उसे अपने देश में सुयश के साथ धन कमान का भी अच्छा अवसर मिल गया। कारण कि यह समाचार वहा पहुँचने से पहले ही उसन अपने एजट की मार्फत कपनी के शेयर 'पोते' करा लिये थे ।

१७६७ में बगाल से घर लौटने पर क्लाइव ने ऐसा प्रपच रचा कि उसकी जागीर की मीआद और दस साल बढा दी गई।

पर कुछ ही समय बाद उसके विरोधियो का जोर फिर बढा और पार्लमेंट ने उसके कारनामो की खास तौर से जाच कराई। वहा तो बहुमत ने उसे अपराधी नही ठहराया पर लोकमत उसके पक्ष में न हो सका। बल्कि उसे लगा कि जिन लोगो से उसे शाबाशी मिलनी चाहिए थी वे भी मन ही मन उसे धिक्कारने लगे थे । इगलैण्ड के बादशाह (जार्ज तृतीय) ने भी अपने एक खत में यहा तक लिख दिया था कि क्लाइव की "लूट" का समर्थन करना देश के हित की उपेक्षा ही कही जा सकती थी । इन बातो का नतीजा यह हुआ कि क्लाइव के अतिम दिन सुख-शान्ति से न बीत सके। व्यावहारिक माप-

दंड से जीवन में पूर्णत सफल होते हुए भी उसन २२ नवम्बर १७७४ को अपने गले पर आप ही छुरा चला कर आत्मघात कर लिया।

(४) पृष्ठ ४२३—पार्लमेंट-द्वारा जाच होन पर यह साबित हुआ था कि १७५७ और १७६६ के बीच, कपनी और उसके कर्म्मचारी, विभिन्न अवसरो पर मीर जाफर, मीर कासिम, नज्मुद्दौला, शुजाउद्दौला आदि म अपन कहे अनुमार प्राय ६७ लाख पौंड पा चुके थे। यह रकम दो भागो में विभक्त थी—पुरस्कार और क्षतिपूर्ति। 'पुरस्कार'-सम्बन्धी विवरण पाने वालो के अपने बयान के ही आधार पर यह था—

(क) पुरस्कार		पौंड
(१) मीर जाफर को पहली बार गद्दी दिलाने समय		२,०१६,७०५
	पौंड	
क्लाइव (नकद)	२३४,०००	
" (जागीर से होने वाली आय*)	७९२,५००	
	१,०२६,५००	
गवर्नर ड्रेक	३१,५००	
मेजर किलपैट्रिक, वाट्स, स्क्रापटन, लशिंग्टन आदि अधिकारी	३८४,२०५	
स्थल-सेना और जल-सेना	५७७,५००†	
	२,०१९,७०५	

*यह आय ३०,००० पौंड वार्षिक थी। यहा २६ साल ५ महीने की अर्थात् दिसम्बर १७५७ से मई १७८४ तक की आय शामिल कर ली गई है।

†इसमें मे क्लाइव का हिस्सा २२,५०० पौंड हुआ था। वह उसके नाम पडने वाले २३४,००० पौंड में शामिल है।

(२) मीर कासिम को गद्दी दिलाते समय		२००,२६९
(३) मीर जाफर को दूसरी बार गद्दी दिलाते समय		४३७,४९९
	पौंड	
स्थल-सेना	२९१,६६६	
जल-सेना	१४५,८३३	
	४३७,४९९	
(४) १७६४ में मेजर मुनरो और उसकी सेना		६२,६६६
	पौंड	
मेजर मुनरो* (बलवन्त सिंह से)	१०,०००	
" (शुजाउद्दौला से)	३,०००	
मेजर मुनरो के अफसर "	३,०००	
" के सैनिक (बनारस के व्यापारियो से)	४६,६६६	
	६२,६६६	
(५) नज्मुद्दौला को गद्दी दिलाते समय, स्पेंसर, जान्स्टन, मिडल्टन आदि		१३६,३५७
(६) १७६५ में सेनापति कारनक		३२,६६६
	पौंड	
" (बलवन्त सिंह से)	९३३३	
" (शाह आलम से)	२३,३३३	
	३२,६६६	
(७) १८६६ में क्लाइव (मीर जाफर की बेगम से)		५८,३३३
जोड		२,९५०,४९५

---

*मुनरो कारनक की तरह क्लाइव का कृपापात्र न था, इसलिए उसे जो इनाम देने का शाह आलम और मीर जाफर वादा कर चुके थे वह उसे न मिल

(ख) क्षतिपूर्ति — पौंड

(१) मीर जाफर को पहली बार गद्दी दिलाते समय — २ १५०,०००

	पौंड
कपनी	१,२००,०००
अगरेज व्यापारी	६००,०००
हिंदुस्तानी ,,	२५०,०००
अरमनी ,,	१००,०००
	२,१५०,०००

(२) मीर कासिम को गद्दी दिलाते समय — ६२,५००

(३) मीर जाफर को दूसरी बार ,, ,, — ९७५,०००

	पौंड
कपनी	३७५ ०००
व्यापारी	६००,०००
	९७५,०००

(४) शुजाउद्दौला को १७६५ में गद्दी दिला देने पर — ५८३,३३३

३,७७०,८३३

(क) और (ख) का जोड — ६,७२१,३२८ पौंड*

(५) पृष्ठ ४२९—कुछ लेखक भूल से यह लिख गये हैं कि लुत्फुन्निसा ने अपने पति के कारागार में ही प्राण त्याग दिये थे। उदाहरणार्थ, कविवर नवीनचन्द्र सेन के "पलाशिर युद्ध" में ऐसी ही बात मिलती है—

सका। अन्त में उसके लडने-झगडने पर कपनी ने उसे बक्सर की लडाई जीतने के पुरस्कार के रूप में दो लाख रुपये दिये।

*वोल्ट्ज के दिये हुए (सशोधित) विवरण के आधार पर। इसके ६ करोड़ से अधिक रुपये हुए।

"रुधिर-स्रोत, शोक के कारण, श्रान्त, भ्रान्त-सी हो गई,
वैठ न सकी लेटकर दुखिया, शीघ्र सदा को सो गई।"

—'मधुप' कृत हिन्दी अनुवाद।

वास्तव म लुत्फुन्निसा १७८७ में भी जीती-जागती थी। उस साल उसन गवर्नर-जनरल के पास एक आवेदन-पत्र भेजकर उसका ध्यान अपनी दीन-हीन अवस्था की ओर आकर्षित किया था और अपनी मासिक वृत्ति में वढती की प्रार्थना की थी। उससे जान पडता है कि नवाव नाजिम हो जाने पर मीर जाफर ने उसकी वृत्ति ६००) मासिक नियत की थी, पर १७८७ में उसे अपनी पोतियो के हिस्सेदार हो जाने के कारण १००) ही मिल रहा था। इनमें दो उस समय भी कुवारी थी—कैलेन्डर आव पर्शियन कारेसपान्डेन्स, भाग ७।

परिशिष्ठ

(१)

खुशालचन्द के बाद

हरखचद को जगत्सेठ की पदवी गवर्नर-जनरल की सिफारिश पर मुवार-कुद्दौला से मिली । अब इसके लिए भी शाह आलम की स्वीकृति की कोई आवश्यकता नही रह गई थी ।

इस देश में नाम की महिमा सदा से ही बडी रहती आई है। 'जगत्सेठ' पदवी उस समय हरखचद के परिवार के लिए अत्यन्त मूल्यवान् वस्तु रहा होगी ।

यथार्थ बात यह थी कि उनके लिए नगर-सेठ की पदवी भी अतिशयोक्ति ही होती ।

वारेन हेस्टिंग्स पाप का घडा सिर पर लेकर फरवरी १७८५ में इंगलैंड के लिए रवाना हुआ । पार्लमेंट में वर्क, फाक्स आदि ने उस पर कितने ही अभियोग लगाये और उस मामले की सुनवाई हाउस आव लार्ड्स में समय समय पर सात साल तक होती रही । अन्त में हेस्टिंग्स को कोई दड तो न मिला, पर वह वरवादी से न वच सका ।

हेस्टिंग्स के प्रस्थान से पहले ही मुर्शिदावाद के सराफ वहा फिर टकसाल खुलवाने का निष्फल प्रयत्न कर चुके थे । उसके पास जो आवेदन-पत्र भेजा गया था उस पर हस्ताक्षर करने वालो में जगत्सेठ हरखचद के पिता सुमेरचंद, शभुचरण दत्त, गोकुलचद, गोपालदास,* सन्यासीदास आदि महाजनो के हस्ताक्षर

---

*वनारस वाली कोठी के मालिक ।

थे । जगत्सेठ की ओर से १७८६ में फिर ऐसी ही चेष्टा की गई । पत्र में कपनी का ध्यान मुद्रा के अभाव के कारण उपस्थित होने वाले सकट की ओर आकर्षित किया गया और "व्यापारी, सराफ, किसान" सब की भलाई के लिए मुर्शिदावाद में टकसाल खोलने की अनुमति मागी गई। पर वह अनुमति नही मिली ।

"मुताखरीन" के अँगरेजी अनुवादक ने पूर्वापर की तुलना करते हुए लिखा था कि "फतहचद के समय में जगत्सेठ के लिए, दो करोड (वह भी केवल आरकाटी रुपयो में) लुट जाने पर भी, सरकार को पचास लाख से एक करोड तक की दर्शनी हुडी देते जाना साधारण बात थी। आज कल के जगत्सेठ १७८७ में १४०,०००) की हुडी का भी भुगतान कर सके हैं तो कई किस्तो में ही।" अपने धन का अधिकाश या तो खुशालचद स्वय लुटा चुके थे या उनके मरने पर वह जहा तहा डूब चुका था। उनके परिवार में किंवदन्ती* यह चली आई है कि जो निधि गडी हुई थी उसका वह सहसा मर जाने के कारण किसी को पता न बता सके थे । अपने चचा गुलाबचद से बरासत में कुछ धन पाकर ही हरखचद अपने नाम की थोडी लाज रख सके थे ।

कहा गया है कि हरखचद निस्संतान थे ; एक वैरागी के उपदेश से उन्होने विष्णु की आराधना की और वैष्णव† हो गये । उन्होने ही वह विष्णु-मदिर बनवाया जिसका उल्लेख ऊपर (पृष्ठ ६०) हो चुका है। पर यह होते हुए भी, इनका परिवार जैनी ही बना रहा। इनके दो पुत्र हुए जिनमें एक का नाम इद्रचद रखा गया और दूसरे का विष्णुचद । हरखचद के बाद इद्रचद जगत्सेठ हुए, और सवत् १८७६ में इनके २७ वर्ष की ही अवस्था में मर जाने पर, इनके पुत्र गोविन्दचद।

गोविन्दचद को कपनी ने "जगत्सेठ" स्वीकार नही किया, जिसका कारण सभवत यह था कि आर्थिक स्थिति और भी खराब हो जाने के कारण वह

---

* मि० लिट्ल ।

† "मुर्शिदाबाद गैजेटियर ।"

अपने घर के पुराने जेवर बेच बेच कर ही अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करने लगे थे। पर १८४३ में कपनी ने उन्हें १२००) की मासिक वृत्ति देना स्वीकार कर लिया।

गोविन्दचद की १८६४ में मृत्यु हुई। उनके भी कोई पुत्र न था पर वह १८४५ में गोपालचद को गोद ले चुके थे। इन्हें सन् १८५२ में बहादुर शाह सानी से महाराज की पदवी मिली। गोपालचद और विष्णुचद के पुत्र कृष्ण (किशन) चद के आवेदन करने पर भी सरकार ने मासिक वृत्ति को १२००) की जगह ८००) कर दिया और वह भी इस शर्त के साथ यह रुपया कृष्णचद को ही मिला करेगा और यह वृत्ति परिवार-मात्र के भरण-पोषण के लिए समझी जायगी। इस पर महाराज गोपालचद ने आपत्ति की तो भारत-सचिव ने निर्णय किया कि ८००) में से ३००) के हकदार वह होगे। यह गोपालचद को स्वीकार न हो सका। इनकी मृत्यु हो जाने पर जगत्सेठ की स्त्री गुलाब (गोलाप) चद को १८७८ में गोद ले चुकी थी। जगत्सेठानी को सेठ कृष्ण (किशन) चद के मर जाने के बाद ३००) मासिक वृत्ति मिलने लगी, पर १८९१ में उनके मर जाने पर वह बिलकुल बद कर दी गई।

गुलाबचद के ही समय में १ ली मार्च १९०२ को तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड कर्जन मुर्शिदाबाद गया। इतिहास-प्रेमी होने के कारण उसने महिमापुर के खडहरात जा देखे और वहा उसे सेठ-परिवार को मुगल बादशाहो से मिले हुए फरमानो और जेवरो के अलावा, पद्रहवी शताब्दी के बाद के कुछ दुष्प्राप्य सिक्के देखने का भी अवसर मिला। जिस फरमान के द्वारा फर्रुखसियर ने फतहचद को "सेठ" की उपाधि दी थी उसे गुलाबचद ने कलकत्ते की "विक्टोरिया मेमो-रियल" नामक सस्था को समर्पित कर दिया।

महिमापुर में प्राचीन सेठ-भवन का भागीरथी के प्रकोप से बचा हुआ भाग १८९६ के भूकप में ध्वस्त हो चुका था। इसलिए गुलाबचद ने वहा से थोडी ही दूर पर अपने परिवार के लिए एक नया मकान बनवा लिया था। उनकी १९१२ में मृत्यु हुई और उनके उत्तराधिकारी उनके पुत्र—फतहचद और उदयचद हुए। सरकार ने इस घराने की पुरानी पदवी को बरसो बाद फिर

स्वीकार कर लिया । इसलिए बड़े भाई फतहचंद उस क्षेत्र में भी "जगतसेठ" ही कहाने लगे ।

(२)

जगत्सेठ-वश

इडियन हिस्टारिकल रेकर्ड्स कमीशन का पाचवा अधिवेशन १९२३ में कलकत्ते में हुआ था । उसके लिए प्रसिद्ध जैन विद्वान् और पुरातत्त्व-प्रेमी स्वगाय बाबू पूर्णचन्द नाहर ने एक लेख अगरेजी में मुर्शिदाबाद के जगत्सेठों की वशावली के सम्बन्ध में लिखा था । उसका साराश यह है —

"अप्रकाशित जैन लेखो और हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज के दौरे में मुझे मुर्शिदाबाद के जगत्सेठो की वशावली का एक लिपिबद्ध वृत्तान्त मिला । १९२१ मे जब मेरी मि० लिट्ल मे मुलाकात हुई, उन्होंने मुझसे अपनी सगृहीत सामग्री के आधार पर जगत्सेठो का एक वशवृक्ष तैयार करने का अनुरोध किया । मि० लिट्ल उस समय इस परिवार का सच्चा और सविस्तर इतिहास लिखने की तैयारी कर रहे थे, और कुछ ही दिन पहले, इडिया आफिस के कागजात की छान-बीन कर, इगलैण्ड से लौटे थे। मैने उनके अनुरोध का सहर्ष पालन किया और अपनी जानकारी के अनुसार जगत्सेठो का एक वशवृक्ष तैयार किया । मि० लिट्ल को वह और प्रचलित वशवृक्षो की अपेक्षा अधिक पूर्ण और प्रामाणिक जँचा, और वह अपने ग्रन्थ मे, जैसा कि उन्होने मुझे लिख भेजा, उसका सन्निवेश कर देने के इच्छुक थे। पर इसी बीच उनकी असामयिक मृत्यु हो गई और उनका विचार विचार ही रह गया। यही कारण है कि मुझे अपने अनुसन्धान का फल आज स्वतत्र रूप से प्रकाशित करना पडा ।

"जगत्सेठो की जाति जैन और कुल ओसवाल है । यहा उस कुल का इतिहास देने के लिए स्थान नही है । उस पर एक खासी बडी पुस्तक लिखी जा सकती है, क्योंकि वास्तव में वह मारवाड के कुछ क्षत्रिय कुलो का वैदिक धर्म परित्याग कर जैन धर्म में दीक्षित होने का इतिहास है । यहा इतना ही कहना

-चस होगा कि इस कुल के लोगो ने पहले पहल, जोधपुर राज्य के ओसिया नामक स्थान में जैन धर्म की दीक्षा ली थी, और इसी कारण वे ओसवाल कहलाये । जगत्सेठो का गोत्र गेल्हडा है। कहा जाता है कि सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ में आचार्य जिन हससूरि ने गिरिधर सिह नामक एक गुहलोट-वशी राजपूत को जैन धर्म में दीक्षित किया। गिरिधर के पुत्र का नाम गेलाजी था, और उसी के समय से इस वश का गोत्र गेल्हडा कहाने लगा । इस कुल के लोग जैन सम्प्रदाय के पार्श्वनाथ गच्छ के अनुयायी होते है । जगत्सेठो की वशावली में हमें सबसे पहले सिहराज का नाम मिलता है । फिर अक्षयराज का, फिर करमचन्द का । करमचन्द के ही पुत्र हीरानन्द थे जो नागौर छोड कर पटने में आ बसे । उनके सात पुत्र और एक कन्या थी। उनके पाचवे पुत्र सेठ मानिकचन्द की बडी स्त्री मानिक देवी की प्रेरणा से किसी कवि ने 'भूपाल चतुर्विशतिक" नामक काव्य की रचना की थी । उसकी एक सचित्र हस्तलिखित प्रति इस समय भी रह गई है और उसी के प्रशस्तिश्लोक मे हीरानन्द से लेकर उनके पौत्रो तक की सच्ची वशावली मिलती है । उस प्रति मे किसी सन्-सम्वत् का उल्लेख नही है, पर उसमें जो नाम दिये गये है वे वय क्रम के अनुसार है। यह बात उस हिन्दी पुस्तिका के सम्बन्ध में नही कही जा सकती जो उस घराने के पास चली आती है और जिसका अनुवाद मि० लिट्ल ने अपने लेख के अन्त में दिया है। जगत्सेठो की वशावली-विषयक कुछ बाते एक दूसरे हस्तलिखित ग्रन्थ मे भी मिलती है। सम्वत् १७७७ (सन् १७२० ई०), फाल्गुन कृष्ण २, शुक्रवार को इसकी रचना पूरी हुई थी, और यह ग्रन्थ भी उक्त मानिक देवी की ही प्रेरणा का फल था। मेरे लेख का आधार एक और ग्रन्थ है जिसे जगत्सेठ इन्द्रचन्द के किसी सम्बन्धी ने लिखा था, और जिसमे जगत्सेठो के परिवार का सक्षिप्त विवरण सकलित है। ग्रन्थ नागरी लिपि मे है और इसमें विक्रम-सम्वत् के साथ हिजरी साल भी दिया हुआ है। मुझे यह ग्रन्थ अपने स्वर्गवासी पिता राय सितावचन्द नाहर बहादुर के करकमलो से प्राप्त हुआ था। पर मैंने उसे तो जगत्सेठ घराने को भेट कर दिया और अपने पास उसकी नकल रख ली।

"हन्टर ने अपने "स्टैटिस्टिकल एकौन्ट आव् बगाल" (भाग ९, पृष्ठ २६४) में शुगोलचन्द और होशियालचन्द का नामोल्लेख किया है। पर यह ठीक नही है। पारसनाथ पहाडी की मूर्तियो या पादुकाओ पर खुशालचन्द बिरानी का नाम खुदा हुआ मिलता है। यह मानिक देवी के सगोत्री थे। हन्टर ने १८१६ के एक ऐसे लेख का जिक्र किया है जिसमें रूपचन्द जगत्सेठ का नाम आता है। पर मुझे आज तक वह लेख कही देखने को न मिला। सच तो यह है कि पारसनाथ की किसी भी पादुका या बिब पर ऐसा कोई प्राकृत या सस्कृत लेख अकित नही जिसमें किसी भी जगत्सेठ का नामोल्लेख हो। हा, महिमापुर में जगत्सेठो की ठाकुरबाडी में मुझे चादी की एक ऐसी मूर्ति अवश्य मिली थी जिसके पीठ पर सेठ मानिकचन्द के साथ उनकी धर्मपत्नी मानिक देवी का नाम अकित था। यह लेख सवत् १७७६ (सन् १७१९ ई०) का है, और मै इसे अपने "जैन लेख-सग्रह" में प्रकाशित कर चुका हूँ। वहा इसका नम्बर ७६ वा है। सवत् १८३० (सन् १७७४ ई०) के दो लेख और है, जिनके नम्बर क्रमश ५९ और ६० है। मुर्शिदावाद जिले में जियागज से करीब एक मील उत्तर, कीरतबाग मन्दिर में, काले पत्थर की दो भव्य और विशाल मूर्तिया है; और इन लेखो के मूल उन्ही के पीठो पर अकित है। दोनो ही लेखो में गेल्हडा गोत्र के जगत्सेठ फतहचन्द, उनके पुत्र सेठ आनन्दचन्द और उनकी पुत्री अजबो बाई का नामोल्लेख मिलता है। उनसे यह भी ज्ञात होता है कि अजबो बाई का विवाह कमलनयन के पुत्र उदयचन्द से हुआ था, जिनका गोत्र गाधी था। कीरतबाग मन्दिर में ही दो लेख और मिले, जिनके नम्बर ६१ और ६२ है। इनमें केवल कमलनयन, उदयचन्द और अजबो बाई का नामोल्लेख है। इसी साल का एक और महत्त्वपूर्ण लेख है, जिसने मेरे ग्रन्थ मे २६० वा नम्बर पाया है। इसका मूल राजगृह के एक मन्दिर में पादुका पर अकित है। उसमें इस परिवार के गोत्र के साथ जगत्सेठ फतहचन्द, उनके पुत्र आनन्दचन्द, उनके पौत्र महताबराय और उनकी स्त्री शृगार देवी के नाम पाये जाते है। सम्वत् १८११ (सन् १७५४ ई०) का एक और लेख है (न० ८६) जिसमे काशी के स्वर्गवासी राजा शिवप्रसाद सितारएहिन्द के पूर्वज

नभाचन्द, अमरचन्द और मुहकम सिंह की नामावली मिलती है। सभाचन्द आगरे के राय उदयचन्द के पुत्र थे और प्रथम जगत्सेठ फतहचन्द के सगे भाई।"

उपर्युक्त लेख

न० ७६

स० १७७६ वैशाख शुक्ल ५ तिथौ। ओसवाल वशीय श्रेष्ठ श्री माणिकचद जी स्वधर्म पत्नी माणिक देवी प्रतिष्ठित श्रीमत् चतुर्विंशति जिन विंब चिरं जयतात्। श्रेयोस्तु। भद्र भवतु।

न० ५९

प्रथम पक्ति—श्री स० १८३० माघ शुक्ल ५ चन्द्रे श्री पार्श्वचन्द्र गच्छे श्री हर्षचदजी नित्यचन्द्रजीत्कानामुपदेशेन

द्वितीय पक्ति—ओसवशे गाधी गोत्रे साहजी श्री कमल नयन जी तत्पुत्र सा० उदयचन्द्रजी तत्धर्मपत्नी तथा ओस व० गहलडा गोत्रे जगत्सेठजी श्री फतेचन्द्र जी तत्पुत्र सेठ आ

तृतीय पक्ति—णन्द चन्द्र जी तत्पुत्री वाइ अजवोजी श्री मत्पार्श्वनाथ विंब कारापित। प्रतिष्ठित च वि० सूरिभि श्री भानुचन्द्रेणेति आचद्रार्कचिरं नन्दतात् भद्र भूयाच्च श्रिय।

न० ६०

प्रथम पक्ति—श्री स० १८३० माघ शुक्ल ५ चन्द्रे श्री पार्श्वचद्र गच्छे श्री हर्षचद्र जी नित्यचन्द्रजीत्कानामुपदेशेन

द्वितीय पक्ति—ओस व० गाधी गोत्रे सा० श्री कमलनयन तत्पुत्र सा० उदयचन्द्र जी तत्धर्मपत्नी तथा ओस वशे गहलडा गोत्रे

तृतीय पक्ति—जगत्सेठ श्री फतेचन्द्र जी तत्पुत्र सेठ आनन्दचन्द्रजी तत्पुत्री वाइ अजवोजी श्री वासुपूज्य विंब कारापित प्र० सूरि श्री भानुचन्द्रणेति भूयाच्छिव सदा।

न० ६१

प्रथम पक्ति—स० १८३० वर्षे माघ शुक्ल ५ चन्द्रवासरे ओस वशे गाधी गोत्रे सा० श्री कमल नयनजी तत्पुत्र सा ०

द्वितीय पक्ति—उदयचन्द जी तद्भार्या बाइ अजवोजीकेन श्री प्रथम आर्य दिन्न गणधर पादुका कारापित।

न० ६२

प्रथम पक्ति—स० १८३० वर्षे माघ शुक्ल ५ सोमे गाधी गोत्रे सा० श्री कमल नयन जी तत्पुत्र सा ०

द्वितीय पक्ति—श्री उदयचन्द्र जी तद्धर्मपत्नी बाइ अजवोजीकेन श्री वासुपूज्य प्रथम सुभूम गणधर

तृतीय पक्ति—पादुका कारापित।

न० २६०

प्रथम पक्ति—श्री सम्वत् १८३० माघ शुक्ल ५ चन्द्रे ओस वशे गहलडा गोत्रे जगत्सेठजी श्री फतेचदजी तत्पुत्र सेठ आणद चन्दजी तत्पुत्र जगत्सेठ

द्वितीय पक्ति—जी श्री महताव राय जी तद्धर्मपत्नी जगत्सेठ णी जी श्री शृंगार देवी श्री मदेकादश गणधर पादुका कारापित। स्थ० राजगृह नगरोपरि वैभार गिरौ।

न० ८६

ओ भगवते नम । सम्वत् अठारह सै ग्यारह (१८११) कृष्ण द्वादसी भृगु वैशाख। ओसवाल कुल गोत्र गोखरू श्री मज्जैन धर्म की साख । सभाचन्द के अमरचन्द सुत जिन सुत मुहकम सिंह सुनाम। तिनके धाम रायमन्दिर यह भागीरथी तीर विश्राम।

(३)

राजा शिवप्रसाद सितारएहिंद का वंश-परिचय

"भाषा कल्पसूत्र" नाम की पुस्तक १८८७ में लखनऊ के मुशी नवलकिशोर प्रेस से छप कर प्रकाशित हुई थी। उसकी भूमिका में राजा शिवप्रसाद सितारए हिन्द ने "कुछ बयान अपने खानदान का और कारण इस ग्रन्थ के छपने का" दिया है। राजा शिवप्रसाद का वश वही है जिसमे पहले जगत्सेठ का जन्म हुआ था। उक्त भूमिका यहा ज्यो की त्यो उद्धृत की जाती है —

"पुराने कागजो मे मालूम होता है कि जयपुर की अमलदारी में रणथभौर के बीच जो एक बडा मशहूर किला है (वहा ?) सवत् १०४५ के दर्मियान परमार वशी शाखेश्वरी श्रेष्ठि धाघल हुआ। उसके कोई लडका न था। जैन धर्म पालक पूज्य श्री जयप्रभुसूरि गुरु के प्रतिबोध से अछुप्ता देवी की आराधना की। देवी ने स्वप्न मे वर दिया। देवी के हस्तपुट में पत्रपुष्प और गोखरू था, इसी से जब लडका हुआ उसका नाम गोखरू रक्खा और उसी से गोखरू गोत्र चला। सम्वत् १०९१ मे देहरा बनाया, जयप्रभुसूरि ने प्रतिष्ठा कराई, श्री शत्रुञ्जय का सघ निकाला। उसका लडका धर्मण, उसका कर्मण, उसका पुहपा, उसका भग्गा, उसका अवका, उसका तोला, उसका मेहका, उसका हीरा, उसका मेघा, उसका भाणा। जब सम्वत् १३३५ मे सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने रणथभौर का किला तोडा, भाणा अपने लडके नायक समेत बादशाह के साथ चपानेर चला आया। नायक का बेटा खीमा, उसका जयवन्त, उसका वीरा, उसका गोरा सवत् १४८५ में अहमदाबाद मे आ बसा। उसका बेटा अभयड, उसका बासा, उसका वस्ता, उसका वहला, उसका शिवसी, उसका कर्मसी, उसका राका, उसका श्रीवन्त, उसका पदमसी। सम्वत् १६८४ में पदमसी साहु खभात में आ बसा। वहा उसने श्री कल्याणशागर सूरि से श्री पार्श्वनाथ स्वामी का स्फटिकमय बिम्ब प्रतिष्ठित कराया, पाच सोने के कल्पसूत्र और चार मोती के पूठे भेंट किये, श्री शत्रुजय का सघ निकाला, पुस्तक-भडार भरा।

"उसके दो वेटे थे, श्रीपति और अमरदत्त। अमरदत्त ने शाहजहा वादशाह को एक ऐसा हीरा नजर किया कि वादशाह ने प्रसन्न होकर राइ की पदवी वख्शी और दिल्ली ले गया। उसके दो लडके हुए, राइ उदयचन्द और केसरी सिंह। राइ उदयचन्द के चार लडके—राइ जगत्मित्रसेन, सभाचन्द, फतहचन्द और राय सिंह। फतहचन्द ने कहतसाली में गल्ला सस्ता करने के कारण मुहम्मदशाह से जगत्सेठ की पदवी पाई, लेकिन अपने वहू-वेटे समेत मुर्शिदावाद मे, अपने मामू सेठ माणिकचन्द, नागौर वाले हीरानन्द साह के वेटे की गोद जा वैठे। हीरानन्द साह की वेटी धनवाई राइ उदयचन्द को व्याही थी। राइ सभाचन्द के राइ अमरचन्द, और राइ अमरचन्द के राइ मुहकम सिंह और राजा डालचन्द।

"नादिरशाही में घर के दो आदमी कतल होने के कारण राइ मुहकम सिंह और राजा डालचन्द दिल्ली छोडकर मुर्शिदावाद आ वसे। निदान शाहजहा से ले कर मुहम्मदशाह तक, वल्कि नाम को शाह आलम और नव्वाव वजीर आसफुद्दौला तक, वादशाही जवाहिरखने की मुकीमी तो खनदानी उहदा रहा, लेकिन और भी वहुत से काम भाई, वेटे, भतीजो के सुपुर्द थे। कोई मसवदार था, कोई सूवो की साइर का इजारदार था। कोठिया जा वजा जारी थी, खजाने हाथ में थे, चैन से गुजरती थी, धन दौलत रखने की मानो जगह वाकी न रही थी।

"इस अर्से में वगाल के सूवेदार नव्वाव नाजिम कासिम अली खा ने जुल्म पर कमर वाधी। रअय्यत तग आई। जनाने में हरदम खौफ लगा रहता था कि नव्वाव वेइज्जत कर डाले। नाचार अगरेजो से जा मिले। रुपये की मदद दी, नव्वाव पर चढा लाये। नव्वाव को खवर हो गई। राइ मुहकम सिह का परलोक हो चुका था। राजा डालचन्द और जगत्सेठ फतहचन्द के पोते जगत्सेठ महताव राय को पकड मगाया और कैद किया। घर में सलाह हुई कि राजा डालचन्द अपने वाप के अकेले हैं और जगत्सेठ फतहचन्द की औलाद वहुत। पस, पहरेवालो को मिलाकर राजा डालचन्द के वदले जगत्सेठ महताव राय के चचेरे भाई सरूपचन्द तो कैदखाने में चले आये। (क्या समय

था !) और राजा डालचन्द वहा से भाग कर वनारस में नव्वाव वजीर सूबेदार अवध की हिमायत में आ वसे । कासिम अली खा इतना ही जानता था कि दो भाई जगत्सेठ कैद हैं । जव भागा तो दोनो को साथ ले लिया, मुगेर पहुँच कर तीरो से मार डाला । चुन्नी नाम एक खिदमतगार साथ था। जुदा होने को वहुत समझाया, न माना । जब नव्वाव तीर मारता था, सामने आ खडा हो जाता था—मानो दोनो भ इयो की ढ ल वनता था । जव चुन्नी मर कर गिर लिया है तव दोनो भाइयो के तीर लगा है (कैसे नौकर थे !)। हमारी दादी कहती थी कि उस काल जनाने में सव लोग वारूत विछा कर बैठते थे कि जो नव्वाव के आदमी वेइज्जत करने आवे, आग लगा कर उड जावें । परन्तु भगवान की कृपा मे जल्द ही शहर में अगरेजो की डौंडी पिटी । लोगो के जी में जी आया, सूखा धान फिर लहलहाया ।

'यह राजा डालचन्द हमारे घराने के मानो भूषण हो गये । अजव पुरुष थे । तत्त्वज्ञान और योगाभ्यास के प्रभाव से कहते है कि उनके पाव के नीचे चीटी नही मरती थी । खेचरी सिद्ध हुई थी, जिव्हा भृकुटी के मध्य तक पहुँचती थी । आसनादिक और धोती नेती वज्रोली की क्या वात हैं, सब सिद्ध थी और खेचरी ही मुद्रा कर के देहत्याग किया । सस्कृत, पारसी, अरवी, वगला, वृजभाषा अच्छी तरह जानते थे, ज्योतिष और वैद्यक मे भी निपुण थे । वहुतेरे ग्रन्थ नये रचे, वहुतेरे तर्जुमा अर्थात् भाषान्तर हुए । हाथी घोडे की सवारी, लकडी, वाक, पटा, तीरदाजी, गाना-वजाना, तैरना सव में पूरे थे । घडीसाज की क्रिया, वढई की, सुनार की, लुहार की, जडिये की, पटुए की, वंगडी की, दर्जी की, जर्दोज की, मुलम्मेसाज की, मुसव्विर की सारी क्रिया अपने हाथ से कर सकते थे । और फिर वैसे ही उदार और सूर भी थे । जिस समय राजा चेत सिंह और वारन हेस्टिंग्ज का वखेडा हुआ, नव्वाव इब्राहीम अली खा ने कहला भेजा कि हम वारन हेस्टिंग्ज की रिफ कत के वाइस नाहक मारे जाते है। उसी दम जनानी डोली भेज कर चुपचाप वुलवा लिया और अपने मकान में छुपा रक्खा। ऐसे समय मे कौन किसके साथ दोस्ती निभाता है और साहस करके अपनी जान खतरे में डालता है ?

"उनके वेटे राजा उत्तमचन्द* ने जिन्होने लखनऊ वाले राजा वछराज की वेटी व्याही थी, पुत्रहीन होने के कारण अपनी वहिन वीवी रत्नकुअर के वेटे वाबू गोपीचन्द को गोद लिया। और उन्ही के वेटे राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने अपने दोनो पुत्र कुवर सच्चित्प्रसाद और कुवर आनन्दप्रसाद की वहुए और अपनी वहिन वीवी गोविन्द कुवर की खातिर, जो जैन धर्म की निरन्तर अवलम्वी है, इस ग्रन्थ को कि जव से राजा डालचन्द ने भाषा में वनवाया† एक ही प्रति घर में रहा था, उद्धार करके अर्थात् छपवा के अमर किया। जो पढे सुनें, दया करके असीस दें कि धर्म में रति रहे, परलोक सुधरे और कुवुद्धि कभी पास न फटकने पावे। शुभ भूयात्।"

(४)
मानिकचंद के भाई

इस पुस्तक का विषय मानिकचन्द और उनके वशजो का ही वृत्तान्त है। पर हम देख चुके हैं कि हीरानन्द साह के छ और पुत्र थे, जिनमें (सभवत) चार

* वावू श्याम सुदर दास ने राजा शिव प्रसाद सितारएहिंद को वावू गोपीचद का पुत्र और राजा डालचद का पौत्र वताया है (पृष्ठ १८२-८३)। यह भूल जान पडती है। राजा वच्छराज के सवन्ध में द्रष्टव्य पृष्ठ ४६७।

† यह सवत् १८३८ की वात है। भाषान्तरकार कोई रामचन्द नामक कवि थे। कल्पसूत्र का मूल प्राकृत वाणी में था, और राजा डालचन्द के कहने से ही कवि रामचन्द ने उसका "भाषा" में अनुवाद किया। अपने आश्रयदाता के सम्वन्ध में उन्होने लिखा है —

"......जिन जन कुल परसस, गोत्र गोखरू जैनमत ओस-वस-अवतस। समाचन्द नररायकै अमरचन्द वरराय, तिनके सुत कुलचन्द नृप डालचन्द सुखदाय। सुधराई के सुघर अरु सौहृद सुहृद् सुवान, सुभ सौभाग्य सुभाग्य अरु सुठ सौजन्य सुजान। गुनगाहक गुनवान पै निर्गुन ग्यान निधान, समी दमी नियमी यमी हमी तमी भ्रमभान।"

मानिकचन्द से बडे थे । आपस में बँटवारा हो जाने पर वे कहा गये और क्या करने लगे ? इतिहास में इस प्रश्न का सन्तोपजनक उत्तर नही मिलता। हा, यह किवदन्ती चली आती है कि उनकी भी उत्तर भारत के विभिन्न स्थानो में—बगाल के वाहर—कोठिया थी और उनका कार-वार भी काफी वढा-चढा था।

मि० लिट्ल ने अपने जगत्मेठ-सवधी लेख में उनके अस्तित्व पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा की है । जान पडता है कि एक विशेष अवसर पर कपनी के कर्मचारियो को मानिकचन्द के भाई-भतीजे से कुछ काम पड गया। भतीजे से काम पडा इस वात का ऐतिहासिक आधार है, पर भाई से काम पड़ा यह मि० लिट्ल का अनुमान-मात्र है।

जो हो, मि० लिट्ल की वात सुनने लायक है —

"१७१५ मे जव जान सरमन कलकत्ते से रवाना होने लगा तव कौंसिल ने उसे दिल्ली के दो महाजनो के नाम चिट्ठिया दे कर कहा कि रुपये की जरूरत हो तो इनसे कर्ज ले लेना। एक चिट्ठी लालविहारी सेठ के नाम थी, दूसरी जुगलकिशोर सेठ के नाम । पर इनसे कुछ काम न चला। २० जुलाई १७१५ को सरमन लिखता है—"रुपया कही न मिला। लालविहारी तो देने से साफ इनकार करता है या देगा भी तो वडे कडे सूद पर। जुगलकिशोर इस समय आगरे में है। उसे इस विपय मे पत्र लिख भेजा है, पर सफलता की आशा कम है । कौंसिल दूसरे महाजनो के नाम चिट्ठिया भेज कर यह समस्या हल कर सकती है।" कलकत्ते से पत्रद्वारा दूसरी व्यवस्था की गई। सरमन ने कपनी के "प्रेसिडेन्ट और कौंसिल" पर हुडी कर "गुलालचन्द साह" की कोठी से रुपया लिया । ६ अक्टूबर को वह कौंसिल को लिखता है कि गुलालचन्द साह का गुमाश्ता कह रहा था कि कौंसिल ने हुडी सकार तो ली, पर उसका भुगतान अभी तक नही किया है। सरमन को ९ अप्रैल १७१७ को फिर रुपये की जरूरत पडी । इस वार उसने २५,०००) की हुडी कर काम चलाया। उस हुडी के मजमून से जान पडता है कि इस वार जान सरमन ने रुपया "किशोरी किशनचन्द" के गुमाश्ते से लिया ।

"५ जुलाई को सरमन दो हुडिया करता है एक १२,०००) की, दूसरी १३,०००) की। रुपये देने वाले थे दिल्ली के 'किशोरी किशनचन्द" के गुमाश्ते। पर इसके वाद की एक चिट्ठी मे, सरमन इन हुडियो का जिक्र करता हुआ लिखता है कि "यह रकम गुलालचन्द साह की कोठी से ली गई है।" क्या सरमन से यहा कोई भूल हो गई है ? या क्या एक ही कोठी दो नामो से चलती थी और "गुलालचन्द साह" तथा "किशोरी किशनचन्द" में कुछ भी फर्क न था ? वात चाहे हो, हम इतना जानते है कि ये हुडिया किसी न किसी प्रकार गुलालचन्द साह के हाथ में आई और उनके द्वारा मानिकचन्द की कोठी को वेच दी गई। गुलालचन्द साह ने खुद पटने में सरमन से शिकायत की कि 'सुनने मे आया है कि कपनी ने हुडियो के रुपये देने में सैकडे २) वट्टा काट लिया है।' उन्होने सरमन से कहा कि 'मानिकचन्द की कलकत्ते की कोठी से पक्की खवर मगा दो कि हुडियो का पूरा पूरा भुगतान हुआ या नही।'

"सरमन अपने एक पत्र में कौंसिल को सूचित करता है कि हमने मित्तरसेन को दिल्ली में कपनी का गुमाश्ता मुकर्रर किया है। वह यह भी लिखता है कि "मित्तरसेन का छ महीने का वेतन हम गुलालचन्द साह की कोठी में जमा करा आये है, और उसके नाम की सारी चिट्ठिया गुलालचन्द साह की कोठी के पते पर जानी चाहिए"। पर दूतदल की डायरी में यह प्रस्ताव मिलता है कि "मित्तरसेन को प्रति मास १००) देने के लिए मि० जान सरमन मुरलीधर के पास ६००) जमा करा दें।" अर्थात् रुपया तो 'किशोरी किशनचन्द" की कोठी में जमा कराना निश्चित हुआ, पर कौसिल को लिखा गया कि "गुलालचन्द साह" की गद्दी में जमा कराया गया है।

"आगरे में दूतदल ने खुद "किशोरी किशनचन्द" से रुपये लिये, कोडा जहानावाद में उनके गुमाश्तो से। पर एक चिट्ठी जो कलकत्ते भेजनी थी और एक लँगडा ऊँट जिसे वेच देना था "गुलालचन्द साह" के गुमाश्तो को सौंपे गये। इलाहावाद में सरमन ने "किशोरी किशनचन्द" से फिर रुपये लिये। वनारस में उसे कर्ज लेने की जरूरत न पडी।

"इस विवरण से पता चलता है कि उस समय उत्तर भारत में एक बड़ी कोठी थी, जिसका कार-वार पटने से आगरे तक फैला हुआ था। पटना सभवत कार्य्य-केन्द्र था और वहा का काम-काज गुलालचन्द साह देखते थे। आगरे में प्रधान शाखा थी और वह किशोरी किशनचन्द की देख-रेख में थी। इन स्थानो के वीच में भी इस घराने की कितनी ही शाखा-प्रशाखायें थी।

"क्या इस घराने का मुशिदावाद के सेठ घराने से कोई सम्वध था ?

"इस प्रश्न का उत्तर देते समय एक कठिनाई उपस्थित होती है। हीरानन्द साह के किसी भी पुत्र का नाम गुलालचन्द साह न था। पर वहुत सभव है नाम वास्तव मे गुलावचन्द साह था, सिर्फ किसी कातिव की गलती से 'व' की जगह 'ल' लिखा गया, और परवर्ती इतिहासकार आख मूद कर वही गल्ती दोहराते गये। हम देख चुके हैं कि दिल्ली के जिन महाजनो के नाम कौंसिल ने शुरू मे चिट्ठिया दी थी उनमे से किसी ने सरमन को रुपया न दिया। जान पडता है, ऐसी अवस्था मे कौसिल ने मानिकचन्द से सहायता मागी और मानिकचन्द ने अपने भाई की कोठी का नाम वता दिया।

"मित्तरसेन कौन था ? अवश्य ही यह शव्द मित्रसेन का अपभ्र श है। इतिहास से ज्ञात होता है कि राय मित्रसेन मानिकचन्द के दत्तकपुत्र फतहचन्द का वडा भाई था, और वह १७३९ के कत्ले आम में मारा गया था।

"यह तो मानी हुई वात है कि मानिकचन्द के और भाई भी उत्तर भारत के जहा-तहा व्यवसाय करते थे। यहा केवल यही सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि कपनी के दूतदल को जिस कोठी से लेन-देन का काम पडा था वह मानिकचन्द के भाई गुलावचन्द की ही कोठी थी।"

मि० लिट्ल का विचार है कि सरमन की डायरी में जहा 'गुलालचन्द साह' आया है वहाँ वास्तव मे 'गुलावचन्द साह' होना चाहिए था और इसी से वह अनुमान करते है कि यह नाम मानिकचन्द के भाई का ही था। यहा यह कह देना आवश्यक है कि 'गुलावचन्द' नाम मि० लिट्ल की दी हुई वशावली मे मिलता है। वावू पूर्णचन्द नाहर ने जो वशावली दी है उसमे मानिकचन्द के

भाई का नाम 'गुलालचन्द' मिलता है। इससे मि० लिट्ल के अनुमान की पुष्टि ही होती है। हा, 'मित्तरसेन' को जो उन्होने फतहचन्द का बडा भाई (मित्रसेन) मान लिया है यह आपत्तिजनक जान पडता है। क्या उस घराने की अवस्था इतनी दीन-हीन हो गई थी कि मित्रसेन को सौ रुपये पर अगरेजों का गुमाश्ता होना स्वीकार करना पडा था ?

१७३५ के लगभग हम मानिकचन्द के भतीजे लालजी को मुर्शिदावाद में पाते हैं। लालजी के पिता का नाम सदानन्द था, और उनके मुर्शिदावाद आने का कारण ईस्ट इडिया कपनी से लेन-देन-संबधी झगडा था। हम देख चुके है कि जान मरमन की अध्यक्षता में जो दूतदल दिल्ली भेजा गया था उसके साथ ख्वाजा सरहाद नामक अरमनी व्यापारी भी था। सरहाद को उस यात्रा में कुछ रुपये की जरूरत पडी और उसने कपनी से अपना सम्बन्ध बता कर सदानन्द से कर्ज ले लिया। यह रुपया उसने कभी अदा नही किया। इसका कारण यह था कि कपनी से उसे जो रकम मिलनी चाहिए थी वह उसे मिली न थी। १७३४ के करीब वह दुनिया से चल बसा। सदानन्द को मालूम था कि उसका पावना कपनी के जिम्मे था और उसने दिल्ली दरबार में दर्खास्त की कि हमें अगरेजो से रुपया दिला दिया जाय। वहा से नवाब को हुक्म हुआ कि अगरेजो से सरहाद का पावना अदा करा दो। कुछ समय बाद लालजी स्वय मुर्शिदाबाद गये और अपने रुपये का कपनी से तकाजा कराने लगे।

फतहचन्द ने स्वभावत अपने भतीजे का पक्ष लिया और चेष्टा करने लगा कि उनका रुपया वसूल हो जाय। हाजी अहमद भी हर तरह उनकी मदद करने को तैयार था। अगरेजो ने लिखा कि हाजी "फतहचन्द को खुश करने के लिए" लालजी को रुपया दिलाना चाहता है। पहले उन्हे रुपया देने की बात मजूर नही हुई। उनका कहना था कि ख्वाजा सरहाद के जिम्मे कपनी का ही बहुत कुछ पावना रह गया था, वे लालजी का कर्ज कैसे और कहा से चुकाते ? पर अगरेजो को यह बात स्वीकार करनी पडी कि सरहाद उनसे इनाम पाने का हकदार था, और वह रुपया उसे मिला न था। अन्त में कौंसिल ने कासिमबाजार के प्रधान को लिखा कि "जिन शर्तों पर मुनासिब समझो

(६)

हालवेल

जान नफानिया हालवेल अठारहवी शताब्दी के मध्यभाग में ईस्ट इंडिया कंपनी का एक साधारण कर्मचारी था। सिराजुद्दौला के राज्यकाल में, और उसके बाद, चलने वाले घटनाचक्र ने उसे कही से कही पहुँचा दिया और क्लाइव के प्रस्थान करने पर वह कुछ दिनो के लिए कलकत्ते का गवर्नर भी हो गया। उसमें लिखने-पढने की योग्यता देश-काल के लिहाज से अच्छी थी, पर उसका नैतिक स्तर उस समय भी बहुत नीचा समझा जाता था।

जब सिराजुद्दौला ने फोर्ट विलियम पर घेरा डाला तब अधिकाश अगरेज तो जान बचाने के लिए जलमार्ग से निकल भागे, पर जो थोडे से लोग न भाग सके उनमें यह हालवेल भी एक था। उसके साथियो में भी अधिकाश तो मारे गये पर हालवेल किसी प्रकार बच गया। कुछ समय बाद उसने "कालकोठरी" की कहानी गढ कर कपनी के सचालको के सामने रखी और अपने लिए सहानुभूति, सद्भाव और पुरस्कार के अतिरिक्त, प्रसिद्धि भी प्राप्त कर ली। पलासी का युद्ध समाप्त हो चुका था; राज्यक्राति के फलस्वरूप बगाल के असली शासक अगरेज हो चुके थे। उनकी दृष्टि से इस प्रकार का प्रचार अत्यन्त आवश्यक था कि क्लाइव ने सिराजुद्दौला के साथ जो कुछ किया था वह प्रतिशोध-मात्र था—अगर इसकी पैशाचिकता "कालकोठरी" में अपनी चरमसीमा को न पहुँच गई होती तो अगरेजो ने मीर जाफर से मिलकर जो कुछ किया वह सभवत उन्हें न करना पड़ता। पर ढोल की पोल खुल चुकी है—मि० लिट्ल, ०० भोलानाथ चद्र, श्री अक्षय कुमार मित्र, सईद अमीन अहमद आदि की गवेषणा के फलस्वरूप यह प्रमाणित हो चुका है कि कालकोठरी की कहानी निराधार थी और जिन १२३ व्यक्तियो के विषय में हालवेल ने लिखा कि वे २० जून, १७५६ को उसमें दम घुट जाने से मर मिटे थे वे या तो उस समय किले में थे ही नही या थे भी तो नवाब से होने वाली लड़ाई में मारे गये थे। सारी कहानी झूठी साबित हो चुकी है—लार्ड कर्जन के

वनवाये हुए स्मारक का भी मूलोच्छेद हो चुआ है—पर कुछ 'इतिहास'-ग्रथ उस वात को दोहराते ही जा रहे है।

प्रोत्साहन मिलने पर हालवेल ने इससे भी व्यापक क्षेत्र में प्रवेश किया और प्रामाणिकता को ताक पर रख, भारतवर्ष के प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास के सम्बन्ध में भी, कितनी ही ऐसी निराधार वातें लिख डाली जिनका उद्भावक या तो वह स्वय आप था या उसका कोई खानसामा या वावर्ची। ऐसे सफेद झूठो के प्रचार की दृष्टि से वह समय उसके अनुकूल था। वह जानता था कि इस देश में या अन्यत्र अगरेजी पढे-लिखे लोगो में, ऐसी वातो की जानकारी नही के वरावर थी—विद्वत्समाज में भी खोटे सिक्के की पहचान असभव थी।

सरफराज खा और फतहचन्द के सम्बन्ध-विच्छेद का कारण बताते हुए कुछ अगरेज इतिहासकारो ने हालवेल की वात को ही दोहराया है। हालवेल की इस वात की पुष्टि किसी समसामयिक फारसी इतिहास-ग्रथ से नही होती। "मुताखरीन" और "रियाजुस्सलातीन" ने सरफराज खा के चारित्र के सम्वन्ध में जो कुछ लिखा है वह यथास्थान उद्धृत हो चुका है। इनके अलावा एक और लेखक यूसुफ अली खा का भी मत उद्धृत कर देने लायक है। वह लिखता है—"सरफराज खा का चरित्र अत्यन्त विशुद्ध और अनुकरणीय था। जीवन के वसन्तकाल में उसे राज्याधिकार मिला था और सुख-समृद्धि से वह दिनरात घिरा रहता था। पर सत्य के अनुरोध से मुझे यह कहना पडता है कि ऐसे वातावरण में भी सरफराज खा इन्द्रियलोलुप न निकला। शासन तो उसने थोडे ही काल तक किया पर मैं प्राय वरावर उसके साथ था, और मै कह सकता हूँ कि मैने कभी किसी वुरे कार्य की ओर उसकी प्रवृत्ति न देखी। हा, यह सच है कि न तो वह राजनीति जानता था, न ससार को प्रसन्न रखने की विद्या ही। नतीजा यह हुआ कि दुश्मनो की चालवाजी उसे चाट गई।"

यहा यह वात ध्यान में रखने की है कि जिन मुसलमान लेखको ने सरफराज खा को सदाचारी वताया है—और उनमें कुछ उसके विपक्षी भी

थे—उन्होने ही डके की चोट कहा है कि शुजाउद्दौला परले सिरे का कामुक था। कोई कारण नही जान पडता कि पिता के चरित-सबधी दोष पर प्रकाश डालने वाले, पुत्र के वैसे ही दोष पर एकमत होकर परदा डाल देते और जो स्याह होता उसे सफेद बता जाते। हालवेल ने लिखा है कि मै जो कुछ कह रहा हूँ वह कानाफूसी के आधार पर। पर वह कानाफूसी और किसी तक न पहुँच सकी, यह स्वय एक रहस्य जान पडता है।

सच्ची बात यह है कि हालवेल झूठा ही नही, झूठो का सिरताज था। अपने लिखे हुए इतिहास में जहा कही उसने मौलिकता का दावा किया है वहा समझ लेना चाहिए कि या तो उसकी कपोल-कल्पना में सत्य का लेश भी न होगा या होगा भी तो मन भर पानी में छटाक-भर दूध के ही बराबर।

हालवेल की विश्वसनीयता के सम्बन्ध में मि० लिट्ल ने यह मत प्रकट किया है—

"इतिहासकारो की श्रेणी में हालवेल जैसा मिथ्यावादी और ढोंगी आजतक शायद नही बैठा। जान जेफ़निया हालवेल को अगरेजो ने उच्च श्रेणी का लेखक और शूरवीर माना है। १७५६ में जब सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर चढाई की तब हालवेल वही था। उसी ने "काल कोठरी" का वृत्तान्त पहले पहल प्रकाशित किया था और सिराजुद्दौला के नाम पर वह कलक लगाया था जो उसे मिटाने की इतनी चेष्टा होने पर भी, ज्यो का त्यो बना हुआ है। १७६० में क्लाइव के विलायत लौटने पर हालवेल कलकत्ते का गवर्नर हुआ। गवर्नर की कुर्सी पर बैठते ही हालवेल ने मीर जाफर के विरुद्ध षड्यत्र* रचना शुरू कर दिया और अन्त मे उसे मुर्शिदाबाद की मसनद से हटाके ही छोड़ा। कौसिल इस कार्रवाई के सर्वथा विरुद्ध थी, पर हालवेल ने इस विषय में

* १७६६ मे क्लाइव और उसकी कौंसिल ने सचालको को यह सूचित करना अपना कर्त्तव्य समझा कि हालवेल ने मीर जाफर पर जिन हत्याओ का अभियोग लगाया था वे असत्यमूलक थी। हालवेल के कथनानुसार जितने व्यक्ति मारे जा चुके थे उनमे दो को छोड़कर बाकी सभी उस साल तक जीवित थे।

उसकी सम्मति ही नही लेने दी। क्लाइव ने उसकी घोर निन्दा की है। जब वह चलने लगा था तब उसे ऐसे "स्वार्थी और अर्थ-लोलुप" व्यक्ति को अपना कर्त्तव्य-भार सौंपते हुए बडा भय हुआ था। उसने लिखा था—"इस व्यक्ति के वुद्धि है, पर मुझे डर है कि इसके हृदय नही है। पर गवर्नर के पद के लिए योग्यता और सचाई दोनो ही एक-से आवश्यक हैं, और यही कारण है कि मैं इस व्यक्ति को इस पद के अयोग्य समझता हूँ।" जिस समय सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर चढ़ाई कर अगरेजो के किले पर घेरा डाल दिया था उस समय जान जेफनिया हालवेल भी वही मौजूद था और मर मिटने से बाल बाल बच गया था। इसके लिए वह बडा साहसी और कर्त्तव्यपरायण माना गया है। पर उसके समकालीन व्यक्ति अच्छी तरह जानते थे कि बात क्या थी। जल—सेनापति ऐडमिरल वाट्सन के सर्जन ने अपनी भारत-यात्रा के वृत्तान्त में लिखा है कि कपनी के कर्मचारी-मडल का विश्वास और ही था। उनका कहना था कि हालवेल ने कलकत्ता न छोडा, तो इसका एकमात्र कारण यह था कि वह भागने में असमर्थ था। और तो क्या, क्लाइव ने भी इसी विश्वास की पुष्टि की है। अपने एक पत्र मे वह लिखता है—"मुझे पक्की खबर मिली है कि हालवेल की इसमें कुछ भी बहादुरी न थी। अगर उसे सिर्फ एक किश्ती मिल जाती तो वह भी औरो की तरह भागे बिना न रहता।"

"यहा तक जो कुछ लिखा गया उससे स्पष्ट हो गया कि हालवल की जिस वीरता की प्रशसा के पुल बाधे गये हैं उसकी असलियत क्या थी। पर हँसी उन लोगो की बुद्धि पर उतनी नही आती जिन्होने उसे वीर माना है, जितनी उन लोगो की बुद्धि पर जो उसे इतिहासकार मानते हैं। हालवेल अगर झूठा था तो धृष्ट भी कम न था। उसने दावा किया है कि "भारतवर्ष का इतिहास लिखने के लिए, मैंने घोर परिश्रम किया। इस देश की प्राचीन और अर्वाचीन अवस्था के विषय में आजतक जो कुछ लिखा जा चुका है मैं सब से परिचित हूँ। हिन्दुओ के सम्बन्ध में आरियन से ले कर अब्वे द गुओ के समय तक जिस ग्रन्थकार ने जो कुछ कहा है, मैं सब जानता हूं। ब्राह्मणो के वेदशास्त्रो में भी मेरी गति है।" पर हालवेल के पहले जो ग्रथ निर्मित हुए थे, जो ऐतिहासिक प्रयत्न

-हुए थे वे सत्य के जिज्ञासु के लिए अत्यन्त भ्रामक, असन्तोषजनक और दोषयुक्त थे, अतएव इस सत्यशोधक को अज्ञान-तिमिर के हृदय पर तेज का वह तीर छोडना पडा। इस अध्यवसाय और अध्ययन के फलस्वरूप जिन तत्त्वों का उद्घाटन हुआ, और लोक-हितकामना से प्रेरित हो कर जिन्हें हाल्वेल ने लेखबद्ध किया, उनकी वानगी पाठको की भेंट की जाती है।

"अपने इतिहास के लिए सामग्री इकट्ठी करने में हाल्वेल के तीस वरस लग गये। इस अन्वेषण के फलस्वरूप उसे हिन्दुओ के वेद की दो शुद्ध और अमूल्य प्रतिया हाथ लग गई। वडे परिश्रम से हाल्वेल को यह ग्रथ-रत्न मिला था, और अठारह महीने उसने उसका अनुवाद करने में विताये। इसी बीच में १७५६ की दुर्घटना हुई और उस शास्त्र की दोनो प्रतिया और उसके अनुवाद की पाडुलिपि लूट-मार में न जाने कहा खो गई। पर कुछ समय वाद, उसे खोया हुआ धन फिर हाथ लग गया और इसके फलस्वरूप वह ससार को हिन्दुओ के अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ 'चतुर्वेद'* का परिचय-प्रदान करने में समर्थ हुआ। हालवेल के समय में इस ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापन का प्रचार वहुत कम था, यहा तक कि सस्कृत लिपि में उसे पढ़ने-पढ़ाने वाले घर सारे हिन्दुस्तान में दो ही चार थे। हालवेल ने मूल-ग्रन्थ के दो भागों का अनुवाद अपने इतिहास में दिया है। चतुर्वेद की विषय-व्याख्या भी की है। पर अनुवाद में यत्र-तत्र मूल-ग्रन्थ की शुद्ध प्रति के कुछ शब्द रखने पडे, इसलिए फुटनोटो में उनका अर्थ समझा दिया गया है। कही कही आपने कृपा कर पाठको को यह भी वता दिया है कि आपके अनुवाद का मूल शब्द या मूल वाक्य क्या था। मूल ग्रन्थ के ये ही शब्द या वाक्य हालवेल की कलई खोलते है। क्योंकि अनुवाद या फुटनोटों में सस्कृत के जो शब्द आये है उनमें "लोग" और "देवता लोग", "महासर्ग" (महास्वर्ग) और "अधेरा", "सूरजी" और "चन्दर" है। कही "दुनिया" और "मभू लोग" (मानव लोक) हैं तो कही "गोइजल वाडी" (गोशाला) और "जोग" (युग) हैं। सस्कृत के नाम से कही "झोल" पानी के अर्थ में विचर रहा है तो कही "हजार पर हजार" डकार ले रहा है। हालवेल ने जिस वाक्य से अपने अनुवाद

* हालवेल के शब्दो में "Chartah Bhade of Bramah."

का श्री गणेश किया है वह है God is one, पर जिस संस्कृत मूल वाक्य का यह अनुवाद है वह है "एक हमेशा"। चौथे वेद का नाम "ब्रह्म का इन्साफ वेद" है, यद्यपि बहुत चेष्टा करने पर भी हालवेल को उसके दर्शन न हो सके। अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। पाठक इतने से ही संतोष करें।

"यदि कहा जाय कि वैदिक साहित्य और सभ्यता पर उस समय तक अंगरेजो के लिए अन्धकार का ऐसा मोटा पर्दा पड़ा हुआ था कि हालवेल से ऐसी भूलें होना क्षम्य था, तो इसका क्या उत्तर है कि उसने मुगल शासनकाल के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बे-सिर-पैर की बातें लिख मारी हैं। १७१९ में शाहजादा निकोसियर ने दिल्ली के सिंहासन पर बैठने की निष्फल चेष्टा की थी। यह औरंगजेब का पौत्र अर्थात् शाहजादा अकबर का पुत्र था। पर हाल्वेल उसे उस इतिहास-प्रसिद्ध भारत-सम्राट् अकबर का पुत्र बताता है, जिसकी मृत्यु सौ बरस से भी अधिक पहले हो चुकी थी। कहा गया है कि यदि औरंगजेब के मरणकाल से मुहम्मदशाह के समय तक के इतिहास के लिए हालवेल का ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाय तो एल्फिन्स्टन ने उस समय का जो इतिहास लिखा है उसके संशोधन की आवश्यकता है। और यदि "मुताखरीन" इतिहास कहा जा सकता है तो १७१७ और १७५० के बीच के बंगाल के वृत्तान्त के लिए हालवेल का ग्रन्थ उपन्यास है। हाल्वेल की मिथ्यावादिता के कितने उदाहरण दिये जाय? उसकी सारी पुस्तक उनसे भरी पड़ी है। जान सरमन की अध्यक्षता में जो दूतदल फर्रुखसियर के पास भेजा गया था उसका उल्लेख हो चुका है। हालवेल ने ऐसी प्रसिद्ध और उसके लिए आधुनिक घटना के संबध में भी, जो कुछ लिखा है उसका अधिकांश कल्पना-जल्पना-मात्र है। वह कहता है—"जान सरमन फरमान ले कर दिल्ली से लौटा आ रहा था। जब वह मुर्शिदाबाद के पास पहुँचा, तब कुछ समय के लिए वहीं डेरा डाल दिया और जफर खा को इसकी सूचना दी। सरमन को बादशाह से उमरा का खिताब मिला था। अर्थात् उसका दर्जा बंगाल के सूबेदार से कुछ ऊँचा था। स्वभावतः वह इस विचार में था कि पहले नवाब यहा आकर मुझसे मिल ले, तब मैं उसके घर पर जाकर उससे मिलूं। पर नवाब को यह

मंजूर न हुआ । उसने यह तो स्वीकार किया कि सरमन का खिताब उसके खिताब से ऊचा था, पर उसका कहना था कि मैं बगाल का नवाब और सल्तनत का तीसरा बडा सूबेदार हूँ, इसलिए पहले सरमन को आकर मुझसे मिलना चाहिए , नही तो मेरी इज़्जत में बट्टा लग जायगा । तीन रोज तक दोनो ओर से दूत आते-जाते रहे, पर किसी ने पहले जाना मजूर नही किया । अन्त में सरमन ने कलकत्ते की राह ली । शान में आकर महज छोटी सी बात के लिए सरमन ने नवाब को खफा कर दिया । यह न सोचा कि फर्रुखसियर के फरमान के अनुसार कार्य होना नवाब की सदिच्छा पर ही निर्भर था।" यह कहानी शुरू से आखिर तक हालवेल के मन की उपज है। सरमन की पूरी डायरी प्रकाशित हो चुकी है। उसकी दिल्ली-यात्रा से सबध रखने वाले और कागज भी प्रकाशित हो चुके हैं । पर उनमे इस घटना का उल्लेख तक नही है। बल्कि सरमन की डायरी से पता चलता है कि वह मुर्शिदाबाद हो कर कलकत्ते लौटा ही नही । क्या हालवेल का ग्रन्थ ऐतिहासिक उपन्यास कहाने के भी योग्य है" ?

(७)

"महाराष्ट्र-पुराण"[१]

कई वर्ष हुए, मैमनसिंह जिले में "महाराष्ट्र-पुराण" नामक पुस्तक की एक हस्तलिखित प्रति मिली थी । इसके रचयिता कोई गगाराम कवि थे, जो इसमे वर्णित घटनाओ के समसामयिक थे। पुस्तक की ऐतिहासिकता को विद्वानो ने बडी प्रशसा की है । जगत्सेठ की कोठी लुटने के विषय में इसमें जो कुछ लिखा है वह "मुताखरीन" के बयान से मिलता-जुलता है। पुस्तक "बगीय साहित्य-परिषत्-पत्रिका" में प्रकाशित हो चुकी है । नीचे मीर हबीब द्वारा लूट-पाट के सम्बन्ध की पक्तिया उद्धृत की जाती है —

"तबे बरगि पार* हइल हाजिगजेर हाटे,
शीघ्रगति आइसा जगत्सेठर बाडी लुटे।
आडकाट टाका यत घरे छिल,
घोडार खुरचि भइरा सब टाका निल।
तबे सओ दुइ-तिन टाका छडाइया,
शीघ्रगति गेला बरगी गगा पार हइया।
तबे फकीर-फाकीरा, गिरस्त जन छिल,
सेई सब टाका तारा लुटिते लागिल।
तबे काटयाते नवाव साहिव सुनिल,
जगत्सेठर वाडी वरगि लुइटा गेल।
एतेक कथा यदि हरकरा कहिल,
काटया हइते नवाव शीघ्र चलिल।
राता राती तबे नवाव आइला मोनकरा,
भोर हइते तबे पहछिला डेरा।
तबे हाजि साहेव के नवाव अनेक वुलिल
"एतेक लस्कर रइते वाडी लुइटा गेल" ।

---

* जगत्सेठ की कोठिया भागीरथी के दोनों ओर थी, पर पश्चिम तट की अपेक्षा पूर्व तट विशेष सुरक्षित होने के कारण वह अपना कोष उसी ओर की पुरानी कोठी में रखते आये थे। मराठो के मार्ग में भागीरथी गगा या पद्मा के समान वाधक वनने वाली न थी। फिर गगाराम ने 'लूट' का धन दो करोड न वता कर इतना ही लिखा है कि जगत्सेठ के घर में जितने आडकाटी रुपये थे उन्हें मराठे घोडो की खुरजियो में भरकर ले गये ।

सहायक ग्रंथ

प्रस्तुत पुस्तक लिखने में निम्नलिखित ग्रथों से विशेष सहायता ली गई है :—

(१) "मुताखरीन"—लेखक सैयद गुलाम हुसैन खा। अंगरेजी अनुवादक रेमों (उपनाम हाजी मुस्तफा)

(२) "रियाजुस्सलातीन"—लेखक गुलाम हुसैन सलीम। अगरेजी अनुवादक मौलवी अब्दुस्सलाम।

(३) "हिस्टरी आव औरंगजेब"—लेखक सर यदुनाथ सरकार।

(४) "लेटर मुगल्स" (दो भाग)—लेखक विलियम अर्विन।

(५) "अर्ली ऐनल्स आव दि इग्लिश इन बगाल" (तीन भाग)—लेखक और सम्पादक सी० आर० विल्सन।

(६) "बंगाल पास्ट ऐंड प्रेजेन्ट" (ऐतिहासिक पत्रिका) १९२०-२१। मुर्शिदाबाद में नवाब बहादुर के स्कूल के हेडमास्टर जे० एच० लिट्ल के जगत्सेठ-सम्बन्धी लेख।

(७) "बगाल इन १७५६-५७" (तीन भाग)—सपादक एस० सी० हिल।

(८) "ग्लूले ऐंड क्लाइव"—लेखक एच० एच० डाडवेल।

(९) "कन्सीडरेसन आन इडिया ऐफेयर्स", (दो भाग)—लेखक विलियम बोल्ट्स (१७७२-७५)।

(१०) "केम्ब्रिज हिस्टरी आव इडिया", भाग ५।

(११) "कैलेंडर आव पर्शियन कारेसपान्डेन्स", भाग ७।

अनुक्रमणिका